TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178866

UNIVERSAL
LIBRARY

ब्रह्मपुत्र की प्रजा के चरणों में

लोक-युग का नदी-पुराण

भारत की नदियों का वर्णन करते हुए व्यासजी ने उन्हें 'विश्वस्य मातरः' कहा है। सचमुच नदियाँ लोकमाता ही होती हैं। लेकिन सब नदियो को हम माता नहीं कहते। विश्वामित्र ने तमसा नदी को अपनी बहन कहा है। हमारे गाँव की छोटी मार्कंडी मेरी छोटी बहन है। हम बचपन मे साथ बहुत खेले है। यमुना नदी काल भगवान् यमराज की बहन है और गुजरात की ताप्ती या तपती नदी तो यमराज के पिता सूर्यनारायण की पुत्री कही जाती है।

हिमालय के उस पार का पानी भी भारत का है, यह सिद्ध करने के लिए सिधु और ब्रह्मपुत्र—ये हमारे दीर्घकाय नद, मानसरोवर और रावण-ह्रद से निकलकर हिमालय की लबाई लाँघकर इस पार आते है।

ब्रह्मपुत्र का दर्शन मैने सदिया और परशुरामकुड (ब्रह्मकुड) से लेकर गोवालदी तक और आगे जाकर पद्मा और मेघना के नाम से किया है। ब्रह्मपुत्र न बहन है न माता। वह तो सृजन और संहार की लीला में मस्त एक देवता है। पृथ्वी के भूचाल भी ब्रह्मपुत्र की उसी लीला मे मदद करते है। युद्ध-धर्म का उत्कर्ष बतानेवाले क्षत्रियो का संहार करते-करते ब्राह्मणवीर परशुराम को कही भी शांति नही मिलती थी। उसे वह ब्रह्मपुत्र के किनारे मिली और यहाँ पर उसने अपने हत्यारे परशु का त्याग किया था।

ऐसे ब्रह्मपुत्र की लीला का आधार लेकर असंख्य कथा-कहानियाँ भारतवासियों को लिखनी चाहिए थी। पुराणकारों ने यथामति, यथाशक्ति कई नदी-कथाएँ हमे दी है। ब्रह्मपुत्र के बारे में, और सिधु के बारे मे भी, पौराणिक कथाएँ मिलती हों तो मै नही जानता।

ब्रह्मपुत्र के किनारे प्रचलित एक लोक-कथा के आधार पर श्री हुमायूँ कबीर ने 'नदी ओ नारी' के नाम से एक कथा लिखी है। ब्रह्मपुत्र के किनारे असम प्रदेश मे जो लोक-जीवन पाया जाता है, उसे व्यक्त करनेवाली यह सुदर नवल कथा श्री देवेद्र सत्यार्थी ने हमें दी है।

श्री देवेंद्र सत्यार्थी भारत के लोकगीतो के अनन्य उपासक हैं। उनकी प्रवृत्ति और उनकी निष्ठा की ओर महात्माजी ने मेरा ध्यान खीचा था। अपनी समृद्ध दाढ़ी के साथ फकीराना ढंग से उन्होने सारे भारत का भ्रमण किया है, और भारत

के हर प्रांत के लोकगीत उन्होंने इकट्ठे किए हैं। उनका वह संग्रह एक सागर जैसा हुआ है।

लोकगीतों द्वारा लोक-मानस और लोक-जीवन का जो प्रगाढ़ परिचय होता है, उसका प्रतिबिब इस उपन्यास मे मिलता है।

हमारे पूर्वजों ने अपने ढंग से नदियों के स्तोत्र और नदियों के पुराण बनाए। अब हमारे जमाने के साहित्यकारों को चाहिए कि वे आधुनिक ढंग से नदियो के स्तोत्र और नदियों के पुराण हमें दे दें। 'सप्तसरिता', 'लोकमाता' और अब 'जीवन-लीला' द्वारा मैने आधुनिक स्तोत्र बनाने का एक नम्र प्रारंभ किया है। श्री देवेंद्र सत्यार्थी ने इस उपन्यास द्वारा नदी-पुत्रों के लोक-जीवन का पुराण प्रस्तुत किया है। हमारे संस्कृत पुराणों में ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा और देवी-देवताओं की भरमार होती है। अब लोक-युग शुरू हुआ है। अब तो हमारे पुराण लोक-जीवन को ही प्राधान्य देंगे। इसका प्रारंभ हम 'ब्रह्मपुत्र' में पाते हैं।

मुझे विश्वास है कि सत्यार्थीजी के द्वारा भारतीय संस्कृति की ऐसी बहुत-कुछ सेवा होगी, और भारत की जनता उनकी एकनिष्ठ उपासना की कदर करेगी।

नई दिल्ली
२३-१०-१९५६

—काका कालेलकर

ब्रह्मपुत्र की भाषा

नाम पहले-पहल बचपन में सुना, फिर स्कूल में नक्शे पर देखा। एक पतली-सी रेखा दूसरी रेखाओं के बीच से राह निकालती सागर तक चली गई है, यही ब्रह्मपुत्र है।

एक चौथाई शताब्दी पूर्व, सन् १९३० मे, जब मेरी आयु मुश्किल से बाईस वर्ष की थी, पहले-पहल असम जाने का अवसर मिला। यह यात्रा लोकगीतो के संबंध में थी, और यह कोई एक वर्ष तक चली।

ब्रह्मपुत्र में बार-बार स्नान किया। ब्रह्मपुत्र में मिलनेवाली असंख्य नदियाँ देखी। चाय के अनेक बागीचे देखे। एक स्थान पर महीना-भर मलेरिया से बीमार पड़ा रहा, फिर भी जी उदास न हुआ। परशुराम कुड मे स्नान किया। सदिया, डिब्रूगढ़ और गौहाटी से ही नही, धुवड़ी, गुवालपाड़ा और तेजपुर से भी ब्रह्मपुत्र के दर्शन किए। शिवसागर के समीप दिसाँगमुख से ब्रह्मपुत्र की विशाल धारा देखकर मेरे मुख से निकल गया :

"बुढ़ापा यही आकर काटा जाए।"

बंगाल के संबंध में किसी का यह विचार पढा था कि वहाँ जाने के लिए तो कई प्रवेश-द्वार है, पर बाहर आने के लिए एक भी द्वार नही। अब लगा कि असम पर यह बोल और भी पूरा उतरता है। बचपन मे सुनी हुई बात कल्पना को प्रेरणा देती : कामाख्या कामरूप की परमसुदरी बाहर से आनेवाले यात्री को भेड़ा बनाकर रख लेती है ! पर अब तो असम को जादू-टोने का देश कहना भूल होती।

ब्रह्मपुत्र के बीच में है माझुली का द्वीप। दिसाँगमुख मे एक मार्ग-दर्शक मिल गया, जो मुझे नाव पर माझुली ले गया। वहाँ मैने कमलाबाड़ी घाट से उत्तर लखीमपुर जानेवाली सत्ताईस मील लंबी सड़क पर यात्रा की। माझुली में चार प्रमुख वैष्णव सत्र हैं, कमलावाड़ी, दक्षिणपाट, आउनियाटी और गड़ामूर। मैने ये चारों सत्र देखे और असम के वैष्णव महापुरुष शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव की भक्ति-परंपरा का रस ग्रहण किया। माझुली में सौ से ऊपर गाँव होगे। मैने कुछ गाँव भी देखे, जिन तक पहुँचने के लिए अनेक बार दलदल और हाथी-डूबी घास के बीचो-बीच चलना पड़ा।

कई बार मेरा ध्यान महाभारत युग के असम की ओर चला जाता, जब इसे

'प्राग्ज्योतिष' कहते थे। यहाँ का राजा भगदत्त दस हजार हाथियों सहित अपनी किरात सेना लेकर कौरवो की ओर से पाडवो के साथ लड़ने के लिए कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँचा था। उस युग के किरात असम के आदिवासी ही रहे होंगे, जो आज भी वीरता के लिए प्रसिद्ध है। किरातो का उल्लेख तो यजुर्वेद और अथर्ववेद मे भी मिलता है। कभी मेरी कल्पना में सातवी शताब्दी ईस्वी का असम घूम जाता, जब यहाँ के सम्राट् भास्कर वर्मा ने नालदा विश्वविद्यालय के आचार्य से प्रार्थना करके चीनी यात्री ह्यू एंत्सॉग को आमत्रित किया था। कल्पना में ह्यू एंत्सॉग को ब्रह्मपुत्र मे स्नान करते देखता। कभी आठवी शताब्दी के असम का ध्यान आ जाता, जब 'राजतरगिणी' के अनुसार 'कामरूप' के राजा सुमेद्र वर्मन की सुपुत्री अमृतप्रभा का विवाह कश्मीर के सम्राट् मेघवहन से हुआ था। कल्पना मे अमृतप्रभा को कश्मीर से चलकर असम मे ब्रह्मपुत्र पर दूध-भरा मंगल-घट और नारियल चढाते देखता। कभी सदिया के सुटिया राजवश का स्मरण हो आता। सुटिया राजाओ ने एक मदिर बनवाकर उसमे तात्रिक धर्मानुसार ताम्रेश्वरी देवी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। असमिया भाषा की एक 'बुरंजी' (हस्तलिखित इतिहास-ग्रंथ) के अनुसार राजा रत्नध्वज ने राजा भद्रसेन को हराकर सन् १२४४ में रत्नपुर नामक नगर बसाया था और बंगाल के सुलतान जलालुद्दीन मसूद मलिक जानी को मित्र बनाकर इस परिपाटी को जन्म दिया था कि सुलतान उसे गगाजल भेजे और प्रतिदानस्वरूप सुलतान को परशुराम कुड का जल भेजा जाए। कभी कल्पना मे वह दृश्य घूम जाता जब रत्नध्वज के कुमार का शव बंगाल से सुटिया राजधानी मे पहुँचाया गया था। बंगाल में गौड़ेश्वर राजा के अनुरोध से यह सुटिया राजकुमार वहाँ शिक्षार्थ रहता था। रत्नध्वज उस समय लौहित्य के तट पर एक नूतन प्रासाद बनवा रहा था। यही से 'स-दिया'(जहाँ शव दिया गया) की व्युत्पत्ति हुई। कभी असम के अहोम राजाओ का ध्यान आता, जो भाषा और वश की दृष्टि से स्यामी थे और बर्मा की थाई जाति की अहोम उपजाति से संबंधित थे, जिन्होने सन् १२२८ मे पूर्व असम के सुटिया राज्य को पीछे धकेलकर इस प्रदेश में अहोम राज्य की स्थापना की थी। अहोम राजाओ ने असम मे नई-नई सड़कें बनवाई; पर्वतो पर रहनेवाले आदिवासियों और पठार के निवासियो के बीच व्यापारिक लेन-देन को ही नही, सास्कृतिक आदान-प्रदान को भी प्रोत्साहन दिया; असमिया साहित्य और कला की श्रीवृद्धि मे सहयोग प्रदान किया। असम में अनेक स्थानों पर 'ओ मोर सोनार असम' (ओ मेरे सोने के असम !) गान सुना। इसका रस लेते ऐसा प्रतीत होता मानो असम सचमुच सोने का देश है। इसकी वेगवती नदियाँ, छोटे-छोटे गाँव, धान के पके हुए सुनहरे खेत, झिलमिलाते पोखर, गाँव की गली में कै-कै करती बतखें, पोखरों में तैरते राजहंस; केले, सुपारी और बाँस के कुंज—ये सब सोने के देश के प्रतीक थे।

असमिया यथासंभव मर्यादा को नहीं छोड़ता। व्यवहार में बड़ा विनम्र होता है, पर यदि कही उसके आत्मसम्मान को ठेस लगा दी, तो वह बाढ़ के समय का ब्रह्मपुत्र बन जाता है। आतिथ्य में उसका जवाब नहीं। आज का काम चल रहा है, तो कल की चिंता क्यों की जाए? आनेवाली विपत्ति आएगी, तो देख लेंगे। बीते संकट का क्यों स्मरण किया जाए? पुरानी कहावत है—बाघ की सवारी करनेवाले को बाघ से उतरने का गुर नहीं आता; पग-पग पर अनुभव हुआ कि असमिया को यह गुर भी आता है। "ब्रह्मपुत्र गरा काटता हुआ और इधर को आएगा, तो दिसाँगमुख और पीछे हट जाएगा।"

यह बोल मेरे हृदय को छू गया। थोड़ा मौन रहकर मार्ग-दर्शक ने कहा, "बड डिकडारी!" फिर उसने बताया कि दिक्कदारी (दिक्कत) का असमिया पर्याय-वाची है 'डिकडारी'। 'बड डिकडारी' अर्थात् 'बड़ी मुसीबत है।' मैं समझ गया कि यही वह मूलमत्र है, जिसे एक बार होंठों पर लाकर कोई भी असमिया बड़ी-से-बडी मुसीबत पर सवार हो सकता है, और मानो एक बार 'बड़ डिकडारी' कहकर वह झट बाघ के ऊपर से नीचे छलाँग लगा सकता हो।

गौहाटी में लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल ज्ञानाभिराम बरुवा से भेंट हुई, तो वह बोले, "ब्रह्मपुत्र नूतन रचना का चित्रपट है!"

मेरे पल्ले उनकी बात बिलकुल नही पड़ी। वह फिर बोले, "ब्रह्मपुत्र सदैव नूतन रचना करता आया है।" इस बार फिर मैं अवाक्-सा उनके मुख की ओर देखता रह गया।

मानसरोवर से सागर तक ब्रह्मपुत्र की पूरी लंबाई १८०० मील है। इसका जन्म-स्थान तिब्बत मे ३१° ३१′ उत्तर और ८२° पूर्व है। यह स्थान मानसरोवर के उत्तर में है; यहाँ से वह छोर दूर नही, जहाँ सतलज और सिंधु पहली धारा का रूप धारण करते है। तिब्बत मे 'सान-पो' के वेष में चलता है। असम मे प्रवेश करने से पहले डि-हाँग बनता है। पोभा के स्थान पर आकर मिलती है लूहित; यह उत्तर दिशा से आती है, जहाँ मिश्मी आदिवासी बसे हुए है। मिश्मी भाषा मे 'लू-हित' (तारो की राजकुमारी) की व्युत्पत्ति इसकी अद्वितीय रूप-माधुरी की प्रतीक है, परतु सस्कृत मे 'लू-हित' का 'लौहित्य' बनाकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई कि इसकी धारा रक्ताभ अथवा लालिमामयी है, जैसी कि वह वास्तव मे नही है। रीमा (उत्तरी बर्मा) में लूहित 'जाउल चू' कहलाती है। सदिया के समीप, डी-हाँग में इसके संगम से थोड़ा ऊपर, लूहित में दक्षिण दिशा से आकर मिलती है नोआ दिहिंग, और उत्तर दिशा से दिबाँग और सेस्सेरी आकर अर्घ्य देती हैं। लूहित और डि-हाँग के संगम के पश्चात् असम में ब्रह्मपुत्र की महिमा आरंभ होती है। आगे पश्चिम दिशा में चलकर इसके उत्तरी किनारे पर सुबनसीरी (स्वर्णश्री),

भरेली, धनसीरी (धनश्री) बरनदी, मनास, सोनकोष, धरला और तीस्ता मिलती है, तो दक्षिण किनारे पर बूढ़ी डिहिंग, दिसाँग, डि-खू, झाँजी, धनसीरी कुलसी, और जिंजीराम के संगम चित्र में रंग भरते हैं।

सदिया से पचास मील पर है परशुराम कुंड, जहाँ माघ संक्रांति के दिन दूर-दूर के यात्री स्नान करने आते हैं। अपनी माता की हत्या के पश्चात् परशुराम को इसी कुड मे स्नान करके शाति प्राप्त हुई थी। महाभारत युग में इस प्रदेश मे सुटिया राजवंश के पूर्ववर्ती राजाओ की राजधानी थी; कृष्ण यही से रुक्मिणी को ले गए थे।

डिब्रूगढ़ तक पहुँचते-पहुँचते ब्रह्मपुत्र का पाट बीस मील चौड़ा होने लगता है। पहले यहाँ डिब्रू नदी मिलती है; फिर बूढ़ी सूती, सुबनसीरी, रंगा नदी, दिकरग, बूढी डिहिंग और नई डिहिंग नदियाँ ब्रह्मपुत्र में मिलती है। डफला और मीरी पर्वतो से होकर सुबनसीरी ब्रह्मपुत्र की खेरकटिया धारा मे गिरती है; यही से पश्चिमी खेरकटिया को लूहित कहने लगते है। पटकोई पर्वत से निकलकर बूढ़ी डिहिग ब्रह्मपुत्र को अपनाती है; यह कोई १५० मील लंबी है। खामती पर्वत से नकलती है डिब्रू नदी, और नई डिहिंग का जन्म-स्थान है सिफौ पर्वत। ब्रह्मपुत्र में बादाम की आकृति के द्वीप बनते-मिटते रहते हैं। बहुत-सी धाराएँ मूलधारा से बिछुड़ जाती है, जो कई-कई मील तक एकाकिनी बनी रहने के पश्चात् फिर मूलधारा में मिल जाती है। इन्ही मे से एक धारा है खीरकटिया सूती, जो मूल धारा से विलग हो जाती है, और बूढ़ी-डिहिगमुख के सामने की दिशा में बहती है; इसमें सुबनसीरी की धारा आ मिलती है। यह लूहित नाम धारण करती है, और आगे जाकर धनसीरीमुख के दूसरी ओर मूल धारा मे मिल जाती है। ब्रह्मपुत्र की मूलधारा और लूहित के बीच में है माझुली; ससार की किसी भी नदी के बीच इतना बड़ा द्वीप नही मिलेगा; इसका क्षेत्रफल कोई ४८५ वर्ग मील होगा।

ब्रह्मपुत्र की एक और धारा है, जो रूपगर्विता मानिनी के सदृश विलग हो जाती है; इसका नाम है कलंग। दरंग जिला मे पश्चिमी किनारे से बिशनाथ के स्थान पर, जहाँ से शीलघाट आठ मील रह जाता है, यह धारा बिछुडती है, और पश्चिम दिशा में फैले हुए नौगाँव जिला के बीच से बहती हुई गौहाटी से ऊपर ही ब्रह्मपुत्र में आ मिलती है।

खीरकटिया लूहित लखीमपुर जिला को शिवसागर जिला से अलग करती है। दूसरी नदियाँ है बूढ़ी डिहिंग, दिसाँग, डि-खू, नामदाँग, जाजी, भोगदोई, काकोडोंगा और धनसीरी; इनकी मुक्ति ब्रह्मपुत्र में मिलकर होती है। काकोडोगा और भोगदोई मिलकर गेला बिल का रूप धारण करती है, और यह मिली-जुली धारा ब्रह्मपुत्र में समा जाती है। धनसीरी नागा पर्वत से चलती है, और एक सौ मील की यात्रा के पश्चात् ब्रह्मपुत्र में मिलती है, मानो नागा संस्कृति असमिया संस्कृति से

गले मिल रही हो।

ब्रह्मपुत्र के दाएँ किनारे बसा हुआ तेजपुर कभी सहस्रबाहु बाणासुर की राजधानी था। इसका प्राचीन नाम है शोणितपुर। 'शोणित' को असमिया भाषा मे 'तेज' कहते है। तेजपुर के समीप है अग्निगढ़ पर्वत, जहाँ कभी बाणासुर की परम सुदरी पुत्री उषा का प्रासाद था। उषा-अनिरुद्ध की प्रेम-गाथा तो ब्रह्मपुत्र को भी अवश्य स्मरण होगी। अग्निगढ़ के अतिरिक्त अन्य पर्वतो के नाम भी असमिया संस्कृति के सौदर्य और ऊर्ध्वमुख वैशिष्ट्य के प्रतीक है : धनुखना, औगरी, ब्राह्मणी, भैरवी, भोमोरागुरी, रुद्रपद, सामधरा और शिगरी, ये है इन पर्वतो के नाम।

उत्तर के पर्वतो से निकलनेवाली नदियाँ है डूबिया अथवा खारोई, बूरोई, बरगाँव, बूढी गाँग, घीलाधारी और दिकराई; सभी यह होड लगाकर चलती हैं कि कौन पहले ब्रह्मपुत्र के गले में जयमाला डाले। अका पर्वत से चलती है भरली; और पचनोई का जन्मस्थान है टोवाँग पर्वत। उधर बेलसीरी भी टोवाँग पर्वत से ही चलती है। भरली, पचनोई और बेलसीरी तीनो ब्रह्मपुत्र के साथ अपना-अपना आँचल बाँध लेती है। दरंग जिला की उत्तरी सीमा से आती है बर नदी; यह इस जिला की पश्चिमी सीमा है, और गौहाटी को दरंग से पृथक् करती है। उत्तर दिशा से ही आती है मगलदोई। बर नदी और मंगलदोई दोनो ब्रह्मपुत्र में समा जाने मे ही सौभाग्य मानती है।

कामरूप जिला ब्रह्मपुत्र के दोनो ओर फैला हुआ है। ब्रह्मपुत्र के बाएँ किनारे गौहाटी है इसका मुख्य स्थान। यहाँ ब्रह्मपुत्र की चौड़ाई कम हो गई है। चट्टाने और पर्वत ब्रह्मपुत्र के भीतर तक चले गए है। जाड़े के दिनो मे पानी कम हो जाने पर बहुत-सी चट्टाने धारा के बीच से दिखाई देने लगती है। दक्षिण दिशा मे फैली हुई खासिया पर्वत-शृखला के अतिरिक्त जहाँ-तहाँ कुछ अन्य लघु-आकार टीले और पर्वत भी है, जिनके नाम असमिया सस्कृति की परंपरा को गर्वान्वित करते हैं—नीलाचल, जिस पर गौहाटी मे कामाख्या देवी का मदिर प्रतिष्ठित है, शरणीया, नवग्रह, भुवनेश्वरी, मणिकर्णेश्वर और अश्वाक्रांता आदि। खासिया पर्वत शृंखला से चलती है डिगारू, भरलू, कलही और शिरा। ये चारो बहनें ब्रह्मपुत्र से गले मिलती है। ऐसा लगता है मानो खासी आदिवासियो की संस्कृति असमिया संस्कृति को अर्घ्य दे रही हो। उत्तर दिशा से आती है मानाह, पागलादिया, पूठीमारी और बर नदी। ये तीनो बहने भी ब्रह्मपुत्र के चरण छूती है। मानाह नदी भूटान पर्वत के पूर्वी भाग से निकलती है और गुवालपाड़ा जिला की सीमा [illegible] है। उधर बर नदी कामरूप और दरग के बीच रेखा खीच देती है।

ब्रह्मपुत्र के बाएँ किनारे पर है गुवालपाड़ा, जहाँ बाढ़ के दिनों मे जल का निकास प्रति सैकंड पाँच लाख घन फीट की गति से होता है। गुवालपाड़ा जिले के दक्षिणी भाग में गारो पर्वत की शाखाएँ घुस आई है, जिनमें से कुछ ब्रह्मपुत्र के

साथ-साथ चली गई है। इनके नाम भी उतने ही सुदर है जितनी मोहक है इनकी रूप-माधुरी; टूकेश्वरी, श्रीसूर्य, राक्षसिनी, योगीघोपा, भैरव और बौकुमारी, ये है कुछ नाम। चंपावती और सरलभंगा भूटान पर्वत से आनेवाली बहनें है; इन्हे भी ब्रह्मपुत्र में मिलकर ही शांति मिलती है। हेइल, गगा और न जाने किस-किस नदी के मिलने से बनती है टिपकाई; नाचती-इठलाती वह भी बगरीबारी के समीप मिलन का मंगल-गान गाती ब्रह्मपुत्र के गले लग जाती है। उधर सोनकोष भूटान पर्वत से आकर ब्रह्मपुत्र मे मिलती है; मानो भूटान की आत्मा ब्रह्मपुत्र मे स्नान कर रही हो। गारो पर्वत मे चलती है चार बहनें—जिजीराम, जिनारी, दूध नदी और कृष्णा; ये भी बारी-बारी ब्रह्मपुत्र की आरती उतारती है; मानो गारो सस्कृति का मगल-गान गूँज उठा हो।

ब्रह्मपुत्र के दाएँ किनारे बसी है धुबडी। किनारे के साथ-साथ पर्वत चले गए है; इनकी शोभा ब्रह्मपुत्र पर छत्र झुलाती है।

ब्रह्मपुत्र के किनारे बनते-बिगडते रहते है; पर बिशनाथ, शीलघाट, तेजपुर, शिगरी पर्वत, गौहाटी, हाथीमूडा गुवालपाड़ा और धुबडी ऐसे स्थान है जहाँ चट्टानें और पर्वत अचल अडिग खडे हैं।

साढे आठ सौ मील तक अर्थात् मानसरोवर से लेकर पूर्व मे ग्याला-सिदोङ् तक ब्रह्मपुत्र की खोज की जा चुकी है। यहाँ से असम की सीमा डेढ़ सौ मील रह जाती है। यह डेढ सौ मील का मार्ग इतना दुर्गम है कि निरंतर धारा के साथ-साथ चलना सहज नही, इसकी पूरी खोज-खबर नही ली जा सकी।

तिब्बत मे सान-पो की धारा इतनी वेगवती है कि नाव प्रवाह के विपरीत नहीं चलती। लकडी की नही, चमडे की नाव चलती है, जो तिब्बती भाषा मे 'क्वा' कहलाती है। यह भय लगा रहता है कि नाव का पेदा पाषाणों से न टकरा जाए। याक का चमडा पाषाणो से टकराकर भी फटता नही। तिब्बत का धरातल इतना ऊँचा है कि यहाँ धान नही उग सकता। मानो सान-पो यही सोचकर आगे बढ़ता है कि वह ऐसे पठार को जन्म देगा, जहाँ धान-ही-धान लहराएगा, जहाँ उसकी धारा मे 'क्वा' के स्थान पर लकडी की नाव चलेगी—प्रवाह के साथ भी और प्रवाह के विपरीत भी। असमिया नावरिया को तिब्बती माँझी के समान एक-साथ दो-दो झंझट नही है कि कभी तो लकडी के ढाँचे पर याक के चमडे के टुकडे कसकर नाव को पानी में ठेल दे, और कभी लकडी का ढाँचा और चमडे के टुकडे अलग करके इन्हे गधे पर अथवा अपने सिर पर लादकर पैदल ऊपर की ओर, बहुत ऊपर, पहुँचे और किसी घाट पर फिर से नाव तैयार करके नीचे की ओर ले चले। असम की सीमा पार करते ही जब सान-पो नाम बदलकर डि-हाँग बनता है, तो लगता है मानो कोई महाराजाधिराज एक महान् विजेता के रूप में चले आ रहे है और मानो दोनों किनारो पर खड़े होकर लोग उनका स्वागत कर रहे हैं और सोच रहे है—यह कहाँ

के महाराज है ? इनका राजवंश कहाँ आरंभ हुआ ? इनकी राजधानी कहाँ है ? किस बात पर रीझते है ? कौन-सी बात इन्हें भली नही लगती ?

पहले यह धारणा थी कि तिब्बत का सान-पो ही बर्मा की इरावती का रूप धरता है, पर सन् १८८२ तक की खोज से यह निष्कर्ष निकला कि जाउल उपत्यका मे समा के उत्तर में तो सान-पो की धारा की कल्पना भी नही की जा सकती। फिर यह कहा जाने लगा कि समा से आगे बहनेवाली नदी वह नही जो परशुराम कुड के पश्चिम में सदिया तक बहती है। नीधम महोदय ने पता चलाया कि रीमा के समीप बहनेवाली और सदिया से आगे बहनेवाली एक ही नदी है। सन् १८८५-८६ में वह सदिया से ऊपर की दिशा मे ब्रह्मपुत्र की खोज करते समा के उत्तर मे रीमा नामक गाँव तक जा पहुँचे थे। इससे अगले वर्ष इसी प्रदेश का एक पर्यटक ग्या-ला-सिदोङ् के दक्षिण मे यात्रा करता एक स्थान पर पहुँचा, जहाँ से मीरी पदम आठ मील है। मीरी पदम से असम का सीमात तेतालीस मील होगा। इस पर्यटक ने नीधम महोदय की स्थापना का समर्थन किया।

ब्रह्मपुत्र उपत्यका में दक्षिण-पश्चिम दिशा में साढे चार सौ मील की यात्रा के पश्चात् ब्रह्मपुत्र दक्षिणमुखी होकर गारो पर्वत का अंचल छूने के लिए लालायित हो जाता है और रगपुर जिला मे २५° ४७′ उत्तर और ८९° ४९′ पूर्व प्रवेश करता है। असम का अचल छोडने के पश्चात् इसके बाएँ किनारे मिलनेवाली नदियो में मुख्य है धरला और तीस्ता, रगपुर जिले मे चिलकारी के दक्षिण-पश्चिम मे कुछ मीलो की दूरी पर है तीस्ता का सगम। ब्रह्मपुत्र की दक्षिणमुखी धारा जमुना बनती है, एक सौ अड़तालीस मील तक इसकी यात्रा चलती है। गोवालंदो के स्थान पर २३° ५१′ उत्तर और ८९° ४६′ पूर्व जमुना अपनी आशा-आकाक्षा पद्मा (गगा की मूल धारा) को सौप देती है। यह सम्मिलित धारा पद्मा के रूप में अग्रसर होती हुई चाँदपुर के दूसरी ओर २३° १३′ उत्तर और ९०° ३३′ पूर्व मेघना मे जा मिलती है। किसी समय ब्रह्मपुत्र की मूल धारा मैमनसिह जिला के बीचो-बीच दक्षिण-पूर्व दिशा मे बहती थी; फिर मेघना में जा मिलती थी। सन् १७८५ में रेनेल के सर्वे के नक्शे पर इसका यही मार्ग दिखलाया गया था; पर उन्नीसवी शताब्दी के आरंभ में इसका पाट ऊँचा उठता गया, वेग जाता रहा; यह अपनी धारा को मेघना मे समाहित होने से न बचा सका; साथ ही इसकी दूसरी धारा पश्चिम में गोवालंदो के समीप जोर दिखाकर पद्मा में मिलने पर बाध्य हुई। इसके पुराने पाट का नाम चल रहा है, यद्यपि उसमें माटी-बालू भरता गया; सन् १८९९ के भूकप ने इस प्रक्रिया को वेगवती बनाया। ब्रह्मपुत्र का समूचा निचला भाग अनेक संग्रथित धाराओं का चित्रपट है। इनमे बहुत-सी धाराएँ शीतकाल में सूख जाती हैं; वर्षाकाल में फिर इनका जल चतुर्दिक फैल जाता है। विशाल जलधारा में अनेक द्वीप बन जाते है; अधिकांश निरे रेत के टीले मात्र होते

है, जिन्हें अगले वर्ष का वर्षाकालीन प्रवाह बहा ले जाता है। पद्मा और मेघना की सम्मिलित धारा मेघना के नाम से ही सागर की ओर चलती है।

सागर से डिब्रूगढ़ तक आठ सौ मील की यात्रा स्टीमर से की जा सकती है। गोवालदो से चलकर स्टीमर साढ़े चार दिन मे डिब्रूगढ़ पहुँच जाता है; लौटते समय तीन दिन से अधिक नही लगते। ऊपर की दिशा मे जाते समय बाएँ किनारे सिराजगज, धुबडी, तेजपुर और बिशनाथ के प्रसिद्ध घाट है; बाएँ किनारे है गुवालपाडा, गौहाटी, सीलघाट और डिब्रूगढ। इनके अतिरिक्त अन्य अठारह घाटो पर भी स्टीमर रुकता है; गोला घाट के लिए शिकारी घाट पर, जोरहाट के लिए काकिलामुख घाट पर और शिवसागर के लिए दिसाँगमुख घाट पर उतरना पडता है।

प्रिसिपल ज्ञानाभिराम बरुवा ने एक अनुभवी ज्योतिषी के समान असम के बडे नक्शे पर मेरी उँगली टिकाकर ब्रह्मपुत्र की जन्म-कुडली से मेरा परिचय कराया और समझाया कि ब्रह्मपुत्र—मानसरोवर से चलकर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओ में बहता—नूतन रचना का चित्रपट है।

ब्रह्मपुत्र की भाषा मेरे मन के कलाभवन में लोक-कथा की सौ वर्ष तक सोनेवाली राजकुमारी के समान सोती रही।

सन् १९५० में असम को भयकर भूकंप और ब्रह्मपुत्र के दुर्निवार जलप्लावन का सामना करना पड़ा। यह स्वाभाविक था कि मै असम की वेदना से व्यथित हो उठता। ब्रह्मपुत्र की भाषा लोक-कथा की राजकुमारी के समान जाग उठी।

दिसबर १९५४ में दोबारा असम गया, तो अपने पुराने मित्र ब्रह्मपुत्र को मैने अपने सामने पाया। उसके मोड़, उसके घुमाव, उसके तेवर—सब मेरे जाने-पहचाने थे। भूकप और जल-प्लावन के कारण असम के चेहरे पर खरोचे आ गई थी; नदियो के रास्ते बहुत-कुछ बदल गए थे। परशुराम कुड का पहला रूप नष्ट-भ्रष्ट हो गया था, वहाँ फिर से जल की व्यवस्था की गई थी।

दिसाँगमुख मे ब्रह्मपुत्र के किनारे खड़े होकर पुराने वयोवृद्ध मार्गदर्शक का स्मरण हो आया। इस बार मेरे साथ एक युवक मार्गदर्शक था; और मै अब एक चौथाई शताब्दी पूर्व का युवक नहीं रह गया था; समय की गरमी-सर्दी मैने देख ली थी; मेरी आयु के पुल के नीचे से पच्चीस वर्ष उस पार चले गए थे। दाढ़ी और सिर के बाल पक रहे थे। अब मेरे मन में स्थिरता आ गई थी।

इस बार भी माझुली की यात्रा की गई। यह भी पता चला कि दिसाँगमुख-वाले माझुलीवालो को पिछड़ा हुआ समझते है; और दिसाँगमुख की भाषा मे माझुली 'मूर्ख भूमि' बन गई है। पर मैने माझुली में बड़ी जागृति देखी। इस पर तो मैं तनिक भी लज्जित न था कि ब्रह्मपुत्र की भाषा समझने में इतने वर्ष लगे।

आखिर ब्रह्मपुत्र को भी तो इस विशाल पठार को जन्म देते सहस्रों वर्ष लगे थे। फिर भी मुझे यह स्वीकार करना पडा कि पिछली यात्रा में मै एक बालक ही था। यह अनुभूति जहाँ मुझे मेरी ही दृष्टि में छोटा बना रही थी, वहाँ एक संतोष का कारण भी बन रही थी, क्योकि मन और बुद्धि के अवरुद्ध कपाट खुल गए थे।

गौहाटी मे डॉ० सूर्यकुमार भूइयाँ का आतिथ्य मिला, असमिया साहित्य और इतिहास के नए संकेत प्राप्त हुए। असमिया भाषा के आचार्य डॉ० विरिंचि-कुमार बरुवा, असमिया लोक-साहित्य के अन्वेषक प्रफुल्लदत्त गोस्वामी और महेश्वर नियोग से उपन्यास की कथावस्तु और उसके मूर्धन्य अभिप्राय पर सोच-विचार हुआ।

फिर एक दिन गौहाटी में प्रिंसिपल ज्ञानाभिराम बरुवा के यहाँ पहुँचा। वह बहुत कमजोर पड गए थे; मैं भी अब पहलेवाला युवक न था। फिर भी उन्होने मुझे पहचान लिया। अब वह घर से बहुत कम निकलते थे; चलना-फिरना कठिन था। हाथ में पुस्तक लिए बैठे थे। असम मे नए रंग उभर रहे थे; पर असम का यह अवकाश-प्राप्त वयोवृद्ध तपस्वी एकाकी रहना पसंद करता था। यही तो उनकी आयु का तकाजा था। लगता था, वह इस समय भी कुछ कम कर्मठ नही। उनकी दृष्टि पीछे की ओर नहीं, आगे की ओर थी। बोले, "अब तक तो पता चल गया होगा कि ब्रह्मपुत्र नूतन रचना का चित्रपट है?"

इसका उत्तर मैंने एक मुसकान से दिया। ब्रह्मपुत्र पर उपन्यास लिखने का विचार बताया, तो मानो मेरी बात उन्हें झकझोर गई। बोले, "ब्रह्मपुत्र सदैव नई रचना करता आया है।"

उनके साथ बहुत बाते हुई। ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों की बातें, जो दोनो ओर से आकर मिलती है, जो नदियाँ सीधी ब्रह्मपुत्र तक पहुँचने की क्षमता नही रखती, वे किसी दूसरी नदी में मिलकर ब्रह्मपुत्र तक पहुँचकर दम लेती है। असम के पर्वतो की बाते। उनके नाम उन आदिवासी जातियो पर पड़े हैं जो वहाँ बसी हुई हैं। अपने-अपने जन्मस्थान से होती हुई प्रत्येक छोटी-बड़ी नदी मानो अपने प्रदेश की बोली ब्रह्मपुत्र तक पहुँचाती है, ये बोलियाँ मिलकर ब्रह्मपुत्र की भाषा का निर्माण करती हैं। असम के आदिवासियों की बाते। ब्रह्मपुत्र के दक्षिण में सिगफा, नागा, खासी, जयंतिया, लुशाई, गारो, काछारी और मिकिर बसे हुए हैं; इनकी संख्या ग्यारह लाख है। असम के आदिवासियो मे किए जा रहे ईसाई मिशनरियो के कार्य की बातें। अंग्रेजी सरकार ने असम के आदिवासियो को अलग-अलग रहने की नीति पर चलाया। ईसाई मिशनरियों को उनमें काम करने की छूट दी। अंग्रेजी-काल मे ईसाई मिशनरी आए, जैसे भास्कर वर्मा के युग में मगध से ब्राह्मण आए होगे, ह्यू एत्सांग को इसीलिए तो कहना पड़ा था कि असम की भाषा मगध की भाषा से मिलती-जुलती है। ईसाई मिशनरियो ने जाने-अनजाने आदि-

वासियों की प्रगति मे हाथ बँटाया है। आदिवासियों को साथ लिए बिना हमारी प्रगति भी व्यर्थ है। असमिया भाषा के संबध मे बहुत बातें हुई। वैसे यह भाषा असम मे अन्य भाषा-भाषियो की अपेक्षा अल्पसंख्यक लोगो की भाषा है, पर यह किसी-न-किसी रूप में उन लोगो के उपयोग मे भी आती है, जिनकी यह मातृभाषा नही है। नागा लोग छः-सात उपजातियो में बँटे हुए है। एक उपजाति दूसरी उपजाति की बोली नही समझती; आपस में बात करते समय उन्हें असमिया से काम चलाना पडता है। बहुत-सी पडोसी आदिवासी जातियाँ आपस मे अंतर्जातीय कार्यों के लिए असमिया माध्यम का प्रयोग करती है, भले ही उनकी असमिया कितनी भी विकृत क्यों न हो।

प्रिसिपल ज्ञानाभिराम बरुवा बोले, "सारा ज्ञान आयु के साथ आता है। जाने किधर-किधर से कौन-कौन-सी नदी आकर मिलती है, फिर जाकर इस ब्रह्मपुत्र में इतनी क्षमता आती है कि सागर तक लंबी यात्रा कर सके। ज्ञान आए-न-आए; टिकट तो कटाना ही पडता है। जाते समय तभी संतोष होता है जब कुछ करा-धरा हो।"

"आशीर्वाद दीजिए !" मैंने उनके चरण छू लिए।

"आशीर्वाद माँगना निर्बलो का काम है !" वह बोले, "यहाँ ह्यू एंत्साँग भी आया था। उसने तो किसी से आशीर्वाद नही माँगा था। उसने जो लिखा, आज तक जीवित है। अपने यात्रा-विवरण में ह्यू एत्साँग आज भी बोलता है। मरो या जीओ; एक रास्ता चुन लो !"

असम के पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान (अब बाँग्ला देश) जाने का कार्यक्रम बनाया।

गोवालदो मे रेल से उतरकर स्टीमर पर सवार हुआ, तो रात का समय था। अगले दिन ऊपर की छत से उषा का दृश्य देखा; सूरज उगने का फोटो लिया। इस विशाल जलमार्ग पर यह देखना तो कठिन था कि पद्मा में कौन-कौन-सी नदी मिल रही है। जमुना और पद्मा का संगम तो रात्रि के अधकार मे पीछे छूट गया था। साथवाला यात्री कहे जा रहा था, "आगे आशिबे मेघना। आमादेर मेघना होलो एकेबारे मेघेर रगेर मतन !" (आगे आएगी मेघना; हमारी मेघना है एकदम मेघ के रंग के समान।)

स्टीमर की ऊपरी छत से हम फिर नीचे आ बैठे। साथवाली सीट पर हाशोबानो ने आँखे खोली। उसे साथवाले यात्री से, जो उसका बड़ा भाई था, यह शिकायत थी कि सूरज उगने से पहले ही उसे क्यो नही जगा दिया था। हाशोबानो के भाई ने हाशोबानो का परिचय एक गायिका के रूप मे दिया। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। बड़ी मुश्किल से उसे एक बंगला गीत गाने के लिए तैयार किया जा सका। उसकी आवाज़ बहुत सुरीली थी। उसके गीत की टेक थी—

एई नयने तोरे न देखीले,
शुधु मुखेर कथाय प्राण जूड़े ना !

(इन नयनों से तुझे देखे बिना, खाली मुख की कथा से ही प्राणों की तृप्ति नहीं होती !···)

ऐसा लगता था मानो सब भेद मिट गए; धर्म के भेद, आयु के भेद, बुद्धि के भेद; पाकिस्तान और हिंदुस्तान के भेद।

ढाका में एम० मंसूरुद्दीन से भेंट हुई, तो वह खुशी से उछल पडे। उन्होने मुझे अपने यहाँ ठहराया। गुरुदेव रवीद्रनाथ ठाकुर ने उनके बगला लोकगीत-संकलन 'हारामणि' की भूमिका लिखी थी; तभी से हमारी मित्रता चली आ रही थी। पूर्वी पाकिस्तान के प्रसिद्ध बगला कवि जसीमुद्दीन, जिनसे सर्वप्रथम कलकत्ता मे भेट हुई थी, ढाका से बाहर दौरे पर थे। बंगला कवि गुलाम मुस्तफ़ा ने अपने घर पर एक रात संगीत-गोष्ठी का प्रबंध किया। अब्बासुद्दीन अहमद तबले पर संगत कर रहे थे; उनकी साहबजादी भाटियाली गा रही थी, जिसे पूर्वी बगाल के माँझी टिकी हुई रात में नदी के प्रवाह के साथ जाते समय गाते है। हम सभी झूम उठे; एम० मंसूरुद्दीन, गुलाम मुस्तफ़ा, गवर्नमेंट इस्टीट्यूट ऑफ आर्ट्स, ढाका के प्रिंसिपल जैनुलाबदीन, तबले पर संगत करनेवाले अब्बासुद्दीन अहमद और अन्य मित्र, जिन्हें विशेष रूप से आमत्रित किया गया था। कोकिल-कठी गायिका जब अपने स्वर को आवश्यकतानुसार विस्तार प्रदान करते हुए किसी नौका के समान ही आगे ले चलती, तो हमारी आँखें कल्पना मे किसी पद्मा या मेघना के साथ-साथ तैरने लगती। फिर जब अब्बासुद्दीन अहमद ने अपनी सधी हुई आवाज में भाटियाली प्रस्तुत की, तो गोष्ठी का रग और भी जम गया।

"मुझे बीस वर्ष से ऊपर हो गए भाटियाली गाते।" अब्बासुद्दीन अहमद ने बताया, "लगता है अभी तक 'शूर' (सुर) नही मिला। दो चीज देकर भगवान् है: नूर और 'शूर'। सारे ससार मे नूर भरा है; पर 'शूर' मुझे अभी तक नही मिला। 'शूर' के लिए भटक रहा हूँ !"

इस सगीत-गोष्ठी में मेरे मन की चिता को राह मिली। यहाँ तो सभी को किसी-न-किसी ब्रह्मपुत्र ने पागल बना रखा था। जमुना, पद्मा, मेघना और बूढ़ी गगा की लहरें इस सगीत-गोष्ठी को छू रही थी। मेरी चिता-धारा प्रवहमान सरिता बनकर चल पड़ी।

ढाका से लौटते समय फिर विशाल जल-मार्ग पर सूर्यास्त का दृश्य देखा।

पास बैठे यात्री ने कहा, "जे सूर्य अस्त हये छे, शेई सूर्य उदय हये छे!" (जो सूर्य अस्त होता है, वही सूर्य उदय होता है।)

मैंने सोचा कि सत्य भी सूर्य के समान है, वह नित-नूतन है; साहित्य मे भी यही सूर्य उगना चाहिए।

कलकत्ता में बगला साहित्यकार महादेव साहा से भेंट होने पर इस उपन्यास की चर्चा चली तो वह बोले, "यह उपन्यास तो बंगला मे लिखा जाना चाहिए।"

मैंने विश्वासपूर्वक कहा, "हिंदी भाषा अवश्य रास्ता देगी।"

फिर बंगला उपन्यास 'पद्मानदीर माँझी' (पद्मा नदी का माँझी) के लेखक माणिक वद्योपाध्याय से भेट हुई, तो वह बोले, "आमी पद्या नदी के हातेर मूठोर भीतरे आनते चेष्टा करिलाम, किंतु ए नदी ऐतो चंचल, जे आमी किछुई करिते पारिलाम ना। आपनीओ ब्रह्मपुत्र के हातेर मूठोर भीतरे आनते चेष्टा करिते पारेन, यदि पारेन।" (मैने पद्मा नदी को मुट्ठी मे लाने की चेष्टा की, किंतु यह नदी तो इतनी चंचल है कि मै कुछ भी नही कर सका। आप ही ब्रह्मपुत्र को मुट्ठी में लाने की चेष्टा कर देखे, यदि कर सकें।)

प्रिंसीपल जैनुलाबदीन ने ड्राई ब्रश से तैयार किया हुआ ब्रह्मपुत्र के माँझी का एक स्केच प्रदान किया था, जिसने अब इस उपन्यास के मुखचित्र के रूप में मानो इसके माथे पर तिलक लगा दिया।

जब वह उपन्यास लिखा जा रहा था, तो दिल्ली मे एक असमिया मित्र को इसके कुछ अंश पढ़कर सुनाए। वह बोले,"इसका रस तो असमिया मे ही आ सकता है।"

मेरे मन मे यह प्रश्न उठा, "तो क्या इसे ऐसी भाषा में नही लिखा जाना चाहिए था, जिसके माध्यम से सारा देश हमारी जन्म-भूमि के इस महान् वरदान से परिचित हो सके?" हिंदी में तो क्या बगला क्या असमिया हमे सभी भाषाओं का मुहावरा लाना चाहिए; उनकी सुगधि, उनकी लोच, उनका रस, इसमे वैसा-का-वैसा लाने की आवश्यकता है।

दोबारा असम जाने से पूर्व सुप्रसिद्ध गुजराती साहित्यकार काका कालेलकर का आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था। काका साहेब को मेरा यह विचार प्रिय लगा कि ब्रह्मपुत्र की प्रतिमा एक उपन्यास के रूप में प्रतिष्ठित की जाए। अपनी सुविख्यात रचना 'लोकमाता' में काका साहेब ने भारत की सभी नदियों के शब्द-चित्र अंकित किए हैं।

"जब 'लोकमाता' लिखी गई, तो मै अभी असम-यात्रा पर नही जा सका था। इसलिए उसमें ब्रह्मपुत्र का शब्दचित्र छूट गया।" कहते-कहते काका साहब रुक गए।

इस उपन्यास का आमुख लिखकर काका साहब ने मुझे अपना लिया है। 'लोकमाता' लिखकर जिन्होने अनेक नदियों के प्रति प्रेम प्रकट किया, उनका आशीर्वाद तो 'ब्रह्मपुत्र' को मिलना ही चाहिए था।

अब 'ब्रह्मपुत्र' आपके सामने है। पढ़िए और देखिए कि ब्रह्मपुत्र की भाषा, जो लोक-भाषा की राजकुमारी के समान न जाने कब से पड़ी सो रही थी, अब जाग उठी है या नही।

'कल्पना'
५ सी/४६, रोहतक रोड, नई दिल्ली
२१ नवंबर, १९५६

—देवेंद्र सत्यार्थी

ब्रह्मपुत्र महाभाग शांतनुकुलनंदन।
अमोघगर्भसंभूत पापं लौहित्य मे हर॥

—ब्रह्मपुत्र का स्नान-मंत्र

[हे ब्रह्मपुत्र ! हे महाभाग ! हे शांतनुकुल-नंदन ! हे अमोघ गर्भ से जन्मे ! हे लौहित्य ! मेरे पाप हरो।]

ब्रह्मपुत्र कानो ते, बरहमथूरी जूपी,
आमी खरा लोरा जाई;
ऊटूवाई नीनीवा, ब्रह्मपुत्र देवता,
तामोल दी मनोता नाई।

—असमिया लोकगीत

[ब्रह्मपुत्र के किनारे है बरहमथूरी गाछ, जहाँ हम ईधन लाने जाते है। इसे लील मत लेना, ब्रह्मपुत्र देवता ! हममें इतनी भी क्षमता नहीं कि हरी सुपारी से ही तुम्हारा अर्चन करें।]

एक

बहुत पहले की बात है जब संसार की रचना हो रही थी। देवताओं ने देखा कि चाँद है, सूरज है और चाँद-सूरज की जोड़ी के साथ अनगिनत तारे है। फिर देवताओं ने धरती को रूप दिया, धरती पर पर्वत बनाए, बड़े-बड़े पेड़ उगाए। पेड़ो पर फूल खिले, फल लगे। देवताओं ने पशु बनाए, पछी बनाए। किसी वस्तु की कमी फिर भी खटकती ही रही। और यही सोचकर देवताओं ने आदमी की रचना की।

अब आदमी के रूप मे देवता धरती पर उतरने लगे। जब राक्षसो ने देवताओं को देखा तो उन्हें बहुत क्रोध आया।

एक राक्षस ने, जो सबमें महाबली था, धरती पर लात चलाई।

धरती फट गई और जलधारा फूट निकली।

देखते-देखते सारा मैदान पानी मे डूब गया।

देवताओ में भी एक देवता महाबली थे। वह थे हमारे भगवान् बुद्ध, जिन्होने अनगिनत बार जन्म धारण किया। पर वह था हमारे भगवान् का पहला जन्म, पहला रूप। तो जब हमारे भगवान् ने जल-थल एक होता देखा, वह नीचे उतरे।

नीचे उतरकर भगवान् ने धरती पर अपना मंत्र फूंका।

पानी को परे हटाती, आँचल सँभालती, मुँह पर हाथ फेरती धरती बाहर निकल आई।

धरती ऊँची उठती गई। पानी नीचे रह गया। राक्षसो ने लाख चाहा कि पानी ऊँचा उठकर धरती पर छा जाए, पर यह तो असंभव था। धरती ऊँची थी, पानी नीचा था। अब भगवान् ने देखा कि वह शुभ घड़ी आ गई जब पानी को अपनी डगर पर चलने की आज्ञा दी जाए। भगवान् के संकेत करने-भर की देर थी कि पानी अपनी डगर पर चल पड़ा। यही था हमारा ब्रह्मपुत्र।

उस समय तो ब्रह्मपुत्र ने भगवान् की बात मान ली और शात गति से अपनी डगर पर चल पड़ा। लेकिन अब तो हमारे भगवान् धरती पर विराजमान नही है। इसलिए ब्रह्मपुत्र कभी-कभी राक्षसों की बातों में आकर बरबादी फैलाता है और महाबली भगवान् की संतान से बदला लेता है।

ब्रह्मपुत्र की जन्म-कथा तिब्बत के बड़े-बूढ़े अलाव के गिर्द बैठकर सुनाते हैं।

'सान पो' कहो चाहे ब्रह्मपुत्र, बात तो एक ही है। सान पो अर्थात् विशाल नदी। सान पो के सबंध में तिब्बत की एक दंत-कथा यह भी तो है कि यह नदी हाथी के मुख से निकलती है। मानसरोवर से तो चार नदियाँ निकलती है। कथाकार की कल्पना मे इन चारों नदियो के लिए ही पवित्रता का प्रतीक उभरता है। सतलज घोड़े के मुख से निकलती है तो सिंधु बाघ के मुख से। सतलज, सिंधु और ब्रह्मपुत्र के अतिरिक्त चौथी नदी भी तो है। उसके उद्गम की कल्पना मयूर के मुख से की गई है।

जय ब्रह्मपुत्र ! जय जल देवता ! शक्ति तुम्हारी, नाव हमारी। जलपथ, विशाल, धरती धानवती।

हमारा नमस्कार स्वीकार करो, देवता ! अपना वरदहस्त बढाओ।

तुम क्या हो और क्या नही हो, यह सोचते हमारी आयु बीत जाती है। आशा की नाव चले युग-युग। तुम हमारे साथ हो। हम अकेले तो नही।

जो भी गाँव तुम्हारे किनारे बसा, उस पर तुम्हे बार-बार क्रोध आया। उसे बार-बार पीछे हटना पडा। वह बार-बार आबाद हुआ, बार-बार बरबाद हुआ। ऐसा ही गाँव है हमारे असम का यह दिसाँगमुख।

अहोम राजाओ की पुरानी राजधानी शिवसागर यहाँ से तेरह मील है। देखिए न, यहाँ दिसाँग नदी ब्रह्मपुत्र में मिलती है, पर यहाँ हमारे आँसू भी मिलते हैं ब्रह्मपुत्र मे। ऊपर से पानी का तूफ़ान, नीचे से आँसुओं का तूफान !

ब्रह्मपुत्र हमारी माटी काटकर ले जाता है तो हम कुछ बोल भी तो नही सकते। किसी प्रकार ब्रह्मपुत्र का क्रोध शांत हो जाए, इसका कुछ उपाय हम अवश्य करते है। ब्रह्मपुत्र पर कितनी बार हमने नारियल चढ़ाए, कितनी बार दूध की मटकियाँ भर-भरकर ब्रह्मपुत्र की भेट की। इस पर भी ब्रह्मपुत्र की अपनी इच्छा है; वह हम पर खुश रहे चाहे नाराज।

ब्रह्मपुत्र बहुत दयावान् भी है और बहुत क्रोधी भी। नित-नित इसके किनारे टूटते हैं।

एक किनारे से दूसरा किनारा नजर नही आता।

बीच-बीच में रेत और माटी के द्वीप भी बनते-मिटते रहते हैं। छोटे द्वीप को 'सापरी' कहते है, बडे को 'माझुली'। माझुली तो बस एक ही है। सापरियों की तो यह अवस्था है कि आज हैं, कल नही है; क्योंकि बनाने-बिगाड़ने के खेल पर ही खुश रहता है ब्रह्मपुत्र। एक ओर से माटी काटता है ब्रह्मपुत्र, दूसरी ओर या बीच-बीच में सापरियो के रूप में नई माटी को जन्म देता रहता है।

माझुली के बीच का किनारा हमारे दिसाँगमुख से बहुत दूर नही। कोई साठ-सत्तर मील लंबी है माझुली और दस-एक मील चौड़ी। वर्षा ऋतु में ब्रह्मपुत्र भयानक रूप धारण करता है तो माझुली का आकार छोटा हो जाता है, पर हमने

तो सुना है कि माझुली के उस छोटे आकार की बराबरी करनेवाला द्वीप भी किसी दूसरे देश की किसी नदी में नही है। इसमें बहुत से गाँव बसे हुए है और असम के चार बड़े वैष्णव सत्र भी इसी माझुली में हैं, जहाँ दूर-समीप के भक्त लोग हर ऋतु में पहुँचते रहते हैं।

वर्षा ऋतु में, जब ब्रह्मपुत्र में जल अधिक होता है, नाव दो घंटे मे माझुली के किनारे जा लगती है। वर्षा के पश्चात्, जब नई-पुरानी सापरियाँ ब्रह्मपुत्र के बीचो-बीच सिर उठाए खड़ी रहती हैं, नाव को काफी घूमकर जाना पड़ता है। उस दशा में दिसाँगमुख की नाव को माझुली के किनारे लगने में दोगुना समय चाहिए।

दिसाँगमुख का नाव-घाट तो नए-पुराने चेहरों का संगम ठहरा। पर सबसे अधिक चहल-पहल तो हाट-बाजारवाले दिन ही नजर आती है, जब दूर-दूर की नौकाएँ इस घाट पर आकर लगती है। आर-पार आने-जाने के लिए नाव समय-समय पर तैयार मिलती है। दिसाँगमुख का तो प्रत्येक नावरिया नाव चलाने में कुशल है।

दिसाँगमुख का स्टीमर-घाट भी प्रसिद्ध है। आज से पौने दो सौ वर्ष पूर्व अँग्रेजो का पहला स्टीमर इसी घाट पर आकर लगा था। गाँव के बड़े-बूढे आज भी वह कहानी ले बैठते हैं। जिस जगह आजकल जेलगाँव बसा हुआ है, वहाँ अँग्रेजों ने अपना पहला जेल खडा किया था। यह बाँस का जेल था—बाँस की बड़ी-बडी दीवारे, बाँस के बडे-बड़े दरवाजे। उस जेल से कोई कैदी भाग नही सकता था। फिर जब असम पर अँग्रेजों का चौखूँट अधिकार हो गया और शिवसागर में पक्का जेल बन गया तो बाँस के जेल को समाप्त कर दिया गया। वहाँ जेलगाँव बस गया। यह स्टीमर-घाट पहले इतना प्रसिद्ध न था। पहले तो कलकत्ता से चलकर स्टीमर डिब्रूगढ़ तक जाता था। जब असम में रेल की पटरी नहीं बिछाई गई थी, कलकत्ता की सवारियाँ और दूर-समीप के यात्री स्टीमर के रास्ते ही आते-जाते थे। अब डिब्रूगढ़ तक बड़ा स्टीमर नही जा सकता। ब्रह्मपुत्र का पाट दिसाँगमुख से ऊपर जितना चौडा होता जाता है, उतना ही पानी कम गहरा हो गया है। अब तो खैर छोटा स्टीमर ऊपर डिब्रूगढ़ तक जा भी सकता है, फिर शायद यह भी न जा सके।

असम की रेलवे लाइन ने स्टीमर की पुरानी विशेषता कायम नही रहने दी, पर यहाँ के चाय-बागानो से चाय की पेटियाँ बाहर भेजने के लिए दिसाँगमुख के स्टीमर-घाट पर पहुँचाई जाती है। शिवसागर और डिब्रूगढ़ के बीच ही तो हमारे असम के अच्छे-अच्छे चाय-बागान हैं। हर चाय-बागानवाले दिसाँगमुख का नाम जानते है तो हमारे स्टीमर-घाट के कारण। हमे तो अपने स्टीमर-घाट पर गर्व है। किसी को भी मजदूरी की आवश्यकता पड़े, तो उसे हमारे स्टीमर-घाट पर काम मिल सकता है।

दिसाँगमुख से शिवसागर जानेवाली कच्ची सड़क पहले-पहल उन्हीं अँग्रेज सिपाहियों ने बनाई थी जो ईस्ट इंडिया कपनी की ओर से असम भेजे गए थे। पहले इस प्रदेश में बहुत बड़ा जंगल था और लोग पाँच-पाँच दस-दस की टोलियों मे ही शिवसागर पहुँचते थे। अब तो अकेला आदमी भी मज़े से आ-जा सकता है।

उस जंगल का अब कही नाम-निशान तक नजर नही आता। दूर-दूर तक चले गए है हमारे खेत। हमारी धरती बहुत अच्छी है, धान-ही-धान हो जाता है। नया धान घर आने पर किसी वस्तु की कमी नही रहती।

किसी-किसी वर्ष ब्रह्मपुत्र की बाढ़ भयानक रूप धारण कर लेती है, तो खड़ी फ़सले नष्ट हो जाती है। पर हमारे खेत तो दूर-दूर तक चले गए है। बहुत दूर तक तो ब्रह्मपुत्र का पानी मार नही करता। ब्रह्मपुत्र माटी काटता है अवश्य, पर इसका भी तो कुछ हिसाब रहता है। थोड़ी-थोड़ी करके ही माटी काटता है ब्रह्मपुत्र; जैसे आदमी की आयु भी पल-पल घटती रहती है। यही सोचकर हमे ब्रह्मपुत्र पर कभी क्रोध नही आता। दिसाँग नदी में भी आती है बाढ़, पर बाढ़ के तो अब हम अभ्यस्त हो गए है।

हमारी नाव कम ही डूबती है। दिसाँगमुख में ऐसा आदमी मुश्किल से मिलेगा जो तैराक न हो। वैसे तो हमारे यहाँ बड़ी-बड़ी नौकाएँ भी मिलती है, पर गुटिया नाव की कोई तुलना नही। पेड के तने को बीच से छील-छीलकर बनाई जाती है गुटिया नाव। ऐसा भी होता है कि गुटिया नाव बीच नदी मे उलट जाए। हमारा प्रयत्न सदा यही रहता है कि पानी मे गिरकर भी नाव का किनारा पकड़े रहें। किसी-न-किसी प्रकार हम दोबारा नाव में बैठने मे सफल हो जाते है और नाव फिर चलने लगती है।

ब्रह्मपुत्र पर तो हम अपना अधिकार समझते हैं। नाव खेते हुए हमें अगाध आनद मिलता है। कभी-कभी हम सोचते है कि दिसाँगमुख में ब्रह्मपुत्र न होता तो हम कितने उदास रहते। हमें ब्रह्मपुत्र का यह किनारा भी प्रिय है जिसे हम देख सकते है। हमे ब्रह्मपुत्र का वह किनारा भी प्रिय है जिसे हम यहाँ से देख नही सकते। हमारे जीवन के सबसे मधुर क्षण वही होते है जब हमारी नाव ब्रह्मपुत्र की विशाल जलधारा का आँचल थामे आगे बढ़ती है।

ब्रह्मपुत्र के किनारे जन्म हुआ हमारा। हम तो बहुत भाग्यवान है।

दो

"बत्तखों ने अंडे दिए नही कि भक्त लोग आ पहुँचे !"—दिसाँगमुख के गाँव-

बूढ़ा नीलमणि का यह मज़ाक तो चलता ही रहता है। अपने लंगोटिए मित्र कल्याण भगत पर व्यंग्य कसने में उन्हें आनंद आता है। अब बेचारे भगतजी हैं कि हरिनाम की चादर ओढ़े मुसकराते रहते हैं। क्या मजाल नीलमणि की बात का बुरा मना जाएँ। भगतजी तो न अंडे को हाथ लगाते हैं, न मांस-मदिरा के समीप जाते हैं। माझुली के आउनियाटी सत्र के गुसाईंजी से मंत्र ले रखा है। पूरे वैष्णव हैं। वैष्णव-धर्म का बखान उनके मुख से सुनते ही बनता है। वह तो नीलमणि पर भी जोर डालते हैं कि अब जल्दी करें। एक दिन आउनियाटी सत्र की यात्रा की जाए। गुसाईजी तो महापुरुष है। गुरुदेव की वाणी पूरी नहीं तो आधी उन्हें कंठस्थ है। शास्त्रों के अच्छे-अच्छे श्लोक उनके कंठ में विराजमान हैं। आउनियाटी सत्र तो तीर्थ-स्थान है। प्रति वर्ष दूर-दूर के वैष्णव वहाँ पहुँचते हैं। एक बात तो पहले से समझ लेनी होगी। सच्चा वैष्णव वही नही जो अंडा-मछली और मांस-मदिरा से दूर भागता है, सच्चे वैष्णव को तो पराई पीड़ा को जानना होता है, पराई पीड़ा को अपनी पीड़ा मानकर चलना होता है। नीलमणि और कल्याण भगत की नाल एक ही जगह दबाई गई होगी। तभी तो उनमें इतनी गाढ़ी छनती है। यह और बात है कि भगतजी अभी तक नीलमणि को वैष्णव-धर्म की दीक्षा नहीं दिला सके।

"समय बीत रहा है, जीवन का अंत नही।"—भगतजी हमेशा यही रट लगाते रहते है। अब भगतजी तो बड़े-बड़े तीर्थ देख आए है। गया, काशी, प्रयागराज, पुरी, रामेश्वरम—सब जगह हो आए हैं। यात्रा की कथाएँ तो उनसे घंटों सुनते रहो। नीलमणि ने तो एक भी तीर्थ नही देखा—उसने तो आउनियाटी सत्र भी नही देखा जो इतना समीप है।

नीलमणि सबकी भलाई चाहता है, इतना तो भगतजी भी जानते है। नही तो वह नीलमणि का इतना सम्मान क्यों करते? गाँव-बूढ़ा तो प्रायः बहुत चतुर होता है—बात करते-करते आपको बेच डाले और आपको पता भी न चले, पर नीलमणि को तो किसी प्रकार का छल-कपट छू तक नही गया। वह तो दिन-रात दिसाँगमुख की चिंता ही में मग्न रहता है। यह भी तो एक प्रकार की भक्ति है। पूरा नहीं तो आधा वैष्णव तो अवश्य है नीलमणि। दिसाँगमुख की तो कई बस्तियाँ हैं, वे भी अलग-अलग। हर बस्ती का अलग नाम है, फिर भी सबका नाम है दिसाँगमुख। आलीसीगावालों का यह दावा अवश्य है कि असली दिसाँग-मुख यही बस्ती है। नीलमणि के लिए तो सभी बस्तियों की भलाई आवश्यक है। उसका अपना घर तो आलीसीगा में है—भगतजी के पड़ोस में, पर वह तो पूरे दिसाँगमुख का गाँव-बूढ़ा है, पूरे दिसाँगमुख की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानना उसका धर्म है। यही तो वैष्णव-धर्म भी कहता है। एक काम और करे नीलमणि, अंडा-मछली और मांस से मुँह मोड़ ले—मदिरा को तो वह पहले ही मुँह नही लगाता—फिर चाहे वह किसी भी तीर्थ की यात्रा न करे, चाहे आउनियाटी सत्र

भी न जाए, परवाह नही।

एक दिन यह बात नीलमणि की समझ में अवश्य आ जाएगी कि सात्विक विचारों के लिए सात्विक भोजन भी आवश्यक है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण—शास्त्रों में ये तीन गुण माने गए हैं। सतोगुण सर्वोत्तम है। अब यह तो असभव है कि मांस-मछली का सेवन करते हुए मनुष्य यह भी चाहे कि वह रजोगुण और तमोगुण से बचा रहे। तमोगुण से बचने के लिए तो लाल मिर्च भी छोड़नी पड़ती है। चलिए कोई बात नही। कभी तो नीलमणि की समझ में यह बात आ ही जायगी। नीलमणि का बेटा है अतुल। अतुल को तो मेरी बात पर विश्वास है। यह भी हो सकता है कि पिता से पहले पुत्र वैष्णव बन जाए। वैष्णव-धर्म यह तो नही कहता कि घर छोड़कर किसी तीर्थ पर जा बैठो। हमारे आउनियाटी सत्र के गुसाईंजी तो सत्र मे आकर रहनेवालो की अपेक्षा उन भक्तो को अधिक अच्छा समझते है जो घर पर रहकर हरिनाम जपने के साथ-साथ घर का काम भी करते हैं। खेती-किसानी तो बुरी नही। धरती माता का वरदान मिलता रहे। आदमी दस नाखूनो की कमाई खाकर जिए, किसी पर भार न बने। कर्मेंद्रियों और ज्ञानेंद्रियो का भार अपने-आप ढोए। इसमें तो कोई बुराई नही, पर सात्विक विचारो के लिए सात्विक भोजन तो आवश्यक है।

धनसिंह चायवाले और रतन नापित की दुकाने आलीसीगा में पास-पास है। दिसाँगमुख का तो ले-देकर यही एक बाजार है। धनसिंह की दुकान दुनिया-भर की खबरो पर टीका-टिप्पणी करने के लिए बहुत बड़ा अड्डा है। यहाँ भगतजी भी आते है और नीलमणि भी। बीच-बीच में रतन नापित की जबान भी कैंची की तरह चलती रहती है।

धर्मानंदी मछुआ और अब्दुलकादिर भी धनसिंह की बातो के रसिया है। अब्दुलकादिर किसान है। धर्मानदी कहता है कि उसकी खेती जल पर होती है, जहाँ उसके जाल में छोटी-बड़ी मछलियाँ आ फँसती है। अब्दुलकादिर है कि उसे एक ही चिंता खाए जा रही है। भगतजी इतने तीर्थो की यात्रा कर आए पर वह आज तक हज करने नही जा सका। भगतजी चारो मित्रो मे सबसे बड़े हैं—पचास से कम तो क्या होगे। उनसे साल-छः महीने उतरकर है गॉव-बूढ़ा नीलमणि और अब्दुलकादिर। धर्मानंदी तीनों से छोटा है, यद्यपि धनसिंह का विचार है कि वह तो भगतजी से भी साल-छः महीने ऊपर ही होगा।

लीजिए चारो मित्र आज इकट्ठे हो गए। धनसिंह एक-एक गिलास गरम चाय देते हुए कहता है, "बैंच पर बैठकर पीजिए!"

रतन नापित अपनी दुकान से निकलकर कहता है, "थोड़ा हरिनाम हमारे लिए भी जप लेना, भगतजी!"

धर्मानंदी हँसकर कहता है, "या तो हमारे साथ बैठकर चाय पियो या फिर

अपनी दुकान में जाकर किसी गाहक की बाट जोहो। तुम मेरी हजामत यहाँ नहीं बना सकते !"

"धर्नासिह की चाय हमसे कौन दूर है ! तुम बताओ, काका ! मछलियाँ तुम्हारे जाल में फँसने से इंकार तो नही करती ?"

"इंकार करके कहाँ जाएँगी ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ ?" धर्मानंदी गंभीर होकर कहता है, "सच पूछो तो मछलियाँ पकड़ना भी हरिनाम जपने से कुछ कम कठिन नही। क्यो, मियाँ अब्दुलकादिर ?"

भगतजी अब्दुलकादिर के कान के समीप मुँह ले जाकर कहते है, "एक बार हज तो अवश्य कर आओ, मियाँजी !"

अब्दुलकादिर की आँखो मे एक नई ही चमक आ जाती है। वह पहले तीनो मित्रो की ओर देखता है, और फिर धनसिह और रतन की ओर, जैसे बारी-बारी सबसे पूछ रहा हो कि यदि वह इस वर्ष हज को जाने की तैयारी कर ले तो दिखाँगमुखवाले उसकी कहाँ तक सहायता कर सकते है। नीलमणि सबकी ओर से कहता है, "मियाँजी, जब तक तुम हज को नही जा सकते, दिसाँगमुख ही को काबा समझ लो। हम तो इसे काशी मान बैठे है।"

शीतकाल का सूर्य वैसे भी देर से निकलता है। आज धुध जरा कम है। चारो मित्र चाय पीकर सड़क के मोड की ओर चले जाते है। धनसिह और रतन पीछे से उन्हें देखते रहते है, जब तक कि वे धुध की चादर मे खो नही जाते।

रतन अपनी दुकान मे चला जाता है। वह जानता है कि धनसिह ने केतली में पानी भरकर इसे दोबारा आग पर रखा है। इतने मे धनसिह की आवाज़ आती है :

"चाय पियोगे ?"

रतन उतर देता है, "धनसिह भाई, कटोरी-भर गरम पानी हमारे लिए रख लेना ज़रूर। चाय अभी नही चाहिए।"

धनसिह सोचता है, 'आखिर रतन अपना पड़ोसी है।' वह हँसकर कहता है, "वे चारों तो धुध में खो गए। अब कौन आएगा हजामत बनवाने ? गरम पानी तो जितना चाहे ले लो, हमारे गुरु ने तो यही बताया था कि बेटा दूसरों के काम आने से कभी न चूकना।"

रतन अपनी दुकान से निकलकर कहता है, "अच्छा, तो चाय पिलाओ !"

धनसिह चाय बनाते हुए रतन की ओर यो देखता है जैसे बकरी अपने नवजात शिशु की ओर निहारती है। सूखे होठो पर ज़बान फेरते हुए कहता है, "कलकत्ता से आता है डब्बा लिपटन का। यह समझो कि लड़की ससुराल से दोबारा मायके में आई !"

"वाह, धनसिह भाई ! अच्छा रूपक बाँधा है। असम की चाय पहले कलकत्ता जाती है, फिर कलकत्ता से अँग्रेज़ कंपनी डब्बों में भरकर भेजती है जगह-जगह।

अच्छा तो लाओ चाय का गिलास !"

चाय का गिलास धनसिंह के हाथ से लेकर रतन देर तक उसे मुँह से नहीं लगा पाता। भाप उठ रही है। धनसिह कहता है, "धर्मानंदी की लड़की है न आरती, वह अपने पिता से कम नही। पिता जाल डाले ब्रह्मपुत्र में, पुत्री जाल डाले दिसाँगमुख के हाट-बाज़ार में ?"

चाय का गिलास बैंच पर टिकाकर रतन एक हाथ की उँगली दूसरे हाथ की हथेली पर उस्तुरा तेज करने के अदाज में चलाते हुए कहता है ? "छोड़ो, छोड़ो, दिल मेरा लहू-लुहान कर दिया। बात करता है, कट लगाता है !"

धनसिह कोई उत्तर नही देता। धुध की झीनी चादर घनी होने लगती है। इस आवरण से चेहरे निकालकर अतुल और देवकांत आ निकलते हैं। देवकात कहता है, "जल्दी बताओ, चाय पिएँ या पहले हजामत बनवाएँ ?"

अतुल अपनी ठोडी पर हाथ फेरकर कहता है, "तुम्हारा मतलब है दिन में बस दो काम ही होगे ?"

रतन एक ही साँस में चाय का गिलास चढा जाता है।

देवकात गभीर होकर कहता है, "अपना काम तो लोगों को इकट्ठा करना है। लोग इकट्ठे हो गए तो उनके सामने कोई कठिनाई नही रह जाएगी।"

अतुल हँसकर कहता है, "हमसे तो वह नागा लड़की गुइडालो ही तेज निकली, भले ही फिरंगी ने उसे पकडकर जेल में डाल दिया···"

रतन बीच में बोल उठता है, "फिरंगी का तो कोई क्या बिगाड़ेगा ? अपने हाथों मे हथकडी और पैरों में बेड़ी ज़रूर डलवा सकता है।"

धनसिह की आँखो के कोनो में शरारत सिमट आती है। हवा में हाथ उछालकर कहता है, "अब बोलो, देवकांत भाई ! अच्छा तो पहले रतन से हजामत बनवा आओ, मै नई पत्ती डालकर चाय तैयार करता हूँ।"

धनसिह की बात समझकर रतन झट अपनी दुकान में चला जाता है। पीछे-पीछे अतुल और देवकात भी चले जाते हैं।

देवकात के चेहरे पर साबुन लगाते हुए रतन कहता है, "फिरंगी से तो बड़े-बड़े देशभक्त भी भय खाते हैं। गुइडालो ने समझा होगा कि स्वतंत्रता का झंडा उठाने-भर की देर है, फिरगी मैदान छोड़कर भाग जाएगा। फिरंगी को क्रोध आ गया। उसने कई नागा गाँव जला डाले। खूब बदला लिया। और गुइडालो को भी पकड़ लिया।"

अतुल हँसकर कहता है, "तो यह कहो कि एक ओर से ब्रह्मपुत्र गला काट रहा है, दूसरी ओर से फिरंगी। गुइडालो से तो मिल चुका है देवकांत। गुइडालो तो नौवी-दसवी तक ही पढ़ी हुई है और हमारा देवकांत तो बी० ए० पास कर चुका है। वह तो फिरंगी की चाल अच्छी तरह समझता है। वह फिरंगी को ब्रह्मपुत्र के

समान गला नही काटने देगा।"

रतन खड़ा मुसकराता रहता है और देवकांत के चेहरे पर धीरे-धीरे उस्तुरा चलाता है।

यह तो दिसाँगमुख में सभी जानते हैं कि ब्रह्मपुत्र को गला काटने में ही आनंद आता है। गाँव के बड़े-बूढ़े कहते हैं—किसी समय शिवसागर यहाँ से सोलह मील था, अब रह गया है तेरह मील। तीन मील माटी कट गई। बड़े-बूढ़े तो यह भी कहते हैं कि आलीसीगा की वर्तमान बस्ती आज से बीस साल पहले अपनी जगह से हटाकर इस जगह बसाई गई थी। पुराने आलीसीगावाली जगह तो कभी की पानी मे जा चुकी है। उस्तुरा चलाते-चलाते रतन कहता है, "आलीसीगा भी किसी ने क्या सोचकर नाम रखा है इस बस्ती का!"

अतुल कहना चाहता है— ठीक तो है, आलीसीगा अर्थात् टूटी हुई सडक। यह आली तो ब्रह्मपुत्र की बाढ़ में न जाने कितनी बार टूटी, न जाने कितनी बार पीछे हटाई गई यह बस्ती।

"हाथ बचाकर, रतन भाई! कट मत लगाना।"

रतन और भी जल्दी-जल्दी हाथ चलाते हुए कहता है, "हरि का नाम लो, यहाँ तो बडो-बड़ों की हजामत बना डाली। कट लग जाए, तो हमारे पास इसका उपाय भी तो रहता है।"

अतुल प्रसंग बदलकर कहता है, "दारोगा की लेखनी भी तो ब्रह्मपुत्र की जलधारा की तरह गरा काटती है। कई बार यह समाचार सुनने मे आया कि नारायण दारोगा को नौकरी से हटा दिया जाएगा, पर वह तो अपनी जगह पर ही डटा हुआ है जैसे यह हमारा दिसाँगमुख नारायण समझने लगा है कि भद्रलोक को लाछित करने और उन्हें बड़ी-बड़ी गालियाँ देने से ही सरकार खुश रहती है।"

देवकांत के चेहरे से साबुन पोंछकर रतन फिटकिरी लगाते हुए हँसकर कहता है, "हमारे लिए तो जैसे सरकारी अफसर वैसे ही पब्लिक के लोग!"

धुध की चादर पहले से घनी हो गई है। रतन की दुकान से निकलकर दोनो मित्र धनसिह की दुकान पर जमकर बैठ जाते है।

दोनों ग्राहकों के हाथ में चाय के गिलास देकर धनसिह कहता है, "धर्मानंदी अपना जाल डालने से पहले सदा यही कहता है—सावधान, मछलियो! पर छोडिए धर्मानंदी की बात। कहते हैं हाथी जितना खाता है उतना बोझ ढोता है। हम अपना जाल डालने से पहले इतना भी नहीं कहते—सावधान ग्राहको! चलो रहने दो। धर्मानंदी की लड़की आरती एक-न-एक दिन अवश्य भाग जाएगी, यदि धर्मानंदी ने उसके लिए योग्य वर न ढूंढ़ लिया।"

अतुल गंभीर होकर कहता है, "मछुए की लड़की के लिए तो लोग कहते हैं मछुए का कार्य करनेवाला कैवर्त या डोम वर ही चाहिए, पर यह कोई आवश्यक

तो नही।"

धनसिंह कहता है, "आवश्यक कैसे नही ? दिसाँगमुख में आधे तो मीरी रहते है, जो अपने मीरी लोगो में ही विवाह करते हैं। एक चौथाई हैं हम नेपाली लोग और शेष रह गए एक चौथाई अन्य असमिया लोग, जिनमे किसानो के अतिरिक्त नावरिया और मछुए भी है। अब यह तो पुरानी रीति ठहरी—नेपाली का विवाह नेपाली लड़की से ही होगा, असमिया का असमिया से; यहाँ तक कि मछुए और नावरिया भी हमेशा अपनी-अपनी जाति मे ही विवाह करते हैं। आप लोग चाय पीने आ जाते है, किस प्रकार धन्यवाद दूं ? धनवान की नाव तो रेत पर भी चल जाती है, पर निर्धन की नाव ब्रह्मपुत्र में भी नही चलती !"

देवकात प्रसंग बदलकर कहता है, "ब्रह्मपुत्र जानता है कि चप्पू कितना गहरा जाता है।"

अतुल अलग तान तोडता है, "आदमी के चरण जहाँ भी पडते हैं उस माटी के स्वभाव को तो जान ही लेते है। अपने गाँव को भी इसीलिए आदमी सबसे अधिक जानता है। दिसाँगमुख हमारी जन्मभूमि है। इसकी भलाई हम सदा चाहते है।"

धनसिंह हँसकर कहता है, "दिसाँगमुख की भलाई तो इसमे है कि हमारे लड़को को सुदर दुलहने मिले और हमारी लड़कियो को योग्य वर। धर्मानदी का दामाद देखे कौन बनता है। बेचारे की घरवाली तो मगरमच्छ के मुँह में चली गई थी। कोई-कोई यह भी कहता है कि धर्मानंदी की घरवाली घर से निकली ही इस विचार से थी कि इस जीवन से छुटकारा पा ले।"

देवकात कहता है, "यह बात तो मेरे सुनने मे भी आई है। धर्मानंदी अपनी घरवाली को यह कहकर चिढ़ाता रहता था कि उसने बेटी को क्यों जन्म दिया जबकि उसकी इच्छा तो बेटे का बाप बनने की थी। कहते है उन दिनो आरती दूध पीती बच्ची ही थी। उसको किस प्रकार पालकर बड़ा किया, यह सब-कुछ धर्मानदी का ही काम है। वह चाहता तो दूसरा विवाह कर लेता, पर···"

धनसिंह फुलझडी छोड़ता है, "कर लेता दूसरा विवाह, और भी दुखी होता। शादी तो काठ की हाँडी है, यह बस एक बार ही चढ़ती है आग पर ! वैसे तो चाहे जितनी बार झख मारते रहो। अब तो आरती सयानी हो गई। धर्मानदी चाहता है कि गाँव में ही उसका विवाह हो जाए जिससे आरती सदा उसकी आँखो के सामने रहे।"

रतन अपनी दुकान से निकलकर कहता है, "क्या बातें हो रही है ? धुध ने तो आज कमाल कर दिया। सूरज का कही नाम-निशान नही। कहाँ से आती है इतनी धुध ?"

धनसिंह अपनी जगह से उछलकर कहता है, "मजे से बैठो, रतन ! अब कोई गाहक नही आएगा। हाँ, तो बात चल रही थी धर्मानंदी की लड़की आरती की।"

रतन अपनी ही हाँकता है, "धनसिंह भाई, तुम्हें इतनी क्या चिंता है आरती की ? धर्मानंदी तो घरजमाई ढूंढ़ रहा है, वह उसे आज नही तो कल मिल ही जाएगा।"

धनसिंह बत्तख की तरह सिर उठाकर कहता है, "यह झूठ है। घरजमाई तो कल्याण भगत को चाहिए अपनी जूनतारा के लिए। उनके बेटे सुधीर का तो पिछले साल विवाह हो गया, अब रह गई जूनतारा। बड़ी सुघड लड़की है—जिसके घर जाएगी उसके घर चाँद चढ़ जाएगा और तारे भी चमकने लगेगे।"

अतुल चाहता है कि यहाँ से उठकर चल दे। इसी विचार से वह बार-बार देवकात की ओर देखता है। वह सोचता है कि देवकांत को भी इन बातो मे रस नही आ रहा होगा। अब यह भी कोई बात हुई। जूनतारा तो बड़ा साधारण नाम है। यह कौन नही जानता कि जून चाँद को कहते है और तारा तो तारा ही है। बात को खीचकर कहाँ-से-कहाँ ले जाते है। बात तो यह हो रही थी कि दिसाँगमुख की भलाई किसमें है, तान आकर टूटी आरती और जूनतारा पर। गाँव में और भी तो लड़कियाँ है, आरती और जूनतारा मे ही ऐसी कौन-सी विशेष बात है।

धनसिंह और रतन इस बात पर उलझ जाते है कि आरती और जूनतारा में सुंदरता के नबर किसको अधिक दिए जाएँ। अतुल फिर देवकांत के मुख की ओर देखता है कि वह इन्हें टोक क्यों नही देता ? किधर-से-किधर बात को खीचा जा रहा है। कभी कहते है—आरती तो लड़के से भी अधिक सेवा कर रही है अपने बापू की, कभी कहते है—जब आरती का विवाह हो जाएगा तो धर्मानंदी क्या करेगा ? धर्मानंदी अकेला रह जाएगा और वह उदास रहा करेगा !···पर यह कौन नही समझ सकता कि लड़की तो पराया धन है। जमाई इसलिए आता है कि ससुर अपना ऋण चुका दे, पर जमाई बनना भी क्या इतना सहज है ? उसकी भी तो परीक्षा हो जाती है और यदि उसकी गाँठ खाली हो, तो कब मिलती है दुल्हन ? यह सब बदलना होगा, बदलकर दिखाना होगा।

देवकात कहता है, "किस सोच में डूब गए, अतुल ? रतन की बात भी सुनी—जूनतारा अपने करघे पर बहुत अच्छा कपड़ा बुनती है।"

"मैने जो बात कही वह सुनी-सुनाई बात नही।" रतन हवा मे हाथ उछालकर कहता है, "यह तो पुरानी रीति है। जो लड़की कपड़ा बुनना नही जानती उसके लिए वर नही मिलता।"

"कोई शर्त तो लड़के के लिए भी होनी चाहिए।" धनसिंह बिखरे कण समेटने के अंदाज में कहता है, "लड़के के लिए तो एक ही शर्त है कि वह मछुआ बने और मछली को अपने जाल में फँसाकर ही दम ले।"

"वैसे तो मछुआ नारायण दारोगा भी हुआ !" अतुल बात का रुख मोड़ने का यत्न करता है, "आप ही सोचिए। अपराधी को फँसाने के लिए उस जैसा जाल

कोई क्या बुन सकेगा ? कल की बात है—मैं शिवसागर से आ रहा था, रास्ते में नारायण दारोगा मिल गया। वह पूछने लगा—'तुम देवकांत के साथ क्यो घूमते रहते हो ?' मैंने कहा—'मैं देवकांत के साथ नही घूमता, देवकात ही मेरे साथ घूमता है और इसमें बुराई ही क्या है ?' वह अपना-सा मुंह लेकर रह गया।"

"बात तो ठीक कही तुमने।" धनसिंह हाथ उछालकर कहता है, "कोई किसी के साथ घूमता है तो नारायण दारोगा का क्या लेता है ?"

रतन एक हाथ की उँगली दूसरे हाथ की हथेली पर उस्तुरा तेज करने के अंदाज में चलाते हुए कहता है, "पुलिस यह पूछ सकती है। उसको यह पूछने से कोई नही रोक सकता।"

"रोक सकते है।" देवकात जोश में आकर कहता है, "लोग मिलकर इकट्ठे हो जाएँ तो वे अवश्य रोक सकते है। यह बात मैने गुइडालो से भी कही थी, जब एक बार कलकत्ता से आने के बाद कोहिमा मे मेरी उससे भेट हुई थी। फिर जब गुइडालो ने स्वतंत्रता का झंडा उठाया, तो उसने अपने लोगो को यही आवाज दी कि वे मिलकर इकट्ठे हो जाएँ।"

"यह तो कठिन बात है।" अतुल बागडोर सँभालता है, "रतन कह सकता है कि लोग कभी मिलकर इकट्ठे न होगे, पर मै कहता हूँ कि जब तक लोग इकट्ठे नही होते, कोई तो ऐसा माँ का लाल निकले जो गुइडालो के समान अत्याचार से टक्कर ले।"

"यही तो मै भी कहता हूँ।" देवकांत जोर देता है।

"तो तुम दोनों एक ही बात कह रहे हो ?" रतन हँसता है।

"पुलिस दारोगा पर तो यह बात ठीक उतरती है।" देवकांत अपना हाथ अतुल के कंधे पर रखकर कहता है, "मेरा बेटा राजा बनेगा तो मुझे सिर के बालों से पकड़कर बीच डगर में खडा कर लेगा। मैं तो समझता हूँ कि नारायण दारोगा ने भारत माता को सिर के बालों से पकडकर बीच डगर मे खड़ा कर रखा है।"

"तुम्हारा क्या विचार है, अतुल ?" रतन गंभीर होकर पूछता है।

"भारत माता की बात मैं नही जानता।" अतुल कहता है, "मै तो दिसाँगमुख की बात कहता हूँ। दिसाँगमुख का अपमान करने से मै नारायण दारोगा का हाथ अवश्य रोक सकता हूँ, चाहे वह मेरे हथकड़ी ही क्यों न लगा दे।"

धनसिंह हँसकर कहता है, "तुम तो गाँव-बूढा के बेटे ठहरे, अतुल ! वैसे नारायण दारोगा चाहे तो धुध के भी हथकड़ी पहना दे। आज तो धुध ने कमाल कर दिया। जाड़े का मौसम ही ऐसा है। हाँ, तो आए एक-एक गिलास गरम-गरम चाय ?"

तीन

धर्मानंदी ही सबसे अधिक हाट-बाजार की बाट जोहता है। बुध और शुक्र के बीच का पड़ाव है बृहस्पतिवार। हाट-बाजार के लिए यही दिन क्यों चुना गया, धर्मानंदी के पास इसका कोई उत्तर नही। हाट-बाजारवाले दिन सबसे अधिक मछलियाँ वही बेचता है। शिवसागर की ओर से आनेवाली सड़क जहाँ ब्रह्मपुत्र के समानांतर घूमती है, वही मोड़ के समीप खुली जगह है। वर्षों से हाट-बाजार इसी जगह लगता है, बीस वर्ष पूर्व अवश्य काफी आगे लगता होगा। वह जगह तो अब ब्रह्मपुत्र में चली गई। वहाँ तो अब धर्मानदी मछलियाँ पकड़ता है। यहाँ बैठकर तो वह मछलियाँ बेचता है। धर्मानंदी के साथ बैठती है आरती।

आरती जानती है कि रतन और धनसिंह में पुराना समझौता है। जहाँ धर्मानदी हाट-बाजार के दिन मछलियाँ बेचने बैठता है उसके सामने रतन और धनसिंह दुकान सजाकर बैठते है। आरती तो गिनकर बता सकती है कि धनसिंह ने कितने गिलास चाय बेची या रतन ने कितने आदमियो की हजामत बनाई। वह यह भी जानती है कि रतन और धनसिह चाहे तो मिलकर भी यह नही बता सकते कि धर्मानंदी ने कितनी मछलियाँ बेची।

आरती पैसे उठाती जाती है। धर्मानंदी अपने हाथ से मछलियाँ तोलता है। सोने की तरह तो तोलने से रहा; झुकता पलड़ा रखता है। गाहक खुश रहे, चाहे एक-आध छटाँक अधिक ही चली जाए मछली। साथ-साथ मछली की प्रशसा भी करता जाता है धर्मानंदी। कभी-कभी कल्याण भगत की बात छेड़ देता है, 'मैने पूछा—भगतजी, जब लोग निरामिष खाने लगेगे, तो मछलियाँ कहाँ जाएँगी? वह बोले—ब्रह्मपुत्र में ही रहेगी मछलियाँ; और कहाँ जाएँगी?…' कभी-कभी धर्मानंदी हँसकर धनसिह और रतन की बात सुनाने लगता है कि किस तरह दोनों ने एक-दूसरे की प्रशसा करने की शपथ ले रखी है।

नीलमणि को यह नापसंद है कि अतुल हाट-बाजार के दिन भी देवकात का पीछा न छोड़े। देवकांत तो कलकत्ता से पढ़कर आया है। आज नही तो कल, उसे शिवसागर में कोई नौकरी मिल जाएगी। लोगो को इकट्ठा करने की बात वह कहता है अवश्य, पर यह काम वह नही करेगा। बापू उसे देखने को तरसता मर गया। अब घर में बुढ़िया माँ है। माँ का और अपना पेट पालना तो आवश्यक है। कई बार वह देवकांत को सलाह दे चुका है कि वह हाट-बाज़ार के दिन छोटी-मोटी दुकान ही लगा लिया करे, पर उसकी समझ में यह बात नहीं आती।

हाट-बाज़ार की रौनक तो देखते ही बनती है। भोर से पहले ही दूर-दूर की नौकाएँ दिसाँगमुख के नाव-घाट पर आ लगती है। सब अपनी-अपनी बिक्री की

चीज़े लाते हैं। बत्तखें ले लो। मुर्गियाँ भी हाज़िर है। मछलियाँ और कछुए भी पड़े हैं। कबूतर ले लो। सूअर ले लो। अंडो से भरी टोकरियाँ भी जल्दी-जल्दी खाली हो रही है। मूगा के थान भी बिक रहे है। अडी की चादरो का सौदा हो रहा है। बाँस की नरम खपचियों से बने थैलो में सूअर बद हैं। बड़े-बड़े सुराखो में से सूअर नजर आ रहे है। उनके आगे और पीछे के पैर कसकर बाँध दिए गए हैं। आँखे बंद किए पड़े है थैलो के अंदर ये छोटे-बडे सूअर। छोटे थैलों मे सूअरियो के दूध-पीते बच्चे बंद हैं। उनके विशेष गाहक आते हैं। कभी-कभी सूअर की आवाज़ एक चीख की तरह सुनाई दे जाती है। कभी टोकरों में बंद कबूतरों और बत्तखों की आवाज़ हाट-बाजार के वातावरण में गूंज उठती है।

नीलमणि देवकात को रोककर कहता है, "कुछ तो तुम भी बेच ही सकते हो हाट-बाजार के दिन। एक दिन में पूरे सप्ताह का खर्च निकल सकता है। मैं तो कहता हूँ कि अतुल भी तुम्हारे साथ मिलकर कुछ-न-कुछ बेचे और लाभ उठाए।"

"कमाई के लिए तो सारी आयु पडी है, बापू !" अतुल झट चुटकी लेता है।

दोनो मित्र भीड में गुम हो जाते है।

"तो कलकत्ता देखने का तुम्हारा बिलकुल इरादा नही ?" देवकांत चलते-चलते पूछता है।

"बिलकुल नही।" अतुल मुसकराता है।

"कलकत्ता में तुम्हें नीरद से मिलाऊँगा।"

"कौन नीरद ?"

"उसका बापू तिब्बत चला गया कलकत्ता छोड़कर, जहाँ वह व्यापार करता है।"

"और नीरद क्या करता है ?"

"उसके पैर में चक्कर है। दुनिया देखने का शौक है। कहता है कि वह सब जगह जाएगा, दुनिया देखेगा और फिर जैसे मधुमक्खियाँ छत्ता बनाती हैं, रंग-बिरंगे फूलों से रस जुटाकर, ऐसे ही वह भी ऐसी पोथी लिख जाएगा कि रहती दुनिया तक उसका नाम अजर-अमर रहेगा।"

"तो उसे यही बुला लो ना ?"

"मैं कहता हूँ कि जब तक तुम एक बार कलकत्ता नही हो आते, तुम समझ ही नहीं सकते कि भारत माता किसे कहते है। कब तक पोखर के मेढक बने रहोगे ? जैसे हाट-बाजार के दिन आसपास के गाँवों के चेहरे देखकर तुम दिसाँगमुख के लोगों को भली-भाँति समझ सकते हो, वैसे ही एक बार बाहर जाकर तुम असम को अच्छी तरह समझ सकोगे। और फिर यह तो तुम स्वयं ही कह चुके हो कि जब तक सब लोग मिलकर इकट्ठे नही हो जाते तब तक किसी एक आदमी को ही प्राण न्यौछावर करने पड़ेंगे सचाई और स्वतंत्रता की आवाज पर डटे रहने के लिए। तो

फिर तैयार हो जाओ। कलकत्ता दिखाने के लिए तुम्हें मुझसे अच्छा पथ-प्रदर्शक दूसरा नही मिलेगा।"

"एक बात कहूँ, बुरा तो नही मानोगे ?"

"कहो, कहो।"

"एक दिन भगतजी किसी पोथी का प्रमाण देकर कह रहे थे कि जब व्याख्यान देनेवाला मेढक हो तो सुननेवालों का धर्म हो जाता है कि वे चुपचाप मेढकजी महाराज का व्याख्यान सुनते रहे। तुम मेरी बात तो समझना ही नही चाहते, देवकात ! तुम्हारे दिमाग पर कलकत्ता क्यो सवार है ?"

"कलकत्ता से आरभ किए जानेवाले कार्य से भी दिसाँगमुख को लाभ पहुँचेगा।"

"और दिसाँगमुख से ही कार्य आरंभ करने से क्या दिसाँगमुख को हानि पहुँचेगी ? खैर छोडो। चलो जरा भगतजी को देखें कि किस प्रकार चटाइयाँ बेच रहे है।"

"भगतजी का तो बहाना है। मैं समझता हूँ। याद है धनसिह उस दिन धर्मा-नदी की लडकी आरती पर तान तोड़ता रहा, फिर वह भगतजी की लड़की जून-तारा की गाथा ले बैठा। बंद पोखर के मेढक इसी प्रकार बातें करते हैं। जब सामने कोई बडी बात न हो तो आदमी छोटी बात कहने पर मजबूर होता है। कलकत्ता में ऐसे-ऐसे होटल है, जहाँ हिदुस्तानियो को घुसने की आज्ञा नही। अँग्रेजों को खुली आज्ञा है कि वे अपने कुत्तो को भी साथ ले जाएँ। इसी प्रकार का अपमान-भरा व्यवहार देखकर ही तो नीरद का बापू तिब्बत चला गया। उसने सौगंध खा ली कि जब तक देश स्वतंत्र नही हो जाता, वह लौटकर देश में नहीं आएगा।"

एक चक्कर, दो चक्कर, तीन चक्कर। अतुल और देवकात आखिर धनसिह की दुकान पर आकर चाय पीने लगते है। सामने धर्मानंदी की लड़की आरती पैसे गिन-गिनकर रखती जाती है, कभी-कभी नजर भरकर देखने लगती है कि कितने गाहक चाय पी रहे है। एक गिलास, दो गिलास, तीन गिलास—आरती को शायद यह हिसाब भी रखना पडता है।

रतन पास से कहता है, "चीतल है चीतल।"

"तो निकालो मछली जाल !" धनसिह हँसता है।

"तुम्हारी चाय में कोई नशा नही !" रतन ज़ोर देकर कहता है, "तुम लाख अपनी चाय की प्रशसा करते रहो। चाय भी कोई पीने की चीज़ है ?"

"तो शुरू कर दिया साबुन का झाग ?" धनसिह चाय का गिलास रतन के हाथ में देते हुए कहता है, "शुरू कर दी हजामत। तुम बहुत कट लगाते हो ! तुमसे तो मुफ्त हजामत बनवाने मे भी घाटे का सौदा है !"

साँझ उतर रही है। हाट-बाज़ार की रौनक घट रही है। भगतजी की बची हुई

चटाइयाँ समेटने के लिए जूनतारा चली आई।

"इसे चाँद कहें या तारा, या दोनों कहे ?" देवकांत अतुल के कान में कहता है, "मेरी मानो। रूप के चक्कर में भूलकर भी न फँसना। मेरी बात याद रखो, वही पुरानी कहावत—मेरा बेटा राजा बनेगा तो मुझे सिर के बालों से पकड़कर बीच सड़क में खड़ा कर लेगा। हाँ, तो भारत माता को इस अपमान से बचाना होगा।"

अतुल चुप रहता है। जूनतारा चटाइयों का बडल उठाकर घर की ओर जा रही है।

चार

ब्रह्मपुत्र के किनारे मछलियों ने एक सभा बुलाई। छोटी मछलियाँ भी आई और बड़ी मछलियाँ भी। सभा में बहुत शोर था। रोऊ, बराली, सोल, कावई और गोरोई जैसी चतुर मछलियो से लेकर दोरीकोला जैसी एकदम मूर्ख मछलियाँ भी एक-एक करके सभा में आ बैठी।

सबने एकमत होकर गजी बुढ़िया गोरोई को सभा की मुखिया चुना। सभा का काम चलाने का कार्य नटखट चगेली को सौपा गया। चगेली ने चीतल से प्रार्थना की कि वह सभा के सम्मुख अपने विचार रखे।

चीतल ने हाथ जोड़कर सबको प्रणाम किया और अपना भाषण आरंभ किया—"बहनो और भाइयो, हमारे शत्रु तो बहुत है, पर उनमे मनुष्य नाम का प्राणी ही सबसे दुष्ट है। हमें पकड़ने के लिए उसने अनेक प्रकार के जाल बना रखे है। खेवली, लाँगी और घुकुटा जैसे बड़े-बड़े जाल तो वह लगाता ही है, साथ ही पोखरों में जाकोई, पलाह, चालनी और पचा जैसे टोकरी की श्रेणी के जालों में भी वह हमें पकड़ता रहता है। हमें पकड़कर खाता है मनुष्य। कभी कड़कते तेल मे तलता है तो कभी आग में भूनकर खा जाता है। यह सब उपाय मनुष्य ही जानता है और कोई नही। हमें अपने बचाव का उपाय सोचना चाहिए।"

सभा मे आई हुई मछलियो ने खुश होकर चीतल की जय बोली। बहुत शोर हुआ। सभी की मुखिया गंजी बुढ़िया गोरोई और सभा का काम चलानेवाली नटखट चंगेली ने बड़ी मुश्किल से शोर बंद कराया और चीतल से कहा गया कि वह जल्दी-जल्दी अपना भाषण समाप्त करे। हाँ तो चीतल ने कहना आरंभ किया—"मनुष्य भी कभी बछड़े रहे होगे।"

एक साथ कई कहकहे बुलद हुए।

एक ने कहा, "कहानी तो अच्छी है।"

"पर कहानी है झूठी।" दूसरे ने कहा, "भला ऐसा भी हो सकता है कभी?"

धर्मानंदी ने गंभीर होकर कहा, "अतुल पर कल्याण भगत का प्रभाव पड़ गया। वह सबको भगत बनाना चाहता है। सब लोग भगत कैसे बन सकते है?"

"पूरी कहानी तो सुन लो।" अतुल मुसकराया।

"सुनाओ, सुनाओ।" धर्मानंदी ने खाँसकर कहा।

"हाँ तो जब चीतल ने अपने भाषण में कहा कि मनुष्य भी कभी बछड़े रहे होगे तो मछलियों की सभा में बहुत शोर हुआ। जब शोर थमा तो चीतल ने बताया, मनुष्य को तो संसार में सबकी सेवा के लिए भेजा गया था। इसीलिए तो वह गाय, भैंस, बैल, बकरी, घोड़ा, हाथी—सभी की सेवा करता है; उन्हें पालता है, खाने को देता है, गोबर और लीद उठाता है। बकरी की मेंगनी तक साफ करता है। पर जब वह हमें पकडता है, तो हमें पालने की बजाय खा जाता है। सब पशुओ में बच्चा माँ के दूध पर जीता है। आपने देखा होगा कि मनुष्य गाय का दूध पीता है। इस हिसाब से मनुष्य बछड़ा ही तो हुआ। बुद्धि में मनुष्य गाय से बढ़कर नही हो सकता। इसलिए···।"

फिर एक साथ कहकहे बुलद हुए। एक ने कहा, "यह बिलकुल मनघढत कहानी है।"

दूसरे ने कहा, "कहानियाँ तो मनघढंत ही होती है। अब पूरी कहानी क्यो न सुन ली जाए?"

अतुल ने जोर देकर कहा, "इसमे एक बात भी झूठी नही है। यह कहानी उतनी ही सच्ची है जितनी सच्ची बात है ब्रह्मपुत्र का दिसाँगमुख के पास से बहना। तुम इसे सच नही मानते, न मानो।"

"सुनाओ, सुनाओ!" धर्मानंदी ने पुचकारा।

"हाँ, तो जब चीतल ने बताया कि बुद्धि में मनुष्य गाय से बढ़कर नही हो सकता, गागल ने झट उठकर कहा, "मै चाहूँ तो मनुष्य को अपनी उँगलियो पर नचा सकती हूँ।" सिंगी ने यह सुझाव रखा कि चाची गेदगेदी को बुलाया जाए जो न जाने किस बात पर क्रुद्ध होकर सभा में नही आई थी। इस बात पर तो सभा की मुखिया गंजी बुढ़िया गोरोई को भी सहमत होना पड़ा कि मनुष्य से छुटकारा पाने का उपाय गेदगेदी ही बता सकती है। यह बात तो छोटी-बड़ी सभी मछलियाँ सुन चुकी थी कि जब तिब्बत और असम मे पहली बार युद्ध हुआ था तो एक अरब अस्सी करोड़ तिब्बती योद्धाओं मे से एक अरब योद्धाओ को चाची गेदगेदी अकेली ही निगल गई थी। हाँ, तो बड़ी मुश्किल से चाची गेदगेदी को बुलाया गया। गेदगेदी बहुत खुश थी। यह कुछ कम बात भी तो न थी। पहले मुखिया की आज्ञा से चंगेली को भेजा गया कि वह गेदगेदी को बुलाकर लाए, पर चंगेली ने गेदगेदी को कुछ इस प्रकार पुकारा कि उसने आने से इकार कर दिया, फिर जब चीतल को

भेजा गया तो उसने चाची गेदगेदी को माँ कंचनमती कहकर खुश कर दिया। गेदगेदी अभी सभा में आई ही थी और मुखिया ने अभी उससे कुछ कहने के लिए प्रार्थना की ही थी कि चीतल का पेट फूलकर कुप्पा होते-होते फट गया। पेट फटने की आवाज से छोटी-बडी मछलियाँ डर गई। उन्होने समझा कि न जाने क्या हो गया और मनुष्य भी जाल उठाए आ रहा होगा ब्रह्मपुत्र की ओर। सब मछलियाँ देखते-देखते पानी में गुम हो गई···"

एक साथ कई कहकहे बुलद हुए। एक ने कहा, "तुम धरती पर उगे थे या अंबर से उतरकर आ रहे हो, अतुल ?"

दूसरे ने कहा, "अब चलोगे भी या बाते ही करते रहोगे ?"

धर्मानंदी हँसकर बोला, "तो उठाओ जाल, अब चलना चाहिए।"

मछलियाँ उठाए वे चले जा रहे थे। वातावरण में मछलियो की बास रची हुई थी। ब्रह्मपुत्र की ओर से आनेवाली हवा उन्हे थपकियाँ दे रही थी।

धर्मानदी ने चलते-चलते कहा, "अतुल, हम तुम्हारी बात मान लें तो हमारा विनाश ही न हो जाए। फिर हम खाएँ क्या ? हमारे पास खेत कहाँ हैं ? पुरखों से यही हमारा धंधा है। भगवान् ने हमें इसीलिए बनाया है। हमारी रोजी इसी से बाँध दी है।"

एक नवयुवक ने चुटकी ली, "अतुल, तुमने कहानियाँ बहुत अच्छी-अच्छी याद कर रखी है। हर रोज आ जाया करो। हम मछलियाँ पकड़ते-पकड़ते थक जाते है, तुम कोई कहानी सुना दिया करो।"

अतुल ने गभीर होकर कहा "न मानो मेरी बात। सुन तो लो। तुम मछलियाँ पकडते हो, यह अच्छा नही करते। सारी मछलियाँ ब्रह्मपुत्र ने पाली है। ब्रह्मा का यह नटखट बेटा उनके साथ लहरो मे खेलता है और अपना जी बहलाता है। यही मछलियाँ उसकी सब-कुछ हैं। तुम इन्हें पकड़कर बाजार में बेच डालते हो। तुम इन्हे खाते हो। इसी से तो ब्रह्मा का पुत्र तुम से बिगडा रहता है। क्रोध में आकर वह हमारी खेती नष्ट कर डालता है, हमारे घरों को बहा ले जाता है, फिर भी तुम नही मानते। तुम ब्रह्मपुत्र की भाषा समझते ही नहीं। यह बाढ़ और बरबादी ही तो ब्रह्मपुत्र की भाषा है।"

ब्रह्मपुत्र पीछे रह गया था। अतुल की बात बहुत पीछे छूट गई थी। प्रत्येक मछुए की कल्पना मे चूल्हे से उठता हुआ धुआँ उभर रहा था। चूल्हे पर झुकी हुई घरवाली का चेहरा ही इस समय हर किसी के लिए सबसे बड़ा आकर्षण था। धर्मानंदी की घरवाली तो परलोक सिधार गई थी। ये लंबे वर्ष उसने बिना घर-वाली के ही बिता दिए थे। वह चाहता तो किसी को आसानी से घर में बैठा सकता था, पर आरती का जीवन जंजाल बन जाता। आरती के लिए सौतेली माँ लाकर वह उसके पथ में काँटे नही बोना चाहता था। कभी-कभी उसे यह विचार अवश्य

सताने लगता था कि उसकी घरवाली जान-बूझकर मगरमच्छ के मुँह में चली गई थी। वह दिन कितना दुख-भरा था जब उसकी घरवाली दूध-पीती बच्ची को पालने में सोती छोड़कर उस भयानक मगरमच्छ के जबड़ों में चली गई थी। यह तो बहुत बुरी बात थी कि उसने अपनी घरवाली से उपहास में यहाँ तक कह डाला था कि उसकी कोख जल जाए जिसने लड़के के बजाय लड़की को जन्मा। इसीसे बेचारी का दिल टूट गया और उसने अपने जीवन का अंत करने का निर्णय कर लिया। मगरमच्छ तो बहाना बन गया। वह तो शायद गई ही इस विचार से थी कि पानी में डूबकर मर जाए। डूबकर मरना तो इतना सहज न था। वह तैरना जानती थी।···चलते-चलते धर्मानदी अपनी घरवाली का चेहरा कल्पना की तूली से उभारने लगा। जैसे उसकी घरवाली मुसकरा रही हो और कह रही हो—तुमने भी तो धर्म निभाया, आरती के बापू! तुमने भी तो अकेला रहना स्वीकार किया। आरती के लिए तुम पिता के साथ-साथ माता भी बन गए। अब मेरी आरती के लिए अच्छा-सा वर ढूंढ़ना। उसे यो ही मत फेंक देना। वह तो सौ काम जानती है। ऐसी लड़की तो किसी को सोने के भाव भी महँगी नही, पर उसका सौदा मत करना। धर्म कमाना। अच्छा लडका देखना जो उसका दिल न तोडे, जैसे तुमने मेरा दिल तोड दिया था। कही उसे भी न जाना पड़े मगरमच्छ के मुँह में। मगरमच्छो की तो कमी नही। वे तो तैयार ही रहते है आदमी को खा जाने के लिए। पर जीवन तो बडी प्यारी वस्तु है, आरती के बापू!···

एक ने कहा, "किस सोच में डूब गए, काका?"

दूसरा बोला, "यही सोच रहे होगे काका कि आरती इस समय क्या पका रही होगी। काका को भूख भी यों बहुत लगती है!"

धर्मानदी ने बात का रुख फिर से अतुल की ओर मोड़ते हुए कहा, "मछलियाँ पकड़ना तो हमारा धधा है। हम मछलियाँ न पकड़े तो खाएँ कहाँ से? चाहे कोई हमें पापी ही क्यो न कहे, मछलियाँ पकड़ने तो हम निकलते ही रहेंगे, अपने-अपने जाल लेकर।"

अतुल ने धर्मानदी के साथ कदम मिलाते हुए कहा, "पर काका, यह याद रखो कि मछलियाँ भी सोचती है। मछलियाँ हँसती भी है और रोती भी हैं, उनको मनुष्य के संबंध में सोचने का अधिकार है।"

धर्मानदी ने अपनी घन-गरज आवाज को जरा नरम करते हुए कहा, "हमारी खेती तो पानी पर ही होती है। मछलियाँ ही हमारी खेतियाँ है।"

एक नवयुवक ने कहा, "सदा यही होता आया है, यही होता रहेगा।"

धर्मानंदी ने गभीर होकर कहा :

"जब तक ब्रह्मपुत्र बहता है, न पानी समाप्त होगा, न मछलियाँ। मछलियाँ

रोएँ चाहे हँसे, सभा बुलाकर लाख आदोलन चलाएँ, हम तो अपना काम करते ही रहेंगे।"

एक बार फिर कहकहे बुलद हुए। अतुल ने कुछ कहना चाहा पर उसकी आवाज कहकहो मे खो गई।

अतुल ने सँभलकर कहा, "तुम न मानो। मानोगे कैसे ? तुम तो कल्याण भगत की बात भी नही मानते, मेरी कैसे मानोगे ?"

कई आदमियो के हँसने की आवाज आई। कोई कह रहा था, "अरे वह बूढा—अरे वह भगत—वह तो बड़ा ही विचित्र आदमी है !"

दूसरी आवाज आई, "अरे भगतजी के चक्कर ही में तो है आजकल अतुल, नही तो यह उठती जवानी और भक्ति-रस की यह झोक। भाई वाह, यह भी क्या तमाशा है !"

तीसरी आवाज आई, "क्या करे अतुल बेचारा !"

अतुल ने कुछ कहने का यत्न किया, पर एक-साथ बहुत से आदमियों के हँसने की आवाज वातावरण में घुलकर रह गई।

पाँच

दिसाँगमुख की पाँच बस्तियाँ थी—आलीसीगा की मीरी बस्ती, आलीसीगा की मुसलमान बस्ती, बलमा, चितालिया और जेलगाँव। कुछ लोग आलीसीगा को एक ही बस्ती गिनते थे। धर्मानंदी का घर दिसाँग नदी के किनारे बलमा मे था। अब्दुल कादिर आलीसीगा की मुसलमान बस्ती के इधरवाले किनारे पर रहता था, जहाँ से धर्नासह और रतन की दुकाने बहुत दूर न थी। मीरी बस्ती और मुसलमान बस्ती के बीच नीलमणि और कल्याण भगत के घर आमने-सामने थे। बीच से सड़क गुजरती थी, जो ब्रह्मपुत्र के समानातर जाकर आगे से ब्रह्मपुत्र की ओर मुडकर स्टीमर-घाट तक चली जाती थी।

ब्रह्मपुत्र गाँव के उत्तर मे था। दक्षिण में जेलगाँव से आगे सड़क शिवसागर की ओर चली गई थी और इस सडक के किनारे दोनों ओर थोडे-थोड़े अंतर पर कई गाँव आबाद थे। पूरब में दिसाँग नदी के उस पार ब्रह्मपुत्र के समानांतर चितालिया बस्ती थी, जहाँ अधिकांश नेपाली ग्वाले रहते थे। पश्चिम की ओर था गिलरीबारी गाँव, जहाँ मीरी लोगो की संख्या अधिक थी।

दिसाँग नदी के उस पार ठीक बलमा गाँव के सामने बलमा झील थी, जिसे 'बलमा बिल' कहते थे। बलमा बिल और चितालिया के बीच थी फाकुली बिल।

इस झील का घेरा बलमा से भी बड़ा था। दोनों झीलों के चतुर्दिक घना जंगल था। दोनो झीलो से मछुए मछलियाँ पकड़ते थे। इस जंगल के बाघ चितालिया पर तो दाँत साफ करते ही थे, प्रायः ऐसा भी होता था कि दिसाँग नदी के इस पार बलमा और आलीसीगा की बस्तियो में आकर भी वे अपना शिकार मारकर खा जाएँ। आदमी पर तो बाघ कम ही झपटता था; बस्ती में आकर चोरी-छिपे वह किसी गाय, बैल या भैंस पर ही हमला करता था। कई बार ऐसा भी देखा गया कि बाघ गाय को तो मारकर खा गया और बछड़े को उठाकर दिसाँग नदी में छलाँग लगा गया और तैरते-तैरते उस पार जा पहुँचा।

घरो की बनावट तीन प्रकार की थी, जिनमें असमिया घर का रूप ही सबसे अधिक सुदर था। चारों ओर बागीचा, बीच में तीन-चार झोंपडियाँ निवास के लिए; सामनेवाले द्वार से भीतर जाने पर दाई ओर पशुओं के लिए पृथक् गोशाला और बाई ओर अनाज रखने के लिए पृथक् 'बखार'। गोशाला को 'गोहाली' कहते थे और बखार को 'भराल'। खाते-पीते असमिया के घर मे अपना पोखर भी होता था, जिससे घर की आवश्यकता के लिए मछलियाँ मिल जाती थीं; जब बत्तखे तैर रही होती, तब पोखर अति सुदर प्रतीत होता था। असमिया किसानो के अतिरिक्त नावरिया और मछुए भी अपनी शक्ति के अनुसार इसी प्रकार का घर बनाते थे, जिसमें छोटा-मोटा बागीचा अवश्य रहता था; झोपड़ियो की संख्या निर्धनता के कारण कम रखनी पड़ती थी, और पोखर के नाम पर भी 'पुखरी' से ही काम चला लिया जाता था, भले ही इसका घेरा नाममात्र ही क्यों न हो।

मीरी नमूने के घर बनाने के लिए पहले छः-छः फीट ऊँचे लकड़ी के खंभे जमीन मे गाढ़ते थे। फिर इन खंभों पर एक मचान बनाया जाता है। इस मचान पर एक ही लबी-चौडी झोंपड़ी खडी करते थे, जिसमे जाने के लिए सीढ़ी लगाई जाती थी। मचान के नीचेवाला खाली स्थान पशुओ और सूअरो को रखने के काम मे लाया जाता था। इतने ऊँचे मचान पर झोंपडी खड़ी करने की परंपरा इसी सुविधा पर आधारित थी कि यदि बाढ़ आ जाए तो पानी नीचे-नीचे रहे और घर बचा रहे। इस नमूने के घर के लिए किसी प्रकार के बागीचे अथवा पोखर की कोई आवश्यकता नही समझी जाती थी। सब-के-सब मीरी इसी प्रकार के घरों मे रहते थे। घर के भीतर किसी प्रकार की दीवार अथवा ओट खड़ी करना मीरी परपरा के विरुद्ध था।

तीसरा नमूना नेपालियो के यहाँ मिलता था। झोंपड़ी तो ऊँचे मचान पर बनाई जाती थी, पर आवश्यकतानुसार बीच की दीवारें बनाकर अलग-अलग कमरों का रूप दे दिया जाता था। घर के आसपास पौधे भी लगा लिए जाते थे, और अधिक भूमि होने की अवस्था में छोटी-सी पुखरी भी अवश्य बनाई जाती थी।

आलीसीगा की मुसलिम बस्ती के घर असमिया नमूने के थे। यद्यपि उनमें

इतना अतर अवश्य नज़र आता था कि बाँस की खपचियो से तैयार की हुई बाहर की बाड़ परदे के विचार से काफी ऊँची बनाई जाती थी।

नीलमणि का बागीचा दिसाँगमुख में सबसे बडा था। उत्तर की ओर सड़क पर द्वार खुलता था। घर के पीछे उसकी जमीन जेलगाँव तक चली गई थी। बागीचे के चतुर्दिक ऊँची मेंड़ थी। सोने की कील से दाँत कुरेदते हुए नीलमणि की दृष्टि प्राय: नारियल के पेड़ो की ओर उठ जाती, जैसे ये पेड आकाश के कान मे कुछ कहने जा रहे हो। नारियल के ये पेड नीलमणि के पिता कुलधर ने अपने हाथ से लगाए थे। दिसाँगमुख की जमीन तो नदी-किनारे की जमीन थी, इसलिए यहाँ नमी बहुत थी, जो नारियल के लिए रास न आती थी। नारियल के तीनो पेड साथ-साथ उगाए गए थे। पहले ऊँची जगह बनाई गई थी, फिर जब ये तीनो पेड ऊँचे उठ गए तो उनके चारो ओर बडे परिश्रम से ईटो का चबूतरा बनाया गया था। यह चबूतरा नीलमणि के पिता कुलधर ने सामने खडे होकर बनवाया था। चबूतरे पर सीमेट लगवाया गया था। इतनी सावधानी बरतने पर भी नारियल के इन पेडों की अवस्था अच्छी न थी; शिवसागर में तो नारियल के पेड स्वस्थ नजर आते थे।

नारियल के पेडो की ओट से सूरज प्रतिदिन पुराने मित्र के समान मुँह निकालकर पूछता था, अच्छे तो हो, नीलमणि ?···इसी प्रकार कभी कुलधर से भी पूछा करता था उगता हुआ सूरज। साँझ को सूरज उधर डूबता था, जिधर बाँस का बहुत बडा कुज था। बाँस-कुज के पीछे था पोखर, जिसमे बत्तखें तैरती रहती थी। डूबते सूरज के प्रकाश मे तैरती हुई बत्तखे और भी भली प्रतीत होती थी।

सात-सात गाये बँधी थी गोहाली में; पाँच जोडी बैल थे। नीलमणि के पास बारह पुरा माटी थी। इतना पठार था कि सोना उगलता था। फिर इतना बडा बागीचा था, जिसमे एक ओर ताँबूल के पेड़ो की पाँत थी, जिन पर पान की बेलें चढी हुई थी, दूसरी ओर केले के पेड़ चले गए थे। आम और कटहल के पेडों की दो अलग-अलग पाँतें भी बहुत गुथी हुई थी।

मछुओ और नावरियो से बात करने का नीलमणि को बहुत चाव था। जब भी वह लाठी टेकता हुआ नाव-घाट की ओर जाने लगता, पीछे से उसकी घरवाली सोनपाही पुकारकर कहती, "उठाई डंगोरी और चल पड़े नाव-घाट की ओर! वहाँ क्या रखा है तुम्हारे लिए ?"

नीलमणि भी कब रुकनेवाला था! चलते-चलते सोचता, 'अतुल को तो कुछ नही कहती, चाहे देवकांत के साथ घूमता रहे, चाहे धर्मानंदी की मछलियो की बास सूंघता फिरे! वैसे तो वह मछली को हाथ नही लगाता, फिर भी धर्मानंदी के पास क्या करने जाता है ? वैसे तो अतुल बाँस के डंडे-जैसा बेटा है। बीस वर्ष का हो गया। दस वर्ष का तो है हमारा मखना, जो स्कूल में पढ़ने जाता है। छः वर्ष की है हमारी रेणु, जो अब तक तोतली बाते करती है। घर मे किसी वस्तु की कमी

नही—न दूध की, न पूत की; फिर भी सोनपाही का रग पीला क्यों पड़ता जा रहा है ? माँ ने भी क्या सोचकर नाम रखा होगा—सोनपाही अर्थात् सोने का फूल, जैसे किसी ने चंदन का लेप मुख पर पोत दिया हो। मुँह की कडवी है। लाल मिर्च ही तो है। वैसे ही काट करती है। उसे इस घर मे आए बाईस साल हो गए, पर वह अब तक मुझे नही समझ सकी। कहती है—'उठाई डगोरी और चल पडे नाव-घाट की ओर ! वहाँ क्या रखा है तुम्हारे लिए ?···'

नाव-घाट की ओर जाते हुए पहले पानी-घाट पडता था। पनहारिनो की चुहले नीलमणि को अच्छी लगती थी। एक-दूसरी पर छीटे उड़ाने के उनके स्वभाव से नीलमणि को क्या लेना-देना था ? नाव-घाट की ओर जाते हुए वह एक क्षण के लिए भी पानी-घाट पर नही रुकता था। पनहारिनो की आपस की छेड-छाड तो उनका निजी मामला था। नाव-घाट पर पहुँचकर नीलमणि को याद आता कि यहाँ वह पहले-पहल अपने पिता के साथ आया था। तब भी ब्रह्मपुत्र इसी प्रकार बहता था। ब्रह्मपुत्र के किनारे नगे पैर चलने में उस समय कितना आनंद मिलता था।

यह तो चालीस वर्ष पूर्व की बात थी, जब वह मुश्किल से पाँच-छः वर्ष का रहा होगा। उतना ही जितनी अब उसकी बेटी रेणु थी। उसने अपने पिता से कहा था कि उसके लिए एक नाव बनवा दे। पिता ने वचन तो दे दिया था, पर इसे पूरा नही किया था। यह तो चालीस वर्ष पूर्व की बात थी, फिर भी उसकी याद तो ताजा थी—फूल की तरह ताजा। याद का फूल तो खिला रहता है हमेशा। इसकी सुगध स्थिर रहती है। खेल-खेल मे नीलमणि ने माटी की नाव बना ली थी। इस नाव को उसने घर के पोखर मे चलाकर देखने की ठानी थी। तभी कुलधर आ गया था —उसका पिता कुलधर जो उन दिनो दिसाँगमुख का गाँव-बूढा था। हाँ, तो गाँव-बूढ़ा कुलधर ने हँसकर कहा था, "बेटा नीलमणि, तू इतना ही पागल रहेगा, तो तू मेरे समान एक दिन गाँव-बूढा कैसे बनेगा ? अरे पगले, कभी पानी मे माटी की नाव भी चली है ?"

हाँ, तो बापू का कहना मानकर मैंने अपनी माटी की नाव पोखर मे नही डाली थी और उन्होंने काठ की नाव बनवा दी थी। उस काठ की नाव को एक दिन कोई बच्चा उठाकर ले गया। फिर ढूँढने पर भी वह हाथ न लगी···वे बचपन के दिन तो बहुत पीछे छूट गए थे।

नाव-घाट पर पहुँचकर नीलमणि देखता कि कोई नाव से उतर रहा है, कोई चढ़ रहा है। जीवन तो यात्रा है, वह सोचता, स्थल-यात्रा हो चाहे जल-यात्रा। नाव-घाट की याद ही नीलमणि के बचपन की सबसे बडी याद थी। बचपन की याद तो देर तक प्रिय लगती है, जैसे मधु जितना भी पुराना हो उतना ही मीठा होता है। जो नावरिया सीधे मुंह बात नही कर सकता, उसे तो नाव चलाने का काम छोड़कर कोई और काम कर लेना चाहिए। नावरिया को तो बहुत शांत

स्वभाव का होना चाहिए। जो नावरिया नाव में बैठनेवालो के साथ हुज्जत करे, या घोडे की तरह हिनहिनाए, या मूर्ख की तरह दाँत निकाले, उसके साथ तो बात करना भी अपमान है। और किसी से बात करने की आवश्यकता ही क्या है ! जीता रहे अपना बादल नावरिया !

मछुए और नावरिया गाँव-बूढ़ा का बहुत सम्मान करते थे। उसके साथ दो बोल बोलने से जैसे कोई बहुमूल्य वस्तु उनके हाथ आ जाती। एक-दो मछलियों के लिए तो कोई मछुआ नीलमणि के मुँह न आता। कोई भी नावरिया इसे अपना सौभाग्य समझता कि गाँव-बूढ़ा उसकी नाव में बैठा है, पर यह तो सभी जानते थे कि नीलमणि तो बादल से दो बातें करने के लिए आता है।

बादल ने ही बचपन मे नीलमणि की काठ की नाव चुराई थी। उसकी वह माटी की नाव तो किसी बच्चे ने चुराने की आवश्यकता अनुभव न की थी।

आज से बीस वर्ष पूर्व नीलमणि को एक सपना आया था। यह उन दिनों की बात थी, जब अतुल का जन्म हुआ था और वह केवल सात दिन का ही था। नीलमणि का पिता अभी जीवित था। अतुल के सिर पर हाथ फेरते हुए नीलमणि के पिता ने आशीर्वाद दिया था कि जैसे उसका बेटा उसके सामने गाँव-बूढा बना, वैसे ही उसके बेटे के सामने उसका पोता भी गाँव-बूढ़ा बने। यह कहते-कहते बूढ़े कुलधर की आँखो मे आँसू आ गए थे, क्योकि वह जानता था कि वह तो पचास से ऊपर का हो गया और वह उस समय तक तो कदाचित् जीवित न रह सके। वही बात हुई। अतुल अभी मुश्किल से दस वर्ष का रहा होगा, जब बूढ़ा कुलधर पैसठ वर्ष की आयु मे दिसाँगमुख से विदा हो गया था।

कुलधर गाँव-बूढ़ा तो चला गया था। अब तो नीलमणि गाँव-बूढ़ा भी सोच रहा था कि न जाने कब बुलावा आ जाए और दिसाँगमुख से विदा होना पडे। कभी-कभी वह सोचता कि यह विचार तो अभी से नही आना चाहिए। जब बापू को बुलावा आया तो उन्होने दस वर्ष के पोते को देखते-देखते ही आँखे बद की थी। तो फिर मै भी तो इतना भाग्यवान् हो सकता हूँ कि जब बुलावा आए तो अतुल गाँव-बूढा बन चुका हो, बल्कि मेरे सामने मेरा पोता भी खड़ा हो।

बीस वर्ष पूर्व देखा हुआ सपना नीलमणि की स्मृति को गुदगुदाने लगता। यह सपना कितना विचित्र था। सपने में नीलमणि ने देखा था कि उसकी माटी की नाव ब्रह्मपुत्र में चल निकली है। वह अपने बापू को आवाज़ दे रहा था कि नन्हे नावरिया की माटी की नाव पर वह भी आ बैठे। सवेरे आँख खुलने पर उसने देखा कि वह तो अपने बिस्तर पर लेटा हुआ है और उसका बापू अपने सात दिन के पोते के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दे रहा है। वह अपना सपना बापू को बताए बिना नही रह सकता था। जब उसने बापू को बताया था कि सपने में उसकी माटी की नाव चल निकली थी, तो बापू ने हँसकर कहा था, "आज तो मेरा पोता

सात दिन का हो गया, नीलमणि ! अब तो अवश्य चलेगी हमारी नाव, अवश्य चलेगी ब्रह्मपुत्र में हमारी नाव ! जिस घर में बेटे का जन्म होता है, उसकी नाव तो कही नही रुकती।"···इस बात को तो बीस वर्ष हो गए।

बीस वर्ष पूर्व का समय नीलमणि की कल्पना में घूम गया, जब वह इसी नाव-घाट पर अतुल के जन्म की खुशी मे नारियल चढ़ाने आया था। एक मटकी दूध भी तो उसने ब्रह्मपुत्र को भेट किया था। नीलमणि जानता था कि उसके अपने जन्म पर भी तो बापू ने इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र में नारियल और दूध चढ़ाया होगा। दिसाँग-मुख का तो प्रत्येक बालक ब्रह्मपुत्र का वरदान था।

बादल नावरिया ने ही बचपन मे उसकी काठ की नाव चुराई थी, वह नन्ही-सी खिलौना नाव—यह विचार नीलमणि को सताने लगा। बचपन के दिन तो बहुत पीछे रह गए थे। बादल कही नजर नही आ रहा था। वह नाव लेकर उस पार गया था। नीलमणि की कल्पना में बादल का नंग-धड़ंग शरीर घूम गया। वस्त्र के नाम पर बादल एक धोती पहनता था—चौड़ी बलिष्ठ हड्डियाँ, तरबूज जैसा सिर, बडी-बड़ी और चमकीली आँखे। बादल नावरिया तो ब्रह्मपुत्र को ही अपनी खेती समझता था। उसका तो दाल-भात नाव ही से बँधा रहता था, जैसे धर्मानंदी मछुए के दाल-भात का मछली-जाल से अटूट नाता था।

सूर्यास्त से पहले ही बादल उस पार से नाव लेकर आ गया। एक-एक करके सब सवारियाँ उतर गई, तो वह दोनो बाँहे फैलाकर नीलमणि से लिपट गया :

"कहो गाँव-बूढ़ाजी, कैसे आना हुआ ?"

"बागीचे मे बैठे-बैठे भी तो दिल नही लगता।" नीलमणि ने हँसने का यत्न किया, "अतुल की माँ पीछे से लाख चोट करे, कौन सुनता है उसकी बात ? बचपन के मित्र कहाँ धरे हैं ? क्यो बादल, कभी तुम्हे भी याद आते है बचपन के दिन।"

"बचपन मे यह दौड़ा-दौड़ी तो न थी। अब तो नाव खेते-खेते ही सारी फुटानी निकल जाती है, देवता !"

"यह तो अपना-अपना धधा है बादल ! जो खेती करता है, उसे भी तो माटी के साथ माटी होना पड़ता है। यह और बात है कि अपने दिसाँगमुख की माटी तो पूरी सोना माटी है। अरे, और क्या होती है सोना माटी, बादल ? जिसमें सोना उगे, वही सोना माटी है !"

"आप तो भाग्यवान हैं, देवता ! कल आपका बापू गाँव-बूढा था, आज आप गाँव-बूढा है, कल अतुल होगा गाँव-बूढ़ा—इधर भी घी में, उधर भी घी मे। पर हमारी जो थोड़ी-बहुत मान-प्रतिष्ठा है, वह तो इसी ब्रह्मपुत्र से है। जिस दिन आर-पार चार फेरे लगा लूँ, दाल-भात मिल जाता है। और जिस दिन से हडसन साहब ने इंजनवाली नाव का ठेका लेकर चेतन को खड़ा कर दिया है मेरे सम्मुख, उस दिन से तो पेट पालना भी कठिन हो गया है !"

"चेतन की नाव मे तो दोगुनी सवारियाँ बैठ सकती है, इसलिए भाड़ा भी आधा लगता है। पार लगने में समय भी थोडा ही चाहिए। फिर भी तुम्हारे ग्राहक तो तुम्हारे ही हैं, बादल ! घबराते क्यों हो ?"

"घबराऊँ कैसे नही, देवता ? वह लेता है चवन्नी, मै लेता हूँ अठन्नी। अब कठिनाई तो यह है कि मैं तो अपनी नाव के लिए यात्रियों को उसी समय पुकार सकता हूँ, जब चेतन नावरिया इजनवाली नाव को भरकर जा चुका होता है। चेतन के साथ तो बस एक ही आदमी होता है, जो इंजन चलाना और बंद करना जानता है, और मेरे साथ तो दो-दो तीन-तीन आदमी रहते है। अब क्या मै खा लूं और क्या उन्हे दूं खाने के लिए ? जब अपना ही पेट न भरे, तो साथवालो का पालन कैसे किया जाए ?"

इतने में धर्मानंदी भी अपनी नाव लेकर आ गया। उसने दूर से आवाज दी, "चीतल दूं या बराली, गाँव-बूढाजी ! अपने पास और क्या मिलेगा ? सिगी और गागल तो आज हाथ नही लगी।"

बादल से हाथ छुडाकर नीलमणि झट धर्मानंदी के सामने जाकर खड़ा हो गया।

छः

नील-निर्मल आकाश पर सारसो की श्वेत पाँत उडी जा रही थी। पानी-घाट पर पानी भरती कुमारियो ने उसे देखा, तो उन्हे बचपन का खेल याद आ गया। उनमे जूनतारा भी थी। अपना-अपना कलसा घाट पर रखकर कुमारियाँ बाँह-में-बाँह डाले बचपन का खेल खेलने लगी। स्वर-मे-स्वर मिलाकर वे गा रही थी—'सारस, सारस, कहाँ चले ?'

लहरे किनारे को छू रही थी, जैसे लहरें भी यही कह रही हो—'सारस, सारस, कहाँ चले ?' यौवन सामने था, बचपन बहुत पीछे छूट गया था। आकाश पर सारस उडे जा रहे थे।

सहसा युवतियाँ नाचते-नाचते रुक गई। किसी ने जूनतारा के कान मे कहा, "वह रहा तेरा सारस !"

जूनतारा ने देखा कि अतुल चला आ रहा है। सारस तो चले गए थे। नीले आकाश पर अब श्वेत सारसों का कही आभास भी न हो सकता था।

अतुल एक ओर खड़ा दूर से जूनतारा को सारस का खेल खेलते देखता रहा। पर यह खेल शीघ्र समाप्त हो गया। युवतियों ने एक-दूसरी की बाँह छोड़ दी।

पानी से भरा हुआ अपना-अपना कलसा उठाया और वे गाँव की ओर चल पडी।

अतुल के पास से गुज़रते हुए किसी भी युवती को हँसने का साहस न हुआ। जूनतारा ने श्वेत 'मेखला' पहन रखी थी। जैसे तहमद बाँधा जाता है, उससे थोडा ऊपर की ओर खीचकर युवतियाँ मेखला बांधती थी। श्वेत मेखला के साथ श्वेत ही अँगिया पहनती थी जूनतारा। श्वेत अँगिया और मेखला से मेल खाती हुई श्वेत चादर कंधों पर। जूनतारा का वेश सब सखियो मे विशिष्ट था। शेष कन्याओ मे से तो किसी-किसी ने लाल, नीली या पीली मेखला पहन रखी थी। किसी-किसी ने तो आज अँगिया पहनने की आवश्यकता अनुभव न की थी। जूनतारा को श्वेत वस्त्र ही अधिक प्रिय थे। महाश्वेता बनने की प्रेरणा उसे सारस से ही प्राप्त हुई है, यह सोचकर अतुल ने जूनतारा की अभिरुचि की सराहना की।

फिर उसने अपने श्वेत वस्त्र की ओर देखा। वस्तुतः वह किसी सारस से कम न था। वह अपने स्थान पर खडा रहा, जैसे उसने अभी-अभी एक सपना देखा हो। सारसो पर मुग्ध होनेवाली जूनतारा ! वह भी तो अपनी सखियो की पाँत के साथ उड गई। कितनी गभीर नजर आ रही थी, जैसे मुझसे कोई परिचय ही न हो। मैं तो उसे नित्यप्रति देखता हूँ। हमारे बागीचे के सामने ही तो है भगतजी का बागीचा। भगतजी के बागीचे का पिछवाडा ब्रह्मपुत्र की ओर है। पानी-घाट की ओर आना होता है, तो वह पिछवाडे ही से उतर आती है। डेढ़ मील से तो क्या कम होगा यहाँ से आलीसीगा, पर सखियाँ साथ हो तो यह मार्ग शीघ्र कट जाता है।

उसकी कल्पना में जूनतारा झूमती-झामती चली जा रही थी, जैसे उसकी बड़ी-बड़ी आँखो मे मादक अनुराग उसे महज ही छू रहा हो। जूनतारा की ठोडी पर एक बडा-सा तिल भी तो था, जैसे इतनी दूर से वह तिल भी उसे अपनी ओर खीच रहा हो। जूनतारा को तो वह बचपन से ही देखता आया था। उसके गले में मूँगो की माला रहती थी। माला पहनने की यह अभिरुचि भी जूनतारा ने सारस से ली होगी, यह सोचकर अतुल मुसकराया। दोनों हाथो से आँखे मलकर उसने ध्यान से देखा, जैसे वह जूनतारा की मुखाकृति एक बार अवश्य देख लेना चाहता हो।

शीतकाल में सारस नीचे उतर आते थे और ग्रीष्म आरंभ होते ही फिर ऊँचे पर्वतों की ओर लौट जाते थे। देवकांत ने अतुल को बताया था कि सारस तो तिब्बत से आते है, जहाँ उसके मित्र नीरद के पिता विपिन घोष व्यापार करते थे। देवकात ने यह भी तो बताया था कि सारस तो कदाचित् और भी परे से आते हैं। ऊँचे हिम-मडित शिखरो को पार करते कभी किसी सारस को निमोनिया न होता था।

जैसे किसी ने अतुल के पैर बाँध दिए हों। उसकी कल्पना में दर्पण के सम्मुख बैठी जूनतारा का चित्र उभरा — गोल मुखमंडल, विशाल नयन, छोटा माथा, ठोड़ी

पर बड़ा-सा तिल। जब वह मुसकराती है तो जैसे उसकी ठोडी का तिल भी मुसकराने लगता है। जूनतारा दर्पण के सामने बैठी केशो की दो मोटी-मोटी पट्टियाँ जमा रही है। ऐसा रूप किसका होगा ? अभी तो रूप मे फेन उठेगा, जैसे गाय के नए दूहे गए दूध में फेन उठता है। दर्पण में अपना मुखमंडल देखकर कभी-कभी तो जूनतारा स्वयं लजा जाती होगी !···उसकी कल्पना मे जोर का झटका लगा, जैसे देवकांत पुकार-पुकारकर कह रहा हो—कलकत्ता चलो मेरे साथ, अतुल ! दिसाँगमुख में पड़े क्या कर रहे हो ? देवकात तो अकेला ही कलकत्ता चला गया था। चार-छः महीने के लिए कहकर गया था। अब तो उसे गए पूरा एक वर्ष हो गया। पता नही वह क्या कर रहा होगा। देवकांत ने उसे क्रातिकारियो की कथाएँ सुनाई थी, और उन कथाओ के उत्तर में उसने देवकांत के सम्मुख बाईन मछली का बखान किया था। बाईन मछली का तो रूपक दिया था उसने।

बात कुछ इस प्रकार चली थी कि कुछ स्त्रियाँ अनतयौवना होती है, जो आयु ढल जाने पर वृद्धा नही लगती। जूनतारा के सबंध मे उसने देवकात के सम्मुख यही विचार रखा था कि वह कभी वृद्धा नही होगी। देवकात ने पूछ लिया था कि ऐसी क्या बात है जो स्त्री को वृद्धा होने से बचाए रखती है। कलकत्ता के जीवन का उल्लेख करते हुए देवकांत ने स्वयं ही तो बताया था कि वहाँ का जीवन तो भाग-दौड का जीवन है। वहाँ की दौड़ा-दौडी में आदमी के भीतर न जाने कितना ईधन जल-जलकर समाप्त होता रहता है। ईधन जलने के साथ-साथ आदमी की शक्ति का ह्रास भी होता रहता है। वहाँ दिन मे आदमी कई-कई बार खाता है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद फिर भूख लग जाती है। जो दशा दिन के समय होती है, रात के समय नही होती; क्योकि रात को आदमी आराम से पडा रहता है। रात को आदमी के भीतर ईधन उतने वेग से नही जलता, जितने वेग से दिन में जलता है।

इसी के उत्तर में ही तो मैने काका धर्मानदी से सुनी हुई बाईन मछली की बात उछाल दी थी। मैंने कहा था कि बाईन मछली दलदल के भीतर पॉच-पॉच छः-छः मास तक कैसे जीवित रहती है, जबकि ऊपर से दलदल सूखकर बिलकुल बद हो जाता है। अगली वर्षाऋतु तक बाईन मछली ऐसे ही पड़ी रहती है, जैसे कोई योगी समाधि में बैठा रहता है; न शक्ति का ह्रास होता है न नए ईधन की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे ही अनंतयौवना स्त्री की बात है। उसके रूप का ईधन बहुत ही कम जलता है, रूप की शक्ति बनी रहती है।

अब साँझ हो रही थी।

अतुल की कल्पना मे करघे पर बैठी जूनतारा का चित्र उभरा। अनंतयौवना जूनतारा वस्त्र बुन रही है। उसके हाथ में जो कला है, वह और किसी कन्या के हाथ में न होगी। इतना वस्त्र किसके लिए बुन रही है जूनतारा ? पहले ही कौन-सा कम वस्त्र बुन रखा है ? और उस चादर का क्या बना ? गत वर्ष उसने वचन दिया

था कि मेरे लिए अंडी की चादर बुनकर देगी। भगतजी के सम्मुख ही तो जूनतारा ने वचन दिया था ! पास से भगतजी ने भी अपनी आवाज़ मिला दी थी। पर जूनतारा उस दिन की बात भूल गई। मैने भी तो उसे स्मरण नही कराई वह बात। ठक·· ठक···ठक !—जूनतारा का करघा चल रहा था। बडे वेग से जूनतारा हाथ चला रही थी। वह देर तक कल्पना के कला-भवन में जूनतारा को देखता रहा।···

वह नाव-घाट की ओर जाना चाहता था, पर यहाँ खडे-खड़े ही इतनी देर हो गई थी। नाव-घाट तो पानी-घाट से भी आगे था। उसके पग घर की ओर उठ गए।

दूर से कोई व्यक्ति उसे अपनी ओर आता दिखाई दिया। उसने बड़े ध्यान से पहचानने का प्रयत्न किया। वह तेज-तेज़ डग भरने लगा। यह तो चित्ताप्रसाद आ रहा है। खैर तो है ?

"कहो मास्टरजी, किधर चले ?" उसने आगे बढ़कर पूछा।

"चलो, नाव-घाट तक घुमा लाऊँ।"

"अब तो घर जाऊँगा, मास्टरजी !"

"तुम्हारा वह देवकात किधर चला गया ? अब फिर आएगा या चला गया सदा के लिए ? मै कहता हूँ उससे बचकर रहना। स्वय तो फँसेगा, तुम्हे भी फँसाएगा।"

अतुल को देवकांत की बुराई अच्छी न लगी। यदि उसे इस बात का सम्मान न होता कि चित्ताप्रसाद से ही उसने तीन वर्ष तक स्कूल मे शिक्षा पाई है, तो वह सामने से बोल उठता। बिना कुछ कहे-सुने ही वह घर की ओर पग उठाने लगा।

चित्ताप्रसाद भी आगे बढ़ गया। फिर पीछे से आवाज देकर उसने अतुल को पुकारा, "एक बात सुनते जाओ, अतुल !"

अतुल दोबारा लौटकर चित्ताप्रसाद के पास गया, तो वह बोला, "वह धर्मानदी है न ! आज वह न जाने कहाँ से एक सारस पकड़ लाया। अब इन मूर्खों को कौन समझाए कि सारस तो पाँत में उड़नेवाला पक्षी है, उसे पकड़ना तो महा अत्याचार है।"

सात

आरती का विचार था कि जूनतारा उसे झट अपने मन की बात बता देगी, पर जूनतारा तो नाक पर मक्खी नही बैठने देना चाहती थी। बातों-बातों मे

आरती बहुत-कुछ कह गई। दूर से बात को घुमाकर लाती और फिर तिल से तेल निकालने का यत्न करती। पहले वह परी-कथा के उस राजकुमार की ओर संकेत करती रही, जो एक बार किसी की ओर मुसकराकर देख लेता था तो वह कन्या उस पर मुग्ध हो जाती थी; फिर वह फूलो में तुलनेवाली राजकन्या की कथा ले बैठी, जिसने यह निर्णय कर रखा था कि वह तो उसी से विवाह करेगी जो उसके प्रश्नो का उत्तर दे सकेगा। आरती का विचार था कि जीवन मे ठीक वैसे ही नही होता, जैसे कथा-कहानियों में होता है।

आरती ने ज़ोर देकर कहा, "हृदय तो हृदय ही रहेगा। इसका काम है धड़कना, तो इसे धड़कने से क्यो रोका जाए? पहले आँखे रीझती हैं, फिर स्नेह की छाप लगती है मन पर। आयु-पर्यंत कन्या माता-पिता के घर भी कैसे बैठी रह सकती है। चहेती और लाड़ली पुत्री का जन्म भी पराए घर जाने के लिए ही होता है। जो हमसे बडी है, वे कभी की चली गई अपने-अपने साजन के घर। हम रह गई। एक दिन तो हमारी बारी भी आकर रहेगी। यह तो जग-लीला है, जूनतारा! नाव को पार उतरने से काम। सुहानी रात आती है, तो फूल अपने-आप खिलता है।"

"पर जोर-जबरदस्ती से तो फूल भी नही खिलता!" जूनतारा मुसकराई और उसने आरती की गरदन में हाथ डालकर उसे झकझोर दिया।

"अतुल को देखा था आज?"

"रोज ही देखती हूँ।"

"तो तेरे मन का द्वार इसी प्रकार बंद रहेगा?"

"आज तू कैसी बाते कर रही है आरती?"

जूनतारा चाहती थी कि आरती कोई दूसरी बात करे। वह तो वही विवाह कराएगी, जहाँ माता-पिता चाहेगे। कई बार वह आरती से कह चुकी थी कि उसका बापू तो उसे माझुली के किसी गाँव में ब्याहना चाहता है। आरती ने सदा इस पर व्यग्य कसा था, "माझुली तो गँवारो का देश है। माझुलीवालो को तो यह भी पता नही कि नमक और मिश्री की डलियो मे कैसे पहचान की जाती है। चखकर तो हर कोई बता सकता है। बात तो तब है कि केवल देखकर बताया जाए। उनका तो गुरु भी नही बता सकता। किसी माझुलीवाले के साथ बाँध दिया गया तेरा आँचल, तो आयु-पर्यंत बैठी अपने भाग्य को कोसेगी। तू अपने बापू से खुलकर कह क्यो नही देती, जूनतारा? अब देर मत कर। साफ़-साफ़ कह दे कि वे व्यर्थ ही माझुली मे घूम-घूमकर अपनी जूतियाँ न घिसाएँ। अरी इतनी दूर जाने की आवश्यकता ही क्या है, जब काम इतना समीप बन सकता है? इसमें लाज-शर्म की तो कोई बात ही नही। अपना वर तो स्वय ही चुनना चाहिए। मेरा बापू तो कभी यह नही करेगा। वह तो मुझसे ही कहेगा—ठोक-बजाकर अपनी आँखो से देख ले,

आरती ! नकचढी बनने से भी काम नहीं चलेगा। दूल्हे के सामने तो जाना ही होता है, सज-धजकर। यही संसार की रीति है। इसमें अनहोनी तो कुछ भी नही।" आरती ऐसी-ऐसी न जाने कितनी बाते कह गई।

जूनतारा ने चुटकी ली, "आज तू भंग पीकर तो नहीं आई, आरती ?"

आरती थी कि अपनी ही कहे जा रही थी, "विवाह तो जग-लीला है। हमारे पुरखों ने विवाह न किया होता, तो आज हम भी न होते। विवाह तो पाप नही; जब पाप नही तो शर्म भी क्या है ? बुरे से बँधने के बजाय तो अच्छे से बँधना ही शुभ है। एक बार की भूल पूरे जीवन को नष्ट करती है। ऊदे-पीले, लाल-नीले, हरे-सलेटी सभी रंग है। बात तो अपने मनपसद रंग की है। मै जानती हूँ तुझे श्वेत ही सबसे अधिक भाता है। फिर दूर जाने की क्या आवश्यकता ? बापू से नही कह सकती है तो माँ से कह दे। तुझे लाज लगती हो तो मै कह दूं ?"

"न ! न ! न !" जूनतारा ने आरती के मुँह पर हाथ रखकर कहा।

आरती जूनतारा की पतली-पतली उँगलियो को अपने हाथ से सहलाती रही और उसकी तीखी चितवन निहारती रही।

"अपनी बात तो तू कभी कहेगी नही। तुझे भी तो एक दिन किसी की आरती उतारनी होगी।"

"मैं कब कहती हूँ कि नही उतारूँगी ?"

एक-दो बार आरती ने जूनतारा की नाक की सीध काढ़ी हुई माँग पर अपनी उँगलियाँ फेरी, जैसे वह कहना चाहती हो कि अब वे दिन दूर नही जब यहाँ अमर सुहाग का सिदूर भरा जाएगा।

"जाओ आरती, तुम्हें देर हो रही है।"

"नही जाती।"

केले के कुज में दोनों सखियाँ बैठी थी। एक-दो बार आरती ने सामनेवाले बागीचे के नारियल के पेड़ों की ओर उँगली उठाई। जूनतारा उसका भाव समझ गई पर उसने प्रसंग उस ओर न मुड़ने दिया।

जूनतारा जानती थी कि बुद्धि में आरती उससे कहीं अधिक तेज़ है। आरती की माँ जीवित होती, तो उस पर दोहरा उत्तरदायित्व न आ पड़ता। इस उत्तर-दायित्व ने ही उसकी बुद्धि को चमका दिया था। उनका पुराना घर तो बलमा में था, दिसाँग नदी के किनारे; पर जब से आरती की माँ मगरमच्छ के मुँह में चली गई थी, धर्मानंदी ने पुराने घर को छोड़कर बहुत बड़ी नाव पर एक झोंपड़ी बना ली थी। इस नाव को वह प्राय: पानी-घाट और नाव-घाट के बीचवाले स्थान पर ब्रह्म-पुत्र के किनारे खड़ी रखता था। नाव पर बनी झोंपड़ी आरती को पसंद थी। इस झोंपड़ी में एक खिड़की नदी की ओर खुलती थी। अवकाश मिलने पर आरती उसी खिड़की में बैठी रहती थी। कई बार जूनतारा को भी वह अपनी झोंपड़ी में बुला

लाती और दोनों सखियाँ खिड़की में बैठकर दूर तक फैले हुए ब्रह्मपुत्र को देखतीं और न जाने किस-किस प्रसंग पर विचार करने लगती। आरती की बात में सदा जूनतारा की बात से अधिक वजन होता था।

कल रात धर्मानंदी ने आरती को बताया था कि वह ब्रह्मपुत्र की कमलिया सापरी के पास से गुज़र रहा था जब उसने दूर से सारसों की एक पाँत को वहाँ बैठे देखा। पाँत तो उड़ गई, पर एक सारस न उड़ सका। उसने उड़ जाने की बहुत चेष्टा की। वह कदाचित् बीमार था। बड़ी कुशलता से पीछे से जाकर धर्मानंदी ने उस सारस को पकड़ लिया था। सारस को पकड़कर वह फूला न समाया था, क्योंकि बहुत दिनों से जूनतारा की माँग थी कि काका उसके लिए एक सारस ला दे। धर्मानंदी ने आरती को बता दिया था कि उसके जी में तो आया था कि पहले इस सारस को लाकर आरती को दिखाए, पर उसे भय था कि कहीं आरती ही इसे अपने पास रखने की जिद न करने लगे। इसीलिए वह अपनी नाव को नाव-घाट और पानी-घाट के बीचवाले स्थान पर झोंपड़ीवाली नाव के साथ लगाने के बजाय दिसाँग नदी के रास्ते ऊपर की ओर ले गया था, और वहाँ से हाट-बाजारवाले स्थान पर उतरकर सीधा जूनतारा के घर चला गया था और उसे उसकी सौगात पहुँचा दी थी।

आज सवेरे-सवेरे जूनतारा के घर आकर आरती ने उस सारस को देखा था, जिसे उसका काका कल रात दे गया था। सारस बीमार था, इसलिए वह गरदन ज़मीन पर डाले पड़ा था। सारस के पंजों में जूनतारा ने रस्सी बाँधकर उसे एक खूँटी में बाँध रखा था। उसकी रक्षा के लिए उसके चारों ओर बाँस की खपच्चियों का छोटा-सा पिंजरा बना दिया था।

केले के कुंज से वह स्थान साफ़ नजर आ रहा था, जहाँ बीमार सारस को रखा गया था।

आरती ने गंभीर होकर कहा, "एक बार काका ने मुझे भी वह स्थान दिखाया था, जहाँ ब्रह्मपुत्र के बीच कमलिया सापरी पर सारसो की पाँत अवश्य उतरती है। और भी बहुत-से जल-पक्षी वहाँ उतरते है। शिकारियों की बंदूकें भी वहाँ अधिक-से-अधिक फ़ायर करने के लिए तैयार रहती हैं, पर ये शिकारी सदा बाहर से आते है। दिसाँगमुख या आसपास के किसी गाँव का कोई शिकारी इन परदेसी पक्षियों पर हाथ नही उठाता। कोई बीमार या दुर्बल पक्षी उड़ने से रह जाए तो पाँत उसे छोड़कर उड़ जाती है। वापसी पर वह पक्षी फिर उस पाँत के साथ मिल जाता है।"

जूनतारा बोली, "अब यह सारस तो यहीं रहेगा। मै उसे रिझा लूँगी।"

"यह तो पाँत का पक्षी है, जूनतारा! पाँत के बिना तो यह मर जाएगा।"

"वैसे तो हम सब पाँत के पक्षी है। हम कैसे पाँत के बिना जीवित हैं?"

दोनों सखियाँ उठकर सारस के पास जाकर खड़ी हो गईं। वह उसी प्रकार

गरदन ज़मीन पर गिराए पड़ा था। यह कहना कठिन था कि उसे क्या कष्ट है। कदाचित् उसे सबसे बड़ा कष्ट यही था कि वह पाँत से बिछुड़ गया।

जूनतारा लपककर चौड़े मुँहवाली एक मटकी में पानी भर लाई और पिंजरे का मुँह उठाकर यह मटकी उसने सारस के मुख के पास रख दी।

आरती ने अपने हाथ से सारस का सिर उठाकर उसकी चोंच मटकी के पानी मे डुबो दी। जूनतारा की खुशी की कोई सीमा न रही, जब उसने देखा कि सारस पानी पी रहा है।

थोड़ी देर बाद दोनो सखियाँ फिर पहले स्थान पर आ बैठी। जूनतारा उदास थी, क्योकि सारस बीमार था।

आरती ने गभीर होकर कहा,"यह जो कहते है जूनतारा, कि प्रतिपदा को पथ में चाँद दिखाई दे जाने से सारा मास यात्रा में ही बीतता है, यह बात कहाँ तक सत्य है ?"

"यह तो मेरा बापू भी मानता है। पिछली बार बापू पुरी में था, जब उसे प्रतिपदा का चाँद दिखाई दिया। फिर वही हुआ जो होना था। पूरा मास बापू यात्रा में रहा।"

फिर आरती ने मीरी लोगो की दबूर-पूजा की बात छेड़ दी, "दबूर-पूजा वर्ष में दो बार क्यो होती है ?"

"एक बार की पूजा न माने देवता, तो दो बार करनी ही पड़ेगी पूजा।"

"क्या यह ठीक है कि दबूर और इंद्र एक ही देवता के नाम है ?"

"मेरे बापू का तो यही कहना है कि दबूर और इद्र एक ही है। वह कहता है कि दूसरे देशों मे, जहाँ वर्षा कम होती है, इद्र की पूजा करते है जिससे इंद्र देवता मेघो के साथ अबर पर आकर दर्शन दे; और यहाँ हमारे असम देश में तो पहले ही वर्षा बहुत अधिक होती है; यहाँ तो इंद्र देवता से यह प्रार्थना की जाती है कि मेघो को थोडा रोककर रखे। जब कई-कई दिन मूसलाधार वर्षा होती है, तो सबकी झोपड़ियो के भीतर पानी टपकने लगता है।"

"और फिर तूफ़ान में किसी-किसी झोपड़ी की छत ही उड़ जाती है। हमारे साथ भी तो पिछले वर्ष यही हुआ था। नाव पर बनी झोपड़ी की छत उड़कर जाने कहाँ चली गई, इसका पता ही न लग सका।"

"मैं जानती हूँ। मेरे बापू ने ही तो छप्पर के लिए फूस भिजवाया था।"

"एक बात है, जूनतारा ! दबूर-पूजा वर्ष में दो बार करते हैं मीरी लोग। यह तो अच्छा करते हैं, पर एक बात बहुत बुरी करते है।"

"वही न आरती, कि पूजा आरंभ होने पर किसी को बस्ती में नहीं आने देते; कोई आता भी है तो उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे वहाँ डाल देते हैं, जहाँ सूअर बँधे रहते है।"

"कितनी बुरी बात है !"

"बहुत ही अपमान की बात है। इंद्र कहो चाहे दबूर, वे क्या केवल मीरी लोगो के ही देवता है ?"

"बापू तो कभी-कभी कहता है कि देवता-वेवता कोई नही होता। ये सब कहने की बाते है। बापू का तो कहना है कि पेट ही सब कराता है। पेट भरा हो तो नाच-गाना भी अच्छा लगता है, पूजा भी करते रहो बैठकर; पर जब पेट ही खाली हो, तो देवता के गुण-गान से भी पेट नही भरता !"

"भूखा बाघ दहाडता है !" जूनतारा ने जोर देकर कहा, "मैं यह मानती हूँ।"

आरती ने झुँझलाकर कहा, "जब कई-कई दिन तक वर्षा नही थमती, बिजली कडकती है, बडे-बडे पेड तूफ़ान मे जड से उखड़ जाते हैं और नदी में भी बाढ़ आ जाती है, मै पूछती हूँ, उस समय मीरी लोगो के दबूर और हमारे इंद्र देवता कहाँ होते है ? दोनो एक है या दो, इस विवाद में पडने के बजाय हम ज़रा यह तो सोचें कि उस समय देवता को अपने भक्तों का ध्यान क्यों नही आता ?"

जूनतारा उठकर सारस के समीप चली गई।

आरती अपने स्थान पर बैठी रही।

दूर से आरती ने देखा कि बागीचे के फाटक से अतुल भीतर आ रहा है। उसने पास आकर पूछा, "जूनतारा कहाँ है ?"

आरती ने हाथ का सकेत किया। अतुल लपककर जूनतारा के पास चला गया।

"सारस को पकड़कर रखना तो ठीक नही।" अतुल ने बलपूर्वक कहा।

"यह ठीक है या नही," जूनतारा ने झुँझलाकर कहा, "यह देखना मेरा काम है।"

"पाँत का पक्षी पाँत के बिना मर जाएगा।"

"परवाह नही।"

"तो तुम्हारे हृदय मे तनिक भी दया-भाव नही है ?"

"यही समझ लो।"

"मै सारस को मरने नही दूँगा। तुम्हें सारस को छोड़ना पड़ेगा। मैंने धर्मानंदी काका से कह दिया है। काका मान गए है। हम इसे कमलिया सापरी पर छोड आएँगे, जहाँ से काका ने इसे उठाया था।"

"मै सारस नही दूँगी।"

"तो मैं धर्मानदी काका से कह दूँ ?"

"कह दो।"

"एक बार फिर सोच लो।"

"सोच लिया।"

आरती सब सुन रही थी, पर उसने दोनों के बीच में बोलना उचित न समझा।

जब अतुल चला गया तो आरती बोली, "तुमने अच्छा नही किया, जूनतारा ! सारस बीमार है। यहाँ वह अच्छा नही हो सकेगा। काका ने भी भूल की जो उसे कमलिया सापरी से उठा लाए। अब उसे वहाँ अवश्य छोड़ आना होगा; आज नहीं तो कल।"

"यह देखना मेरा काम है।"

"तो तुम अतुल से इतनी रुष्ट क्यों हो ?"

"तुमने देखा नही था कि वह कैसे रोब जमा रहा था, जैसे मैं कोई उसकी दबैल हूँ। होगा अतुल अपने घर, जूनतारा कभी किसी से डरनेवाली नही। यह मेरा और काका का मामला है। अतुल कौन होता है बीच में बोलनेवाला ?"

आरती के ज़ोर देने पर जूनतारा मान गई, पर वह बराबर इस बात पर जोर देती रही, "अतुल को कोई अधिकार नही था कि आकर रोब जमाता। दिसाँगमुख में और लड़के भी तो है, वैसा ही एक अतुल भी है, भले ही वह उनका पडोसी है और गाँव-बूढ़ा का पुत्र है। पर इसका यह मतलब तो नही कि वह सब शिष्टाचार से भी हाथ धो बैठे।"

जूनतारा ने सारस को अपनी बाँहो में उठा रखा था।

आरती बार-बार सारस के मुख पर हाथ फेरने लगती। फिर दोनों सखियाँ सारस की आँखो मे झाँकने का यत्न करती रही।

वे तेज-तेज डग भरती चली जा रही थी। वे जल्दी-से-जल्दी धर्मानंदी काका से मिलना चाहती थी। आज काका मछलियाँ पकड़ने नही गए थे। आरती ने जूनतारा को सवेरे आते ही बता दिया था कि काका की तबीयत अच्छी नही।

काका ने आरती और जूनतारा को आते देखा, तो वह खुशी से नाच उठा। उसने जूनतारा के हाथ से सारस को ले लिया। उसने बताया कि उसे रात-भर बुरे-बुरे सपने आते रहे थे। वह सारस को कमलिया सापरी पर छोड़ आना चाहता था।

अब सारस आरती की बाँहों मे था।

काका ने झट नाव तैयार की। आरती और जूनतारा नाव में आ बैठी। काका नाव को कमलिया सापरी की ओर ले चला।

"सारस के पख कितने सुदर हैं !" काका ने चप्पू चलाते हुए कहा, "अपनी जन्मभूमि से कितनी दूर आ जाता है सारस साल-के-साल, और फिर ऋतु बदलने पर लौट जाता है। कभी-कभी शीतकाल में सारस की पाँत कमलिया सापरी पर उतरती है तो मै कहता हूँ—यही रहो, आगे बगाल की ओर क्या मिलेगा ? यहीं विश्राम करो, यही से लौट जाना ग्रीष्म आरंभ होने पर। अच्छा, यदि आगे जाना ही है तो थोड़ा आराम कर लो।"

दोनों सखियाँ हँसती रही और सारस के सुदर पंखों को गुदगुदाती रही। "जूनतारा को सारस मिलने की उतनी प्रसन्नता नही होगी," धर्मानंदी बोला,

"जितना दुख उसे सारस से बिछुड़ने पर होगा। पर यह तो पाँत का पक्षी है, पाँत के बिना तो वैसे ही मर जाएगा।"

"तुम तो सब पक्षियों की बोलियाँ जानते हो, काका!" जूनतारा मुसकराई।

"काका तो पक्षियो की बोलियाँ बोलकर उड़ते पक्षियों को नीचे उतार सकते है।" आरती ने गभीर होकर कहा, "और यह काम कोई विरला मनुष्य ही कर सकता है।"

"सब प्रेम की बात है!" धर्मानदी मुसकराया। "प्रेम की भाषा ही ऐसी है। पक्षी भी समझते है प्रेम की भाषा!"

कमलिया सापरी पर पहुँचकर धर्मानदी सारस को एक झाड़ी के समीप रख आया और लौटकर उसने नाव को पानी मे ठेल दिया।

परे से सारसों की पाँत उडी आ रही थी।

काका ने नाव को वही रोक लिया।

सारसो की पाँत सापरी पर उतर आई। जब दोबारा यह पाँत उड़ने लगी तो वह बीमार सारस भी पूरा जोर लगाकर उडा और एक-दो छोटे चक्कर काटकर पाँत मे मिल गया। अब सारसो की पाँत नील-निर्मल आकाश पर उड़ी जा रही थी। काका ने भी नाव का मुँह दिसाँगमुख की ओर मोड दिया।

वापसी पर अतुल को क्रोध में लाल-पीला देखकर धर्मानंदी खिलखिलाकर हँस पड़ा।

आठ

अपने गाँव मे मुरगे की तरह बाँगो, ससुराल में मुरगी की तरह कड़कड़ाओ! —गाँव के इस पुराने बोल पर अतुल जितना भी विचार करता, उसे उतनी ही हँसी आती। वह सोचता कि जिसकी ससुराल गाँव में ही हो वह क्या करे। यह पुराना बोल दिसाँगमुख की तीनों भाषाओं मे मिलता था और यह कहना सहज न था कि सर्वप्रथम यह बोल किस भाषा से लिया गया था। अब तो इस बोल पर तीनो भाषाओं की छाप थी।

खेर मे काम करते-करते अतुल को कई बार सारस की घटना का स्मरण हो आता। वह सोचता कि अत में जूनतारा ने उसकी बात मान ली थी और वह धर्मानदी काका के साथ जाकर सारस को कमलिया सापरी पर छोड़ आई थी, जहाँ से काका उसे उठा लाया था। चलो अच्छा हुआ, पाँत का पक्षी पाँत में मिल गया। पर जब उसे इस बात का ध्यान आता कि धर्मानंदी काका वापसी पर उसे क्रोध में

लाल-पीला देखकर खिलखिलाकर हँस पड़े थे, तो उसे धर्मानंदी पर ही नही आरती और जूनतारा पर भी क्रोध आने लगता। कभी वह सोचता कि सारी भूल तो उसी की थी। जब वह आरंभ में जूनतारा के घर जाकर उससे यह कहने लगा था कि वह घायल और बीमार सारस को छोड़ना स्वीकार कर ले तो उसे तनिक नरमी से बोलना चाहिए था; मुरगे की तरह बाँग देने की तो कोई आवश्यकता न थी।

देवकांत को गए बहुत दिन हो गए थे। चार-छः महीने के लिए गया था, अब तो एक वर्ष से ऊपर हो गया था। जिस दिन सारसवाली घटना हुई थी, उस दिन देवकात को भी रहना चाहिए था। धर्मानंदी काका ने तो हँसकर मेरा क्रोध उतारने का यत्न किया था और आरती ने अपनी ही बात छेड़ दी थी। आरती ने वही बोल दोहरा दिया था, जिस पर देवकांत न जाने कितनी बार हँस चुका होगा—'जब भूकंप आता है तो धरती ही नही काँपती, ब्रह्मपुत्र भी काँपता है; ब्रह्मपुत्र की चीतल मछली भी काँपती है, जिसकी पीठ में काँटे-ही-काँटे होते है, और चीतल के पेट में अंडे भी काँपते है!' इस बोल के संबध मे भी अतुल का यही विचार था कि असमिया, मीरी और नेपाली तीनो भाषाओ में इसे ढाल लिया गया है और किसी एक भाषा को यह अधिकार नहीं कि वह इसे अपना ही बोल मनवाने पर बल दे। इस सूक्ति मे तो पूरा दिसाँगमुख बोलता था। पर देवकांत था कि इसे लोगो के मीलों लंबे भय का प्रतीक बताकर इस सूक्ति का उपहास करता था। वह कहता था कि यह भय समाप्त होना चाहिए। वह बड़ी कुशलता से भूकंप का मुख क्रांति की ओर मोडकर कहता था कि क्राति से भयभीत होने की तो तनिक भी आवश्यकता नही।

उसके खेत के पास ही आधार मीरी का खेत था। उससे अगला खेत साधन मीरी का था। आधार को अतुल सदा काका कहकर पुकारता था, पर साधन तो उसका बचपन का मित्र था। मीरी लोगों की एक परंपरा अतुल को विशेष रूप से प्रिय थी। यह परंपरा फ़ाख्ता के संबंध में थी। जब बहुत-सी फ़ाख़्ताएँ घर पर झुरमुट के रूप मे आकर गिरती थीं अथवा बार-बार फुर से उड़कर छत पर आ बैठती थी, तो मीरी लोग सदा यह अनुमान लगाते थे कि उनके पुरखों की आत्माओं को कष्ट हो रहा है। फ़ाख़्ताओं को चावल खिलाया जाता था, ताकि पुरखो का कष्ट दूर हो जाए। इस परंपरा का सहारा लेकर अतुल सदा इस बात पर बल देता था कि केवल फ़ाख़्ताओं को चावल खिलाने से काम नही चल सकता; क्योंकि फ़ाख़्ताएँ तो दूसरे-तीसरे रोज फिर आकर उसी प्रकार छत पर गिरने लगती है। आवश्यकता तो इस बात की है कि दिसाँगमुख के लोग आपस के झगड़े सदा के लिए समाप्त कर दें और 'एक शरीर एक आत्मा' होकर रहें। साधारण-सी बात पर भी सिर-फुटौवल की नौबत आ जाती है। मुकदमा कचहरी मे पहुँचता है। दोनों ओर से रुपया बरबाद किया जाता है। कचहरी में इस छीछालेदर का क्या लाभ? फ़ाख़्ताएँ तो वस्तुतः केवल मीरी लोगों के पुरखों का कष्ट बताने ही नहीं आती, वे

तो असमिया और नेपाली लोगों के पुरखों का कष्ट भी बताती हैं।

कुछ दिनो से साधन मीरी शरारत पर तुला हुआ था; क्योंकि वह बात-बात में अतुल से उलझना चाहता था। वह तो कई बार यहाँ तक कह चुका था कि दिसाँग-मुख का गाँव-बूढा अवश्य कोई मीरी ही होना चाहिए। अब इसका उत्तर तो अतुल के पास न था। वह चुप रहता। एक बार उसने यहाँ तक कह दिया, "देखो साधन, अब जब नया गाँव-बूढ़ा चुना जाएगा, तो मै तुम्हारे पक्ष मे मत दूँगा।" पर लगता था कि साधन प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नही, और वह शीघ्र-से-शीघ्र शरारत का बीज बो देना चाहता है।

कई बार अतुल आधार से कहता, "देखो आधार काका! अपने साधन को समझाओ। असमिया, नेपाली और मीरी घरो मे अपनी-अपनी भाषा ही क्यो न बोलते हों, जब वे आपस मे मिलते हैं तो असमिया से ही काम चलाते हैं।"

पास से साधन कहता, "यही बात तो मेरी समझ मे नही आती कि आपस मे मिलते समय असमिया क्यो बोलनी पड़ती है। हमारी मीरी भाषा भी तो इस काम के लिए बुरी नही।"

इस पर आधार सदा असमिया का ही पक्ष लेता। बात साफ थी। भले ही दिसाँगमुख में असमिया बोलनेवाले मुश्किल से रुपए मे चार आने थे, पर आसपास के दूसरे गाँव भी तो थे जहाँ असमिया बोली जाती थी। मीरी और नेपाली बाहर एक-दूसरे से मिलने पर असमिया ही बोलते थे। बहुत दिनों से यही होता आया था। अब इसे कैसे बदला जा सकता था?

सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि चित्ताप्रसाद भी साधन मीरी की हाँ-मे-हाँ मिलाने लगा था। यह बात तो समझ मे आ सकती थी कि चित्ताप्रसाद को नीलमणि से पुरानी शिकायत है। जब चित्ताप्रसाद पलाशबाड़ी से दिसाँगमुख आ निकला था, तो उसी ने नीलमणि को सलाह दी थी कि जब तक सरकार को यहाँ स्कूल खोलने का ध्यान नही आता, क्यों न लोग मिलकर अपनी ओर से एक स्कूल खोल दें।

यह स्कूल खोल दिया गया था और इसी स्कूल में तीन वर्ष तक अतुल ने भी शिक्षा पाई थी। अतुल के स्कूल छोड़ने के एक वर्ष पश्चात् ही चित्ताप्रसाद को स्कूल से पृथक् कर दिया गया था। चित्ताप्रसाद के विरुद्ध यह शिकायत थी कि उसने लड़को की फीस के हिसाब में गड़बड की थी। स्कूल से पृथक् होकर चित्ताप्रसाद को अनेक कष्टो का सामना करना पड़ा था। अब तो गत छः-सात वर्ष से चित्ता-प्रसाद का कार्य अच्छा चल निकला था। वह रेशम का धंधा करने लगा था और अब दिसाँगमुख के खाते-पीते लोगों में उसकी गिनती थी। साधन मीरी की हाँ-में-हाँ मिलाकर वह नीलमणि को नीचा दिखाने पर तुला हुआ था।

"दिसाँगमुख का क्या बनेगा, आधार काका?" अतुल कई बार पूछता।

आधार यही उत्तर देता, "राखाल को आ जाने दो, सब ठीक हो जाएगा।"

राखाल भी मीरी था। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि उसने अब तक विवाह नहीं किया था। जब से वह चाँदडूबी के जंगल मे सरकारी नौकर हो गया था, मुश्किल से आठ-दस बार दिसाँगमुख आया था। पिछली बार वह उस समय दिसाँगमुख आया था, जब अतुल का छोटा भाई मखना तीन वर्ष का था।

अतुल को याद था कि मखना दिन-भर राखाल काका की गोद में रहता था। अतुल की छोटी बहन रेणु का तो अभी जन्म भी नही हुआ था।

जब भी मखना और रेणु अतुल की टाँगों से चिपट जाते, वह उन्हे राखाल काका से सुनी हुई हाथियो की कहानियाँ सुनाने का वचन देकर छुट्टी पाता। रेणु ने तो राखाल काका को देखा तक न था, मखना को भी राखाल काका की कोई याद न थी।

घर में राखाल काका का नाम इतनी बार लिया जाने लगा था कि लगता था सबसे अधिक मखना ही राखाल काका की बाट जोहने लगा है। राखाल के नौकरी से रिटायर होकर दिसाँगमुख आने की सूचना नीलमणि को पहुँच चुकी थी; और इस समाचार से वह बहुत खुश था; क्योकि साधन मीरी दूर के नाते से राखाल का भतीजा था। यह आशा की जा सकती थी कि वह राखाल के समझाने पर समझ जाएगा और दिसाँगमुख के जीवन मे कटुता लाने की चेष्टा नही करेगा।

साधन मीरी को यह बात फैलाने मे न जाने क्या आनद आता था कि सबसे पहले मीरी लोग ही आकर दिसाँगमुख मे बसे थे। यह बात तो बहुत-से पढ़े-लिखे लोग कहते सुने गए थे कि आरंभ में अबोर लोगो के समान मीरी भी सदिया के उस पार अबोर पहाड़ियो में रहते थे।

अबोर और मीरी भाषाएँ वस्तुतः एक ही भाषा की दो बोलियाँ थी। इससे अबोर और मीरी के पुराने सबंधो पर कुछ प्रकाश पडता था। पर साधन के कहने का तो दूसरा ही भाव था; वह तो हर किसी से यह कहता फिरता था, "पहले यहाँ जंगल-ही-जगल था। मीरी लोगों ने इतनी दूर से आकर जंगल को अपने कुल्हाडो से साफ किया, और जब भूमि खेती के योग्य हो गई, तो अहोम राजाओ ने अपनी धौस जमाकर यहाँ कुछ असमिया लोगों को भी ला बसाया, जिनमें किसानो के अतिरिक्त नावरिया और मछुए भी थे। आगे चलकर असमिया बोलनेवाले मुसलमानों की आबादी भी यहाँ इतनी हो गई कि आलीसीगा की एक बस्ती मुसलमान बस्ती के नाम से प्रसिद्ध हुई। असमिया मुसलमानो के संबंध मे यह कहना ठीक ही है कि वे उन मुसलमानों की सतान है जिन्हे अहोम राजाओ ने मुसलमानो के साथ हुए युद्धो में बंदी बना लिया था।"

असमिया लोगो को आपस में बाँधकर रखनेवाली थी असमिया भाषा। जहाँ तक नेपालियों का दिसाँगमुख में आने का संबंध था, साधन की बात सच्ची थी।

ये लोग असम में अहोम राजाओं का राज्य समाप्त होने पर आना आरंभ हुए। फिरंगियों ने उनके आने पर कोई रोक न लगाई, क्योंकि उनका तो यही विचार था कि जितने प्रकार के लोग हो, उतना ही थोडा है। उन्हें एक-दूसरे से भिड़ाते रहने में ही फिरंगियो का राज्य जड़ पकड़ता गया। पर धनसिंह चायवाले का विचार था कि उसके परिवार के यहाँ आने का इतिहास तो उतना ही पुराना है जितना पुराना शिवसागर का जयदोल है, जिसका निर्माण असम के अहोम राजा गदाधरसिंह ने अपनी रानी जयमती के बलिदान की स्मृति बनाए रखने के लिए किया था।

साधन मीरी की सबसे बडी इच्छा यही थी कि दिसाँगमुख का गाँव-बूढ़ा असमिया न होकर कोई मीरी हो। वह सदा इसी का सपना देखता था; चित्ता-प्रसाद उसे उकसाता रहता था, हालाँकि वह स्वयं भी असमिया था। चित्ताप्रसाद को तो नीलमणि को नीचा दिखाने से मतलब था, जिसे वह किसी-न-किसी प्रकार पूरा करने में प्रयत्नशील था।

चित्ताप्रसाद तो नीलमणि के ही नहीं, धनसिंह के भी विरुद्ध था। धनसिंह ने गान मीरी की आधी जमीन अपने नाम करा ली थी। गान हर किसी के सामने रोता फिरता था कि धनसिंह ने झूठा हिसाब बनाकर ऋण की रकम इतनी बढ़ा ली कि जो जमीन कभी उसके हाथ गिरवी रखी गई थी, उसे उसके हाथ बेचकर ऋण से छुटकारा पाना पड़ा। चित्ताप्रसाद ने गान से कहकर धनसिंह के विरुद्ध कचहरी में अरजी दिलवा दी थी।

इस अरजी ने एक दिन नए मुकदमे का रूप धारण कर लिया। धनसिंह और गान में सिरफुटौवल हो गई। गान ने लाठी से धनसिंह का सिर फोड डाला और मामला नारायण दारोगा से होकर कचहरी में पहुँचा; पर नीलमणि की कोशिश से तीन मास के पश्चात् दोनो दलों में समझौता हो गया। साधन मीरी था कि गान मीरी को उलटा नीलमणि के विरुद्ध भड़काता रहता था; उसका विचार था कि यदि किसी प्रकार यह बात कचहरी में आ जाती कि धनसिंह ने गान को इतनी बुरी तरह ठग लिया है कि इस झगडे के अतिरिक्त बेचारे के पास कोई उपाय ही न था, तो यह आशा हो सकती थी कि उसकी जमीन दोबारा उसके हाथ में आने का कोई रास्ता निकल आता।

साधन मीरी तो धनसिंह चायवाले के अतिरिक्त अन्य नेपालियों के विरुद्ध भी मीरी किसानों को भड़काता रहता था। नेपाली के हाथ कोई अपनी माटी का हजारवाँ भाग भी न बेचे, यह था उसका उपदेश। वह सर्वत्र मीरी किसानों से स्पष्ट शब्दो मे कहता फिरता था, "नेपाली लोगों ने दूध के धंधे पर तो पूरी तरह अपना अधिकार जमा ही रखा है, यदि वे इसी प्रकार धनी होते चले गए तो एक दिन वे दिसाँगमुख के सब-के-सब मीरी किसानों की जमीनें खरीद लेंगे। मीरी

किसानो को या तो वे यहाँ से मार भगाएँगे या उन्हें अपने नीचे खेतिहर बनाकर रखेगे, और वह गुलामी मीरी किसानों के लिए ब्रह्मपुत्र में डूबकर मर जाने से भी अधिक अपमानजनक होगी।"

साधन मीरी का यह प्रचार जितना ही जोर पकड़ रहा था, उतनी ही अतुल को राखाल काका की प्रतीक्षा होने लगी थी। साधन की आँख बचाकर वह आधार से पूछ लेता, "अब राखाल काका के आने में कितने दिन रह गए, काका ?"

"अब तक तो राखाल को आ जाना चाहिए था।" आधार गंभीर होकर उत्तर देता, "कही राखाल ने दिसाँगमुख आने का विचार बदल न दिया हो।"

खेत से घर लौटने पर अतुल मखना से कहता, "अब तो राखाल काका आते ही होगे। वह तुम्हारे लिए हाथी का बच्चा लेकर आएँगे।"

पास से रेणु तुतलाकर कहती, "नही जी, मखना के लिए नही, राखाल काका तो मेले लिए ही लाएँगे जी, मेले लिए लाएँगे।"

अतुल सोचता—काश, राखाल काका अभी आ जाते !···उसकी कल्पना मे राखाल काका के आगे और पीछे हाथी-ही-हाथी उभरने लगते; इन हाथियों में उनके बच्चे भी होते, हथिनियाँ भी होती—माँ बननेवाली हथिनियाँ भी। वह देखता कि काका झुक-झुककर, उभर-उभरकर हाथी का अच्छा-सा बच्चा ढूँढ़ रहे हैं—कोई ऐसा बच्चा जो बहुत ही प्यारा प्रतीत हो रहा हो।

अपनी माँ से भी अतुल राखाल काका के आने की बात पूछने लगता। वह हँसकर कहती, "मैने तो सीखी नही ज्योतिष विद्या, अतुल ! राखाल काका कब आएँगे, मै कैसे बताऊँ ?"

पास से नीलमणि हँसकर कहता, "अतुल तो सदा किसी-न-किसी की बाट जोहता रहेगा—कभी देवकात की, कभी राखाल की। अपने आप आ जाएगा जिसे आना होगा; आनेवाला सदा बताकर तो आता नही।"

अतुल के हृदय पर गहरी चोट लगती; वह सोचता कि और किसी को राखाल काका की याद इतनी क्यों नही सताती।

बड़े-बड़े असमिया अक्षरों मे मखना कुछ लिख रहा होता तो अतुल उसकी कापी लेकर उस पर हाथी का चित्र बनाने लगता।

नौ

रात आधी इधर थी और आधी उधर, जब देवकांत ने आकर अतुल को जगाया। देवकात ने अतुल के कान में कुछ कहा। अतुल बोला, "लो अभी चलते हैं।"

वे बाहर निकले। कल्याण भगत के घर की बगल से जो पगडंडी सड़क से नीचे उतर गई थी, वे उसी पगडंडी पर हो लिए। इस पगडंडी पर वे बहुत बार चले थे। यह पगडंडी बहुत जानी-पहचानी थी। चलते-चलते देवकांत अपने दाएँ कंधे को सहलाने लगता। उसके कंधे पर सख़्त चोट आई थी। अब तो यह चोट अच्छी हो गई थी, फिर भी थोड़ी तकलीफ़ बाकी थी।

"अच्छा होता कि तुम अपनी माँ से मिल लिए होते।" अतुल ने एक जगह रुककर कहा।

"समय कहाँ है ?" कहते हुए देवकांत आगे बढ़ गया।

"भारत माता की बात करते हो और अपनी माँ से मिलने के लिए तुम्हें समय नही मिलता। चार महीने के लिए कह गए थे, पूरे डेढ़ वर्ष के पश्चात् आए हो।"

"तुम माँ को समझा देना।"

"वह सुनकर रोएगी।"

"अब एक ही बात हो सकती है—भारत माता के आँसू पोछूँ या अपनी माँ के; एक साथ दो कार्य नही हो सकते। मुझे तो पहला कार्य ही अधिक आवश्यक प्रतीत होता है।"

"जिस माँ ने तुम्हें जन्म दिया, बुढ़ापे में उसकी सेवा तक न कर सके, इसका तुम्हें जरा भी दुख नही। वैसे वह बेचारी रेशम के कीडे पालती है और अपने करघे पर रेशम के थान बुन-बुनकर चित्ताप्रसाद के हाथ बेच डालती है। तुम डेढ़ वर्ष के पश्चात् लौटकर उससे मिलने के लिए दो मिनट न निकाल सके। कितनी जग-हँसाई होगी, जब लोग सुनेगे।"

"परवाह नही।"

अतुल फिर रुक गया। वह देवकांत के मुख की ओर देखने लगा। अर्धरात्रि के सन्नाटे में उसे लगा कि देवकांत ने उसे गाली दे डाली।

"माँ का आशीर्वाद लिए बिना क्या भारत माता की सेवा संभव है ?"

"क्यों नही ?"

"मेरी समझ में तो आती नही तुम्हारी बात।"

"कभी तो आ जाएगी। समय लगता है। अपनी-अपनी समझ की बात है।"

वह फिर चलने लगे। अतुल को लग रहा था कि उसकी पसलियाँ एक थके हुए बैल के समान दर्द कर रही हैं। चाँदनी में भी कितनी चुभन थी !

"एक बात पूछूँ, देवकांत ? जिस कोख से आदमी का जन्म हुआ, उसे कैसे भुलाया जा सकता है ?"

"पहले तो भारत माता की कोख है। क्या यह झूठ है ?"

हवा में शीतकाल की ठंडक थी, चाँदनी में माँ का दुलार था, फिर भी चाँदनी

सूइयों की तरह चुभ रही थी। चाँदनी रात में लंबी परछाइयाँ बड़े-बड़े धब्बों के समान प्रतीत हो रही थीं, जैसे कोई टाट फैलाए बैठा हुआ बड़े-बड़े सूओं से टाट सीं रहा हो, या कोई मछुआ अपना जाल फैलाए देख रहा हो कि कहाँ-कहाँ मरम्मत की आवश्यकता है।

"नौ मास तक माँ बेटे को कोख मे रखती है।"

"तो क्या हुआ?"

"भारत मातावाली बात अपने पास ही रखे रहो, मैं तो किसी भारत माता को नही जानता; मै तो अपनी माँ को ही जानता हूँ। माँ के दूध का मोल तो कभी नही चुकाया जा सकता।"

"तुम्हें बाहर की हवा नही लगी; लग जाती तो तुम भी मेरे ही समान सोचते, फिर तुम भारत माता को अवश्य पहचानते। भारत माता तो माँ की भी माँ हुई। तुम मेरे साथ कलकत्ता गए होते तो मैने तुम्हे उन लोगों से मिलाया होता जिन्होने मुझे भारत माता का चेहरा दिखाया। कितना उदास है भारत माता का चेहरा—हाथ मे हथकड़ी, पैरो में बेड़ी, भारत माता चिर-उदासिनी है।"

"और तुम्हारी माँ कम उदासिनी है? चित्ताप्रसाद उसे हर रोज़ ठगता है। क्या इसीलिए तुम्हे नौ मास तक पेट में रखा था माँ ने कि तुम बुढ़ापे में भी उसकी सेवा न करो?"

देवकात एक तिनके की नोक से दाँत कुरेद रहा था। तेज़ डग भारत हुआ वह आगे बढ़ा चला जा रहा था और पीछे-पीछे अतुल।

"मै तो कहूँगा कि अब भी मान जाओ। माँ से मिल आओ। रात बहुत है। भोर से पहले-पहले तो हम धर्मानंदी काका से हर हालत में मिल सकेगे।"

"अब तो समय नही।"

"माँ से भेट करने के लिए भी समय नहीं? मरना है तो क्या डरना? नारायण दारोगा से तुम इतना डर जाओगे, यह मैं पहले नही जानता था।"

"मरना तो है ही एक-न-एक दिन—आगे या पीछे। मै फाँसी की रस्सी पर झूल जाऊँगा हँसते-हँसते, और मरने से पहले भारत माता की हथकड़ी और बेड़ी जितनी भी ढीली कर सकूँ, उतना ही अच्छा है।"

"दुनिया तुम्हें भगोड़ा कहेगी।"

"कहती है तो कहे।"

"एक बात पूछूँ? भागकर तुम दिसाँगमुख ही क्यों आए? तुम तो कहा करते थे कि दिसाँगमुख की सेवा भी दूर से ही करना चाहते हो।"

"एक बार माझुली पहुँचा दे मुझे धर्मानंदी काका, फिर तो नारायण दारोगा का बाप भी मुझे नही पकड़ सकेगा। फाँसी की रस्सी पर झूलने से पहले मैं माझुली के लोगों को तैयार करना चाहता हूँ; अकेला दिसाँगमुख तो फिरंगी से लड़ाई नही

लड़ सकता।"

चलते-चलते अतुल रुक गया। देवकांत का कंधा पकड़कर उसने उसे रोक लिया।

"वह चित्ताप्रसाद है न, उसने हडसन साहब को पटा लिया है। मैने तो सुना है कि हडसन साहब को भी वह रेशम के धंधे में से हिस्सा देता है। चित्ताप्रसाद ने पहले-पहल विष्णुराम हेडक्लर्क के द्वारा साहब को पटाया था। मुझे सब पता चल गया। अंडी और मूगा के जो दो थान उसने ले जाकर पहले-पहल साहब को दिखाए, वे तुम्हारी माँ के ही बुने हुए थे। एक आदमी ने मुझे हडसन साहब की बेटी लिली की बात भी बता दी। लिली ने कई बार अपने डैडी को ताना दिया कि अब 'मेड इन इंगलैंड' का आदर्श कहाँ चला गया ! लिली भी हमारे विरुद्ध प्रतीत होती है। इसीलिए जब परसो विष्णुराम मुझे लिली की भेजी हुई पुस्तक लाकर देने लगा, तो मैंने लेने से इनकार कर दिया। असमिया बाइबल की पोथी थी। मुझे नही चाहिए किसी की बाइबल। मै जानता हूँ, उसमें क्या लिखा होगा, अपनी माँ ही अपनी माँ होती है, यह तो उसमे अवश्य लिखा होगा, और यह मैं पहले से जानता हूँ।"

"देर हो रही है, चलना चाहिए।"

"और सुनो, चित्ताप्रसाद तुम्हारी माँ से हर समय यही कहता है—'आदमी की मुक्ति इसी मे है कि रेशम के कीड़े के समान काम करते-करते ही मर जाए।' यह सब ठगने के लिए कहता है चित्ताप्रसाद। तुम्हारी माँ एक रुपए का काम करती है, तो मुश्किल से अठन्नी उसके हाथ लगती है; बाकी अठन्नी मे से दो आने हडसन साहब के और छः आने चित्ताप्रसाद के। चित्ताप्रसाद ने अपना 'अडी-मूगा सहकारी संस्थान' इसी प्रकार खड़ा किया है।"

"मैं जानता हूँ। पहले वह लडकों को पढाता था, तो लड़को की फीस खाता रहा कई महीनों तक। पर फीस के कितने रुपए खा गया होगा आखिर ?"

"जितने भी हो, प्रश्न तो खाने का है। फीस के रुपए उसने क्यो खाए ? इसीलिए तो बापू ने उसे स्कूल से निकलवा दिया था। बापू से तो वह तभी से खार खाता है।"

"खैर छोड़ो ये बातें, देर हो रही है।"

वे चले जा रहे थे। चाँदनी में बड़े-बड़े धब्बे अब कही-कही गड्डमड्ड हो रहे थे।

धर्मानंदी को जगाया गया तो वह झट उठ बैठा। "अभी तो भोर होने में बहुत देर है।" काका ने हँसकर कहा।

अतुल ने काका के कान मे कुछ कहा।

"किसकी मज़ाल है कि हमारे देवकांत को हाथ लगा सके ? मैं उसे माझुली पहुँचा दूंगा।" काका ने बलपूर्वक कहा।

आरती चाय बनाने लगी; यह सोचकर वह फूली नही समाई कि देवकात अब कलकत्ता नही जाएगा और दिसाँगमुख मे ही रहेगा। उसने पूछ ही तो लिया, "तो फिर माझुली क्या करने जा रहे हो ?"

"ऐसी ही बात है, आरती !" अतुल ने गंभीर होकर कहा, "हमारा देवकात तो अपनी माँ से भी मिलने नही जा सका। मै सो रहा था जब उसने आकर मुझे जगाया। आप लोग भी सो रहे थे जब हमने आकर आवाज दी।"

नाव पर बनी हुई झोपड़ी की खिड़की से ब्रह्मपुत्र की ओर देखते हुए अतुल ने कहा, "ब्रह्मपुत्र हमारा साक्षी रहेगा, काका ! देवकात से हमारा झगडा यही है कि वह अपनी वास्तविक माँ को भूलकर भारत माता की रट क्यों लगाता है ? यह भारत माता कहाँ है, मैं तो आज तक नही देख सका, काका ! देवकात कहता है कलकत्ता में रहती है भारत माता। क्या यह ठीक है, काका ?"

"मैं भी कब गया कलकत्ता ? मैंने भी कब देखा भारत माता को ?"

देवकांत खामोश बैठा था।

"पहले बताओ, भारत माता क्या खाती है और क्या पहनती है ?" आरती ने पास आकर कहा, "फिर मिलेगा चाय का गिलास। मैं पूछती हूँ, क्या भारत माता भी पीती है चाय सवेरे-सवेरे ? जाड़े में तो भारत माता भी चाय पीती होगी।"

देवकात कुछ न बोला।

"कुछ तो कहो, देवकांत !" धर्मानदी हँस पड़ा, "नही बताओगे तो मैं भी नही ले जाऊँगा उस पार।"

"बताओ, बताओ।" अतुल भी चुप न रह सका।

देवकात ने कहना आरंभ किया :

"कलकत्ता में रहती है भारत माता। वह बहुत भूखी है, बहुत दुबली हो गई है; गाने लगती है तो गीत भी उसके कंठ में ही टूट जाता है। उसके चारों ओर साँप के समान सन्नाटा लहराता है; उसके फेफड़े घायल पक्षियो के समान है। उसे चाँद, सितारे और सूरज कुछ भी अच्छा नही लगता। उसके फूलदान के सब फूल मुरझा गए। उसके कटोरे में चाँदनी दूध नही उँड़ेलती। उसके बेटे जेलो में सड़ रहे है। उसके बहुत-से बेटे फाँसी पर झूल गए। जेल मे उसके बैटो को जो रोटी मिलती है, उसमें रेत और कंकड़ मिले रहते है। उनके सामने दाल के नाम पर रखा जाता है पीला-पीला पानी। भारत माता सब जानती है, सब समझती है। उसके होठ खुरदरे हैं; वह कभी हँसती नही, हँस सकती ही नही। उसके लिए आँसू, फूल और ओस एक हो गए; उसके लिए हर ऋतु एक समान है; उसके लिए वसंत तो कभी आता ही नही। उसके सब-के-सब बेटे फाँसी पर लटक गए; सब खेल समाप्त हो गया। उसके बेटों की हड्डियाँ चूर्ण बनाई जा रही हैं, उनके शरीर पर लहू की रेखाएँ हैं। ये सब अत्याचार सहती है भारत माता। फिर वह कैसे गा सकती है ?

अत्याचार में बाढ़ आ रही है; फिरंगी का क्रोध भारत माता के बेटों पर मेघ बनकर बरसता है; गोलियों की वर्षा होती है भारत माता के लालों पर ! जी में तो आया था कि मैं कलकत्ता मे ही रह जाऊँ; वही पकड़ा जाऊँ, वही फाँसी पर लटक जाऊँ। पर वहाँ मुझे अतुल की बात सदा काँटे की तरह चुभने लगती थी, 'कलकत्ता मे रहकर तुम दिसाँगमुख का कार्य कैसे कर सकते हो ?' दिसाँगमुख का कार्य तो दिसाँगमुख से ही आरभ करना है; इसीलिए मैं यहाँ चला आया। जब मै भागा तो मेरे दाएँ कधे पर बहुत सख्त चोट लगी, बहुत खून निकला। किसी प्रकार मैं बच गया। मेरे कधे में अभी तक दर्द है, परवाह नही। सोचा, कुछ दिन माझुली में बिता सकूँ, क्राति की आग वहाँ भी भडका सकूँ तो अच्छा होगा। यहाँ तो आप हैं काका और हमारा अतुल भी है; पर माझुली मे तो कोई क्राति का नाम नही जानता। वहाँ तो दो ही प्रकार के मनुष्य है—या तो वैष्णव सत्रो में है भक्त और गोसाई, जो लोक को भूलकर परलोक का ध्यान धरते है, या फिर निर्धन और अज्ञानी किसान, मछुए और नावरिया है। दिसाँगमुखवाले ही नही, आसपास के गाँववाले भी तो माझुलीवालो को मूर्ख ही नही महामूर्ख समझते है, काका ! दिसाँगमुखवालों ही को लो, किसीको मूर्ख कहना चाहते है, तो उसे 'माझुली से आया हुआ' कहकर पुकारते है। इसीलिए मैंने सोचा कि फाँसी पर मृत्यु का आलिगन करने से पहले माझुली के गाँवो में रहूँ और उन्हें रास्ता दिखाऊँ।"

अतुल ने कहा, "भारत माता को तुम कलकत्ता मे ही छोड़ आए ?"

धर्मानंदी कुछ न बोला। देवकात भी चुप रहा।

आरती पास आकर बोली, "चूल्हे पर बैठे-बैठे मैने सब सुन लिया। देवकात, यह तो बताओ कि भारत माता को कलकत्ता में ही छोड़ आए ?"

अतुल ने आरती के कान में कुछ कहा।

आरती चकित रह गई।

आरती ने चाय के चार गिलास बनाए। एक-एक गिलास सबके हाथ में था। आरती ने भी अपना गिलास मुँह से लगा लिया; फिर उसने घबराकर कहा, "बापू, तुम जल्दी करो। भोर से पहले ही नाव खोल देनी चाहिए; मै भी चलूँगी।"

अतुल बोला, "पर मेरा साथ जाना ठीक न होगा !"

"तुम नही जाओगे।" देवकात ने गभीर होकर कहा, "यह मैंने पहले ही सोच लिया था।"

"भारत माता कलकत्ता में रह गई।" अतुल ने हँसकर कहा, "दिसाँगमुख माता तो यही है। अच्छा तुम हो आओ माझुली माता के पास, देवकांत !"

"ये सब माताएँ एक है, अलग-अलग नही।"

धर्मानदी बोला, "यह तो एक लाख रुपए की बात कही देवकांत ने !"

फिर धर्मानंदी ने नाव तैयार की। देवकांत और आरती नाव में जा बैठे।

नाव चली तो अतुल देर तक खड़ा देखता रहा। जब नाव आँख से ओझल हो गई तो वह भी धीरे-धीरे गाँव की ओर हो लिया।

उषा ने आँखें मलकर अभी दिसाँगमुख की ओर नही देखा था।

दस

अतुल का मस्तिष्क पूर्ण रूप से थक चुका था और वह कार्य करने में असमर्थ था।

बाते जितनी सीधी थी, उतनी ही जटिल भी। 'फिरंगी का क्रोध भारत माता के बेटो पर विष का मेघ बनकर बरसता है'—देवकांत का यह बोल उसके मस्तिष्क से टकराता रहा। जितना ही वह इसे भूलने का यत्न करता, उतना ही यह विचार उसका पीछा करने लगता; देवकात ने यह भी तो कहा था, 'कलकत्ता में रहती है भारत माता। वह बहुत भूखी है, बहुत दुबली हो गई है। गाने लगती है तो गीत भी उसके कंठ मे ही टूट जाता है।' रहती होगी कलकत्ता में भारत माता। मै तो कलकत्ता नही गया, मै वहाँ जाना भी नही चाहता। जाना होता तो देवकांत के साथ हो आता। मेरे लिए तो दिसाँगमुख ही अच्छा है; मै तो दिसाँगमुख के लिए जीना चाहता हूँ और दिसाँगमुख के लिए ही मरना चाहता हूँ। मेरे खेत की माटी निद्रा मे भी मेरा पीछा करती है। जिस माटी से मेरा जन्म हुआ, मुझपर तो उसीका ऋण है; मुझे तो उसीका ऋण चुकाना है। इसी माटी में मिल जाएगा मेरा शरीर। तब ऋण चुक जाएगा? नही, नही, बिलकुल नही! जीते जी मुझे कुछ करना होगा, कुछ करके दिखाना होगा! जीते जी!

भराल मे नया धान भरे हुए बहुत दिन हो गए थे। वह भराल के द्वार पर खड़ा था। एक-दो बार उसकी माँ ने आवाज देकर उसे भीतर बुलाया। उसने माँ की आवाज अनसुनी कर दी। माँ के संबध में देवकांत से कही हुई बातें उसे याद आ रही थी। ठीक ही तो था। जो माँ जन्म देती है, नौ मास पर्यंत शिशु को पेट मे रखती है, वह माँ क्या इतनी शीघ्र भुलाई जा सकती है? इसीलिए तो मैंने देवकात से कहा था, 'माँ का आशीर्वाद लिए बिना क्या भारत माता की सेवा संभव है?' जो भारत माता कलकत्ता में रहती है, उसे मैं नही जानता। वह दुबली हो गई, तो मैं क्या करूँ? उसका गीत कंठ में ही टूट जाता है, तो मैं क्या करूँ? मुझे तो अपनी ही माँ प्रिय है।

माँ की आवाज आई, "भीतर आओ, अतुल!"

उसने माँ की आवाज फिर अनसुनी कर दी, पर उसके मस्तिष्क में जोर का

झटका लगा।

भराल से बराबर नए धान की सुगध आती रही।

यह धान उसने अपने खेत मे उगाया था, अपने हाथ से उगाया था; इसके लिए उसने लहू-पसीना एक किया था। दिसाँगमुख की जितनी सुदरता थी, उसके पीछे धान की बालियाँ मुसकराती थी। धान ही जीवन का ताना-बाना था; धान ही त्योहारों का जीवन था। धान था तो गीत और नाच अच्छे लगते थे। धरती की कोख से धान उसी प्रकार उगता था, जिस प्रकार दिसाँगमुख की स्त्रियाँ अपनी संतान को जन्म देती थी।

भराल से हटकर अतुल गोहाली की ओर चला गया, जहाँ कपिला गाय बँधी थी। कपिला के साथ घर का मगल जुड़ा हुआ था। इस बार कपिला के बछड़ा होगा, जो बड़ा होकर हल मे जुतेगा। पिछली बार भी तो कपिला ने बछड़े को ही जन्म दिया था। उनके घर मे तो सात गाये थी। सातों मे कपिला ही सबसे अच्छी थी। वह कपिला की आँखो मे झाँकता रहा, जैसे कपिला से पूछना चाहता हो कि माँ और भारत माता के सबध में अतुल और देवकांत मे से किसकी बात सच है।

सोनपाही ने बाहर आकर कहा, "आज तुझे क्या हो गया, अतुल ? तू अदर क्यों नही आता ? यहाँ खडा क्या कर रहा है ?"

इतने मे मखना और रेणु आकर अतुल की टाँगो से लिपट गए। सोनपाही उन्हें बढ़ावा देती रही, "छोड़ना मत। पैसे माँगो, भैया की गाँठ खोल लो।"

अतुल ने गाँठ खोलकर भाई-बहन को दो-दो पैसो मे राजी कर दिया।

सोनपाही बोली, "आज सवेरे-सवेरे तुम कहाँ गए थे ?"

"धर्मानदी काका के घर।"

"वहाँ क्या था ?"

"देवकात को पहुँचाने गया था।"

"आधी रात के समय ? ऐसा क्या कार्य था ? वह स्वय नही जा सकता था ?"

"बताऊँगा, माँ ! ऐसा ही कुछ कार्य था। बेचारा कलकत्ता से सीधा हमारे घर आया। अपनी माँ से मिलने भी तो न जा सका।"

"अब मिल लेगा। माँ की वह कौन परवाह करता है ? कलकत्ता ने उसे बिगाड़ डाला। तेरा बापू कहता है कि देवकात आवारा हो गया। उसका बापू उसे देखने को तरसता मर गया। अब इस जन्म में वह माँ की सेवा भी करने से रहा !"

"यह तो मत कहो, माँ !" अतुल मुसकराया, "वह तो पढा-लिखा और घूमा-फिरा लड़का है। मैं उसके साथ घूमता हूँ कि बाहर की बुद्धि मुझे भी आ जाए।"

"पर तेरे बापू को देवकात के साथ तेरा घूमना अच्छा नहीं लगता। मेरी बात गाँठ बाँध ले। आज का दिन सो आज का दिन, कल से उसके साथ चक्कर न काटना। और बता, उस दिन विष्णुराम क्या लाया था ?"

"लिली की भेजी हुई असमिया बाइबल की पोथी। वह मैने वापस कर दी।"

"अच्छा किया! मेरे बेटे को क्रिस्तान बनाएगी वह चुडैल! हरि हरि हे माधव!"

सोनपाही भीतर चली गई। मखना और रेणु मिठाई लाने के लिए धनसिंह की दुकान की ओर भाग गए।

अतुल ने कपिला की आँखों में झाँककर कहा, "देवकात कहता है कि भारत माता के फेफडे घायल पक्षियो के समान है। उसे चाँद, तारे और सूरज कुछ भी अच्छा नही लगता। क्यो कपिला मैंया, ठीक कहता है देवकात?"

गाय ने सिर हिलाया। अतुल ने इसका यह भाव समझा कि गाय इनकार मे सिर हिला रही है। उसे बडी खुशी हुई। गाय ने उसका साथ देकर सराहनीय कार्य किया। वह तनकर खडा हो गया। मै देवकात को बता दूँगा कि मैने भी व्यर्थ जीवन नही विताया। मै अधिक पढ़-लिख नही सका, तो क्या हुआ। बापू से तो फिर भी अच्छा हूँ। बापू तो अँगूठा ही लगा सकता है, मै तो अपना नाम भी लिख सकता हूँ। बापू की सबसे बडी इच्छा यही है कि मै एक दिन उसके सामने ही गाँव-बूढा बन जाऊँ; माँ भी तो यही चाहती है, माँ का आशीर्वाद मिला तो मै अवश्य बन जाऊँगा गाँव-बूढा। पर क्या गाँव-बूढा बनना मुझे शोभा देगा? नारायण दारोगा कई बार लोगो को बुला भेजता है। साधारण से अपराध के बदले वह सदैव भद्र लोक को लाछित करता है अपने बूट की ठोकर से। बहुत बुरा करता है नारायण दारोगा। जिसके वह जूते लगवाता है, वह बहुत चीखता-चिल्लाता है। उसकी चीखे बापू कैसे सुनता रहता है, उसके आँसू बापू कैसे देखता रहता है? घर आकर तो बापू यही कहता है कि उससे नारायण दारोगा का यह अत्याचार बिलकुल नही देखा जाता। तो फिर वह नारायण दारोगा से क्यो नही कहता यह बात? अभी अगले ही दिन भगतजी कह रहे थे कि मन, वाणी और कर्म मे अतर होने से मनुष्य जीते-जी ही मर जाता है। हमारे बापू के सामने यह बात क्यो नही आती? नारायण दारोगा बापू के सामने जितना अत्याचार करता है, उसे बापू सह कैसे लेता है? मै तो यह सब नही सह सकूँगा।

कपिला ने फिर कुछ इस प्रकार सिर हिलाया जैसे वह अतुल की हाँ-मे-हाँ मिला रही हो। थोडा सँभलकर अतुल ने कपिला के कान मे कहा, "देवकात कह रहा था, कपिला मैंया, कि भारत माता के लिए आँसू, ओस और फूल एक हो गए। भारत माता के लिए हर ऋतु एक समान है। उसके लिए वसत तो कभी आता ही नही। उसके सब-के-सब फूल फाँसी पर झूल गए। तुम्हारा क्या विचार है, कपिला मैंया? क्या देवकात ठीक कह रहा था?"

कपिला ने सिर न हिलाया। अतुल बिलकुल न समझ सका कि कपिला देवकात से सहमत है या नही।

उसने दोबारा कपिला के कान में कहा, "देवकांत यदि इतना ही वीर है, तो वह भाग क्यों आया ? यदि भागकर आना था, तो गया ही क्यों था ? मन, वाणी और कर्म में अंतर होने से यही दशा होती है। इससे तो सचमुच मनुष्य जीते-जी मर जाता है। मै ऐसा नही करूँगा; मैं गाँव-बूढ़ा नही बनूँगा। यदि मैं नारायण दारोगा का अत्याचार बंद नही करा सकूँगा तो उसका साथ भी नही दूँगा; यह भी नही करूँगा कि सोचूँ कुछ और करूँ कुछ । मैने समझ लिया है कि ससार मे महान् कार्य वही कर सकता है जिसके मन, वाणी और कर्म में तनिक भी अंतर नही रहता। देवकात ने भुझे जितने भी क्रांतिकारियों की कहानियाँ सुनाई हैं, वे ऐसे ही आदमी थे। वे मरने से डरते न थे; जो सोचते थे, वही कहते थे और वही करते भी थे। एक बात तो समझ मे आती है कि कार्य घर से ही आरंभ किया जाता है। भारत माता के दर्शन दिसाँगमुख मे ही किए जाएँ। भारत माता कलकत्ता में रहती है, तो क्या दिसाँगमुख मे नही रहती भारत माता ?"

कै-कै करती बत्तखे कभी पिछवाड़े के पोखर की ओर चली जाती, कभी उधर से भागती हुई बाहर सड़क की ओर निकल जाती। अतुल अन्यमनस्क-सा होकर बत्तखो की ओर देखने लगता, कभी उसकी दृष्टि छतनारे पर बैठे कबूतरो की ओर चली जाती, कभी उसकी कल्पना मे शस्य-श्यामला भूमि का पठार घूम जाता जो सोना उगलता आया था। एक बार फिर उसे विचार आया कि पठार की माटी तो निद्रा मे भी उसका पीछा करती है और उसके मस्तिष्क पर दस्तक देती है, जैसे पूछ रही हो—मुझे छोडकर तो नही चले जाओगे ?

सहसा उसे ध्यान आया कि बैलों को चारा तो डाला ही नही। पहले उसने कपिला के सामने हरा चारा डाला, फिर वह गोहाली के भीतर जाकर एक-एक बैल की पीठ पर बड़े प्यार से हाथ फेरने लगा, जैसे क्षमा-याचना कर रहा हो। पर वह बहुत लज्जित न था। अभी तक उसने स्वय भी तो जलपान न किया था। बारी-बारी से हर एक बैल के सामने चारा डालते हुए उसने हर एक की थूथनी उठाकर उसकी आँखों मे झाँकने का यत्न किया। उसके बैल उसे पहचानते थे। फिर भीतरवाली गायो के सामने थोडा-थोड़ा चारा डालकर वह झट बाहर आ गया।

उसके पैर पिछवाड़े की ओर उठ गए। जाते-जाते वह नारियल के पेड़ो को बड़े ध्यान से देखने लगा। ये नारियल उसके बाबा ने लगाए थे। एक बार जब वह अभी बालक ही था, उसके बाबा ने कहा था, "बेटा अतुल, नारियल के समान ऊँचा उठना।"

बाबा के बोल उसकी कल्पना को झकझोर गए। आज तक मैंने ऐसा कौन-सा कार्य किया है जिससे मैं कह सकूँ कि मैने ऊँचा उठने का यत्न किया है।

पोखर के किनारे खड़े होकर वह मछलियों को तैरते देखने लगा। पिछले पाँच-छः वर्षों से उसने मछली खाना छोड़ रखा था। भगतजी के सत्संग से ही उसने यह

पग उठाया था। घर में हर कोई उसके निरामिष आहार पर हँसता था। पोखर में तैरती हुई बत्तखों से भी वह पुकार-पुकारकर कहना चाहता था—मुझे तो न तुम्हारा शोरबा चाहिए, न तुम्हारे अंडे। उसे स्मरण हो आया कि उसका बापू तो भगतजी के समान उसका भी मज़ाक उड़ाने लगा है, "बत्तखों ने अडे दिए नही कि भगत लोग आ पहुँचे !"

ऐसा तो नही हो सकता। मन, वाणी और कर्म में जो लोग अंतर रखते हो, वे भले ही दुनिया को धोखा देने के लिए ऐसा कार्य करें।

हाथ बढ़ाकर उसने बत्तख के एक नन्हे बच्चे को उठा लिया। उसे लगा कि उसके हाथो में जो जीवन श्वास ले रहा है, उसे भी संरक्षण की आवश्यकता है, उसे भी न्याय चाहिए।

इतने में सोनपाही ने पीछे से आकर अतुल की आँखे बंद कर ली।

"माँ ! माँ ! माँ !" अतुल के मुख से जैसे उसका बचपन बोल उठा।

"तो क्या निरामिष छोड़कर बत्तख के बच्चे का शोरबा खाने की सोच रहा है ? जलपान ठंडा हो रहा है। अब तो मैं तुझे साथ लेकर ही जाऊँगी। देखता नही तू कितना दुबला हो चला है ? कुछ खाएगा नही तो काम कैसे करेगा ?"

"तुम चलो, माँ ! पीछे-पीछे मै भी आया।"

"अभी उठकर चल मेरे साथ।"

माँ के सामने बैठकर जलपान करते हुए अतुल को लगा कि आज तो वह माँ के सामने नही, भारत माता के सामने बैठा है।

ग्यारह

"भगतजी, भगतजी !" नीलमणि ने आवाज दी।

भीतर से बारीक-सी आवाज़ आई, "कौन है ?"

नीलमणि गिडगिडाया, "गाँव की पगड़ी उतर गई। तुम बैठे भक्ति करते रहो। यह एक दिन होकर रहना था। अब भी समय रहते हम कुछ तो कर सकते है।"

"कुछ बताओगे भी ?"

"तुम ओढे रहो हरि नाम की चादर। दिसाँगमुख जिए चाहे मरे, तुम्हें क्या ?"

हाथ में लालटेन उठाए भगतजी बाहर निकले। उनकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि दिसाँगमुख पर ऐसा क्या संकट आ गया है।

नीलमणि कहे जा रहा था, "और कर आओ तीर्थ-यात्रा। कोई तीर्थ रह गया

हो तो वहाँ भी हो आओ। यहाँ तो अपनी काशी नष्ट हो रही है।"

"ऐसी क्या बात हो गई ?" भगतजी ने लालटेन उठाकर नीलमणि के मुख पर प्रकाश डाला, "बुझारते बुझवाओगे या कुछ बताओगे भी ?"

"धर्मानदी और आरती को हिरासत में ले लिया गया !" नीलमणि की आवाज भर्राई हुई थी, "यह सब नारायण दारोगा का नया खेल है। वह दिसाँगमुख को पूरी तरह लाछित और अपमानित करने पर तुल गया है।"

भगतजी कुछ न समझ सके कि मामला क्या है; सोच-विचारकर बोले, "जहाँ तक आरती की बात है, तो जैसी जूनतारा वैसी ही आरती। पर धर्मानंदी की बात दूसरी है। नाम है धर्मानंदी, पाप करता है भोर सकारे ! मछलियो का शाप तो लगना ही था एक-न-एक दिन।"

"और भी तो मछुए है, अकेला धर्मानदी ही तो मछलियाँ नहीं पकडता।"

"हमारे गुरुदेव कह गए है कि ऐसा युग आएगा जब मनुष्य ही मछुए होगे और मनुष्य ही मछलियाँ।"

"ये ज्ञान-ध्यान की बाते तो पीछे हो जाएँगी, भगतजी ! अभी थाने चलना होगा। हम धर्मानदी और आरती को छुडाकर लाएँगे। नारायण दारोगा हमसे बाहर भी तो नही जा सकता। उसकी धाँधली हम नही चलने देगे।"

"तुम हो आओ थाने।"

"आप नही चलेगे ?"

"मैं वहाँ क्या करूँगा ?"

नीलमणि को भगतजी से यह उत्तर सुनने की आशा न थी। वह सोचने लगा, 'तो फिर भगतजी सदा यह दावा क्यो किया करते है कि सच्चा वैष्णव वही है जो पराई पीर जाने और पराए काम आए !'

वह अकेला ही जेलगाँव की ओर चल पड़ा, जहाँ दिसाँगमुख का थाना था। बार-बार उसे ध्यान आ रहा था कि जैसी रेणु वैसी आरती। अकेले धर्मानदी को नारायण दारोगा ने हिरासत मे लिया होता तो कदाचित् नीलमणि को इतना आश्चर्य न होता। ऐसी घटनाएँ तो प्रायः होती आई थी। पुलिस का कार्य था शांति बनाए रखना, कानून की रक्षा करना। पुलिस के कार्य मे रोड़ा अटकाने का तो प्रश्न ही नही उठता था। अपराध तो अपराध है। यह अपराध धर्मानदी करे चाहे कोई और। पर बेचारी आरती के मुँह से तो अभी दूध की बू भी नही छूटी। बचपन में बेचारी की माँ मर गई। मगरमच्छ के मुँह में चली गई थी उसकी माँ। धर्मानदी ने इतना तो अच्छा किया कि दोबारा विवाह न कराया। आरती को सौतेली माँ के हाथो पलना पड़ता तो बेचारी की भावनाएँ बचपन से ही कुचली जाती। बड़ी ही सयानी लड़की है। हाट-बाज़ार के दिन कोई उसे धर्मानंदी की सहायता करते देखे। वह तो अपने बापू के लिए लड़का बनकर काम करती है। पर

नारायण दारोगा को यह क्या सूझी कि आरती को भी पकड़कर ले गया···?

वह शीघ्रता से चला जा रहा था। उसने सोचा, 'भगतजी साथ नही आए थे तो अब्दुल कादिर को ही ले लिया होता। अब्दुल कादिर तो शायद आयु में हम दोनो से बड़ा है। उसे मैने ही तो बताया था कि जब तक वह हज पर नही जाता दिसाँगमुख को ही काबा मान ले। उसने हज पर जाने का विचार ही छोड़ दिया है। सच्चा हज तो अपना मन है। मन साफ़ हो तो सब ठीक हो जाता है।···फिर उसे विचार आया कि अतुल को क्यो साथ न ले लिया। मेरी आँखों के सामने वह कैसे गाँव-बूढा बनेगा, यदि वह इस प्रकार के मामलो को समझेगा नही ?·· ' उसे पूरा विश्वास था कि नारायण दारोगा उसकी बात रख लेगा और झट धर्मानदी और आरती को छोड देगा।

अगले ही क्षण उसे विचार आने लगा, 'अब तक तो धर्मानंदी की खूब पिटाई हो चुकी होगी। पिटाई करने मे तो नारायण बहुत चतुर है। पिटाई के नए-नए उपाय निकालता है नारायण। उलटा लटकाकर नीचे से जूते भिगो-भिगोकर लगवाने का इतना शौक शायद ही किसी और दारोगा को हो। मै धर्मानदी से कह-कर एक टोकरा मछलियाँ भिजवा दूँगा, अपने घर से दो जोड़ी बत्तख भिजवा दूँगा और एक जोडी कबूतर भी। धनसिंह से कहकर तीन मटकी दूध भी भिजवा दूँगा। यदि वह नही भेजेगा तो हमारे घर में भी तीन गाये दूध देती हैं। जिस प्रकार भी हो, मैं नारायण को खुश कर लूंगा। उसकी रग तो मेरे हाथ में है। आखिर मै दिसाँगमुख का गाँव-बूढा हूँ। मेरा बापू भी गाँव-बूढा था और अब तीसरी पीढी में भी गाँव-बूढा की पदवी हमारे पास ही रहेगी। गाँव-बूढा की पदवी के तो सौ लाभ है। सारे गाँव मे अपना ही राज है। कोई मेरी ओर आँख उठाकर भी नही देख सकता। मीरी, नेपाली और असमिया—तीनो आपस मे कितना भी झगड़े, मेरी आज्ञा तो तीनो ही मानते है···।'

चलते-चलते वह सोचने लगा, 'मै तो खाली हाथ हूँ। खाली हाथ भी किसी का काम बना है ? पुलिस का तो विभाग ही ऐसा है। ये लोग या तो नकद नारायण चाहते है, या फिर अच्छी-खासी घूस—कोई मुरगी-सूअर या कबूतर-बत्तख···।'

उसके जी मैं तो आया कि उन्ही पैरो लौटकर नारायण दारोगा के लिए मोटा-सा सूअर ही उठवा लाए। मुफ्त में तो थाने में दाल गलने से रही···। पर अब इतनी दूर आकर लौट जाना कठिन था। वह जल्दी-जल्दी क़दम रखने लगा।

जब वह थाने के द्वार पर पहुँचा तो उसने तारो की ओर देखा। अभी तो तीन घटे रात थी।

उसने अपने मन में कहा, 'मैं भी कितना मूर्ख हूँ !'

वह थाने के सामने टहलता रहा। उसके जी में तो आया कि जेलगाँव मै किसी के घर जाकर आराम करे, या कही से नारायण दारोगा के लिए थोड़ी दक्षिणा ही

लेता आए; पर उसे आज इस कार्य के लिए साहस नही हो रहा था।

धीरे-धीरे भोर हुई। प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिन-गिनकर सूरज निकला। पर थाने में अभी तक नारायण दारोगा के दर्शन न हुए।

पहरेवाले सिपाही से नीलमणि ने पूछा, "धर्मानंदी और आरती को दारोगाजी कब छोड़ रहे हैं?"

सिपाही ने बिगड़कर कहा, "यह क्यों पूछ रहे हो?"

नीलमणि बोला, "मैं गाँव-बूढ़ा हूँ।"

सिपाही ने कहा, "तो फिर गाँव-बूढ़ा होकर भी दूध-पीते बच्चे बने जा रहे हो, जैसे कुछ मालूम ही न हो। दारोगाजी को सब पता चल गया है।"

"मैं तो कल से शिवसागर गया हुआ था। दारोगाजी को मेरे आने की सूचना तो दे दो।"

"हमारी दक्षिणा?" सिपाही हँस पडा।

नीलमणि ने जेब मे हाथ डाला। जेब मे कुछ न था।

किसी प्रकार सिपाही ने दारोगाजी तक गाँव-बूढ़ा के आने की सूचना तो पहुँचा दी, पर दारोगाजी ने बाहर झाँककर भी न देखा।

बारह

जेलगाँव और आलीसीगा के बीच का रास्ता दिल से बातें करते कटा। नीलमणि की कल्पना मे उसका घर उभरता रहा।

खिसियानी बिल्ली की तरह वह अपने बागीचे में घुसने लगा तो पीछे से भगतजी की आवाज़ आई, "छुडा लाए धर्मानदी और आरती को?"

नीलमणि ने कोई उत्तर न दिया।

वह फाटक उठाकर अपने बागीचे में चला गया।

सामने लालटेन की रोशनी में अतुल कुछ पढ़ रहा था।

"आ गए, बापू?" अतुल ने उठकर नीलमणि का स्वागत किया।

नीलमणि ने मुँह फेर लिया, जैसे किसी ने उसके चेहरे पर कालिख पोत दी हो।

अतुल एक नजर में सब भाँप गया।

नीलमणि कुछ न बोला। वह आज नारायण दारोगा के हाथों बुरी तरह अपमानित होकर आया था। दारोगाजी आज पल-पल बाद गिरगिट के समान रंग क्यों बदल रहे थे? दिल खोलकर बातें भी करते थे, धमकाते भी थे और पुचकारते

भी थे। धर्मानंदी से ऐसा क्या अपराध हो गया ? उसे क्या मालूम था कि देवकात भगोडा है। यदि कलकत्ता के किसी क्रांतिकारी दल के साथ उसका संबंध है और कलकत्ता की पुलिस उसका पीछा कर रही है, तो उसके माथे पर तो नही लिखा था कि वह भगोड़ा है। यदि धर्मानदी ने उसे अपनी नाव में उस पार लगा दिया तो कौन-सा अपराध किया ?

अतुल ने कहा, "धर्मानदी काका की बहुत अधिक पिटाई तो नही की गई, बापू ? और आरती भी उलटी तो नही लटकाई गई ?"

नीलमणि कुछ न बोला। उसने कुछ कहने का यत्न अवश्य किया, पर उसके आँसू निकल आए, सिर मे चक्कर आ गया। सिर को दोनों हाथो मे थामकर नीलमणि ने कहा, "बेटा, देवकात कलकत्ता के किसी केस मे फँस गया है, और अब वह भागकर आया है। उसकी जान संकट में है। वह अबोध है और वैसे ही तुम भी हो।"

"बस इतनी बात थी, बापू ?"

"तुम मेरी बात कभी नही समझोगे।"

"मतलब ?"

"मतलब यही बेटा, कि सँभलकर और धीरे-से पग उठाओ तो गिरने का भय कम रहता है, नही तो शत्रु चारो ओर घात लगाए बैठा है।"

"कौन हमारा शत्रु है, बापू ? तुम तो व्यर्थ ही घबरा जाते हो। देवकात की देवकात जाने। धर्मानदी काका और आरती को नारायण दारोगा आज नही तो कल छोड़ देगा। उनके माथे कोई अपराध नही मढ़ा जा सकता।"

नीलमणि भूमि पर बैठ गया। उसने अपना सिर दोनो हाथो में थाम रखा था।

"गोली छाती मे, फाँसी गले मे !" नीलमणि ने दोनो हाथ आकाश की ओर उठाकर कहा, "शत्रु घात लगाए बैठा है।"

"नारायण दरोगा ने अवश्य ही कुछ कहा होगा, बापू ! दारोगा ने क्या कहा है ?"

नीलमणि दोनो हाथों से सिर थामे रहा और बलपूर्वक बोला, "देवकात कब तक भगोड़ा बनकर छिपा रहेगा ? नारायण दारोगा उसे पकड़कर ही चैन लेगा। देवकात फाँसी पर झूल जाएगा। यही उसकी इच्छा भी थी। पर तुम अब भूलकर भी गाँव में देवकात का नाम न लेना, नही तो हमारी बहुत हानि होगी, बेटा ! मेरी सबसे बड़ी इच्छा यही है कि तुम्हें अपनी आँखो के सामने गाँव-बूढ़ा की पदवी पाते देखकर ही आँखें बंद करूँ।"

अतुल ने कुछ उत्तर न दिया।

तेरह

राखाल काका बाकी यात्रियों के साथ बस से उतरे। पहले वह चाँदडूबी से गौहाटी पहुँचे थे, फिर गौहाटी से जोरहाट के रास्ते शिवसागर की लंबी यात्रा की। तेरह मील का सफर अभी सामने था जिसे पैदल ही तय करना था। बडे आराम से काका ने अपना बिस्तर कधे पर रखा।

यह बोझ तो बहुत अधिक न था। काका ने केवल एक बार पीछे मुडकर देखा। पुराने मॉडल की बेढगी-सी बस वहाँ खडी थी। रास्ते-भर इसने कितनी धूल उडाई थी, कितने धक्के लगे थे, कितनी बार यह उलटते-उलटते बच गई थी, यह कहानी बहुत लबी थी। राखाल काका को यह कहानी तिल-तिल याद थी। वह मन-ही-मन हँस दिया। यह भी कोई सवारियों मे सवारी है। हमने तो हाथियो की सवारी की है—एक वर्ष नही, दो वर्ष नही, पूरे तीस वर्ष—एक कम न एक अधिक, तीस वर्ष, पूरे तीस वर्ष !···

वह शिवसागर से दिसॉगमुख जा रहा था। आज से तीस वर्ष पहले भी यह सडक कच्ची थी और आज भी वैसी ही है। पहले जितने गड्ढे नही है। इसी महीने नई मिट्टी डाली गई है। सरकार को ध्यान तो है।···

सडक के दोनो ओर के पेड़ कितने बदल गए थे। पिछली बार जब वह चॉदडूबी के जंगल से दिसॉगमुख आया था, इस बात को सात वर्ष हो गए। सड़क के दोनो ओर के पेड काका की कल्पना में कुछ दब-से गए थे, अब वे फिर उभर रहे थे।

हर कदम घर की ओर उठ रहा था। अपना घर किसे प्रिय नही होता? अपने घर को जानेवाली सडक किसे प्रिय नही होती?

तीस वर्ष पहले उसका चाँदडूबी जाने का संकल्प इतना ही दृढ था, जितना अब लौट आने का था। सात वर्ष पहले भी वह दिसॉगमुख आया था। अपने गाँव आना किसे अच्छा नही लगता? अब तो वह सदा के लिए चाँदडूबी से लौट रहा था।

दिसॉगमुख में कोई हाथी न होगा। जंगल तो दिसाँगमुख में भी है— बलमा बिल का जंगल और फाकुली बिल का जंगल। दोनो झीलों के चारों ओर जंगल-ही-जंगल है। बाघ तो है इस जंगल में, हाथी नही है। हाथियो के लिए तो चाँदडूबी ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

इसी सडक से वह पैदल शिवसागर पहुँचा था—तीस वर्ष पहले। तब वह जवान था। शिवसागर से गौहाटी और गौहाटी से चाँदडूबी; उसने पैदल ही की थी यह ढाई सौ मील से ऊपर की यात्रा। उन दिनो उसने यह यात्रा कोई बीस दिन में

की थी। सवेरे से साँझ तक वह चलता ही रहता था; दो जगह बीमार भी तो हुआ था। अब तो वे दिन बहुत पीछे छूट गए थे।

सड़क के दोनो ओर पेड थे। अब वह शिवसागर से बहुत दूर निकल आया था। सडक के दोनो ओर थोडे-थोडे अतर पर कई गाँव थे। दोनो ओर दूर-दूर तक खेत चले गए थे। खुले पठार मे धान की खेती होती थी। यह पठार तो दूर तक चला गया था।

राखाल काका को चाँदडूबी के विशाल जगल की याद आ गई। वहाँ के हाथियो का ध्यान आते ही काका की कल्पना मे नार्मन साहब का चेहरा उभरा। तीस वर्ष पहले उसने यह चेहरा पहली बार देखा था और वह नार्मन साहब ही का होकर रह गया था, जैसे वह दिसाँगमुख से चलकर चाँदडूबी में नार्मन साहब ही को मिलने गया था। यह बात उसने नार्मन साहब से भी कह दी थी। यह सुनकर नार्मन साहब आनद-विभोर हो उठे थे। उस समय राखाल काका भी खुशी से फूला न समाया था। अब तो काका अपने गाँव को लौट रहा था; उसे उस दिन से भी कही अधिक आनद आ रहा था। नार्मन साहब तो पिछले महीने अपने देश को लौट जाने का निश्चय कर चुके थे। तब काका को मालूम हुआ कि वे कितनी देर एक-दूसरे के साथ रहे थे।

यह जानते हुए भी कि अब रास्ता कितना रह गया, काका वैसे ही किसी आने-जानेवाले से पूछ लेता, "दिसाँगमुख कितनी दूर है ?"

इसका उत्तर तो यही होता, "पास ही तो है दिसाँगमुख !"

यह सुनकर काका को कितनी खुशी होती थी। खुशी तो होती ही है। घर का रास्ता जितना भी कट जाए, घर जितना भी समीप आ जाए, उतनी ही उमगे बढती जाती है।

यह सतोष तो काका को सदा ही रहेगा कि वह तीस वर्ष का समय विशाल और घने जगल मे गुजारकर आ रहा है। काका को खुशी थी तो यही कि वह अपनी जन्मभूमि को लौट रहा है, जहाँ दूर तक फैला हुआ शस्य-श्यामल पठार है; जहाँ बचपन के चिर-परिचित लोग होगे। हाथी भले ही न होगे, आदमी तो होगे। क्या आदमी हाथियों से अच्छे होते है ? अरे बाबा, हाथी तो बहुत अच्छे होते हे। बडे-बडे कार्य करते है वे हाथी। शात, गंभीर और बलवान्, वे सब हाथी तो पीछे रह गए।...

काका धुन मे मस्त चला जा रहा था। पीठ पर बिस्तर का बोझ कुछ कम न था। उसे ध्यान आया कि हाथी तो बहुत बोझ ढोते है। हाथियो के दल नदी-किनारे पानी पीते है, तो उनकी लंबी परछाइयाँ अस्त होते सूर्य के साथ रात्रि के अधकार में विलीन हो जाती है। एक स्थान पर रुककर काका पीछे की ओर देखने लगा, जैसे चाँदडूबी का जंगल यहाँ से अधिक दूर न हो और वह वहाँ खड़े-खड़े

पानी पीते हाथियों को देख सकता हो।

काका चाहता था कि कोई तो उसे पहचानकर कहे, "कहो राखाल काका, चाँदडूबी से कब चले थे ?"

काका जानता था कि उसका आकार-प्रकार दूसरो से भिन्न है, उसका बोल-चाल का लहजा भी दूसरों से नही मिलता। जो आदमी हाथियो के बीच तीस वर्ष बिताकर आ रहा है, वह दूसरों से भिन्न कैसे नही होगा ? हाथी कितना बुद्धिमान होता है, यह तो कोई मुझसे पूछे। हाथी में दोष भी होते है। क्या मनुष्य में दोष नही होते ? दोष-ही-दोष देखूँ, यह तो मेरा धर्म नही है। मेरे गुरु ने तो यही सिखाया है कि पहले गुण देखो और पीछे दोष।

अब दिसाँगमुख दूर न था। यहाँ से कोई मील-भर होगा जेलगाँव, जो दिसाँग-मुख की पहली बस्ती थी। कुछ लोग जेलगाँव को दिसाँगमुख से अलग गिनने लगे थे। अलग कहाँ था जेलगाँव, यह तो दिसाँगमुख की ही एक बस्ती थी। राखाल काका का घर आलीसीगा की मीरी बस्ती मे था। साँझ से पहले-पहले वह अपने घर के द्वार पर पहुँच जाना चाहता था।

उसकी कल्पना में नार्मन साहब का चेहरा उभरा। उनसे तो मैंने अच्छी-अच्छी बाते सीखीं, मन लगाकर कार्य करना सीखा। कार्य तो छोटा नही होता। कार्य न करो तो मस्तिष्क को जंग लग जाती है। जग तो लोहे को भी खा जाती है। कार्य करना ही अच्छा है, कोई-सा भी कार्य क्यो न हो—यही तो कहा करते थे नार्मन साहब। यह भी तो कहा करते थे, 'जब एक बार निश्चय कर लो कि यह कार्य करना है, तो उससे पीछे न हटो।' मै आलीसीगा पहुँच जाऊँ, नार्मन साहब की बाते तो मै सबको सुनाऊँगा। कल्याण भगत मुझे टोककर कहेगे, 'कोई ज्ञान-ध्यान की बात करो।' पास से अब्दुल कादिर अपनी ही बात छेड देगा। वह अभी तक हज के लिए नही जा सका होगा। नीलमणि गाँव-बूढ़ा तो अब भी उससे यही कहता होगा, 'मियाँ जी, जब तक हज को नही जा सकते, दिसाँगमुख को ही काबा समझ लो।' मियाँजी ऐसा नही कर सकते। मरने से पहले एक बार तो उन्हें हज पर हो आना चाहिए। यह कार्य आवश्यक है तो इसे करने मे देर नही लगानी चाहिए। भगतजी ने तो कोई तीर्थ नही छोड़ा होगा। पिछली बार मै दिसाँगमुख आया था, तो भगतजी रामेश्वरम होकर आए थे। एक हमारा नीलमणि है कि दिसाँगमुख को ही काशी मान बैठा है। धनसिंह का लक्ष्य है चाय पिलाना। रतन को हजामत बनवानेवाले चाहिए। नीलमणि का बड़ा बेटा अतुल तो अब जवान हो गया होगा। अतुल का छोटा भाई मखना भी अब दस वर्ष का हो गया होगा; तीन वर्ष का था, जब मै पिछली बार दिसाँगमुख आया था। तब तो मेरी गोद से उतरता ही न था। अब तो मुझे भूल गया होगा। नए सिरे से पहचान जोड़नी होगी। सुना है चित्ताप्रसाद का कार्य अच्छा चल निकला है। सस्ते भाव अंडी और मूगा खरीद-

कर महँगे भाव बेच डालता है। अपना-अपना कार्य है। धर्मानंदी उसी प्रकार मछलियाँ पकड़ता होगा। चेतन नावरिया और बादल नावरिया में उसी प्रकार झगडे चलते होगे। चेतन की नाव में तो इजन लगा है, जो डीज़ल आयल से चलता है। यह नाव तो स्टीमर-घाट के मैनेजर हडसन साहब की है; इस नाव में दोगुनी सवारियाँ बैठती है। बेचारे बादल नावरिया का डीजल आयल तो उसकी भुजाओं मे प्रवाहित होनेवाला रक्त है। वह तो चेतन से आधी सवारियाँ ही बैठा सकता है। इसलिए वह चेतन की नाव से दोगुना किराया लेता है एक सवारी से एक फेरे का, तो कौन बुरा मानता है ? पर बेचारे बादल को चेतन की नाव चलने के पश्चात् ही तो बची-खुची सवारियाँ मिल सकती है। इसी को लेकर कभी-कभी दोनों में झगडा हो जाता है। गाली बकने से तो पेट नही भरता। सिर-फुटौवल से भी कहाँ भरता है पेट ? पेट तो मेल-मिलाप से कार्य करने पर ही भरता है।

जेलगॉव पीछे छूट गया था। अब तो सामने बलमा बस्ती नजर आ रही थी। उसे ध्यान आया कि नार्मन साहब ने उसका पता तो लिख लिया था। कह तो गए थे कि विलायत से चिट्ठी लिखेगे। भूल तो न जाएँगे। कल्याण भगत को तो मैने पिछली बार भी नार्मन साहब की बाते सुनाई थी। सामने से भगतजी 'हरि-हरि हे माधव' की रट लगाने लगते थे, जैसे हरि भी कोई हाथी हो। दूसरे लोगों और भगतजी में बस इतना ही अंतर है कि भगतजी बात-बात मे 'हरि-हरि हे माधव' कहते है, तो दूसरे लोग 'बड डिकडारी' की रट लगाते है। उन्हें हर काम बहुत बड़ी डिकडारी का कारण प्रतीत होता है। डिकडारी या कठिनाई क्या है ? जो काम करना ठहरा उसे तो करना ही होता है। मैं तो कभी 'बड़ डिकडारी' नही कहता। मै तो 'हरि-हरि हे माधव' भी नही कहता। हरि तो भला हाथी का रूप कैसे धारण करेगा ? पिछली बार मै दिसॉगमुख आया था, तो भगतजी ने एक राजा की कथा सुनाई थी। वह राजा अगस्त्य ऋषि के शाप से हाथी बन गया था, कई वर्षो तक वह जगल में घूमता रहा; 'हरि-हरि हे माधव' की रट लगाने से वह हाथी फिर मनुष्य-योनि में आ गया था। हाथी की योनि और मनुष्य की योनि—दोनो मे अतर तो अवश्य है। हमारे नार्मन साहब तो हाथी को भी 'जेटलमेन' कहते थे। अब बलमा बस्ती पीछे छूट गई थी। सूर्य अस्त होने मे अभी देर थी।

काका के कदम अब उतनी तेजी से नही उठ सकते थे। वह बहुत थक गया था।

आलीसीगा बाज़ार में धनसिंह और रतन ने राखाल को प्रणाम किया। फिर चित्ताप्रसाद ने काका को चाय के लिए रोका, पर काका घर से लौट आने का वचन देकर आगे बढ़ गए।

हाट-बाज़ारवाले मोड़ पर अतुल मिल गया। उसने कहा, "प्रणाम काका !"

राखाल ने अतुल के सिर पर प्यार का हाथ फेरकर पूछा, "गाँव में सब सुख-

शाति तो है ? हमारे गॉव-बूढ़ा के घर में तो सब कुशल-मंगल है ?"

अतुल ने मुसकराते हुए काका का बिस्तर अपने कधे पर ले लिया।

"तुम चलो, अतुल !" कहा ने कहा, "मै ब्रह्मपुत्र देवता से मिल आऊँ। देवता के दर्शन किए बिना मन मानता नही।"

अतुल घर की ओर चल दिया और राखाल काका ब्रह्मपुत्र की ओर उतर गए।

सडक से ब्रह्मपुत्र का अतर काका ने कोई आध घंटे में तय किया। आज काका बहुत थक गए थे। ब्रह्मपुत्र शात गति से बह रहा था।

घुटने टेककर काका ने दोनो हाथो से धरती का सहारा लिया। फिर काका पूरी तरह झुककर ब्रह्मपुत्र का पानी पीने लगे; फिर दोनो हाथो से पानी लेकर काका पानी गिराने लगे।

सूर्य अस्त हो रहा था। दो मेघ-खंडो के बीच सूर्य कितना दिव्य प्रतीत हो रहा था, जैसे सूर्य ने काका को पहचान लिया हो। आकाश पर एक नयनाभिराम चित्र अंकित हो गया था—दो हाथी दोनो ओर से अपनी-अपनी सूँड उठाकर काका का अभिवादन कर रहे थे !

चौदह

धर्मानदी और आरती अभी तक पुलिस की हिरासत मे थे। देवकात न जाने कहाँ छिप गया था। नारायण दारोगा की यह ड्यूटी लगाई गई थी कि वह देवकात को गिरपतार करके पेश करे। पुलिस को सदेह था कि देवकात का सबध बगाल के एक आतकवादी दल से है और उस दल की ओर से उसे असम मे सरकार के विरुद्ध क्राति की आग भड़काने के लिए भेजा गया है।

एक-दो बार राखाल काका भी नारायण दारोगा के पास हो आए थे और दारोगा ने साफ-साफ़ कह दिया था कि जब तक देवकात हाथ नही आ जाता, धर्मानदी और आरती को छोडना कठिन है।

साधन मीरी तो उलटा अतुल को भी इस मामले मे फँसाने की चिता मे था। उसने राखाल काका के लाख मना करने पर भी नारायण दारोगा के सामने जाकर गवाही दी कि जहाँ तक उसे ज्ञान है, अतुल ही देवकात को धर्मानदी के पास ले गया था। यदि गॉव के कुछ लोगो ने, जिनमे धनसिह, अब्दुल कादिर और कल्याण भगत के अतिरिक्त राखाल काका भी सम्मिलित थे, बीच-बचाव न किया होता, तो बैठे-बैठाए नीलमणि पर संकट का पहाड़ टूट पड़ता।

साधन को बिलकुल आशा न थी कि राखाल काका मीरी होकर नीलमणि का साथ देगे। उसने तो अब्दुल कादिर को भी यह पट्टी पढानी शुरू कर दी थी, "एक प्रकार से मीरी और मुसलमान का मेल हो सकता है। जब मुसलमान और मीरी दोनो ही मुर्दे को दबाते है, फिर कौन कह सकता है कि मुसलमान तो असमिया के ही समीप हैं? यह और बात है कि असमिया और मुसलमान दोनो असमिया बोलते है और इस हिसाब से मुसलमानो की गिनती भी असमिया में ही की जाती है।"

राखाल काका के यहाँ पहुँचने के दूसरे दिन ही उनकी अनुपस्थिति मे साधन उन्हे 'हाथी काका' कहकर उनका उपहास करने लगा और वह काका के लिए पुरानी लोकोक्ति बरतने में भी न हिचकिचाया, 'वह हाथी चुराए लिए जा रहा है और बीच डगर मे बैगनचोर को पकड़ना चाहता है!' सुननेवालो ने यह खबर राखाल काका को भी जा सुनाई, पर क्या मजाल कि उनके माथे पर एक भी बल पडा हो, बल्कि सुनकर हँसते रहे।

राखाल काका धीरे-धीरे कार्य करने के अभ्यस्त थे। उनके बोलने के ढग मे हाथी को उठाने और चलाने का ढग था। बात-बात मे हाथी का उल्लेख करना उन्हे रुचिकर था। उनका सकल्प दृढ था। वह किसी कष्ट से घबराते न थे। यद्यपि काका ने अपने आपको विवाह के चक्कर से अलग ही रखा था, फिर भी उनका विश्वास था कि स्त्री को भी उसी प्रकार सिधाने की आवश्यकता है जैसे हथिनी को।

धर्मानंदी और आरती किसी प्रकार पुलिस के फदे से निकल आएँ, राखाल काका को तो यही चिता खाए जा रही थी। जिस दिन वे दिसाँगमुख पहुँचे थे, धर्मानंदी और आरती के इस फदे में फँसने का वह तीसरा दिन था। आज था पाँचवाँ दिन। काका ने कुछ खाया न पिया, उन्हे अतुल की प्रतीक्षा थी।

काका के पास तो बडे-से-बडे संकट के लिए भी हाथी को सिधाने से बढ़कर दूसरी उपमा न थी। यहाँ पहुँचने के पहले दिन ही ब्रह्मपुत्र देवता के दर्शन करने के पश्चात् जब काका नीलमणि के घर पहुँचे थे, तो अतुल ने ही सर्वप्रथम उनको धर्मानंदी और आरती के सकट की कहानी सुनाई थी। उसी रात काका ने थाने मे जाकर नारायण दारोगा से कहा था, "धर्मानदी को आप भले ही चाहे जितने दिन रखे, पर आरती को तो झट छोड देना चाहिए।" फिर काका ने बलपूर्वक कहा था, "लड़की को थाने मे लाने का मामला तो बहुत टेढ़ा है। इसमें तो सारे दिसाँगमुख के मान-अपमान का प्रश्न है।"

पर नारायण कब सुननेवाला था?

काका ने नार्मन साहब की प्रशसा आरंभ कर दी, "वह तो इतने भले आदमी थे कि जब उन्हे पता चलता था कि चाँदडूबी का अमुक हाथी बीमार है, तो रात-रात-भर जागते रहते थे।"

नारायण ने हँसकर कहा था, "यह तो सरकार की पगड़ी पर हाथ डालने का मामला है। इसमें तो नरमी नही बरती जा सकती।"

कल भी सारा दिन काका ने कुछ नही खाया था। वह तो अपनी ही झोंपड़ी में जाकर रहना चाहते थे, पर गाँव-बूढा ने उन्हे बिलकुल न छोडा। अतुल भी यही हठ करता रहा था कि अभी वह यही रहें। उनके लिए पोखर के किनारेवाली नई झोंपडी खाली कर दी गई थी, जो अभी कुछ ही दिन पहले अतुल ने अपने लिए बनवाई थी। कल काका ने प्रातः और सायंकाल एक-एक गिलास चाय अवश्य पी थी, पर नीलमणि और सोनपाही के बार-बार अनुरोध करने पर भी काका के मुँह मे चावल का एक भी दाना नही गया था। कल्याण भगत और अब्दुल कादिर भी दो-तीन बार मिलने आए थे। उन्हें भी काका के कुछ न खाने की बहुत चिंता थी; पर वे जानते थे कि काका तो अब उसी समय अनशन तोडेगे, जब धर्मानंदी और आरती छूटकर आ जाएँगे, या कम-से-कम नारायण दारोगा आरती को ही अपने फंदे से निकाल देगा।

काका का विचार था कि नारायण दारोगा भी एक प्रकार का जंगली हाथी है और यत्न करने से उसे अवश्य सिधाया जा सकता है, पर नीलमणि कल रात उनकी इस बात पर देर तक हँसता रहा था। काका ने बहुत गभीर होकर कहा था, "जैसा हाथी का संकट, वैसा ही मनुष्य का, सब ठीक हो जाएगा; बुद्धि चाहिए और समय भी!"

पास से अतुल ने पूछ लिया था, "तो क्या आप ब्रह्मपुत्र के संकट को भी हाथी का ही संकट कहेगे, काका?"

इसके उत्तर मे भी काका ने यही कहा था, "हाँ-हाँ, मेरे लिए तो ब्रह्मपुत्र की बाढ ऐसे ही है, जैसे सौ हाथी भागे चले आ रहे हो। बड़ी बाढ़ के लिए पाँच सौ हाथी की गिनती कर लो। महावत चाहिए, फिर कुछ भी कठिनाई नही रह जाती।"

आज अतुल कहाँ चला गया? बार-बार काका अपने मन से पूछ रहे थे। थाने गया होगा। मुझे भी क्यो न ले गया? उसने सोचा होगा कि एक रात और एक दिन की भूख ने ही काका को बहुत कमजोर कर दिया है और अब उनको आराम करना चाहिए, पर आराम करने के लिए तो है ही नही यह जीवन। कुछ-न-कुछ तो करना ही होता है। नार्मन साहब तो यही कहा करते थे। अपने देश में पहुँचकर भी तो वह खाली हाथ नही बैठे होगे।

चलते समय नार्मन साहब ने बताया तो था, "अब हम उसी नगर में जाकर रहेंगे, जहाँ हमारा जन्म हुआ था; और जहाँ तक बन पड़ेगा, हम अपने लोगों की निष्काम सेवा करेगे!"

यहाँ मैं भी तो अब यही करूँगा। मुझे तो आते ही कार्य मिल गया। जिस

समय मै यहाँ पहुँचा और धर्मानंदी की गाथा सुनी, अपना सुख-चैन सब भूल गया। यदि नारायण दारोगा मेरी बात मान लेता, तो उसका क्या घट जाता? धर्मानंदी को न छोड़ता तो न सही, आरती को तो छोड़ देता। आज तो मुझे गाँव के सौ-पचास आदमी साथ लेकर जाना चाहिए। मैं देखूंगा कि नारायण कैसे आरती को नही छोडता। आज कल्याण भगत भी नहीं आए। अब्दुल कादिर भी नहीं आया। धनसिह और रतन तो क्या शकल दिखाएँगे? उन्हें चाय पिलाने और हजामत करने से काम। कल तो आधार और साधन मीरी भी आए थे, आज वे भी नही आए। साधन तो शायद नाराज हो गया। अब मै उसकी झोंपड़ी में जाकर क्या करता? अपना तो न कोई बेटा है न बेटी। साधन दूर के संबंध में मेरा भतीजा अवश्य है, पर क्या रक्त का संबंध ही सबसे बडा संबंध होता है? अब मैं धर्मानंदी की चिता में घुला जा रहा हूँ तो इसमें कौन-सा रक्त का संबंध है?···

दोपहर को भगतजी आ निकले। उनके पीछे-पीछे गुड़गुड़ी पर कश लगाता नीलमणि भी आ गया। बागीचे में बत्तखों की कैं-कैं ने एक स्वरताल बाँध रखा था। कभी-कभी ये बत्तखे सामनेवाले पोखर में तैरने लगती।

भगतजी बोले, "बोहाग बिहू में सात दिन रह गए?"

"चैत के अतिम सात दिन शेष हैं।" नीलमणि ने गुड़गुड़ी पर कश लगाया, "यह हिसाब तो सीधा है। बोहाग बिहू में सात ही दिन तो रह गए।"

बोहाग बिहू से हटकर बात किस प्रकार जगन्नाथपुरी की रथ-यात्रा पर जा पहुँची, इसका राखाल को पता ही न लगा।

"अब अगली तीर्थ-यात्रा पर राखाल को भी अपने साथ ले जाना, भगतजी!" नीलमणि ने हँसकर कहा।

"यदि तुम भी संकल्प कर लो तो आज ही तय कर लें।" भगतजी गंभीर होकर बोले, "अपना क्या है? जूनतारा का विवाह बोहाग बिहू के पश्चात् ही करने का विचार है। फिर तो हमें छुट्टी-ही-छुट्टी है।"

"कोई लडका ठीक कर लिया?" नीलमणि ने गुड़गुड़ी को मुँह के पास लाकर कश लगाया, "कहाँ ठीक किया लड़का? माझुली के किसी गाँव में? लोग हँसेंगे; 'माझुली से आया हुआ' वाला व्यग्य उस पर तो फिट बैठा करेगा अर्थात् महामूर्ख। बात तो ठीक है। माझुलीवाले अभी हम लोगो से तीन सौ वर्ष पीछे हैं। आप हैं कि केवल इसी कारण कि माझुली में चार बड़े वैष्णव सत्र विद्यमान हैं, जूनतारा को माझुली में ब्याहने का संकल्प कर चुके हैं। इसमें तो राखाल की सलाह अवश्य ले लो, भगतजी।"

"राखाल को तो माझुली अप्रिय न होगी। क्यों, राखाल भाई?" भगतजी मुसकराए।

राखाल चुप रहा।

भगतजी ने अपने बेटे सुधीर की प्रशंसा आरंभ कर दी। सुधीर का विवाह पिछले वर्ष हो गया था। घर में बड़ी समझदार बहू आई थी। शिकारी गाँव की लड़की थी। माझुली में शिकारी गाँव तो प्रसिद्ध था। भगतजी को शिकारी गाँव के साथ लगे हुए कौसारी गाँव में जूनतारा के लिए एक लड़का ठीक होने की आशा थी।

अचानक बत्तखों की कैं-कैं और पक्षियों की ध्वनि के ऊपर उभरकर एक पतली-सी और अत्यंत वेदना-भरी आवाज सुनाई देने लगी। नीलमणि ने गुड़गुड़ी परे रखते हुए कहा, "अब मैं गुड़गुड़ी को मुँह नही लगा सकता।"

"ऐसी क्या बात हो गई ?" राखाल काका ने झट पूछ लिया।

"यह कोयल की कूक है !" नीलमणि ने आँखों के कोनों में आश्चर्य और मुसकान समेटते हुए कहा, "सुन नही रहे ? कोयल कूक रही है। मै तो अपने हृदय मे कोई पुरानी वेदना जागते देख रहा हूँ।"

"तो यह कहो कि अभी हृदय में यौवन की तरगें शेष हैं।" भगतजी मुसकराए।

वह देर तक कोयल की कूक सुनते रहे और फिर वार्त्तालाप का क्रम न जाने किस-किस प्रसंग पर घिसटता रहा। राखाल काका अन्यमनस्क से 'हूँ-हाँ' करते रहे। उनके सामने तो एक ही प्रश्न था कि नारायण दारोगा को कैसे सिधाया जाए।

इतने मे अतुल दौड़ता हुआ आया।

पुलिस ने धर्मानंदी और आरती को छोड़ दिया था और वह उन्हें घर पहुँचा आया था। वह बहुत खुश था।

उस पर प्रश्नों की बौछार होने लगी। वह बड़े धैर्य से उत्तर देता रहा; जैसे यह दिसाँगमुख की विजय हो, जैसे दिसाँगमुख का अपमान होते-होते बच गया हो।

राखाल धीरे से उठकर धर्मानंदी से मिलने चला गया।

धर्मानदी अपना जाल उठाकर घर से निकलनेवाला ही था कि राखाल वहाँ जा पहुँचा।

"आओ, दादा !" धर्मानंदी ने मुसकराते हुए स्वागत किया, "चाँदडूबी से कब आए ?"

धर्मानदी के मुख पर कोई घबराहट न थी; आरती के मुख पर भी कोई लाज न थी। जो कुछ हुआ, उसका उन्हें तनिक भी खेद न था। जो कुछ उन्होंने किया, उस पर उन्हे गर्व था।

राखाल यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। बाते करते-करते वह दूर तक उनके साथ गया। धर्मानंदी ने नाव पानी में उतारी, राखाल किनारे पर ही खड़ा रहा। वही धधा था, वही पुरानी नाव; आरती के हाथ में था चप्पू और धर्मानंदी के हाथ

में था जाल, जो उनके जीवन का अवलंब था।

पुरानी नाव चंचल लहरों पर थिरकती जा रही थी। बूढ़ा राखाल अपनी कमर को सीधा रखते हुए आकाश की ओर देखने लगा जो आज स्वयं ही अपनी नीलिमा पर मुसकरा रहा था; फिर वह वायु में रमी हुई सुगध पर विचार करने लगा, यह तो नेपालियों की चितालिया बस्ती की ओर से आ रही है, जिसके पीछे दिसाँग नदी के साथ-साथ दूर तक फाकुली बिल और बलमा बिल का जंगल चला गया है।···फिर जब राखाल ने देखा कि धर्मानंदी की नाव आँख से ओझल हो गई तो वह उस बड़ी नाव को निहारने लगा जिस पर धर्मानंदी ने झोंपड़ी बना रखी थी। यह नाव सदा यही बँधी रहती थी। बलमा बस्ती में अपना घर छोड़कर बहुत दिनों से धर्मानंदी नाव पर बनी झोंपडी में रहने लगा था।

वहाँ खडे-खड़े राखाल अपनी कल्पना के पर्दे उठाकर आज से सात वर्ष पहले का चित्र देखने लगा···धर्मानदी गंभीर मुद्रा में आरती से कह रहा है—तू मेरी बेटी नही आरती, तू मेरा बेटा है। फिर अपना तो धंधा ही ऐसा है, बेटा! सारा दिसाँगमुख एक ओर, तेरा बापू एक ओर। अपना तो यही विचार है, बेटा!··· आरती सामने से कुछ नही बोलती। धर्मानदी फिर कहता है—मछुए की बेटी किसी से दबकर रहे, यह तो उसके धधे की पुकार नही है, बेटा! आज से तू मेरे साथ चला कर। तेरे हाथ में चप्पू रहे, मेरे हाथ में जाल। हम देखेंगे, कैसे नही मिलती मछलियाँ···मस्तिष्क को झटका-सा लगा, राखाल ने सँभलकर सोचा—सात वर्ष बाद आरती वैसी ही बन गई, जैसी एक मछुए की बेटी होनी चाहिए।

पंद्रह

अतुल जानता था कि ब्रह्मपुत्र की बाढ़ को भागते हुए हाथियों के झुंड से उपमा देना ठीक नही, पर लोगों के विरोध की बाढ़ तो बहुत कुछ वैसी ही थी। सबसे पहले कल्याण भगत के मुख से ही यह आवाज निकली, "आज आरती थाने गई, कल जूनतारा जाएगी!"

फिर तो हर कोई अपनी बेटी या बहन का नाम जोड़कर इस आवाज को आगे बढ़ाने लगा, और अब जब धर्मानदी और आरती को छूटकर आए कई दिन हो चुके थे, लोग इस बात में नमक-मिर्च लगाकर इसे फैला रहे थे। साधन मीरी को भी अपना मनोरथ सिद्ध करने का अवसर मिल गया। वह कह रहा था, "भीतर से देवकात और अतुल दोनों एक है। धर्मानंदी बेचारा तो निर्दोष है। वह तो अतुल के कहने पर ही देवकात को उस पार छोड़ने गया था।" भगतजी थे कि धर्मानदी

और अतुल दोनो पर ही दोष थोप रहे थे।

धनसिह की दुकान पर आरती का उल्लेख कभी 'बिन सिधाई हथिनी' के रूप में किया जाता, कभी उसे 'जंगल की हिरनी' कहकर बात उछाली जाती। लड़की होकर आरती अपने पिता के साथ मछलियाँ पकड़ने जाए, यह बात लोगों को बुरी तरह खटकने लगी, "आरती दिसाँगमुख का नाम डुबाएगी। वह शिवसागर की लडकियो के समान साडी क्यो पहनती है? वह सिर उठाकर क्यो चलती है? बड़ों-बडों के मुँह आते वह तनिक भी क्यो नही झिझकती?"

ऐसी-ऐसी बाते आरती के सिर थोपकर अनेक व्यंग्य कसे जाते, और अगले ही क्षण बात का रुख बदलकर कहा जाता, "यदि देवकांत और अतुल जैसे छोकरो को आपा-धापी करने की छूट दी गई, तो सरकार हमारे विरुद्ध हो जाएगी। फिर पुलिस को अवसर मिल जाएगा कि जैसे उस दिन आरती को थाने मे बुला भेजा था, वैसे ही दूसरों की बहू-बेटियों को हिरासत में लेकर मामले की पूछताछ करे।"

भगतजी ने तो अतुल से बात करना भी छोड दिया था, जैसे अतुल पर सबसे अधिक क्रोध भगतजी को ही आ रहा हो, राखाल काका के कहने पर भी वह टस-से-मस न हुए। गाँव मे दूसरे लोगो से भी राखाल काका ने बहुत कहा-सुना। लगता था कि जितने सहज भाव से काका ने जंगली हाथियों को सिधाया होगा, लोगो को सिधाना संभव नही।

घर मे नीलमणि भी चुप रहने लगा था। भगतजी की बात उसे ठीक प्रतीत होती थी। साथ ही वह सोचता था कि इस प्रकार तो सरकार मे बदनामी हो जाएगी और अतुल को गाँव-बूढ़ा की पदवी नही मिल सकेगी। नारायण दारोगा के पास जाकर वह बहुत गिड़गिड़ाया कि वे अतुल को समझाएँ।

एक दिन अतुल को थाने मे बुलाकर नारायण दारोगा ने पहले तो एक घटे तक उसे पूछा तक नही कि वह किस खेत की मूली है, फिर उसे भीतर बुलाकर पुचकारा, "तुम्हारा तो बाबा भी गाँव-बूढा था। फिर गाँव-बूढा की पदवी तुम्हारे बापू को मिली। अब तुम्हारा बापू चाहता है कि यह पदवी तुम्हे मिल जाए। यह कुछ भी कठिन नही। तुम देवकात का पता बता दो, तो हम देवकांत को बिलकुल पता नही चलने देगे कि उसका भेद तुमने ही बताया है।"

"मुझे देवकात का बिलकुल पता नही।" अतुल ने बलपूर्वक कहा।

नारायण ने दोबारा पुचकारा :

"तो फिर धर्मानंदी को समझाओ कि वह सहायता करे। सरकार इनाम देगी। सरकार कोई भी हो, लोगों का काम है सरकार की आज्ञा मानना और कानून का पालन करना। कानून तो आवश्यक है। कानून के बिना तो शाति स्थिर नही रह सकती। शांति न हो तो किसी वस्तु का ठिकाना ही न रहे। जब अहोम राजा थे, तब उनका कानून चलता था; अब अँग्रेज़ का कानून है। बहुत सोचकर बनाया गया

है कानून। जो मनुष्य कानून को उलट देना चाहता है, कानून पर टिकी हुई सरकार को समाप्त कर देना चाहता है, क्या कानून उसे कभी क्षमा कर सकता है?"

अतुल कुछ न बोला।

नारायण ने फिर कहा, "तुम चाहो तो तुम्हारे बापू की यह इच्छा पूरी हो सकती है कि एक दिन उसके स्थान पर तुम गाँव-बूढ़ा बनो। केवल एक ही शर्त है कि देवकात का पता चलाने में सरकार की सहायता करो। देवकात हाथ लगे, तो मेरा भी पद बढ़ जाए।"

अगले दिन अतुल ने माँ को बताया तो वह बोली, "देवकात तो सरकार की आँख मे काँटे की तरह चुभता है। तुम कुछ दिन बचकर रहो। मै तो कहती हूँ कि तुम धर्मानंदी से भी न मिला करो। कुछ दिनो में बात दब जाएगी। यदि देवकात ने सरकार का कुछ बिगाड़ा है, तो उसका दड उसे अवश्य मिलेगा। तुम क्यों मुफ्त मे बदनाम होते हो?"

अतुल ने कुछ उत्तर न दिया। माँ ने समझा कि उसकी बात से अतुल प्रभावित हुआ है, उसने बलपूर्वक कहा, "अपने बापू की ओर देख और मेरी ओर भी। तू हमे सुख देना चाहता है या दुख? यह तो मै मान ही नही सकती कि तू हमें सुख देना नही चाहता।"

पास से राखाल काका ने बात आरभ कर दी, "लोग तो पागल है जो अतुल और धर्मानदी को दोष देते है। देवकात के माथे पर तो नही लिखा हुआ था कि वह अपराधी है। देवकात ने सचमुच कोई अपराध किया है तो पुलिस का काम है कि उसे पकड़े और कचहरी मे ले जाए। अतुल और धर्मानदी का क्या दोप? आरती का तो बिलकुल ही कोई दोष नही था। जब धर्मानदी देवकात को उस पार छोड़ने गया, तो आरती हर रोज़ की तरह नाव का चप्पू चला रही होगी। अब यह तो कोई अपराध नही।"

"तो फिर अपराध किसका है?" सोनपाही ने चकित होकर कहा।

"मुझे पूछो तो अपराध नारायण दारोगा का है।" राखाल ने ज़ोर देकर कहा।

"दारोगा का क्या अपराध है?" सोनपाही मुसकराई।

"मै उसे जानता हूँ। उसने ऊँचा पद पाने का रहस्य समझ लिया है। वह सदा ऐसे कार्य करने मे ही साहस दिखाता है, जिनकी बात सदा ऊँचे अधिकारियो तक जा पहुँचती है! हाट-बाज़ार मे या सड़क पर लोगो को ठोकर मारते नारायण दारोगा को तनिक भी सकोच नही होता। वह गदी-से-गदी गाली देता है, लोगो को बूट की ठोकर मारता है और अपने अफसरो के बूटों के तसमे खोलते और कसते हुए भी वह ज़रा नही शर्माता।"

"हम तो अपनी बात करे, उसकी बात उसके साथ रही।"

"यह नही हो सकता। मुझे अपनी बात तो कहने दो। सिपाही से हवलदार

तो जल्दी ही बन गया था नारायण, पर हवलदार से दारोगा बनते उसे बहुत देर लगी। उसकी आशा-आकांक्षा सिमटकर नीचता बन गई। यह नीचता उसे चैन नही लेने देती। उसे सदा यही दिखाई देता है कि दुनिया सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रच रही है। उसके बूट की ठोकर से कौन-कौन भद्र पुरुष लांछित और अपमानित नही हुआ होगा? जब वह हवलदार था, तब से उसका यही काम रहा। इसका यही इनाम मिला कि उसे दारोगा बना दिया गया।"

इतने में नीलमणि भी जाग उठा। उसने राखाल की बाते सुनीं, तो दोनों हाथों से सिर पकड लिया। सवेरे के सूर्य के प्रकाश मे राखाल की मुख-मुद्रा बहुत गभीर दिखाई दे रही थी।

राखाल कब चुप रहनेवाला था, वह कहता चला गया, "ये लोग, जो आज धर्मानंदी और अतुल को बुरा कहते है, स्वयं कौन से अच्छे है? देवकात का क्या अपराध है, यह मैं नही जानता। इसलिए देवकात के संबंध मे अभी मै चुप हूँ।"

अतुल ने कहा, "शिवसागर मे जो कुछ होता है काका, वह भी तो तुमसे छिपा नही।"

"मुझसे तो कुछ भी छिपा नही!" राखाल ने हँसकर कहा, "चाँदडूबी के जगल मे मैने तीस वर्ष गुजार दिए, यह तो सब जानते है। मै हाथियो के बीच रहा, इसलिए हाथियो की बात अधिक जानता हूँ; पर जब मैं सात साल पहले छुट्टी पर घर आया था तो शिवसागर का हाल मैने अच्छी तरह देखा था। गाँव में साधारण झगड़ा होता है। फिर यह झगडा मार-पीट में बदल जाता है। थानेवाले सोचते है—हम किसलिए है? वे नही चाहते कि झगडा शांत हो जाए। उनकी ओर से तो यही यत्न किया जाता है कि झगडा शिवसागर की कचहरी मे पहुँचे। न्याय का नाटक आरभ होने से पहले दिसाँगमुख का यह सूत्रधार—यह हमारा नारायण दारोगा—मगलाचरण के साथ फिरगी की प्रशसा करता है और सक्षेप मे वही कहानी दोहराता है जो कचहरी की रगभूमि पर इससे पहले हज़ार बार दोहराई जा चुकी होती है।"

नीलमणि ने झुँझलाकर कहा, "तुम अपनी पेंशन से हाथ धोकर रहोगे!"

"सच्ची बात कहने से पेशन जाती है तो जाए!" राखाल ने गभीर होकर कहा, "तीस वर्ष तो हाथियों के बीच बिता दिए। अब थोड़े-से वर्ष मनुष्यों की सेवा में बिताने का विचार है। यह विचार मुझे नार्मन साहब से मिला। नार्मन साहब से ही मैंने यह भी सीखा कि मरने से पहले मनुष्य अपनी जन्मभूमि की थोड़ी निष्काम सेवा अवश्य कर जाए। हाँ, तो मैं कह रहा था कि शिवसागर की कचहरी मे हर रोज़ झूठ का नाटक खेला जाता है। झूठी साक्षी देनेवाले जितने चाहो मिल जाएँगे। हमारे दिसाँगमुख में भी ऐसे लोगों की कमी नही। जिन्हे और कोई कार्य नही, वे झूठी साक्षी देने में ही सोलह कला निष्णात बनते चले जाते हैं। घूस के बिना तो

न नाटक का पर्दा गिरता है न उठता है, इसलिए बत्तखों के जोड़े और टोकरों में भर-भरकर अंडे शिवसागर पहुँचाए जाते हैं। मुरगियाँ और कबूतर, सूअर और मछलियाँ—इनका तो कोई हिसाब ही नहीं रहता। दूध के साथ दूध, दही के साथ दही; शिवसागर का पेट ही नही भरता। पग-पग पर घूस देकर ही मामला आगे बढता है। घूस के लिए नए-नए शब्द गढ़े जाते हैं—दक्षिणा, भेंट, श्रद्धा के फूल—ऐसे-ऐसे न जाने कितने शब्द घूस के लिए बरते जाते हैं।"

"यही तो देवकांत भी कहता है, काका !" अतुल मुसकराया।

"तो फिर वह ठीक कहता है। यह बात कहने से उसे कोई नहीं रोक सकता, यहाँ तक कि नारायण दारोगा भी। दारोगा के साथ थाने के सिपाही ऐसे चलते हैं जैसे भूत-बैताल। उन सबको दक्षिणा चाहिए। दही-दूध और मक्खन ही नही, हंस, कबूतर और मुरगी भी। नारायण दारोगा तो भूत-बैताल के देवता ठहरे। उनकी पूजा में चाहिए एक जोडा राजहंस। वाह रे वाह, फिरंगी राज ! एक बार शिवसागर का यह हाल मैने नार्मन साहब को भी सुनाया था। उन्हें विश्वास ही नही आया था। मैंने तो दिसाँगमुख का हाल भी सुनाया था। एक बार हाथ में डाली हुई हथकडी को खुलवाने की दक्षिणा सौ रुपए से एक दमड़ी कम नही लेते दारोगा जी; वैसे काम न बने तो काला पानी भिजवाने की धमकी देते हैं। लाख रोओ-धोओ, लाख पैर पकड़ो। पगडी उतारकर उनके चरणों पर रखो। दंडवत् प्रणाम करो, चाहे देवता मानकर मगलाचरण पढ़ो। ये देवता तो मुफ्त में पसीजने से रहे। कभी सौ से उतरे भी, तो अस्सी पर आ रुके। बात-बात में दारोगाजी यही बोल मुँह पर लाएँगे, 'जेल तुम्हारी राह देख रही है !' कभी कहेंगे, 'जेल का भात खाए बहुत दिन तो नही हो गए ?' अतुल, मै तो यही कहूँगा कि जेलगाँव का थाना साँप का बिल है। साँप का मत्र मालूम होने पर भी इस बिल में हाथ न डाला जाए, यही अच्छा है—"

"सारा उपदेश आज ही सुना डालोगे ?" नीलमणि ने राखाल को टोका, "सुना नही, दीवार के भी कान होते हैं। ये बातें दारोगाजी के कानो तक जा पहुँची, तो लेने-के-देने पड जाएँगे; बैठे-बैठे सब मान-प्रतिष्ठा चली जाएगी।"

"फिरंगी राज को समाप्त करने की बात तो देवकांत भी कहता है, काका !" अतुल ने गंभीर होकर कहा, "पर काका, वह तो कलकत्ता से मोर्चा आरंभ करके दिसाँगमुख से फिरंगी राज समाप्त करना चाहता है और यह बात मैं नहीं मानता। दिसाँगमुख का मोर्चा तो दिसाँगमुख में ही बनना चाहिए।"

"तुम चुप भी रहोगे या नहीं, अतुल ?" नीलमणि ने फटकारा, "देखते नही कि गाँव में लोग तुम्हारा और धर्मानंदी का नाम ले-लेकर क्या कुछ कह रहे हैं ! देवकात तो एक दिन पुलिस के हाथ पड़कर रहेगा। कहाँ जाएगा भागकर, तुम भी फँसोगे। मेरा नाम बदनाम करोगे। मेरी पदवी भी छिनेगी और फिर यह पदवी

कभी तुम्हें नहीं मिलेगी। तुम्हारे बाबा की आत्मा को कितना कष्ट होगा। तुमने आगे से मुंह सँभालकर बात न की, तो मैं कहूँगा मेरे घर से निकल जाओ और अपना रास्ता नापो !"

सोनपाही ने झुँझलाकर कहा, "तुम भी तो अपनी जबान पर काबू नही रख सकते। बात को बढ़ाना तो कोई तुमसे सीखे। गाँव मे हर कोई अतुल के विरुद्ध हो रहा है; घर में भी तुम उसे प्यार-दुलार नही दोगे तो उसका दिल टूट जाएगा।"

"अतुल कोई मच्छर तो नही है कि उसे कोई फूँक मारकर उडा देगा।" राखाल ने गंभीर होकर कहा, "हमारे नार्मन साहब कहा करते थे कि विवाद करते समय दूसरे की बात ध्यान से सुनो। बात का उत्तर बात से दो, मुक्के से नही। मुक्का तानकर बात करना बुद्धिमत्ता का कार्य नही। पिता के सामने पुत्र भी बात कर सकता है। जब पिता के कधे तक आने लगे पुत्र का सिर, तो पिता को चाहिए कि पुत्र को समानता का दर्जा देना आरंभ कर दे। बात करते समय तो सब बराबर है। नार्मन साहब यह बात मानते थे। खैर, छोडो यह विवाद। आज मैने सात वर्ष बाद नीलमणि को गरम होते देख लिया। गाँव-बूढा की पदवी तो सचमुच बडी पदवी है; पर यह पदवी और भी बडी बन जाती है, यदि सरकार के अतिरिक्त लोग भी साथ हों। इसके लिए सचाई को तो न बेचा जाए। जिस पदवी को बचाने के लिए झूठ की शरण लेनी पडे, वह भी कोई पदवियो मे पदवी है ?"

सोनपाही ने प्रसग बदलते हुए कहा, "अतुल, तुम आज अपने ननिहाल अवश्य हो आओ। कौन दूर है गिलरीबाड़ी ! मखना और रेणु उदास हो गए होगे, उन्हे लेते आओ।"

"हाँ-हाँ, मखना को अवश्य ले आओ, अतुल !" राखाल की आँखें चमक उठी, "मखना तो मुझे पहचान भी न सकेगा। सात वर्ष का समय कुछ कम तो नही होता। और रेणु का तो जन्म ही मेरे पीछे हुआ।"

नीलमणि बोला, "बाते तो बहुत हो ली। अच्छा अतुल, तुम गिलरीबाडी हो आओ। जलपान में क्या देर है ? आज तो चिड़वा और दही खाने की इच्छा है।"

सोनपाही झट भीगा हुआ चिडवा और दही लेती आई। झोपडी के बरामदे में चटाई पर बैठे-बैठे जलपान आरभ हो गया।

जलपान के पश्चात् अतुल गिलरीबाडी चला गया और नीलमणि खेतो की ओर हो लिया।

राखाल अपनी झोपड़ी में आ बैठा। वह अपने मन में बाते करने लगा—'दिसाँगमुख में कितनी अनबन है ! इनका बस चले तो पानी पर भी दीवारे खडी कर दे, हवा को भी बाँट ले। कोई बात हुई भला ? बडा गड़बड़-घोटाला है। मीरी, असमिया और नेपाली मे वर्षों से लड़ाई चल रही है—खुली लड़ाई और छिपी लड़ाई। नारायण दारोगा तो यही चाहता है कि लोग आपस में लड़ते रहें,

शिवसागर की कचहरी में झूठी गवाही होती रहे; पर गाँव की भी एक मान-मर्यादा तो होनी चाहिए। जैसे आदमी के सिर पर पगड़ी होती है, वैसे ही गाँव के सिर पर होता है गाँव-बूढ़ा; पर पगड़ी के नीचे हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अंग सब मिल-कर रहने चाहिए।'

झोपड़ी से निकलकर राखाल बाँस के झुरमुट की ओर चला गया। वेगवती वायु में बाँस और भी झुक-झुककर डोलने लगे। बाँस के पत्तो से छन-छनकर सूरज की चचल किरणे राखाल के मुख पर पड़ रही थी। पोखर का जल दर्पण के समान झिलमिल कर रहा था। राखाल विचारधारा मे बह गया—सारा गाँव अतुल की बुराई कर रहा है। लोग कह रहे है कि आरती को उसी ने थाने भिजवाया। यदि वह देवकात को धर्मानदी के घर न ले गया होता, तो बेचारा धर्मानंदी इस चक्कर मे न फँसता। आज आरती थाने गई, कल जूनतारा जाएगी। वैसे एक-दूसरे की जान लेने पर तुले है, पर अतुल की बुराई करते समय एक हो जाते है। उस समय भी तो एक हो जाते है, जब घर में बेटा जन्म लेता है, नेपाली हो चाहे मीरी, चाहे असमिया, सभी इस खुशी मे ब्रह्मपुत्र पर नारियल चढ़ाते है।···यह सोचते ही उसकी दृष्टि नारियल के पेडों की ओर उठ गई।

बाँस के झुरमुट से चलकर वह नारियल के नीचे जाकर खड़ा हो गया। वह सोचने लगा, 'बेमौसम का बैंगन कह रहा है—मुझे तोड लो, मुझे तोड लो!··· अरे सबर भी कर, मौसम को तो आने दे। नेपाली और असमिया अपनी-अपनी भाषा मे कहते है—'मीरी अपनी पत्नी से मिलता है तो उसे पीटता है।' मीरी भी तो अपनी कहावतो मे असमिया और नेपाली का उपहास करते है और यह तो तीनो ही कहते है—'नई नाव का तला झुलसाओ, नई दुलहन की पिटाई करो!' कहावतो के मामले में भी सब एक हो जाते है। 'जल्दी-जल्दी ताबूल काटो, यह भी नही जानते कि हम पुराने सबंधी है?' यह तो पूरे दिसॉगमुख की आवाज है। क्या यह किसी दूसरे गाँव की आवाज नही हो सकती? ऐसी सकुचित दृष्टि भी क्या कि इसे दिसॉग-मुख की ही सूक्ति माना जाए? 'जिस बत्तख को खरीद लिया, उसके तो चोच तक मास-ही-मांस है।' यह तो माझुली के किसी गाँव की आवाज भी हो सकती है, जहाँ भगतजी अपनी जूनतारा को ब्याहना चाहते है। 'वह माटी खरीदो जिसकी ढाल बीच की ओर हो, और वह दुलहन घर लाओ जिसकी माँ बहुत भली हो!' अब इस पर भी तो सबको एक होना पडेगा। सचाई तो सबके लिए है। मीरी, नेपाली और असमिया के लिए क्या अलग-अलग सचाई होगी? 'एक सौ गोरू मारने के पश्चात् तो बाघ की भी मृत्यु आ जाती है।' इस पर किसे मतभेद होगा? 'सात पीढ़ियो से गाय की शकल नही देखी, और वह बाँस का चोगा उठाए दूध दुहने जा रहा है।' जो आदमी वृथा ही डीग मारे उसका तो इसी तरह उपहास किया

जाता है। चाँदडूबी के जंगल मे भी मेरे मुँह से यही बात निकलती थी, यहाँ भी मेरे मुँह से यही शब्द निकलेंगे···।

काका ने पीछे मुडकर देखा तो धर्मानंदी चला आ रहा था।

"आओ, धर्मानंदी !" राखाल मुसकराया।

"तुम्हें बुलाने आया हूँ, दादा !" धर्मानंदी ने हँसकर कहा, "अब चलना है, तो जल्दी करो; पहले ही देर हो गई। आरती हमारी राह देख रही होगी।"

"मै तो महावत हूँ, मछुआ तो नही कि तुम्हारे साथ जाऊँगा नाव मे बैठकर !"

"चाँदडूबी तो पीछे छोड आए, दादा ! वहाँ हाथी होगे, तो यहाँ ब्रह्मपुत्र है। ब्रह्मपुत्र मे मछलियाँ पकडना ही अपना धधा ठहरा। चलो हमारे साथ। आरती कह रही थी कि काका से चाँदडूबी की कहानियाँ सुनेंगे।"

"अच्छा चलो !"

घाट पर पहुँचकर राखाल ने देखा कि नाव पहले से तैयार है। "आओ, काका !" आरती ने राखाल का स्वागत किया, "घर में बैठे-बैठे तो दिल भी नहीं लगता। मैने बापू से कह दिया था कि पहले काका को लाओ, फिर हम मछलियाँ पकड़ने चलेगे।"

नाव चली तो धर्मानंदी ने पूछा, "दिसाँगमुख का क्या बनेगा, काका ?"

राखाल कुछ न बोला।

धर्मानंदी चुप न रह सका, "कुछ तो उपाय करना ही होगा। नारायण दारोगा से मुझे कोई शिकायत नही, न आरती को ही शिकायत है। देवकांत तो सुनते हैं कलकत्ता पहुँच गया।"

"क्यो, देवकांत कलकत्ता क्या करने गया है ?"

"यह तो वही जानता होगा।"

आरती मुसकराई, "वह भारत माता से मिलने गया है, काका ! उस दिन हम उसे लेकर गए, तो पहले मैने सबके लिए चाय बनाई थी। चाय बनाते-बनाते मैंने देवकांत की बातें सुन ली थी। वह कहता था—भारत माता के लिए वसत ऋतु नही आती; सब-के-सब फूल फाँसी पर झूल गए। और वह यह भी कहता था काका—भारत माता के हाथो मे हथकड़ी है, पैरों में बेड़ी, भारत माता गाने लगती है तो गीत उसके गले में टूट जाता है !···तुमने तो भारत माता देखी होगी, काका !"

राखाल ने हँसकर कहा, "मैं तो एक ही बार गया था कलकत्ता, नार्मन साहब के साथ। मैने तो कलकत्ता में देखी नही भारत माता। वह मुझे मिलना चाहती है, तो उसे दिसाँगमुख में ही आना पडेगा।"

"यहाँ आकर भारत माता क्या करेगी ?" धर्मानंदी ने चुटकी ली, "यहाँ हम उसे क्या खिला सकेगे ? अच्छा आए तो सही। हम भारत माता को अपने पुरखों से

चली आई वह बात अवश्य सुनाएँगे।"

"कौन-सी बात, बापू ?"

"अरे वही—'साल मछली सिगी मछली से कह रही है—तू भी कुँआरी, मैं भी कुँआरी; हम दोनो मे से किसी को वर नही मिलता !' "

"वह भी बापू, वह भी !" आरती ने अपने स्थान से उछलकर कहा, " 'देखने मे चीतल ही तो है; इसकी पीठ में तो काँटे-ही-काँटे है !' "

सहसा धर्मानंदी ने कहा, "रोको-रोको, आरती ! यही स्थान ठीक है।"

उसने झट अपना जाल फेंकते हुए कहा, "सावधान, मछलियो !"

"अब देखना चीतल भी फँसेगी और साल भी !" धर्मानंदी मुसकराया, "अच्छा दादा, अब चाँदडूबी के हाथियो की कोई कहानी आरंभ करो।"

सोलह

जूनतारा माता-पिता की आँख बचाकर आरती से मिल आना चाहती थी।

वैसे तो वह हर रोज पानी-घाट पर पानी भरने जाती थी, पर उस समय तो दूसरी लड़कियाँ भी साथ होती थी। सबने लडकियो को मना कर रखा था। आरती पाँच दिन थाने मे रह आई थी, यही उस पर सबसे बड़ा कलंक था। अब यह कलंक जीवन-पर्यंत नही धुल सकता था। कोई-कोई तो यहाँ तक कहता सुना गया था—अब आरती का विवाह भी नही हो सकेगा; गंदा अंडा कौन लेगा ? ये बाते जूनतारा के कान में भी पड चुकी थी। उसे आरती पर दोष थोपनेवाले एक आँख नही भाते थे। एक बार आरती से मिलकर वह बताना चाहती थी कि संसार भले ही धर्मा-नदी को त्याग दे, पर जूनतारा की आँखों से आरती कभी नही उतर सकती।

पानी-घाट से धर्मानंदी की झोपड़ी दूर न थी। वह नाव तो वही बँधी रहती थी जिस पर यह झोपडी बनी हुई थी। पानी का कलसा भरते-भरते जूनतारा कनखियो से आरती की झोपडी को अवश्य देख लेती। किसी प्रकार आरती नजर तो आए, दूर से ही सही। फिर वह सोचती—आरती तो अपने बापू के साथ गई होगी; वह तो बापू को मछलियाँ पकड़ने में सहायता दे रही होगी।

हाट-बाजार में जूनतारा ने प्राय: आरती को बापू के साथ बैठे देखा था, जहाँ वह पहले के समान बैठी पैसे गिनती रहती थी। यह तो संभव न था कि सबके सामने वह आरती से दो बातें कर ले। आरती पर कलंक लग गया था। पर यह कैसा कलंक था ? इसे कलंक कहा भी जा सकता है या नहीं, यह भी तो प्रश्न था। देवकांत तो किसी और की नाव में भी उस पार चला गया होता। अतुल ही देवकात

को धर्मानंदी के पास लेकर गया था। बेचारी आरती को तो व्यर्थ ही फँसना पडा।

आज जूनतारा ने आरती से मिलने का निश्चय कर लिया था।

वह बहुत देर से घर से चली। उसके सिर पर खाली कलसा था। आज उसे अपना हृदय भी कलसे के समान खाली लग रहा था। आज वह आरती से अवश्य मिलेगी। वह लौटकर न आई होगी, तो वह उसकी प्रतीक्षा करेगी। दो सखियो को मिलने से कौन रोक सकता है? उन्हें तो बातें करने का अधिकार है। आरती से कोई ऐसा दोष तो हुआ नही कि मै उसकी छाया से भी घृणा करने लगूँ। मै उससे पूछूँगी कि थाने मे उस पर क्या बीती? किसी ने उसे पीटा तो न था? उसे पीटा गया होगा तो वह मुझे अवश्य बता देगी। न बताएगी, तो मै उससे कभी नही बोलूँगी। नारायण दारोगा ने इतना लिहाज तो अवश्य किया होगा। देवकात का मामला न होता, तो किसकी मजाल थी कि आरती को थाने ले जाता? अब बेचारी को जाना ही पडा थाने, तो उसकी पिटाई करने का तो किसी को साहस न हुआ होगा ·।

हवा पहले से अधिक तेज हो गई थी। दूर कही बगले बोल रहे थे। फिर नीले आकाश पर सारसो की पाँत दिखाई दी। जूनतारा को उस सारस की याद आ गई जिसे धर्मानदी काका पकडकर लाए थे और जिसे वह आरती और काका के साथ जाकर कमलिया सापरी पर छोड़ आई थी, जहाँ से काका ने उसे पकड़ा था। उस सारस के गले मे वह माला तो अब तक होगी जो मैने डाली थी। उस सारस के साथ उसे अतुल की याद भी आ गई। किस प्रकार उसने धौस जमाने का यत्न किया था। मैने भी तो उसकी एक नही सुनी थी। गॉव-बूढा का लडका है तो क्या हुआ? जैसे दूसरे लडके, वैसा ही अतुल। मै उसे यह भूल तो न करने दूँगी कि वह मुझे अपनी दबैल समझे। उस दिन के पश्चात् आज तक तो उसे साहस नही हुआ कि मुझसे अकडकर बोले। जहाँ भी वह सामने से नजर आ जाता है, मै कभी आँखे नही झुकाती। भला मै क्यो झुकाने लगी आँखे?

घाट पर पहुँचकर वह सीधी आरती की झोपडी की ओर चली गई। आरती अभी तक अपने बापू के साथ वापस न आई थी। उसने निश्चय किया कि आज वह आरती से मिले बिना वापस न जाएगी। वह नाव पर चली गई और झोपडी के बद द्वार के सामने जमकर बैठ गई।

जब भी जूनतारा का दिल ऊबने लगता, वह उँगलियो से पीतल के कलसे पर हलकी-सी थाप देने लगती। जब किसी की प्रतीक्षा हो तो या तो कुछ भी अच्छा नही लगता या साधारण-सी आवाज भी भली प्रतीत होने लगती है।

सूरज डूब रहा था। जूनतारा ने मन-ही-मन सूरज को प्रणाम किया। सूरज तो रोज़ ही डूबता था, रोज़ ही चढ़ता था। हवा चचल थी। उसे याद आया कि जब उस दिन सारस के मामले को लेकर अतुल ने उस पर धौस जमानी चाही थी,

तो उसके माथे पर बालों का गुच्छा झुक आया था। अतुल की धौंस में न आकर मैने वीरता का प्रमाण दिया था। वाह जी वाह ! बड़े आए गाँव-बूढ़ा के बेटे !··· कभी कोई पक्षी बोल उठता, कभी किसी मछली के उचककर डुबकी लगाने की ध्वनि चौका देती। वह जमकर बैठी रही। सूरज डूब रहा था।

आरती की नाव न जाने किस समय आकर घाट पर लगी। जूनतारा को पता ही न चला। जूनतारा को देखकर आरती ने आवाज दी। नाव से उतरकर वह झट झोपडी के द्वार पर आ गई। उसने जूनतारा के गले में बाँहें डाल दी।

धर्मानंदी मछलियाँ उतार रहा था। जूनतारा ने पूछा, "अच्छे तो हो, काका ?"

"हमारे घर का रास्ता कैसे भूल गई, जूनतारा ?" धर्मानंदी ने मछलियाँ उतारते हुए कहा, "तुम्हारे घर में तो मछली नही पकती और अपना तो धंधा है मछलियाँ पकडना।"

"यह तो अपना-अपना धंधा है, काका !"

"नावरिया का अपना धधा है। वह हमारा चेतन नावरिया है न, वह बादल नावरिया से झगडता ही रहता है; उनका झगड़ा कभी समाप्त न होगा।"

"झगड़ा क्यो होता है, काका ?"

"लोग कहते है, पेट कराता है झगड़ा। मै तो कभी नही झगडता पेट की खातिर। झगडे को बढ़ाओ तो बढ जाता है, घटाओ तो घट जाता है।"

"गाँव मे सबने तुम्हारे साथ बोलना छोड़ रखा है, काका ! इसका तुम्हें दुख तो होगा।"

"दुख होगा भी तो किसी को बताने से क्या लाभ ?"

"कभी तो तुम सोचते होगे काका, कि तुमने देवकात को पार ले जाकर भूल की।"

"यह तो मै कभी नही सोचता।"

"तो क्या देवकात अच्छा लड़का है ?"

पास से आरती ने हँसकर कहा, "और क्या बुरा लड़का है देवकात ? वह बुरा है, तो क्या अतुल ही अच्छा है ?"

"अतुल की तो गाँव में हर कोई बुराई कर रहा है। सब यही कहते है कि अतुल ने ही काका को फँसाया और वही आरती को भी थाने भिजवाने का दोषी है। आरती, तुझे तो किसी ने हाथ नही लगाया होगा !"

"लगाया भी हो, तो अब वह बात सोचने से क्या लाभ ? देवकात को हमने पार न लगाया होता तो पुलिस उसे पकड़ लेती। अब तो सुना है वह कलकत्ता पहुँच गया भारत माता के पास !"

"पर देवकात की अपनी माँ भी तो है ?"

"माँ से बढकर तो वह भारत माता को समझता है; अपनी-अपनी समझ की बात है।"

"माँ चाहे भूखी मर जाए, पर भारत माता बच जाए !"

"यह तो तुम्हें देवकांत से ही कहना चाहिए, पर अब शायद तुम उससे यह न कह सको; वह अवसर शायद तुम्हारे हाथ न आए। देवकात उससे पहले ही फाँसी पर झूल जाएगा।"

"क्यों, उसने ऐसा क्या अपराध किया है ? फिर कलकत्ता चला जाना था, तो वहाँ से आया ही क्यों था ?"

"अब यह तो देवकात ही जानता है।"

धर्मानंदी सब मछलियाँ ऊपर ले आया था। उसने अपनी ही बात आरंभ कर दी, "अब कल हाट-बाजार है। अच्छे-खासे पैसे बन जाएँगे। ब्रह्मपुत्र की कृपा बनी रहे। वह हमारे लिए चीतल, साल और न जाने कौन-कौन-सी मछलियाँ लाता है। हमारा जाल बना रहे, हमारी भुजाओ मे शक्ति बनी रहे। पेट ही सब काम कराता है। जैसी थल-खेती वैसी जल-खेती !"

दोनों सखियाँ झट अपना-अपना कलसा उठाकर पानी-घाट पर चली गईं।

अपना कलसा भरकर आरती अपनी झोपड़ी में छोड़ आई। फिर वह जूनतारा को उसके घर तक छोडने गई। रास्ते में आरती देर तक अतुल की प्रशसा करती रही। वह इस पर जोर देती रही कि अतुल को तो देवकात भी अच्छा लड़का समझता है।

"सब लोग तो अतुल को बुरा समझने लगे है। तेरा क्या मत है, जूनतारा ?" आरती ने जूनतारा के कंधे पर थपकी देकर पूछा।

"जो लोगो का मत है, वही मेरा भी !" जूनतारा मुसकराई।

"यह तू क्या कह रही है, जूनतारा ? सोच तो सही, कही बेचारे का दिल ही न टूट जाए।"

"कल टूटता है उसका दिल, तो आज टूट जाए ! मै क्या करूँ ?"

आरती ने अतुल और देवकांत के वार्तालाप का उल्लेख करते हुए कहा, "मैने तो दोनों की बातें सुनी थी। दोनो मे यही अंतर है कि अतुल दिसाँगमुख में ही कार्य करके दिसाँगमुख को नारायण दारोगा के पंजे से छुड़ाना चाहता है, तो देवकांत के सम्मुख कलकत्ता से कार्य आरंभ करके दिसाँगमुख जैसे अनगिनत गाँवों को पुलिस के पंजे से स्वतंत्र कराने का ध्येय है। इस पर तेरा क्या मत है ?"

जूनतारा खिलखिलाकर हँस पड़ी, जैसे वह आरती की बातों पर विश्वास ही न कर रही हो।

आरती ने आगे बढ़कर जूनतारा का रास्ता रोक लिया।

"देर हो रही है, आरती !"

"चैत मास बीत रहा है; बोहाग बिहू दूर नही। मै तो नही आ सकूंगी। मेरी बात याद रखना। बोहाग बिहू के नृत्य में अतुल से दूर-दूर न रहना। देखना कही उसका दिल न टूट जाए!"

"उसका दिल खिलौना है, तो भले ही टूट जाए।" जूनतारा खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"पिछले-से-पिछले वर्ष तो तुमने भी अतुल की प्रशंसा की थी। मुझे भय है कि कही अतुल बिहू में सम्मिलित ही न हो। बिहू तो रुक नही सकता, दुलकी चाल से आ रहा है!"

जूनतारा के घर का पिछवाड़ा आ गया था। आरती पीछे लौट गई।

जूनतारा ने डरते-डरते फाटक उठाकर भीतर प्रवेश किया। जरा सँभलकर वह केले के गाछ के सामने एक-दो क्षण के लिए रुक गई। वह सोचने लगी, आरती ने यह क्यों कहा था—बोहाग बिहू के नृत्य मे अतुल से दूर-दूर न रहना!···और वह पग बढ़ाकर रसोई तक जा पहुँची।

माँ ने जूनतारा को फटकारा, "तेरे ये लच्छन तेरे बापू को अवश्य बताऊँगी। इतनी देर?"

जूनतारा ने डरते-डरते कहा, "मुझे आरती पिछवाडे तक छोड़ने आई थी।"

"तो तू आरती से चिपकी रही? तुझे कितना रोका था!"

पास से सुधीर की पत्नी कोपिली हँसकर बोली, "जाने भी दे, माँ! जूनतारा और आरती तो बचपन की सखियाँ है।"

जूनतारा के सिर से कोपिली ने पानी का कलसा उतरवा लिया था। जूनतारा कुछ न बोली। पिछले-से-पिछले वर्ष के बिहू की स्मृति उसकी कल्पना का एकतारा बजाने लगी—तुन् तुन् तुन्। इस ताल पर उसे लगा कि सामने लडकियाँ नाच रही हैं—अर्द्ध गोलाकार मे; दाएँ से बाएँ, बाएँ से दाएँ; उनके सामने लडके नाच रहे है झूम-झूमकर—मृदंग, पैपा और बाँसुरी बजाते हुए; दाएँ से बाएँ, बाएँ से दाएँ, कभी लडकियाँ उछलकर पीछे और आगे डोलने लगती, कभी वाद्य बजानेवाले युवक उन्ही का अनुकरण करते हुए उनसे मिल जाने का यत्न करते। उसे लगा कि सामनेवाली युवतियों की पाँत में एक सुहासिनी रूपसी झूम-झूमकर नाच रही है, पाँत के ठीक बीच में, उसके जूड़े का फूल नीचे नही ढलकता; रूपसी के सम्मुख युवको की पाँत में एक बाँका-छबीला है, जिसके माथे पर बालो का एक गुच्छा झुक आया है; वह बाँसुरी बजा रहा है।···कल्पना के चित्रपट पर वह रूपसी जूनतारा में बदल गई, वह युवक अतुल बन गया; बिहू नृत्य हो रहा था, इस नृत्य की आनंद-परिधि असीम थी।···

सत्रह

बहुत रात गए अतुल गिलरीबाड़ी से लौटा; मखना और रेणु खा-पीकर सो गए।

सवेरे आँख खुली तो मखना ने अतुल के साथ जाकर गोहाली में कपिला के माथे पर हाथ फेरा। फिर उसने पिछवाडे की ओर से एक आदमी को आते देखा। कधों को छूते हुए हिम-श्वेत केश, नाभि से थोड़ी ऊपर तक आती हुई लंबी श्वेत दाढ़ी, मखना ने इस आदमी को पहली बार देखा। उसने सोचा कि हो-न-हो यह आदमी बाहर से आया है। मखना उसे निर्निमेष आँखो से देखने लगा।

वह आदमी मखना के समीप चला आया। उसने मखना के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "मेरे बेटे!"

"यह कौन है, दादा?" मखना ने अतुल के समीप जाकर पूछा।

"मेरा नाम राखाल है। मैं तुम्हे अपनी गोद में खिला चुका हूँ।"

अतुल मुसकराया, "काका ठीक कह रहे है।"

"यह काका कहाँ से आया है, दादा?"

"हाथियो के जंगल से।"

"कौन-सा जंगल?"

"चाँदडूबी।"

राखाल काका मखना के हाव-भाव देखकर प्रसन्न हो रहे थे। मखना को समीप लाते हुए उन्होने कहना आरंभ किया, "हाथियों के छोटे-छोटे बच्चे मेरी आँखो के सामने बडे हुए। क्या हाथी क्या हथिनी, मैने दोनो की सवारी की; दोनों मेरी आज्ञा मानकर चलते थे।"

"तुम गिरे नही, काका?" मखना हँस पड़ा।

"वह महावत ही क्या हुआ बेटा, जो हाथी के ऊपर से गिर जाए!" राखाल ने गभीर होकर कहा, "हाथियो के दल-के-दल मेरे एक संकेत पर रुक गए, मेरे एक सकेत पर वे चल पड़े।"

"हमारे मास्टरजी तो कहते है—हाथी बहुत बड़ा होता है; हाथी से बडा कोई नही होता!"

"हाथी से बडी है चट्टान!"

"यहाँ तो एक भी हाथी नही है, फिर आप यहाँ क्यों गए, हाथी काका?"

"ऐसे नही बोलते!" अतुल ने कपिला के आगे हरा ग्रारा डालते हुए कहा, "मखना, तुम्हें मास्टरजी ने अभी तक बोलना भी नही सिखाया? जाओ, तुम्हें स्कूल के लिए देर हो रही है।"

मखना स्कूल के नाम से चौका।

"आज तो छुट्टी है, दादा !"

"तो भीतर जाकर खेलो।"

अतुल और राखाल काका पिछवाड़े की ओर जाकर पोखर के किनारे टहलने लगे।

"गिलरीबाडी में तुमने तीन दिन लगा दिए।"

"नानी तो कल भी नही आने देना चाहती थी, काका ! कहती थी, गिलरी-बाड़ी का बोहाग बिहू देखकर जाओ। मैंने तुम्हारा नाम लिया काका, तो नानी ने मुझे छोडा।"

काका ने चाँदडूबी की कहानी आरंभ कर दी। बार-बार काका इस बात पर तान तोड़ते रहे, "अनुभव का आदर वही करता है जिसका अपना भी कुछ अनुभव होता है।"

बात से बात निकलती चली गई। कभी इस प्रकार जैसे पेड़ के खुरदरे तने से नई कोंपल फूटती है, कभी ऐसे जिस प्रकार महावत हाथी को वश में कर लेता है; अतुल को लगता जैसे सूँड उठाए कोई हाथी भी काका की बाते सुन रहा है।

"पहले हाथी उत्पन्न हुए या मनुष्य ?" राखाल ने गभीर होकर कहा, "इस प्रश्न का उत्तर तो हमारे नार्मन साहब भी नही दे सकते थे। वैसे हाथी और मनुष्य की आयु एक समान होती है। समान आयु मे दोनो होश सँभालते है। मै तो चाँदडूबी में रहा, नार्मन साहब बीच-बीच में चले जाते थे। लका की बात है; सच-झूठ का हिसाब नार्मन साहब के माथे। दलदल मे एक हाथी इतनी बुरी तरह फँसा कि फिर बाहर न आ सका। पासवाले डाक बँगले में, जहाँ नार्मन साहब ठहरे हुए थे, रात-भर हाथी की चीखे सुनाई देती रही। सातवे दिन जाकर किसी मालगुजार ने अपने सिधाए हुए हाथियों की सहायता से उस दलदल के बंदी को बाहर निकलवाया। बाहर निकलने के घटा-भर बाद ही वह मर गया। जीवन का अंत नही, पर मृत्यु तो आकर रहती है। हाथी के मृत शरीर को जंगल में दलदल के किनारे ही छोड दिया गया। रीछ, चीते और सूअर, जिन्हें उस हाथी ने कई बार पानी से दूर रखा होगा, कई दिन तक उस हाथी की देह पर प्रीति-भोजन का आनद लेते रहे। हमारे नार्मन साहब दूसरी बार वहाँ पहुँचे तो उन्होने देखा कि हाथी की विचित्र-सी हड्डियाँ ही शेष रह गई है। उन हड्डियो के बीचोबीच एक साही और उसके बच्चे खेल रहे थे। हमारे नार्मन साहब तो···"

"बेचारा हाथी !" अतुल ने टोककर कहा,"हाथी के संबंध में यह भी तो कहते है काका, कि जीवित हाथी एक लाख का और मरा हाथी सवा लाख का !"

"मृत्यु तो आकर रहती है !" राखाल ने गंभीर होकर कहा, "जब चंपली हाथी बहुत बूढ़ा हो जाता है, तो उसे पता चल जाता है कि प्रतिक्षण मृत्यु उसकी

ओर बढ रही है। वह हाथी कही दूर एकांत में नदी किनारे जाकर बैठ जाता है और धीरे-धीरे अपनी ओर बढ़ती हुई मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगता है। लंका के हाथियो के संबंध में यह बात एक यात्री ने अपनी पोथी मे लिखी थी, पर हमारे नार्मन साहब तो लंका के किसी जंगल में ऐसे एकांत और शात किनारे का पता न चला सके, जहाँ जंगल के हाथी मरने के लिए जाते हो।"

सहसा अतुल की कल्पना में चाँदडूबी के हाथी घूम गए। वह सोच रहा था—मनुष्य की आयु थोड़ी है, कार्य अधिक है। भगतजी तो कहते है कि मनुष्य चाहे तो सौ वर्ष तक सहज ही जीवित रह सकता है। चाँदडूबी मे काका के जीवन के तीस वर्ष व्यतीत हो गए—भरपूर जीवन के तीस वर्ष ! अच्छा हुआ कि काका यहाँ आ गए। काका की तो एक-एक बात में अनुभव बोलता है।···

राखाल ने प्रसंग बदलते हुए कहा, "मुझे एक दिन धर्मानंदी अपने साथ ले गया था। जब हम सायंकाल के पश्चात् लौट रहे थे, आरती ने कमलिया सापरी के समीप नाव रोक ली जिसके संबंध में गगन नावरिया की कथा प्रसिद्ध है।"

"वह कथा तो मुझे भी अच्छी लगती है, काका !" अतुल ने गंभीर होकर कहा, "यह कल्पना सचमुच कितनी सुदर है कि किसी समय कमलिया सापरी पर गगन नावरिया रहता था। गगन हमारे बादल नावरिया का पुरखा था। उसके घरवाले तो दिसाँगमुख मे रहते थे; वह अकेला ही उस सापरी में रहता था। बाढ़ मे एक बार कमलिया सापरी बह गई। गगन नावरिया डूब गया। पर गगन की आत्मा अब भी उस स्थान पर मँडराती है।"

"कई-कई वर्ष तक बनी रहती है यह सापरी।"

"इस पर सारसो की पाँत भी अवश्य उतरती है, काका !"

राखाल की आँखे चमक उठी। वह कहता चला गया, "साँझ उतर रही थी, जब हम कमलिया सापरी से तीन मील ऊपर थे। वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। टिकी हुई रात में हमने गगन नावरिया का गान सुना। धर्मानंदी कहता है कि उसने यह गीत पहले भी कई बार सुना है।"

"गगन मर गया, पर उसका गान बचा रह गया !"

"किसी का महान् कार्य हो, तो उसके पीछे उसका नाम रह जाता है। ऐसे ही गगन नावरिया का गान है। बाढ़ के दिनो मे जब बड़े-बड़े नावरिया ब्रह्मपुत्र मे नाव खोलते डरते है, गगन नावरिया का गान ब्रह्मपुत्र की लहरों पर गूँजता रहता है, जैसे गगन आज भी ब्रह्मपुत्र को चुनौती दे रहा हो।"

पीछे से आकर किसी ने राखाल के कंधों पर हाथ रख दिया, "हम आ गए, हाथी काका !"

राखाल ने मखना के सिर पर प्यार का हाथ फेरते हुए कहा, "हम मखना के हाथी काका ही तो हुए। हम इसे हाथी का बच्चा लाकर देंगे—बड़ा प्यारा-सा

हाथी का बच्चा !"

"परसो बोहाग बिहू है, मखना !" अतुल ने प्रसग बदलकर कहा, "काका से कहो कि तुम्हें अपने साथ रखें।"

अठारह

नीलमणि तो गाँव-बूढ़ा ठहरा; बिहू की खुशी मे दो दिन पूर्व ही उसने गोहाली का छप्पर बदल दिया था। बोहाग बिहू के सात दिन माने गए थे, पर बिहू नाच पूरे वैशाख-भर चलता था।

वैशाख के लिए असमिया शब्द था बोहाग; वैशाख का पहला दिन 'मानु बिहू' कहलाता था—मानु अर्थात् मनुष्य। उस दिन घर के प्राणी बिहू मनाने के लिए तैयार होते थे। आज सबसे पहले सवेरे-सवेरे नीलमणि ने बरहम थूरी की दतवन से दाँत साफ किए, फिर तेल मलकर स्नान किया, नए वस्त्र पहने।

चैत के आरंभ से ही घरो और खेतो मे बिहू पक्षी का स्वर गूँजने लगता था। कुछ लोगो का विचार था कि बिहू पक्षी कोई अलग पक्षी नही है, बल्कि केतकी को ही बिहू पक्षी का नाम दिया गया है। चैत की अतिम तिथि से वैशाख की षष्ठी तक बोहाग बिहू का त्योहार मनाया जाता था। न जाने बिहू पक्षी को पहले ही कैसे पता चल जाता था कि बिहू आ रहा है। चैत का अतिम दिन दिसाँगमुख मे 'गोरू बिहू' के नाम से प्रसिद्ध था, क्योकि इस दिन पशुओं को ब्रह्मपुत्र मे मल-मलकर नहलाया जाता था। बिहू का आरभ इसी प्रकार होता आया था। भोर से पहले ही उठकर घर की स्त्रियाँ हलदी और दाल की पीठी रगड़कर तैयार करती थी। फिर सरसों का तेल और पीठी मल-मलकर पशुओं को ब्रह्मपुत्र में स्नान कराने के लिए निकाला जाता था। जब पशुओं का स्नान समाप्त हो जाता, तो उस पर बाँस की पोरी मे भरे हुए लौकी और बैंगन के छोटे-छोटे टुकड़े फेककर उनकी पूजा की जाती थी, और पुराने गीत के शब्दों मे कहा जाता था, "यह ले लौकी, यह ले बैंगन, प्रतिवर्ष फलो-फूलो। तुम्हारी माँ कद में छोटी है, और पिता भी; भगवान् करे तुम्हारा डील-डौल बड़ा निकले !" गोहाली की सफाई की जाती थी। धूप जलाकर गोहाली को सुगंधित किया जाता था। पशुओं को नई-नई रस्सियो से बाँधा जाता था। घर मे त्योहार के उपलक्ष्य में विशेष रूप से बनाई गई मिठाई का एक भाग पशुओ को भी मिलता था।

दोपहर तक हाट-बाजारवाले स्थान पर गाँव के युवक भी आ गए और युवतियाँ भी। दिसाँगमुख का बिहू तो दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। सबने 'लाओ पानी'

पी रखा था। बड़े ही मादक स्वरों में बिहू का मंगलाचरण आरंभ किया गया :

बिहू वा चराय, करे बिहू-बिहू
आमार बिहू कापर लाई
समनियाई सुधिले, कमे किए बूली
सरूते मरीले आई

[बिहू पक्षी बिहू-बिहू की रट लगा रहा है। मेरे पास तो बिहू के लिए वस्त्र ही नही। संगी-साथी बुलाएँगे तो मैं बहाना कर दूँगा—बचपन ही में मेरी माँ चल बसी थी !]

बिहू आए और 'लाओ पानी' अर्थात् चावल के मादक पेय का बाँध न टूटे, यह कैसे संभव था। बोहाग बिहू के कई नाम थे। कोई इसे 'सात बिहू' कहता था, क्योंकि यह सात दिन तक तो कम-से-कम चलता ही था; इसे 'राँगाली बिहू' भी कहते थे, क्योकि नृत्य और संगीत के इस पर्व पर रास-रंग की मदिरा छलक उठती थी।

सामने अर्द्ध-गोलाकार में युवतियाँ नाच रही थी। उनके सम्मुख ढोल, बाँसुरी और पैंपा बजानेवाले युवक उछल-उछलकर आनंद-विभोर हुए जा रहे थे। ऐसे-ऐसे कई दल पृथक्-पृथक् नाच रहे थे। प्रश्नोत्तर के रूप में गाने गाए जा रहे थे। वायु मे झूमते फूलो के समान युवतियाँ नाच रही थी, जैसे यह नृत्य-पर्व दोबारा न आएगा।

बचपन के मित्रो ने आज नीलमणि को भी 'लाओ पानी' पिलाकर छोड़ा; गाँव मे अकेला कल्याण भगत ही ऐसा प्राणी था जिसने आज भी 'लाओ पानी' को मुँह नही लगाया था।

एक दल मे मृदंग, झाँझ, पैंपा और बाँसुरी का ठाठ था और बीच मे अतुल मृदग वजा रहा था, सामने युवतियो की पक्ति मे प्रत्येक सुदरी एक-से-एक सज-धजकर आई थी। इधर से युवक एक गान उछालते, उधर से युवतियाँ उत्तर देती। बिहू की रस-सुषमा और सगति-माधुरी द्वारा युवक-युवतियों मे नई जाग पड़ गई। युवतियों की पक्ति मे जूनतारा को पृथक् करके देखना सहज न था, पर अतुल की दृष्टि उसी पर थी, उसके खोपे का फूल सबसे सुदर था।

नया धान घर आए डेढ-दो मास ही हुए होगे; अब नया धान रोपने में थोड़े दिन शेष थे। बोहाग बिहू तो वस्तुतः नए धान का त्योहार था। प्रत्येक घर का भराल नए धान से भरपूर था, प्रत्येक प्राणी नूतन उल्लास का प्रतीक था।

युवतियो ने एक गान आरंभ किया :

बिहू मारि थाकिवार, मने ओई लगरी
बिहू मारि थाकिवार मन
बिहू मारि थाकोते, पुलुवाई निनिवा
भरिबो लागिबो धन

[बिहू गाती चली जाऊँ, यही जी चाहता है प्रियतम, बिहू गाते रहने को जी चाहता है। बिहू गाते-गाते मुझे भगाकर न ले जाना, धन भरना पड़ेगा।]

युवतियाँ बार-बार यह गान गा रही थी, जैसे युवकों ने सामने से कोई उत्तर न देने का निर्णय कर लिया हो। अतुल को लगा जैसे यह केवल जूनतारा की आवाज़ हो, जैसे वह और किसी की आवाज सुन ही न रहा हो।

युवकों को भी जोश आ गया। उन्होने वह गान आरंभ किया जिसमें कहा गया था :

इस वर्ष बिहू आया अति सुदर,
खिल गए नाहर फूल;
उडी गध, गोरी का मन अति चंचल,
टटू गई पैरो के नीचे चरखे की हर चूल !

फिर युवतियों ने गाना आरंभ किया :

नाचो तो अब खुलकर नाचो,
साथी देख सकें जी भरकर;
छूट जाएँगे प्राण एक दिन,
मौज करेगे गिद्ध देह पर !

अब अतुल ने गान आरंभ किया :

नही दामिनी मै कि चमक कर रूप निहारूँ,
और न बहता ब्रह्मपुत्र हूँ;
मै पक्षी भी नही कि उडते-उड़ते रूप निहारूँ,
हाय, कही यदि मेरे भी दो पंख होते !

बिहू के उल्लास में एक-से-एक बढ़कर गान गाए जा रहे थे—नए-पुराने सभी गान। कुछ गान अभी रचे जा रहे थे।

मत्रमुग्ध-सा अतुल जैसे किसी दूसरे ही लोक मे पहुँच गया था। उसे लगा कि जूनतारा किसी दूसरे की नही हो सकती। अगले ही क्षण उसकी कल्पना को देवकात ने छू लिया। न जाने वह इस समय कहाँ होगा, क्या कर रहा होगा। उसे भी दिसॉगमुख का ध्यान तो है। वह कहता था—भारत माता कलकत्ता में रहती है और उसके कंठ से गान टूट-टूट जाता है !···यहाँ आकर देखे भारत माता ! यहाँ तो एक भी गान बीच मे टूटने से रहा। यहाँ क्यो नही आती भारत माता ? उसे कलकत्ता ही क्यो इतना प्रिय है ?···

नृत्य समाप्त हो गया था। हर कोई घर जाने की चिंता में था। अतुल भी अपने घर की ओर चल पड़ा। पर सहसा पीछे से आवाज आई।

अतुल ने पीछे मुड़कर देखा। जूनतारा अपनी भावज कोपिली के साथ हँसती-इठलाती चली आ रही थी। अतुल ने देखा कि आगे-आगे दोनों ननद-भावज हैं

और उनके पीछे हैं सुधीर, भगतजी और जूनतारा की माँ; उसे यह पता चलते देर न लगी कि उसे भगतजी ने आवाज दी थी।

वह रुक गया।

जूनतारा और उसकी भावज लपककर आगे निकल गईं। उनके पीछे-पीछे सुधीर और उसकी माँ भी लपककर चले गए। भगतजी अतुल के सामने आकर रुक गए। आज बहुत दिनो के पश्चात् भगतजी ने अतुल को बुलाया था।

"आज तो तुम सबसे अच्छा नाचे।" भगतजी मुसकराए, "हडसन साहब और उनकी पुत्री लिली भी बहुत प्रसन्न प्रतीत होते थे; एक ओर नारायण दारोगा भी खडा था, पाँच-छः सिपाहियों सहित।"

"बिहू मे पुलिस का क्या काम !"

"तुम ऐसी बातें न किया करो, अतुल ! ऐसी बातो के लिए देवकांत जो है। पता नही वह कहाँ भटक रहा होगा, माँ की सेवा होती नही, चला है भारत माता के पैर दबाने ! धन्य है देवकात; पर उसके गुरु ने उसे ठीक पाठ नही पढ़ाया।"

अतुल चाहता तो बुरी तरह भगतजी के गले पड जाता, पर वह चुपचाप चलता गया। साथ-साथ भगतजी चले जा रहे थे। आज अतुल ने खूब डटकर 'लाओ पानी' पिया था। बिहू और 'लाओ पानी' का तो पुराना मेल था। उसका अंग-अंग थिरक रहा था। आज उसे तनिक भी थकान अनुभव नही हो रही थी।

घर पहुँचकर अतुल ने माँ से फिर 'लाओ पानी' माँगा। आज तो 'लाओ पानी' माँगने मे कोई लाज न थी। 'लाओ पानी' पीते-पीते उसकी कल्पना मे जूनतारा का चित्र उभरा, जैसे वह भी 'लाओ पानी' पीना चाहती हो और भगतजी का भय उसे बुरी तरह सता रहा हो; फिर जैसे किसी ने जूनतारा के चित्र को उलटा कर दिया। अरे, अरे, यह तो लिली है—वही लिली जिसने अगले ही दिन मेरे लिए अपने डैडी के हेडक्लर्क विष्णुराम के हाथ असमिया बाइबल की पोथी भिजवाई थी और मैंने उसे लेने से इनकार कर दिया था। लिली, तुम नाराज तो नही हो गई ? सामने से जैसे लिली ने उत्तर दिया—मै क्यो नाराज़ होने लगी ? मैं तो तुम्हारा बिहू देखने आई थी। तुम तो जूनतारा से भी अच्छा नाचे !···

अतुल जानता था कि लिली की माँ बहुत दिनो से बीमार है। लिली की माँ शिवसागर के अस्पताल मे थी। लिली तो असमिया भी बोल लेती थी। कई बार ब्रह्मपुत्र पर नाव में आते-जाते लिली से उसकी भेट हुई थी। लिली अपने डैडी की लाड़ली पुत्री थी, बापू को डैडी कहती थी। उसके डैडी तो दिसाँगमुख पर क्रुद्ध रहते थे; उनका हैडक्लर्क विष्णुराम नारायण दारोगा से मिला हुआ था; लोगों से बेगार लेते उनका दिल कभी नही भरता था। उसकी कल्पना में लिली मुसकरा उठी, जैसे वह लिली के सामने नाच रहा हो। वह लिली से कहना चाहता था—बिहू में तो 'लाओ पानी' नाचता है, बिहू मे तो कोई बेगार नही ले सकता !

यह कदाचित् 'लाओ पानी' की मादकता का प्रभाव था कि अतुल ने मन-ही-मन हडसन साहब को बुरी तरह कोसना आरंभ कर दिया। नारायण दारोगा को तो वह आज बडी-से-बडी गाली दे सकता था। वह जानता था कि थाने में धर्मानंदी की बहुत पिटाई हुई थी। वह यह भी जानता था कि थाने में तो आरती को भी क्षमा नही किया गया था। इस समय नारायण दारोगा कही मिल जाता, तो अतुल उसका सिर तोड़ डालता। हमें नही चाहिए दारोगा। बिहू से पुलिस का क्या संबंध ? ये लोग हमें क्यो चिढ़ाते हैं ? ये लोग बिहू मे क्यों आते हैं ?···

नशा कुछ-कुछ उतरने लगा, तो वह फिर से 'लाओ पानी' का गिलास चढ़ा गया। सोनपाही बोली, "लाओ पानी तो बहुत ठंडा नशा है।"

"तो मुझे एक गिलास और दो, माँ !" अतुल मुसकराया।

आज तो मखना और रेणु को भी मिल गया था 'लाओ पानी'; आज तो बिहू था, राखाल काका भी धुत्त नजर आ रहे थे। काका कह रहे थे, "आज तो नार्मन साहब को भी 'लाओ पानी' पिलाते, यदि वह यहाँ होते !"

राखाल काका उठकर अपनी झोपड़ी के सामने चले गए। नीलमणि भी वही जा बैठा। उनके लिए 'लाओ पानी' का मटका वही भिजवा दिया गया।

एक गिलास 'लाओ पानी' सोनपाही भी चढ़ा गई। "लाओ पानी तो सरकार भी बंद नही कर सकती।" सोनपाही ने झुँझलाकर कहा, "एक बार सरकार ने चाहा तो था कि 'लाओ पानी' बनाना बंद कर दिया जाए, पर जब सरकार के सम्मुख यह विचार रखा गया कि 'लाओ पानी' बेचने के लिए नही बनाया जाता, तो सरकार ने रोक लगाने की बात छोड़ दी। नारायण दारोगा का बस चले तो आज 'लाओ पानी' पर रोक लगा दे !"

अतुल बचपन से ही देखता आया था कि 'लाओ पानी' दो प्रकार से तैयार होता था। एक घड़े में भात और खेर की राख मिलाकर उसमें एक बूटी मिलाते थे। इस घडे को माटी में दबाकर नही, वैसे ही रख देते थे। पाँच दिन के पश्चात् उसमे पानी मिला देते थे और उस दिन उसे बाँस की छलनी से छानकर पीना आरंभ कर देते थे।

'लाओ पानी' बनाने का दूसरा प्रकार भी ऐसा ही था; अंतर केवल इतना ही था कि उसमें खेर की राख नही मिलाते थे, भात और बूटी मिलाकर ही काम चला लिया जाता था। दोनों प्रकार से बनाए गए 'लाओ पानी' का नशा अलग-अलग होता था।

अतुल जानता था कि दिसाँगमुख के मीरी 'लाओ पानी' के सबसे बड़े रसिया थे। उनके घरों में त्योहारों पर ही नहीं, वैसे भी 'लाओ पानी' पीने की प्रथा थी। बच्चों को भी देते थे 'लाओ पानी', पर मात्रा में बहुत कम; लड़कियो को भी मना नही करते थे।

अतुल बरामदे में चटाई डालकर लेट गया।

रेणु और मखना रसोई में माँ के पास बैठे गप-शप कर रहे थे। उनकी बातें अतुल के मस्तिष्क पर चोट कर रही थीं, पर उसमें इतना साहस न था कि उन्हें चुप रहने के लिए कहता।

गोहाली की ओर से गोबर और सूखी घास की विचित्र-सी गंध आ रही थी। वह उठकर कपिला के पास जाना चाहता था, पर आज उसमे इतनी शक्ति न थी कि अपने हाथ से कपिला का दूध दुहता। पर चटाई पर लेटे-लेटे वह कल्पना में गाय का दूध दुहने लगा, जैसे दूध की धार पड़ने की आवाज उसे प्रिय लग रही हो। वह जानता था कि दूध दुहते समय गाय को भी एक विशेष प्रकार का आनद आता है, जैसे वह दोनो हाथो से कपिला के थन दबा-दबाकर दूध दुह रहा हो और दुग्ध-धारा से मधुर संगीत फूट रहा हो।···

उन्नीस

वे माझुली के शिकारी-गाँव से लौट रहे थे। बादल नावरिया के भतीजे नीलकंठ और बंसी नाव चला रहे थे। दोनो के घुँघराले बाल थे। दोनो जुडवाँ भाई थे। एक-सा रंग-रूप। वे जो भी काम करते, मिलकर करते; पल-भर के लिए भी उन्हें एक-दूसरे से पृथक् होना अप्रिय था। माझुली मे उनका बचपन बीता था, इसलिए कभी वहाँ जाना होता तो वे कम किराए पर भी राजी हो जाते।

नीलकठ के हाथ मे था चप्पू और बंसी के हाथ मे डाँड। कही पानी कम गहरा होता, तो डाँड से जोर लगाकर नाव को आगे धकेलना पड़ता। बसी डाँड उठाए आँखों पर लटकते बालों में से हँसी के छल्ले छोडता हुआ नीलकंठ की ओर देखता; नीलकंठ ज़ोर-जोर से चप्पू चलाते हुए कभी बड़े-बूढ़ो के समान 'बड डिकडारी' पर तान तोड़ता, कभी कल्याण भगत की विशिष्ट शैली मे 'हरी-हरी हे माधव' का आलाप करने के पश्चात् एकदम गंभीर नजर आने लगता। उस समय कल्याण भगत सोचता कि नीलकंठ पर उसका रंग चढ़ रहा है।

आज प्रातः नाव खोलने से पहले नीलकंठ ने बंसी के कान में पूछा था, "तुम्हें कल्याण भगत का रूप पसंद है या राखाल काका का?"

बंसी ने उसे अलग ले जाकर कहा था, "मुझे तो दोनों ही किसी नाटक के सूत्रधार प्रतीत होते है।"

बसी का विचार कहाँ तक ठीक था, नीलकंठ यह निश्चय नही कर सका था। भगतजी थे कि दाढ़ी-मूँछ मुंड़वाकर रखते थे, और राखाल काका भगतजी से

बिलकुल उलटे थे—गरदन तक लटकते हुए सफ़ेद बाल, लंबी सफ़ेद दाढ़ी, बड़ी-बड़ी मूँछें—एक महावत का चेहरा तो इसी रूप में अच्छा लग सकता था।

"भगतजी के चक्कर मे आकर राखाल काका ने भी चेहरा सफाचट करा दिया, तो छिले हुए आलू जैसा निकल आएगा!" बंसी ने हँसकर कहा। इस पर नीलकंठ खिलखिलाकर हँस पड़ा; भगतजी और राखाल काका भी हँस पड़े।

भगतजी की आवाज़ बहुत पाटदार थी। जब वह बात करते, तो हँसली की हड्डी उभरकर ऊपर उठ जाती। उन्हें शिकायत थी कि राखाल ने आज तक माझुली का एक भी सत्र क्यो नहीं देखा। माझुली में तो चार सत्र थे। इतने बड़े धार्मिक स्थान और कहाँ थे--गडामूर, आउनियाटी, कमलाबाड़ी और दक्षिणपाट। वैष्णव महापुरुष शंकर देव और उनके शिष्य माधव देव ने ये सत्र इसलिए स्थापित किए थे कि वे लोग, जो दूर-दूर के तीर्थों की यात्रा न कर सकें, इनमे से किसी एक सत्र मे बैठकर हरि के निराकार रूप की उपासना करें। माझुली के इन सत्रो में तो सैकडो ब्रह्मचारी और भक्त लोग आनंदपूर्वक रहते थे। सत्राधिकार सत्र का संचालन करता था।

"जैसे महावत हाथी को चलाता है, वैसे ही सत्राधिकार सत्र को चलाता है।" राखाल ने हँसकर कहा, "एक महावत को तो ऐसी मुक्ति नही चाहिए, जिसके लिए उसे हाथी बनना पडे और किसी सत्राधिकार को अपने कंधो पर महावत के रूप मे बैठाना पडे!"

"यह तो मिथ्या कल्पना है, दादा!" भगतजी ने गभीर होकर कहा, "सत्राधिकार तो महाप्रभु हुए। उनकी कृपा हो जाए, तो बडे-से-बड़ा सकट टल जाए।"

भगतजी ने उस सडक की बात छेड दी, जो माझुली के बीचो-बीच लबाई के रुख सबसे ऊँचे स्थान पर बनी हुई थी। वर्षा ऋतु मे जब चतुर्दिक जल-ही-जल हो जाता था, या जब कभी ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के कारण दूर-दूर तक पानी घुस आता था और माझुली के गाँव खिलौनों के समान पानी में डूब जाते थे, तो माझुली की यही सड़क सबसे ऊँचे स्थान पर स्थित होने के कारण पशुओ की रक्षा में सहायक सिद्ध होती थी। कई-कई सप्ताह के लिए लोग अपने पशुओ को सड़क पर ले आते और स्वयं आसपास के वृक्षों पर मचान बनाकर दिन बिताते, खेतो मे सर्वत्र गुटिया नाव चलने लगती थी। राखाल ने एक-दो बार चाँदडूबी की कहानी आरंभ करने का यत्न किया। भगतजी के सम्मुख आज राखाल काका एक अतिथि के रूप में बैठे थे। कदाचित् इसीलिए आज वह माझुली के संबध मे एक-एक बात में अपना अनुभव दूध में मिश्री की तरह घोलकर प्रस्तुत करने को उत्सुक थे।

वर्षा ऋतु मे माझुली को जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता था, उससे पार पाने के लिए लोग 'हरि हरि हे माधव' कहते रहते थे। कम-से-कम भगतजी का तो यही विचार था। "चारो सत्रों में सबसे बड़ा कौन-सा है?" राखाल ने छोटे

प्रश्न कर दिया।

"बड़ा तो महाप्रभु का नाम है !" भगतजी बात टाल गए।

प्रवाह के विपरीत नाव चलाते हुए नीलकठ का पसीना छूट रहा था। राखाल काका हँसकर बोले, "हमारे नार्मन साहब कहा करते थे कि एक दिन अँग्रेज़ ब्रह्मपुत्र पर भी पुल बनाने में अवश्य सफल होकर रहेगा।"

"यह नही होगा।" भगतजी बोले, "हरि हरि हे माधव !"

नीलकठ बोला, "बड डिकडारी ! काका, यह तो कभी न होगा। ब्रह्मपुत्र बाबा ने आज तक अपने ऊपर पुल नही बनने दिया, तो अब कैसे बनने देंगे ?"

बंसी ने हँसकरकहा, "भगतजी की तीर्थ-यात्रा की कथाएँ सुनते-सुनते तो हमारे कान पक गए। काका, एक बार भगतजी ने ही तो बताया था कि फिरंगी ने गगा और गोदावरी पर पुल बना दिए, और तुम भी तो एक बार कह रहे थे काका, कि फिरंगी के मन मे एक बार जो बात आ जाए, उसे वह पूरा करके छोड़ता है। तो भला वह ब्रह्मपुत्र पर पुल बनाने में ही कैसे हार मान लेगा ?"

नीलकंठ बोला, "हम तो कहेगे कि ब्रह्मपुत्र पर पुल न बने; और बने भी तो गौहाटी की ओर ही बने, हमारे दिसाँगमुख मे तो बिलकुल न बने।"

"क्यो ?" राखाल मुसकराया।

"दिसाँगमुख मे पुल बनने से हमारी नाव में बैठकर कौन पार जाएगा ? सब लोग पुल पर वैसे ही चलेगे जैसे वे अब धरती पर चलते है।"

भगतजी बोले, "इसे कहते हैं स्वार्थ ! बेटा नीलकंठ, तुम यह क्यों सोचते हो कि दिसाँगमुख मे पुल बन गया तो तुम्हारा नाव चलाने का धधा ही समाप्त हो जाएगा ?"

"फिर तो चेतन नावरिया की इजनवाली नाव पर भी कोई नही चढ़ेगा, काका !" बंसी भी चुप न रह सका।

भगतजी ने प्रसग बदलते हुए कहा, "एक बात याद आ गई। आउनियाटी सत्र के महाप्रभु ने एक बार अपने उपदेश मे बताया था कि असम मे सर्वप्रथम हिदू धर्म का किस प्रकार प्रवेश हुआ। वैसे तो उन्होने कहा था कि असम अनेक युगों से कामरूप के नाम से प्रसिद्ध रहा है। वह कथा तो आपमें से हर किसी ने सुनी होगी कि जब पार्वती की मृत्यु के पश्चात् महादेव शोकग्रस्त थे, तो देवताओं के निर्णय अनुसार हमारी इस भूमि मे कामदेव को भेजा गया था ताकि वह महादेव के मन में सृष्टि-रचना की भावना को नए सिरे से जन्म दे सके। यह भी प्रसिद्ध है कि महादेव ने तीसरी आँख से कामदेव की ओर देखा और वह भस्म हो गया। हमारे महाप्रभु ··"

"महादेव की तीसरी आँखवाली बात कभी मेरी समझ में नहीं आई।" राखाल ने टोककर कहा, "पर हमारे नार्मन साहब ने तो हमारे शास्त्रों का अनुवाद अँग्रेज़ी

भाषा में पढ रखा था; वह भी मानते थे कि शिव की तीसरी आँख से अवश्य आग निकली होगी।"

भगतजी ने नए घुटवाए हुए सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "शिव की तीसरी आँख से निकली हुई आग से जब कामदेव भस्म हो गया, तो इस भस्म से एक बार फिर कामदेव ने नया रूप धारण कर लिया।"

"कामदेव कहाँ भस्म हुआ था, काका !" नीलकंठ ने हँसकर पूछा, "और कामदेव दोबारा कैसे जीवित हो गया था ?"

"वह यही है हमारा असम, जिसे प्राचीन ग्रंथों में कामरूप भी कहा गया है; यही कामदेव दोबारा जीवित हो गया था सब देवताओ की शक्ति से !"

बंसी बोला, "कभी कामदेव भी भस्म हुआ है, काका ?"

नीलकंठ ने चप्पू चलाते हुए कहा, "अब यह प्रसंग समाप्त करो। ब्रह्मपुत्र को देखो। झाग छोड़ता नया पानी आ रहा है। ऊपर पहाडो पर बहुत वर्षा हुई है !"

राखाल काका बोले, "बिहू के तीसरे दिन तो दिसाँगमुख में भी वर्षा हुई थी।"

"आज तो आकाश निर्मल है।" नीलकंठ ने हँसकर कहा, "आज कहाँ चले गए काले-काले मेघ ?"

"काले मेघों को तो रंग-में-भंग डालने मे ही आनंद आता है !" बंसी ने बढ़ावा दिया, "उस दिन बोहाग बिहू दिन-भर बद रहा था। अब अपने-अपने घर मे तो कोई नाचने से रहा। नाच का आनंद तो मिलकर नाचने में ही है।"

नाव चली जा रही थी। नीलकंठ का अंग-अंग फड़क रहा था। उसने चप्पू की गति में और भी वेग लाते हुए कहा, "जूनतारा के लिए लड़का ठीक हो गया, काका ?"

"मुझे तो पसंद है लड़का।" भगतजी खाँसकर बोले, "घर जाकर विचार करेंगे।"

बंसी ने अपनी ही हाँकी, "गाँव ही में लड़की की ससुराल हो, यह तो होना ही नही चाहिए।"

"क्यों, इसमे क्या बुराई है ?" राखाल ने झट पूछ लिया।

"जहाँ लडकी के संयोग होते है, वही उसकी ससुराल बनती है।" भगतजी मुसकराए, "माता-पिता कुछ सोचते है···"

"होता कुछ और है !" राखाल ने बात काटकर कहा, "एक बात सुन लो। यह लड़का, जो तुम जूनतारा के लिए ठीक कर रहे हो, जूनतारा की माँ को बिलकुल पसंद नही आएगा।"

भगतजी ने चौककर राखाल की ओर देखा।

नीलकंठ और बंसी कुछ न बोले; वे तो तमाशा देखना चाहते थे।

भगतजी ने बात टालने के विचार से कहा, "भवसागर से पार लगाने के लिए भी एक नावरिया चाहिए; ऐसे ही नावरिया हैं आउनियाटी सत्र के महाप्रभु ! गुरुदेव की वाणी को हमारे महाप्रभु नाव की तरह खेते है। इस नाव पर वह अपने भक्तो को बैठा लेते है। हमारे महाप्रभु एक बार अपने सत्सग मे कह रहे थे कि आज तक तो किसी इंजीनियर ने जन्म नही लिया जिसने ब्रह्मपुत्र पर पुल बनाया हो। वह कह रहे थे, 'ऐसा दिन कभी नही आएगा, जब अन्य नदियो के समान ब्रह्मपुत्र भी किसी पुल के नीचे से बहेगा और पुल पर खड़े होकर मनुष्य यह अनुभव करेगा कि ब्रह्मपुत्र तो उसकी टाँगो के नीचे से बह रहा है।' तुम्हारा क्या विचार है, दादा ?"

राखाल बोला, "एक दिन अँग्रेज़ यह भी कर दिखाएगा।"

भगतजी ने हँसकर कहा, "हमारी नाव भी एक प्रकार की डोली है। लहरों की बारात है और हम···"

"और हम दिसाँगमुख जा रहे है।" राखाल ने हंसकर कहा, "अब यह भी कोई कहने की बात है ? मेरा सकेत तो तुम समझोगे नही। जूनतारा की ससुराल तो दिसाँगमुख में ही बनेगी।"

"तो काका व्यर्थ ही जूते घिसा रहे है। घूम-घूमकर।" नीलकठ हँस दिया, "एक बात याद आ गई। एक दिन शिवसागर के एक आदमी को मै दिसाँगमुख से माझुली पहुँचाने गया, तो वह आदमी रास्ते मे बोला, 'नाव मे बैठे-बैठे तो लगता है, जैसे हम घोडे पर सवार है और घोड़ा सरपट दौड रहा है !' यह सुनकर मुझे तो हँसी आ गई। मैने कहा, 'इतनी सरपट तो नही दौड़ सकती हमारी नाव !' मैने यह बात देवकात और अतुल को सुनाई, तो वे दोनो हँस दिए। देवकात ने छूटते ही कहा, 'सरपट भी दौड़ सकती है हमारे देश की नाव, यदि नारायण जैसे दारोगा का आतंक समाप्त हो जाए।"

"और अतुल ने क्या कहा था ?" राखाल ने बागडोर सँभाली।

"अतुल को क्या कहना था ?" बसी बोला, "अतुल तो देवकात का ही पिट्ठू है। यह तो समझो कि इतना अतर रह गया कि देवकात भाग गया और अतुल अभी गाँव मे है। नारायण दारोगा ने तो बड़ो-बड़ो को नाको चने चबा दिए। यह तो ज़रा गाँव-बूढ़ा का लिहाज है। अतुल गाँव-बूढ़ा का लड़का न होता तो···"

"तो अब तक जेल मे होता !" नीलकठ ने बंसी के मुँह से बात छीनते हुए कहा, "पता नही ये लोग नारायण दारोगा से क्यो टक्कर लेना चाहते है।"

भगतजी बोले, "मै तो अतुल को कई बार समझाते-समझाते हार गया कि अँग्रेजी राज्य का दारोगा तो शिव की तीसरी आँख के समान है।"

"वाह, वाह !" नीलकंठ हँस पड़ा, "क्या रूपक बाँधा ! एक दिन इस आँख से निकलनेवाली आग से अतुल भस्म हो जाएगा।"

"और यह भी तो कहो कि इस भस्म से अतुल दोबारा जी उठेगा, कामदेव के समान।" बंसी ने बात को दूसरी ओर घुमा दिया, "अतुल को उस दिन बिहू नाच में नही देखा था? उधर जूनतारा रंग बाँध रही थी युवतियों की पंक्ति में, और सामने अतुल नाच रहा था। भगतजी भी तो उस समय वहीं थे। देखनेवाले कह रहे थे, 'यह जोडी अच्छी रहेगी! बस इनके माता-पिता को समझ आ जाए।' अतुल का घर भी तो जूनतारा के सामने है। मायके और ससुराल के बीच यदि केवल एक सडक का अंतर रहे तो क्या बुरा है?"

भगतजी कुछ न बोले। राखाल ने झट बात को उठा लिया, "जिसने भी यह बात कही, कुछ बुरा तो नही कहा। मै तो कई बार यह सोच चुका हूँ।"

भगतजी चुप न रह सके, "छोड़ो यह बात, दादा! इसमे क्या रखा है! एक बात याद आ गई। बड़ी सुदर बात है। एक बार हमारे महाप्रभु ने यह बात अपने उपदेश मे आउनियाटी सत्र के भक्तों को सुनाई थी। यह बात—"

"वह बात हम भी सुनेंगे।" नीलकंठ हँस पड़ा।

"अवश्य!" बसी ने आग्रहपूर्वक कहा।

"सुना तो रहा हूँ।" भगतजी कहते चले गए, "यह बहुत पहले की बात है। पाँच सौ वर्ष पहले की बात होने में तो कोई सदेह नही। शिवसागर राजधानी से बाहर गया हुआ था एक अहोम राजा, क्योकि चुटिया लोगो से राजा का युद्ध चल रहा था। राजा की दो रानियाँ थी—एक बड़ी, एक छोटी। छोटी रानी राजा को बहुत प्रिय थी। उस समय वह गर्भवती थी। बड़ी रानी ने छोटी रानी के विरुद्ध षड्यत्र रचकर उसे मरवा डालने का प्रबंध कर लिया। यदि वह गर्भवती न होती तो उसके वध मे तनिक भी विलंब न होता; पर बड़ी रानी ने जिस मत्री को यह कार्य सौपा, उसे छोटी रानी पर और अनागत शिशु पर दया आ गई। बड़ी रानी को तो उसने यही सूचना दी कि छोटी रानी का जीवन समाप्त कर दिया गया है, पर वह उसे लकड़ी के तख़्तों से बने हुए बेड़े पर बैठाकर ब्रह्मपुत्र मे ठेल आया। एक ब्राह्मण ने छोटी रानी की रक्षा की, और वह उसे अपने घर ले गया, जहाँ एक राजकुमार को जन्म देने के पश्चात् रानी ने प्राण त्याग दिए। अहोम परंपरा के अनुसार इस राजकुमार का नाम 'सुदाँग फा' रखा गया। सुदाँग फा को उस ब्राह्मण ने अपने बच्चो के साथ पाला-पोसा। हमारे महाप्रभु कहते थे..."

"यही कहते होगे महाप्रभु कि छोटी रानी को दिसाँगमुख मे ही बेड़े पर बैठाकर ब्रह्मपुत्र में ठेला गया था।" नीलकंठ ने हँसकर कहा, "और यह भी कहते होगे कि माझुली के किसी ब्राह्मण ने ही रानी की रक्षा की थी और सुदाँग फा का पालन-पोषण किया था।"

"जब सुदाँग फा पंद्रह वर्ष का हो गया, तो माझुली के उस ब्राह्मण ने शिवसागर जाकर अहोम राजा के महामत्री को यह सूचना दी कि महाराज..."

"बडी ही सुदर कथा है।" राखाल ने गंभीर होकर कहा, "कहते जाइए, भगतजी!"

"हाँ तो सूचना दी कि महाराज हमारे घर में अहोम राजकुमार सुदाँग फा बडे आनंद से समय बिताकर बहुत ही बुद्धिमान बन गया है, और वह अहोम परंपरा के अनुसार राज-सिहासन पर बैठने का पूर्ण अधिकारी है क्योकि उसके सभी अग पूर्ण है। अब यह उन दिनों की बात है जब सुदाँग फा का पिता मार डाला गया था और सिहासन के लिए राजकुमार की आवश्यकता थी। राजकुमार की मुखाकृति अपने पिता की-सी थी। उसे पूरी तरह पहचानकर उसका राज्याभिषेक किया गया। हमारे महाप्रभु कहते थे···"

"यही कहते होगे महाप्रभु कि सुदाँग फा ने राजा बनकर माझुली के उस ब्राह्मण को मालामाल कर दिया और उसके लड़को को राज-दरबार मे रख लिया। क्यो, भगतजी?" नीलकठ हँस पडा।

बंसी बोला, "इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि जिसकी भगवान् रक्षा करे उसे कोई नही मार सकता।"

"मै तो दूसरी ही बात सोच रहा था।" नीलकंठ ने वेगपूर्वक चप्पू चलाते हुए कहा, "सुदाँग फा का किसी सुदर राजकुमारी से विवाह हुआ होगा, क्योकि शिव की तीसरी आँख से निकलनेवाली आग में भस्म होने के पश्चात् भी कामदेव ने हमारे इस कामरूप मे नया रूप तो बहुत पहले ही धारण कर लिया था। यह भी कह सकते है कि कामदेव कभी भस्म हुआ ही न था।"

राखाल ने अपनी सफेद दाढी पर हाथ फेरते हुए कहा, "नीलकठ ठीक कहता है।"

भगतजी बोले, "आउनियाटी सत्र के महाप्रभु कहते थे कि सुदाँग फा ने राज-सिहासन पर बैठकर सर्वप्रथम असम में हिंदू धर्म को प्रश्रय दिया। उससे पूर्व अहोम राजा हिंदू धर्म से वंचित थे। सुदाँग फा से पूरे एक सौ वर्ष पश्चात् अर्थात् आज से कोई चार सौ वर्ष पूर्व एक अहोम राजा हुआ था जिसका नाम था सुहुगमुग। उसने अपना हिंदू नाम स्वर्ग नारायण या स्वर्गदेव रखा। अहोम राजाओ मे उस समय से यह नई परंपरा चल पडी कि उनका एक हिंदू नाम भी अवश्य रहना चाहिए। स्वर्ग नारायण के समय में ही हुए हमारे गुरुदेव।"

"अच्छा तो असम में वैष्णव धर्म के संचालक महापुरुष शकरदेव अहोम राजा स्वर्ग नारायण के समय में हुए?" राखाल ने गरदन तक आते सफ़ेद बालो को झटककर कहा, "हमारे नार्मन साहब को तो असम का पूरा इतिहास याद था; सुनाने लगते तो सुनाते ही चले जाते। जितना ज्ञान उन्हे हाथियो के संबंध मे था, उससे कही अधिक तो असम के इतिहास के संबध मे था। वह बताया करते थे कि किस प्रकार असम के अहोम राजाओं में हिंदू धर्म के दो रूप एक-दूसरे के ऊपर

अधिकार जमाने का यत्न करते रहते थे। यदि कोई राजा शाक्त धर्म का माननेवाला होता तो शंकरदेव के महापुरुषिया भक्तो और गोसाइयो की खैर नही थी। बीच-बीच में नर-नारायण और रुद्रसिंह जैसे राजा भी सिहासन पर आ जाते थे, जो शाक्त धर्म के अनुयायी होते हुए भी वैष्णव धर्मावलंबियो के साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करते थे।

"नार्मन साहब ने बहुत सोच-सोचकर बताया था कि असम के इतिहास से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिस प्रकार ब्रह्मपुत्र में सब नदियाँ आकर गिरती हैं और ब्रह्मपुत्र की शक्ति बढ़ाती है, उसी प्रकार असम के अहोम राजाओ ने भी विभिन्न विचारधाराओं को एक बडी विचारधारा में मिलने की पूर्ण स्वतत्रता दे रखी थी। शाक्त लोग, जो शिव के भक्त थे, विष्णु की शक्ति में भी थोडा-बहुत विश्वास अवश्य रखते थे। इसी प्रकार अहोम राजा भले ही बाहर से आए थे, पर असम में आकर वे असम की ही विभिन्न विचारधाराओ को अपनाते चले गए और इसी भाव-भूमि पर असम की कला विकसित हुई और असमिया साहित्य जीवंत हुआ।

"नार्मन साहब कहा करते थे कि जब भी शकरदेव के अनुयायी महापुरुषिया गोसाई, जिनकी सख्या बहुत बढ़ गई थी, राजनीति की डोर हिलाकर एक राजा के विरुद्ध उसके प्रतिद्वंद्वी राजकुमार को भडकाते थे और षड्यंत्र करनेवालो का खुलकर साथ देते थे, तो शक्तिशाली अहोम राजा की आज्ञा से ऐसे लोगो की बीच डगर मे हत्या कर दी जाती थी और यह कहना उचित नही कि अहोम राजाओ के लिए शाक्त धर्म के अतिरिक्त वैष्णव धर्म नितात असह्य था।"

भगतजी बोले, "सौ बातो की एक बात मै भी कह दूँ। अहोम राजा प्रतापसिंह का बनवाया हुआ मदिर तो आज भी मिलता है। उसका मुख्य देवता भले ही शिव है, पर इस मदिर के चारो कोनो मे गणेश, सूर्य, दुर्गा और विष्णु की मूर्तियाँ स्थापित की गई थी। पंचदेव की पूजा का आदर्श उपस्थित करते हुए यह बताया गया था कि सब देवता एक ही शक्ति के रूप हैं।"

नीलकंठ और बसी को भी इन बातो मे रस आने लगा था। नाव दिसाँगमुख के घाट पर आकर लगी तो सूर्य अस्त हो रहा था। नीलकठ ने नाव में बैठे-बैठे कहा, "भगतजी, देवकांत ने सुदाँग फा की माँ की कथा आपसे ही सुनी होगी। उसने इसके साथ नया रूपक बाँध दिया था।"

"वह क्या ?" भगतजी मुस्कराए।

"वह कहता था कि जैसे सुदाँग फा की गर्भवती माँ को बेडे पर बैठाकर ब्रह्मपुत्र मे ठेल दिया गया था वैसे ही फिरंगी ने भारत माता को बेड़े पर बैठाकर ब्रह्मपुत्र मे ठेल दिया है।"

भगतजी झुँझलाकर बोले, "देवकांत का नाम लिया तो नारायण के हत्थे चढ़ जाओगे।"

राखाल ने हँसकर कहा, "तो क्या अतुल का नाम भी न लेने दोगे ?"

"अतुल का नाम लेने से कौन रोकता है, दादा ?" भगतजी मुसकराए।

"आज घर में विचार करते समय अतुल का नाम न भूलिए, भगतजी !" राखाल ने गंभीर होकर कहा, "विवाह के मामले मे सयोग तो मिलना ही चाहिए, पर बुद्धि से काम लेना भी कुछ कम आवश्यक नही है। बुद्धि भी एक प्रकार का ताला है; इसकी चाबी तो अपने पास रहती है, कही दूर माझुली में नही !"

बीस

आज फिर आरती प्रतिदिन के समान नाव चला रही थी। धर्मानंदी जाल को देखकर सोच रहा था, 'यह कितना पुराना हो गया, फिर भी काम दिए जा रहा है।'

आरती की कल्पना मे देवकात का मुसकराता हुआ चेहरा उभरा। वह भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि पुलिस की दृष्टि देवकात की छाया तक भी न पहुँचे। फाँसी का ध्यान आते ही वह डर गई। न बाबा, मुझसे तो फाँसी पर कभी नही चढ़ा जाएगा। मुझे तो अपने प्राण प्रिय है। अपने प्राण किसे प्रिय नही होते। जाल फेंकने से पहले बापू सदा कहता है—सावधान, मछलियो !···प्राण तो मछलियो को भी प्रिय होगे। मृत्यु तो मनुष्य से कभी सावधान होने के लिए नही कहती। यह तो हमारा धधा है, जो मछलियों पर भी दया-भाव दिखाए, वह किधर का मछुआ है ?

उसे ध्यान आया कि जब उसका बापू पाँचवे दिन हवालात से छोड़ा गया था तो किस प्रकार उसके शरीर पर पिटाई के चिह्न दीख रहे थे। स्वयं उसे भी उलटा लटकाया गया था। यदि वह देवकात के सबध मे झूठ-मूठ भी कुछ बताना स्वीकार कर लेती, तो कदाचित् उसे उलटा न लटकाया जाता। उसका बापू भी तो देवकात के सबध मे कुछ बताने से अत तक इनकार करता रहा था, इसीलिए तो उसकी पिटाई हुई थी। पिटाई तो स्वयं उसकी भी हुई थी। वह थाना ही क्या हुआ, जहाँ पिटाई न की जाती हो। नारायण के हत्थे चढ़ने का मतलब है मृत्यु की राह देखना। हम तो भाग्यशाली थे कि मुक्त होकर आ गए, पर अब भी क्या भरोसा है ! देवकात पुलिस के हाथ नही लगा। पुलिस चाहे तो बापू को और मुझे दोबारा हिरासत मे रख सकती है।···

अब तो उसे देवकात का कोई पता न था। उसे देवकांत का पता होता तो वह उसे भोजन पहुँचाने जाती, पुलिस की तनिक भी परवाह न करती; वह देवकांत से

भारत माता की बात पूछती। वह उससे पूछती कि भारत माता दिसाँगमुख कब आएगी। इसके उत्तर में देवकांत नाक सिकोड़ता। वह उससे कहती—पहले मछली और भात खाओ, देवकात ! फिर भारत माता की बात बताना।···अभी अगले ही दिन वह देवकांत की माँ से मिलने गई थी। माँ को इस बात का तो तनिक भी दुख नही कि बेटा इस पथ पर क्यों चल रहा है, पर उसे इस बात का बहुत दुख है कि कलकत्ता से लौटकर उसका बेटा एक बार भी उससे मिलने नहीं आया।···

देवकांत जैसे बेटे की माँ होने का तो भला किसे गर्व न होगा ? करघे पर अंडी या मूगे का थान बुनते हुए माँ सदा यही सोचती है कि देवकांत जैसा बेटा तो प्रत्येक स्त्री को मिले। माँ का यह विचार तो बिलकुल नहीं कि देवकांत का कार्य शीघ्र समाप्त हो जाएगा और फिर वह दिसाँगमुख में जमकर रहेगा। मैं सोचती हूँ कि अपने कार्य से छुट्टी पाकर देवकांत के लिए यह बिलकुल कठिन नही रह जाएगा कि वह दिसाँगमुख मे जमकर रहे। देवकात ब्राह्मण है। मछुए की कन्या तो क्या खाकर बनेगी ब्राह्मण की बहू ? ब्राह्मण का लड़का तो मछुआ बन सकता है···

वह चप्पू चलाते-चलाते बोली, "मछलियों का ध्यान रखो, बापू ! कहाँ डालोगे जाल ?"

"तुम चप्पू चलाती रहो, आरती ! मछलियाँ कहाँ मिलेंगी, यह देखना मेरा काम है।"

धर्मानदी जानता था कि मछलियाँ कहाँ अधिक मिलती है। वह यह भी जानता था कि सवेरे-सवेरे मछलियाँ अधिक मिलती है या फिर साँझ के पश्चात्। वैसे तो जब भी जाल डाला जाता, यह थोड़ा-बहुत काम तो कर ही दिखाता था। अभी भोर होने मे देर थी।

धर्मानंदी ने नाव रुकवाकर जाल फेंकते हुए कहा, "सावधान, मछलियो ! आराम से चली आओ हमारे जाल के भीतर। सरकार को पैसे देते हैं, मुफ्त तो हमें कोई मछलियाँ नही पकड़ने देता !"

आरती को स्मरण हो आया कि पिछले वर्ष तो देवकांत हर तीसरे-चौथे दिन उनके साथ नाव में आ बैठता था और आरंभ कर देता था कलकत्ता की कहानियाँ। कलकत्ता में उसकी पढ़ाई के दिनों में बहुत बार हडसन साहब की बेटी लिली ने उसकी सहायता की थी, यह तो देवकांत ने कई बार बताया था। साथ ही उसने यह भी तो कहा था, 'यदि किसी प्रकार लिली को इस बात का पता चल जाता कि मै क्रातिकारियों के निकट संपर्क में हूँ, तो कदाचित् वह मेरी सहायता करने का विचार ही छोड देती।'

सहसा उसे ध्यान आया कि देवकांत की खातिर बापू की कितनी पिटाई हुई थी। स्वयं उसे भी तो उलटा लटकाया गया था। इसी प[illegible] नहीं की गई थी। उसे

कान ऐंठे गए थे; उसे पीने का पानी नही दिया गया था; उसके बाल नोचे गए थे; नीचे से हटर भी लगाए गए थे। कोई भी पिटना नही चाहता। पिटना तो आसान काम नही। अपनी जान किसे प्रिय नही होती?···सावधान, मछलियो! हमारे जाल मे आराम से चली आओ। सरकार को पैसे देते है। थाने मे हमे उलटा लटकाया जाता है, नीचे से हंटर लगाए जाते है। सावधान, मछलियो, सावधान! इस समय देवकात न जाने कहाँ होगा!···मन-ही-मन आरती देवकात के लिए प्रार्थना करने लगी।

कई बार आरती नौकाओ को गिनने लगती जो पास से गुजर रही थी।

सहसा उसे ध्यान आया – ब्राह्मण का लडका चाहे तो मछुआ बन सकता है, पर मछुए की कन्या तो इस जन्म में ब्राह्मण की बहू बनने से रही। मुफ्त मे तो सरकार किसी को मछलियाँ पकड़ने का धधा करने की आज्ञा देने से रही। अपने खाने के लिए भले ही कोई दो-चार मछलियाँ पकडकर ले जाए, पर कोई इस धधे को अपनाएगा तो उसे सरकार को पैसे देने ही होगे। पैसे देने के विरुद्ध तो नही है बापू। मछुए से तो अहोम राजा भी पैसे लेते होगे। ब्रह्मपुत्र मे चाहे जितनी मछलियाँ पकडते रहो, यह तो अपना परिश्रम है। फिर सरकार पैसे क्यो लेती है? ···देवकात ने बताया था कि कलकत्ता मे हजारो गलियाँ है। मन-ही-मन वह उन गलियो को गिनने लगी। उन हजारो गलियो में रहनेवाले लोग कैसे होगे? वे अपने ही सुख-दुख मे खोए रहते होगे। देवकात ने एक बार मुझे कलकत्ता दिखाने का वचन दिया था। मै अवश्य कलकत्ता देखने जाऊँगी। कलकत्ता देखकर यहाँ आ जाऊँगी। फिर मैं यहाँ के लोगो को देवकात से भी कही अच्छी-अच्छी कलकत्ता की कहानियाँ सुनाया करूँगी।···

धर्मानदी बोला, "आज तो पूरी सौ मछलियाँ फँसनी चाहिए!"

आरती का ध्यान परे से आती नाव की ओर था। फिर उसका ध्यान देवकात की ओर चला गया। ब्राह्मण का लड़का चाहे तो अवश्य मछुआ बन सकता है। पहले वह अपने काम से छुट्टी तो पा ले, फिर वह दिसाँगमुख में जमकर रहेगा··· वह मन-ही-मन ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ गिनने लगी···मुझे बार-बार पुलिस ने देवकात का भेद बताने के लिए विवश किया था, बार-बार मेरे इनकार करने पर मेरे मुँह पर थूका गया था। पुलिस का अत्याचार मैने बडे धैर्य से सह लिया था।···

धर्मानंदी के शरीर पर अभी तक पुलिस की चोटो के निशान नज़र आ रहे थे। आरती ने कई बार पूछा, "बापू, तुझे किसी ने कुछ कहा तो नही था थाने मे?"

धर्मानदी ने हर बार यही उत्तर दिया, "वे मुझसे पूछते रहे और मै टालता रहा। मुझे किसी ने हाथ नही लगाया।" आरती सोच रही थी, उस दिन मैं जूनतारा को उसके घर तक छोड़ने गई, तो रास्ते मे उसने मुझे जयमती की कथा सुनाई थी। जयमती की कथा तो मैं पहले भी जानती थी, पर उस दिन जूनतारा के

मुख से वह कथा सुनकर कितना आनंद आया था।

जूनतारा ने जयमती की कथा सुनाने के बाद कहा था, "तेरी कथा तो बहुत नई है, आरती ! एक दिन दिसाँगमुखवालो को मालूम हो जाएगा कि आरती ने एक बार फिर जयमती की कहानी को जीवित कर दिखाया !" मैने उसे चुप कराते हुए कहा था, "क्या पता, पुलिस के थोड़े और अत्याचार से ही तुम्हारी आरती भयभीत हो जाती और देवकात का भेद बता देती !"

फिर जैसे उसकी कल्पना में देवकांत की आवाज गूँज उठी—एक दिन मै अपनी जयमती से मिलने आऊँगा। कलकत्ता मे कार्य समाप्त करने के पश्चात् मै दिसाँगमुख ही मे रहूँगा। मै मछुआ बन जाऊँगा। फिर तो तू खुश होगी, मेरी जयमती ?···

धर्मानदी ने जाने क्या सोचकर कहा, "वह कहावत तो तुमने अवश्य सुनी होगी, आरती ?"

"कौन-सी, बापू ?"

"वही—'चीटी के लिए वर्षा की कुछ बूँदे ही बाढ़ है।' बड़ी गहरी बात है।" धर्मानदी ने दोनो हाथ आकाश की ओर उठाकर कहा, "आज कितने बादल घिर रहे है। वर्षा होगी।"

आरती बोली, "यह चीटीवाली कहावत भी अच्छी है, बापू ! मै सोचती थी तुम वह साँप और मछलीवाली कहावत सुनाओगे।"

"अरे हाँ, आरती ! वह कहावत भी अच्छी है, 'देखो बहन देखो, तुम्हे साँप ने डस लिया और मैने मछली पकड़ ली !' इस कहावत का मतलब बहुत गहरा है।"

आरती कुछ न बोली। असम के इतिहास की वह सुविख्यात कथा नाटक के दृश्य के समान उसकी कल्पना में सजीव हो उठी—असम का अत्याचारी अहोम राजा चूलिक फा, जिसने बलपूर्वक अहोम सिंहासन पर अधिकार जमा लिया था, रग-घर की ऊपर की मजिल मे मेहराववाले द्वार से सिर बाहर निकाले खडा है। नीचे खुले मैदान में, जहाँ कभी नृत्य हुआ करते थे या नाटक खेले जाते थे, आज लकडी की रंगभूमि पर रानी जयमती की लाज उतारी जा रही है। उसके शरीर पर तड़ाक्-तड़ाक् कोड़े लगाए जा रहे है। सात दिन से वह भूखी और प्यासी है। वह यह जानती है कि उसका पति गदाधरसिह कहाँ है, पर वह बताती नही। उसे बुरी तरह सताया जा रहा है। सब-के-सब अहोम राजकुमारो को अहोम परपरा के अनुसार सिहासन के अयोग्य ठहराने के लिए चूलिक फा ने अपने सेनापति को आज्ञा दी थी कि वह उषा की प्रथम किरण फूटने से पूर्व ही प्रत्येक अहोम राजकुमार की एक-एक उँगली या एक-एक कान काटकर और सोने के बडे थाल मे सजाकर प्रस्तुत करे। सेनापति आज्ञा-पालन के लिए चला। सब राजकुमारो को सिहासन के अयोग्य बना दिया गया, क्योकि अहोम परपरा के अनुसार राजा भगवान् का

प्रतीक माना जाता था, इसलिए सिंहासन पर वही राजकुमार बैठ सकता था जो शारीरिक दृष्टि से सर्वांग पूर्ण हो। जयमती के पति गदाधरसिंह को किसी प्रकार सूचना मिल गई। वह भाग निकला। तड़ाक्-तड़ाक् जयमती के शरीर पर कोड़े लगाए जा रहे है ताकि वह अपने पति का भेद बता दे। जयमती कुछ नही बोलती। वह मृत्यु से खेल रही है। हजारो लोग रानी पर किया जा रहा यह अत्याचार देख रहे है, सबकी आँखों में आँसू हैं; सब यही चाहते है कि गदाधरसिंह नागा वीरो की सेना समेत आ पहुँचे, जयमती को बचा लिया जाए और अत्याचारी चूलिक फा का शासन सदा के लिए समाप्त कर दिया जाय। देखते-देखते जयमती के प्राण-पखेरू उड गए।···गदाधरसिंह अपने मित्रो की सहायता से चूलिक फा को उसके अत्याचार का दड देता है और स्वयं सिंहासन पर बैठने मे सफल हो जाता है··· जयमती के नाम पर शिवसागर में जयसागर खुदाया जा रहा है···जयसागर के किनारे जयमती के बलिदान के उपलक्ष्य में जयदोल बनवाया जा रहा है···आरती की कल्पना मे जयमती के बलिदान का दृश्य फिर से घूम गया। फिर कैसे जयमती ने आरती का रूप धारण कर लिया। चूलिक फा के स्थान पर नारायण दारोगा आकर खडा हो गया। छत से एक लडकी उलटी लटकाई गई है; नीचे से उसके हटर लगाए जा रहे है। नई जयमती से नए गदाधरसिंह का पता पूछा जा रहा है। हरामजादी ! सूअर की बच्ची ! बता वह तेरा देवकात कहाँ है ?···

वह अपनी ओर आती नौकाओ को गिनने लगी—एक, दो, तीन। फिर वह जैसे अपने बापू को सुनाकर कहने लगी, "ब्रह्मपुत्र बाबा पर तो हमेशा नौकाएँ चलती रहेंगी।"

···सावधान, मछलियो ! हमारे जाल मे आराम से चली आओ। ब्रह्मपुत्र पर मछली की छाप है और असम के इतिहास पर जयमती की। बड़ी जयमती, छोटी जयमती। नौकाएँ आ रही है—एक, दो, तीन। जाल में मछलियाँ फँस रही है—एक, दो, तीन। देवकात जहाँ भी है, सुखी रहे—एक, दो, तीन। कलकत्ता में रहती है भारत माता—एक, दो, तीन। भारत माता बहुत दुबली हो गई है—एक, दो, तीन। मै शायद दिसाँगमुख के थाने में छत से उलटी लटकते-लटकते मर गई थी—एक, दो, तीन। मैं फिर से जीवित हो गई थी—एक, दो, तीन !···

इक्कीस

दो दिन से वर्षा बंद नही हुई थी। स्टीमर की खिड़की से वर्षा का दृश्य बहुत भयंकर मालूम हो रहा था।

लिली जानती थी कि वर्षा ऋतु गाँववालों के लिए संकट लेकर आती है। साथ ही उसने यह भी सुन रखा था कि बंगाल और असम के नए और पुराने कवि वर्षा ऋतु का गुणगान करते नही थकते।

इसी स्टीमर पर लिली का जन्म हुआ था। जब उसका जन्म हुआ तो यह स्टीमर कलकत्ता से दिसाँगमुख आ रहा था। कलकत्ता से चलने के तीसरे दिन स्टीमर ही मे लिली ने संसार में आकर पहली बार साँस ली। तब भी यही महीना था—बोहाग बिहू से डेढ़ माह बाद यही आज का दिन था। यह सोचकर कि आज उसका जन्म-दिन है, लिली मन-ही-मन फूली न समाती थी। यह स्टीमर भी उसे बहुत अच्छा लगने लगा जो उनके निवास के लिए स्टीमर-घाट पर ही खड़ा रहता था।

जब से देवकात दिसाँगमुख से भाग गया था, लिली उसके संबध मे कुछ अधिक सोचने लगी थी। कलकत्ता जाने से एक दिन पूर्व वह लिली से मिलने आया था, पर कलकत्ता से लौटकर तो उसे स्टीमर-घाट पर आने का समय ही नही मिल सका था!

देवकात के दृष्टिकोण से जीवन को देख सकना लिली के बस का रोग न था। उसके डैडी ने अँग्रेज जाति की विशिष्टता की भावना उसके मस्तिष्क मे कूट-कूट-कर भर दी थी। न जाने कब से लिली यह सुनती आई थी, 'जब तक हम यहाँ रहेंगे, डडे के जोर पर रहेगे।' इसके उत्तर मे वह प्रायः मौन रहती, उसके डैडी यही सोचते कि लिली उनसे सोलह आने सहमत है।

जब लिली सैकड ईयर मे पढती थी तो देवकात फोर्थ ईयर में था। दोनों कलकत्ता के दो अलग-अलग कॉलेजो में पढ़ते थे। लिली जानती थी कि देवकात एक असमिया पत्रिका का कार्य कर छोडता है और इसके बदले में कलकत्ता की उस पत्रिका का सपादक देवकात की सहायता करता है। देवकात दिसाँगमुख से कैसे कलकत्ता पहुँचा, इसकी लबी कहानी थी, जो लिली ने कई बार स्वय देवकात के मुख से सुनी थी। यह कहानी सुनते-सुनते वह कई बार बुरी तरह 'बोर' हुई थी, फिर भी उसने तीन-चार अवसरो पर देवकात की आर्थिक कठिनाइयो मे उसका हाथ बँटाया था। उसने केवल मानवता के धरातल पर खड़े होकर ही देवकांत की सहायता की थी। आखिर उन दोनो का बचपन दिसाँगमुख ही मे बीता था और लिली के लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी। ब्रह्मपुत्र ने ही दोनो की कल्पना में रग भरा था। भले ही देवकात यह न सोच सकता था कि लिली एक अँग्रेज लड़की होते हुए भी दिसाँगमुख के संबध को इतना महत्त्व दे सकती है।

खिड़की से हाथ निकालकर लिली वर्षा के छीटो को अपनी मुट्ठियो में दबाने का यत्न करने लगती। उसके मुख पर हवा ब्रुश फेर रही थी। हवा की चंचलता लिली को प्रिय थी, पर उसकी कल्पना से यह बात भी कुछ दूर न थी कि यदि वर्षा ने तूफ़ान का रूप धारण कर लिया तो हो सकता है कि दिसाँगमुख के बहुत से लोगो

की छतें उड़ जाएँ। पिछले से पिछले वर्ष इन्ही दिनों आलीसीगा की मुसलमान बस्ती की अधिक नही तो चालीस-पचास झोंपडियाँ ताश के घरों की तरह बैठ गई थी।

कलकत्ता जाने से पहले दिन देवकात लिली से मिलने आया था, तो न जाने किस संबंध मे यूनानी नाटक की चर्चा होने पर देवकात ने कहा था, 'यूनानी नाटक मे मृत्यु ऐसे आती है जैसे पैमाने से सीधी रेखा खीची जाती है, पर अब जबकि साइंस की इतनी प्रोग्रेस हो चुकी है और यह सिद्ध कर दिया गया कि कोई भी रेखा सीधी नही होती, यह और भी आवश्यक हो जाता है कि नाटक मे ट्रेजेडी का रंग पेश करते समय सीधी रेखा के ढंग पर मृत्यु को लाने के बजाय इसे जीवन के समीप लाया जाए।' इसके उत्तर में यह पूछने पर कि मृत्यु को जीवन के समीप लाने से उसका क्या तात्पर्य है, देवकात ने कहा था, 'एक मृत्यु वह थी जो क्राइस्ट को प्राप्त हुई, एक मृत्यु वह भी है जो एक देशभक्त को प्राप्त होती है।'···

यदि अपने डैडी के इस विचार से लिली पूरी तरह सहमत हो सकती कि अंग्रेज सदा डंडे के जोर पर ही इस देश पर राज्य करेगा, तो शायद वह कभी देवकात को यह आज्ञा न देती कि उनके स्टीमर में आकर वह अपने देश के सबंध में इतनी तीव्रता से बात कर सके।

वर्षा जैसे आज ही अपना पूरा जोर दिखाने पर तुल गई थी। अब तो प्रतीत होता था कि तूफान का रंग ऊपर आ रहा है। आज फिर दिसॉगमुख की झोपडियों के छप्पर उड जाएँगे। आज फिर बहुत-सी झोंपडियाँ पिछले से पिछले वर्ष के समान नीचे बैठ जाएँगी।

लिली को खिडकी मे खडे-खडे याद आया कि एक बार कलकत्ता मे उसने देवकात को एक होटल में डिनर पर बुलाया था। डिनर के पश्चात् उन्होने एक कैबरे देखा था। उस कैबरे में जीवन और मृत्यु का नृत्य दिखाया गया था। कैबरे समाप्त हुआ तो देवकात कह उठा था, "यह मृत्यु नही, मृत्यु का उपहास है! मृत्यु तो वही है जो फाँसी पर झूलते हुए क्रांतिकारी से गले मिलती है!" अब तो तुम्हारे मन की बात पूरी होकर रहेगी, देवकात! तुम अँग्रेजो का डंडा सहने से इनकार कर रहे हो। यही तुम्हारी क्राति का सदेश है। मेरे डैडी गलत कहते है। डडे का उत्तर तो सदा डडे से दिया जाता है, चाहे पहले या पीछे। क्राइस्ट की शिक्षा तो वह नही है। वह तो प्रेम का संदेश लेकर आया था। इस सदेश के अपराध में उसे दड मिला। उसे अपनी ूली स्वयं ही उठाकर ले जानी पडी थी। उसके हाथों और पैरो मे मेखे गाड दी गई थी!···

सामनेवाली दीवार पर एक चित्र लटक रहा था। यह एक चरवाहे का चित्र था। चित्र का चरवाहा हू-ब-हू अतुल प्रतीत हो रहा था। जिसने भी अतुल से परिचित होने के पश्चात् वह चित्र देखा, उसने यही कहा कि यह अतुल का चित्र है।

लिली जानती थी कि वर्षा ऋतु के सबसे अधिक गीत तो टैगोर ने ही लिखे है। कलकत्ता में रहते हुए उसने बँगला भी सीख ली थी। असमिया तो वह पहले ही जानती थी। देवकांत के साथ मिलकर उसने कई बार टैगोर के गीत गाए। देवकात के समान तो भला वह कैसे गा सकती थी, फिर भी टैगोर के गीतों की स्वर-माधुरी उसे प्रिय थी। इसीलिए दोनो एक बार कवि टैगोर से मिलने शांति-निकेतन गए थे। बडा-सा चोगा पहने कवि आराम-कुरसी पर बैठे थे। फूलो की प्रशंसा में लिखी हुई नई कविता कवि ने बडी लोचदार आवाज़ में सुनाई थी। अब देवकात को न जाने क्या सूझी, उसने कवि से प्रश्न कर दिया, "फूल को भी तो मृत्यु आती होगी और क्या फूल वैसे ही नही मरता जैसे क्रातिकारी फाँसी पर झूल जाता है ?"

इसके उत्तर मे कवि ने मुसकराकर कहा था, "फूल की मृत्यु ही फूल का जीवन है !"

शातिनिकेतन से लौटते हुए गाड़ी के डब्बे में देवकांत ने कहा था, "जब मनुष्य अपने सिद्धात के लिए मृत्यु से भी नही डरता, तो वह क्राइस्ट बन जाता है; कभी वह सुकरात बनकर विषपान करता है !"

वर्षा के अनेक दृश्य, जिनका वर्णन न जाने किस-किस पुस्तक मे हुआ था, लिली की कल्पना मे उभरते चले गए। फिर कल्पना की सूई अतुल की ओर घूम गई। अतुल मे सब-कुछ शुद्ध है, देवकात मे तो बहुत-कुछ बाहर का मिश्रण है। मैं भी अपने को शुद्ध नही कह सकती। शुद्ध तो डैडी भी नही रहे। चित्ताप्रसाद के अडी-मूगा के धधे में डैडी का भी हिस्सा है। डैडी लाख कहें कि वह यहाँ डडे के ज़ोर से रहना चाहते है, प्रेम के जोर पर तो चाहे कोई लाखों-करोड़ों वर्ष तक रह ले, डडे के ज़ोर पर तो कठिन है। डंडे का जवाब डडा है। हम लोग क्राइस्ट की शिक्षा भूल रहे है। क्राइस्ट हमारा चरवाहा था। हम क्राइस्ट की भेडे हैं। क्राइस्ट ने अपनी भेडो को एक ही शिक्षा दी कि लोगो के मन प्रेम से जीतो, सेवा से जीतो।...सहसा लिली को उस दिन की याद आ गई, जब उसने अपने डैडी के हैड-क्लर्क विष्णुराम के हाथ अतुल के लिए असमिया बाइबल भिजवाई थी। इसे अतुल ने स्वीकार नही किया था। पहले उसे अतुल पर बहुत क्रोध आया था, पर अब तो वह सोचती थी—अतुल को बाइबल की आवश्यकता ही नही; वह पहले से ही क्राइस्ट की शिक्षा पर चल रहा है !

पीछे मुड़कर लिली ने चरवाहे का चित्र देखा। यह चित्र वह शांतिनिकेतन से लाई थी। चरवाहे का चित्र अतुल से कितनी आश्चर्यजनक समता रखता था। अतुल अच्छा है या देवकात ?—यह प्रश्न लिली के मस्तिष्क में बार-बार उठता रहा।

बाहर वर्षा हो रही थी। लिली ने ग्रामोफ़ोन पर नवी सिंफनी का रिकार्ड लगा

दिया। उसकी कल्पना में बीथोविन का चेहरा उभरा, जैसे बीथोविन कह रहा हो —मुझे इस सिंफनी की प्रेरणा एक चरवाहे के गीत से मिली थी। वह एक खालिस गीत था। मेरी सिंफनी में उस खालिस गीत का खालिस बीज खूब फला-फूला। पासवाले कमरे से डैडी की आवाज़ सुनाई दी, "नवी सिंफनी पर तो हमारी लिली जान देती है!" फिर मम्मी की आवाज़ आई, "मुझे तो स्कॉच धुन ही अधिक प्रिय है!" लिली ने डैडी और ममी की आवाज़ो को अनसुना करते हुए वर्षा के आर्केस्ट्रा पर कान लगा दिए।

बाईस

राखाल काका की नई झोंपडी वर्षा ऋतु से पहले ही बनकर तैयार हो गई थी।

साधन मीरी अतिम क्षण तक यत्न करता रहा कि काका गॉव-बूढा के चक्कर से निकलकर मीरी बस्ती मे आकर रहें। उसका विचार था कि अब काका अब्दुल कादिर के चक्कर में फँस गए। नई झोपड़ी के लिए काका ने अब्दुल कादिर से ज़मीन ली थी। उसके घर की बगल मे जमीन का यह टुकडा बहुत दिनो से खाली पड़ा था। वहाँ एक पोखरी पहले से मौजूद थी, जिसमें अब राजहसो का जोड़ा तैरता नजर आता था। राजहंसो का यह जोडा माझुली से आया था। काका ने इसे दिसाँगमुख के हाट-बाजार से खरीदा था।

काका की झोपडी के द्वार के दोनो ओर सेमल का एक-एक पेड खडा था। ये पेड इस भूमि पर पहले से मौजूद थे। यह कहना तो कठिन था कि इन पेडो ने झोपडी की शोभा बढ़ा दी थी या झोपड़ी ने इनकी सुदरता में चार-चॉद लगा दिए थे। झोपड़ी के पीछे थी पोखरी, जिसके पीछे एक ओर केले का कुज था और दूसरी ओर बॉसो का झुरमुट। झोंपड़ी का द्वार सडक से बहुत दूर न था। नीलमणि, कल्याण भगत और अब्दुल कादिर का यही विचार था कि झोंपड़ी बहुत पीछे हट-कर बनाई जाए, पर काका ने किसी की एक न सुनी। काका ने यह स्थान सड़क के कारण ही चुना था। इसलिए झोंपडी का द्वार सड़क के अधिक-से-अधिक समीप रखा गया। यह तो सेमल के पेड़ों का लिहाज रखा गया, नही तो यदि ये पेड़ पहले से यहाँ मौजूद न होते और काका के मस्तिष्क पर इस बात की छाप न होती कि चाँदडूबी में उनकी झोपड़ी के समीप सेमल के पेड़ दूर तक चले गए थे और फागुन में इनके लाल-लाल फूल लाल रंग के झडे झुलाते थे, तो काका ने ठीक सड़क पर ही झोंपड़ी बनाई होती।

धनसिह की दुकान पर भी काका कम ही जाते थे; अपने हाथ से खाना पकाते, अपने हाथ से चाय बनाते; जिसे भी उनसे मिलना होता, उनके पास खिचा चला आता। उनकी प्यारी-प्यारी बातें फिरंगी के संबंध में होती। जो कोई भी एक बार काका की बातें सुन लेता, फिर सदा के लिए उनकी बातो का रसिया बन जाता। नीलमणि के घर मे बिताए हुए दिन काका को प्राय: स्मरण हो आते और वह सदा यही सोचते कि वहाँ वह उनके ही होकर रह गए थे, अलग से सोच ही नही सकते थे।

अब्दुल कादिर हँसकर कहता, "अकेले बैठे-बैठे तो आदमी का दिल उकता जाता है। दिल से बाते करते तुम घंटो कैसे बैठे रहते हो, दादा?"

काका यही उत्तर देते, "एक दुनिया बाहर है, तो एक दुनिया अपने अदर भी तो है। बाहरवाली और अदरवाली दुनिया मे मेल बना रहे, यही तो देखना होता है। आयु के उतार में एकात तो आवश्यक है। मुझपर तो सबकी कृपा है; जिसे भी मिलना होता है, यही चला आता है।"

काका की झोपड़ी मे जानेवालो मे सब प्रकार के लोग थे। मीरी, असमिया और नेपाली, सभी काका की कहानियाँ पसंद करते थे। कभी ऐसा भी होता कि दो-दो तीन-तीन दिन तक एक भी आदमी काका से मिलने न आता, पर काका को इसकी विशेष चिता न होती। मखना से मिलने के लिए काका के दिल मे अवश्य उमग उठती। अब मखना को भी आना होगा तो यही चला आएगा, यह विचार काका को कई बार आता, पर लगता था कि मखना काका को बिलकुल भूल गया।

काका किसी दुकान से कुछ खरीद रहे होते, तो पास से गुजरता हुआ मखना कई बार चाहता कि अभी जाकर काका की टाँगो से लिपट जाए और कहे—मुझे भूल गए, काका? मै हूँ मखना!

जब भी मखना स्कूल जाता, उसके जी में यही आता कि काका की झोपडी मे चला जाए और काका का सुख-समाचार पूछकर ही आगे बढे। सायकाल स्कूल से लौटते हुए वह भीतर जाकर काका का गभीर चेहरा देखने का विचार सहज ही भुला न सकता। कई बार वह दूर से देखता कि काका झोपडी के बाहर मजे से बैठे है, कोई उनके सामने बैठा उनकी कहानियाँ सुन रहा है। मखना सोचता—वह दिन शीघ्र आएगा जब काका अकेले होगे; उसे पास आते देखकर काका उसे प्यार से बुलाएँगे; वह उससे बातें करेंगे, प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरेगे। वह चाहता था कि काका के सशक्त हाथो को थामकर घटो उनके पास बैठा रहे। वह अभी नादान ही तो था। कभी वह सोचता--काका तो बड़ा आदमी है, मै तो बहुत छोटा हूँ। वह मन-ही-मन फैसला कर लेता कि काका तो बड़ा आदमी है और बडा आदमी कभी अच्छा नही होता। फिर भी काका का ध्यान आता रहता। कभी वह सोचता कि काका मुझसे मिलना आरंभ कर देगे; वह मुझे बुलाएँ तो सही; मै उनके घर

जाकर उनसे बोलूँगा नहीं। कभी वह सोचता कि वह अपनी बहन रेणु को भी साथ लेकर काका से मिलने जाएगा। रेणु कितनी खुश होगी। पर हम क्यों काका के घर जाने लगे? काका क्यो हमारे घर से चले गए? वह फिर से क्यों हमारे घर में आकर नही रहने लगते?···देखते-देखते उसकी कल्पना में जगल उग आता; इस चित्र में बाघ और हाथी होते, लोमड़ी के बच्चे होते; खरगोश और हिरन, गीदड और मोर, और न जाने क्या-क्या। वह सोचता—मै राखाल काका के साथ हाथी पर बैठकर आलीसीगा की सडक से गुजर रहा हूँ; रेणु रो रही है कि काका ने उसे अपने साथ क्यो नही बिठाया; धनसिंह कह रहा है—'चाय हम पिलाएँ और हाथी की सवारी करे मखना?' वाह रे वाह! मै जमीन से कितना ऊँचा हो गया; धनसिह से भी ऊँचा, धनसिह की दुकान से भी ऊँचा! कल्पना के चित्रपट पर मखना को काका कितना अच्छा लगने लगता।

मखना के पैर रुक गए। वह काका की झोपड़ी के सामने खड़ा रहा। साँझ उतर रही थी। फिर रात का अंधकार फैल गया।

मखना ने सोचा— घर चलना चाहिए; माँ मेरी राह देख रही होगी; रेणु भी मुझे ढूँढ़ रही होगी। द्वार पर खड़ी जूनतारा मुझे इतनी देर से आते देखकर कहेगी —'अब छुट्टी मिली?' भीतर से निकलकर माँ कहेगी—'तू कहाँ रह गया था?' रेणु दौडकर आएगी और कहेगी—'हम हंसो का खेल खेलेगे, मखना!'

मखना भीतर चला गया और खिड़की से झाँककर देखने लगा। लालटेन के प्रकाश मे काका का चेहरा पत्थर से तराशा हुआ प्रतीत हो रहा था। काका बैठे गुनगुना रहे थे। उनकी आँखो में आँसू थे। उनकी आवाज भर्राई हुई थी। वह न तो भीतर जा सकता था, न भाग सकता था। बाहर अंधकार था। वह काका से डरता भी था और उनकी ओर खिचा भी जा रहा था। वह उसके हाथी काका थे। उसने उन्हे इस नाम से पुकारा था। अब तो वह उनका घर छोडकर आ गए थे। उसकी आँखो ने काका के होठ हिलते देखे; उसके छोटे-छोटे कानों ने काका की आवाज सुनी। उसके सारे शरीर में एक नई स्फूर्ति जाग उठी। वह भागकर झोपड़ी के भीतर चला गया। वह काका के गले लग गया और फूट-फूटकर रोने लगा।

मखना को अपने हाथो पर उठाकर राखाल खडा हो गया और बड़े प्यार से राखाल बोला, "मेरे बेटे!"

मखना कुछ न बोला। आवाज उसके कठ में ही कहीं अटक गई। काका समझ गए कि क्या बात है। काका ने प्यार से पूछा, "इतने दिन तुम क्यों न आए? जानते हो मखना किसे कहते है?"

"यह तो मैं नही जानता।"

"मास्टरजी ने भी नही बताया?"

"नही।"

"माँ ने भी नही बताया ? अच्छा, हम बताते हैं। जिस हाथी के दाँत होते हैं, उसे कहते हैं दंताल।"

"यह तो मै भी जानता हूँ।"

"अच्छा तो मखना किसे कहते हैं ?"

"यह तो नही जानता।"

"जिस हाथी के दाँत नही होते, उसे कहते हैं मखना।"

मखना को जैसे विश्वास न आ रहा हो कि काका ठीक कहते हैं। शायद मखना का यही मतलब है, शायद काका उपहास कर रहे है। वह अपने हाथी काका के पास बैठ गया।

तेईस

आज मीरी बस्ती में दबूर-पूजा का त्योहार मनाया जा रहा था। पूजा के लिए मीरी भाषा का शब्द था 'ऊई'। इसलिए स्वयं मीरी लोग इस त्योहार को 'दबूर ऊई' कहते थे। असमिया और नेपाली लोगो का विश्वास था कि दबूर इंद्र देवता का ही मीरी रूप है, इसलिए वे दबूर-पूजा के स्थान पर इद्र-पूजा कहना पसद करते थे।

वर्ष मे दो बार यह पूजा की जाती थी। पहली पूजा चैत में की जाती थी—वर्षा ऋतु से पहले; दूसरी पूजा आश्विन में की जाती थी, जब वर्षा ऋतु अपने उत्कर्ष पर होती थी। यह तो सभी मानते थे कि यदि इंद्र देवता की दो बार पूजा न की जाए तो वह वर्षा ऋतु में अंबर पर अपने घड़े कुछ इस प्रकार एक साथ तोड़ डाले कि सब नदियो में बाढ आ जाए। यह भय तो लगा ही रहता था। इंद्र के कोप से ऐसा तूफ़ान आ सकता था कि झोपडियो की छते उड़ जाएँ, असंख्य पेड उखडकर गिर जाएँ, सडक पर चलते हुए लोग उड़कर कही दूर जा गिरे और यह भी पता न चले कि उनके शरीर में कितनी बोटियाँ थी।

मीरी लोगों में यह नियम था कि बस्ती का पुजारी दबूर-पूजा का दिन निश्चित करे, इसलिए दोनो बार विभिन्न मीरी बस्तियो में दबूर-पूजा का दिन अलग-अलग होता था। शर्त यह थी कि चैत और आश्विन में एक-एक बार प्रत्येक मीरी बस्ती मे दबूर-पूजा अवश्य की जाए।

सवेरे-सवेरे दबूर-पूजा आरंभ होने से पहले बस्ती के प्रवेश-द्वार पर कोई चिह्न रख दिया जाता था जिससे यह पता चल जाए कि बस्ती के भीतर दबूर-पूजा हो रही है और पूजा शेष होने तक कोई व्यक्ति बस्ती के भीतर प्रवेश करने का साहस

न करे। यह भी नियम था कि यदि बस्ती का कोई व्यक्ति काम से बाहर गया हो तो वह भी पूजा के मध्य में बस्ती के भीतर न आए। यदि कोई पढ़ा-लिखा आदमी मिल जाता, तो बस्ती के बाहर लकडी की तख्ती लगाकर उस पर यह लिखवा दिया जाता था : 'आज हमारे गाँव मे दबूर-पूजा हो रही है। इसलिए प्रातःकाल से लेकर गोधूलि तक कोई भी आदमी बस्ती के भीतर प्रवेश न करे।'

यह विज्ञप्ति, जिसे 'जानानी' कहा जाता था, असमिया भाषा मे लिखी रहती थी; इससे सबको पता चल जाता था। इस विज्ञप्ति की अवहेलना करते हुए कोई व्यक्ति बस्ती मे घुसने का साहस करता, तो उसे एक ही दड दिया जाता—उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे 'येगुम' मे डाल आते है। येगुम उस स्थान को कहते थे जहाँ झोपडी के मचान के नीचे सूअर बँधे रहते थे। दबूर-पूजा की तिथि से दो-चार दिन पहले ही मीरी पुजारी पूजा के लिए मुरगे-मुरगियाँ, जिनकी सख्या सात से किसी अवस्था मे भी अधिक नही होती थी, और एक सूअरी ठीक करके रखता था। पूजा से पहले बस्ती के लोग मिलकर बस्ती की परिक्रमा करते थे। परिक्रमा पाँच बार की जाती थी और उसमे मुरगे, मुरगियो और सूअरी को भी साथ रखते थे। परिक्रमा मे केवल पुरुष ही रहते थे। परिक्रमा के पश्चात् मुरगे-मुरगियो और सूअरी की बलि दी जाती; पूजा करनेवाले लोग मिलकर मास पकाते और इद्र देवता के नाम पर सहभोज का आनंद लेते। पूजा के पश्चात् 'लाओ पानी' का नशा किया जाता।

दबूर-पूजा की एक रीति यह भी थी कि गाँव की लडकियाँ मिलकर नाचती थी और अपने दबूर-नृत्य मे गाए जानेवाले गीतों में इंद्र देवता को सबोधित करते हुए कहती थी—'देवता की कृपा बनी रहे। धरती धानवती हो। स्त्रियाँ पुत्रवती हो। गाँव मे सुख-शाति रहे। धान धान से मिले, आदमी आदमी से मिले। कोई किसी से शत्रुता न करे, कोई किसी से ईर्ष्या न करे। दबूर देवता का आशीर्वाद सबको एक समान प्राप्त हो!'

दिसाँगमुख के स्कूल मे न चैत की दबूर-पूजा की छुट्टी रहती थी न आश्विन की। पर आज स्कूल बद था। आश्विन की दबूर-पूजा का दिन रविवार को ही पडता है, यह सुनकर आज मखना को अपार हर्ष हुआ था।

नए वस्त्र पहनकर मखना घर से चला, तो सोनपाही ने पीछे से पुकारकर कहा, "सीधे राखाल काका के घर जाना।"

मखना से सिर हिलाकर माँ को विश्वास दिलाया कि वह राखाल काका के घर जा रहा है।

दो दिन से वर्षा नही हुई थी। परसो ही तो निर्णय किया गया था कि आज ही के दिन दबूर-पूजा की जाए। मखना की आँखों में हर वस्तु घूम रही थी। नए वस्त्र पहनने का उसे बहुत हर्ष था। उससे भी अधिक हर्ष इस बात का था कि वह

अकेला है और जो चाहे कर सकता है। मूगा का कुरता और अडी की निकर को वह बार-बार छूकर देखता रहा। पैरो में नए मोजे थे। ये मोजे पिछले हाट-बाजार में खरीदे गए थे। पैरो में नए बूट थे, जो शिवसागर से मँगवाए गए थे। सिर पर घुँघराले बाल थे। गरदन के साधारण से झटके से सिर के घुँघराले बाल घोडे की अयाल के समान डोलने लगते थे। एक झटके से उसने बालो को हिलाया और सड़क पर खडे-खडे अपने घर की ओर नजर घुमाकर देखा।

घर के सामने खडे-खडे मखना ने सोचा—राखाल काका तो बडे अच्छे है। सब बडे आदमी तो इतने अच्छे नही होते और न ही वे बच्चों को इतनी प्यारी-प्यारी कहानियाँ सुनाते है। अब तक तो काका चाय पी चुके होगे। कल रात जब मै उनसे मिला था, उन्होने आज सवेरे आने को कहा था। मैं काका के घर न जाऊँ तो काका क्या करेगे ? आज तो दबूर-पूजा है। काका की कहानियाँ तो कल भी सुनने को मिल जाएँगी।

आकाश पर बादल घिरे हुए थे। आज वर्षा न हो तो अच्छा है, यह सोचकर मखना मीरी बस्ती की ओर हो लिया। आज तो वर्षा बिलकुल नही होनी चाहिए, इससे तो दबूर-पूजा का रग बिगड़ जाएगा।

एक स्थान पर रुककर उसने पीछे की ओर नजर घुमाकर देखा। वह पीछे लौट जाने की बात सोचने लगा। माँ मारेगी। अतुल कान ऐठेगा। कल रात अतुल ने मुझे मीरी बस्ती की ओर जाने से मना किया था। शायद जूनतारा ने मुझे मीरी बस्ती की ओर जाते देख लिया हो; शायद उसने जाकर माँ से कह दिया हो। माँ तो अभी आ सकती है। माँ तो अभी मेरे मुँह पर थप्पड़ लगा सकती है। माँ का कहना मानो, यह बात तो मास्टरजी भी कहते है। अडी की निकर किसने दी ?—माँ ने। मूगा का कुरता किसने दिया ?—माँ ने। माँ ने तो कहा था कि राखाल काका के घर जाना और मै इधर चल पडा। माँ तो अच्छी है—बहुत अच्छी है। दबूर-पूजा भी अच्छी होगी। फिर मैं दबूर-पूजा क्यों न देखूँ ? हमारा बोहाग-बिहू तो हर कोई देख सकता है। इस वर्ष तो मेम साहब भी हमारा बोहाग-बिहू देखने आई थी; नारायण दारोगा और थाने के सिपाही भी तो बोहाग-बिहू का नाच देख रहे थे। फिर मैं क्यो मीरी बस्ती में जाकर दबूर-पूजा का नाच नही देख सकता ? मीरी बस्ती में सबने नए वस्त्र पहने होगे; लडकियो ने जूडो मे फूल लगाए होंगे। वहाँ आधार काका भी होगे। क्या खबर राखाल काका भी वहीं गए हों। राखाल काका अवश्य वहाँ गए होगे। उसे ध्यान आया कि वह भी अपने कान में एक फूल लगा ले। कान मे फूल न लगा सकने का उसे बहुत दुख था।

वह जल्दी-जल्दी पग उठाकर मीरी बस्ती की ओर चलने लगा।

दूर से ढोल की आवाज़ समीप आ रही थी। यह इस बात की घोषणा थी कि मीरी बस्ती में दबूर-पूजा का नाच आरंभ हो चुका है। उसे तो [illegible]

हो रहा था कि ढोल की आवाज इतनी अच्छी है, फिर भी घरवाले दबूर-पूजा में जाने से उसे रोकते रहे थे।

वह चला जा रहा था। अब वह उस मोड़ से भी आगे जा चुका था जहाँ से आलीसीगा की सड़क नीचे स्टीमर-घाट की ओर चली गई थी।

मखना चलते-चलते एक पेड़ से टकराया। इस पेड़ पर एक तख्ती लटक रही थी, जिस पर चाक से बडे-बडे असमिया अक्षरो में यह लिखा हुआ था कि बाहर का कोई आदमी दबूर-पूजा की समाप्ति तक बस्ती में न घुसे। मखना को बहुत क्रोध आया। दबूर-पूजा देखने से मुझे कौन रोक सकता है? मै तो दिसाँगमुख के गाँव-बूढ़ा का बेटा हूँ। मेरे सिर पर तो आधार काका भी हाथ फेर चुके हैं और राखाल काका भी। वे दोनों मीरी है। मुझे तो कोई कुछ नही कह सकता।···

उसके पग बस्ती के भीतर उठते चले गए। लड़कियो के दबूर-पूजा गान की लय नाचती-थिरकती आ रही थी। वह चाहता था कि भागकर नही, पक्षी के समान उड़कर नाच के घेरे मे पहुँच जाए।

उधर से तीन-चार मीरी भागते हुए इधर आ रहे थे। उनमे साधन भी था। पास आते ही साधन ने कडककर कहा, "किधर भागे आ रहे हो, मखना के बच्चे?"

मखना बिलकुल न समझ सका कि साधन ने छूटते ही यह क्यो कहा। अभी अगले ही दिन तो साधन ने धनसिह की दुकान से चाय पीकर रत्न नापित की दुकान मे घुसते समय मेरे सिर पर हाथ फेरा था।···

देखते-देखते साधन ने अपने कधे से रस्सी उतारकर मखना के हाथ-पैर बाँध डाले।

मखना बहुत चिल्लाया। किसी ने उसकी एक न सुनी। मीरी युवको ने मखना को उठा लिया और वे उसे 'येगुम' मे ले गए।

मखना रोता रहा। वे युवक उधर को घूम गए जिधर नृत्य हो रहा था।

नृत्य के ताल पर थिरकते हुए दबूर-गान की आवाज बराबर मखना के कानों में आ रही थी, जिन आँखो मे वह झाँक सकता था, वे नाचनेवाली लड़कियो की आँखे न थी; ये तो सूअरो की आँखे थी—बड़े सूअर, छोटे सूअर; सूअरियाँ अपने बच्चो को चाट रही थी। मखना की कल्पना मे माँ का चेहरा घूम गया। उसने डरकर आँखे बंद कर ली। उसने राखाल काका को पुकारना चाहा। इतने में किसी सूअरी के बच्चे ने आकर अपनी थूथनी मखना के मुख पर रख दी।

नन्हा सूअर मखना को चाट रहा था।

चौबीस

राखाल काका का माथा ठनका—कही मखना को कुछ हो न गया हो।

वह बड़ी व्याकुलता से झोपड़ी मे टहल रहे थे; खिड़की से झाँककर देखने लगते। फिर वह झोपडी से निकलकर सडक पर आ गए। सडक पर खडे-खडे काका की कल्पना में चाँदडूबी का एक दृश्य घूम गया। दलदलवाले एक स्थान पर जंगली हाथी का एक बच्चा फँस गया था, उसे बडी कठिनाई से बाहर निकाला गया था। वह बच्चा कितना मासूम था। उसे मैने बड़े प्यार से पाला था और नार्मन साहब के बच्चों की भेट कर दिया था।···

काका तो बाल ब्रह्मचारी थे। विवाह किए बिना भी मनुष्य जीवित रह सकता है, यह था काका का सिद्धात। इस सिद्धात पर चलने का निर्णय करने के पश्चात् एक बार भी तो काका के पग नही डगमगाए थे, पर काका को बच्चो से सदा प्यार रहा। चाँदडूबी मे नार्मन साहब के बच्चे मिल गए थे, तो यहाँ दिसाँगमुख आकर मखना मिल गया। आज काका को इतना अवकाश न था कि झोपडी के पीछे जाकर राजहंसों के जोडे का सुख-समाचार पूछे। वे पोखरी मे तैर रहे होगे। फिर काका को राजहसिनी के अंडे देने का ध्यान आ गया। देखे राजहंसिनी के अंडो से कितने बच्चे निकलते हैं। सात-आठ बच्चे तो अधिक नही होगे; कम रहे, तो पोखरी की शोभा नही बढेगी। पोखरी मे तैरते हुए राजहस कितने अच्छे लगते है। एक जोडे से तो बात नही बनेगी।···

काका को अपनी भूमि से भी कुछ आय हो जाती थी, पेशन अलग आती थी। जिस दिन काका को पेशन लेने डाकघर जाना होता, उस दिन काका धुले हुए वस्त्र पहनते। जब से काका दिसाँगमुख मे आ गए थे, उन्हे प्रति मास पेशन निश्चित तिथि को मिल रही थी। इस नियमितता के लिए काका मन-ही-मन फिरगी की प्रशसा करते-करते नोलमणि के घर जा पहुँचे।

सोनपाही ने बताया, "मखना तो यही कहकर गया था कि वह सीधा काका के पास जा रहा है।"

काका ने सोचा कि कही वह नाव-घाट की ओर न चला गया हो। अधिक सोचने के लिए समय न था। वह झट सड़क से नीचे उतरकर नाव-घाट की ओर हो लिए।

जूनतारा गाँव की अन्य लड़कियो के साथ पानी का कलसा उठाए आ रही थी। पूछने पर पता चला कि आरती की झोपडी के पास उन्होने दूर से एक लड़का देखा था जो मखना प्रतीत हो रहा था।

पानी-घाट और नाव-घाट पर कही भी मखना का पता न चला, तो काका

बहुत घबराए। मखना को तो उन्होंने अपनी गोद में खिलाया था; आज से कई वर्ष पूर्व, जब वह चाँदडूबी से छुट्टी लेकर दिसाँगमुख आए थे।···आज से आठ-नौ महीने पहले, जब मै चाँदडूबी से पेशन पाकर वापस दिसाँगमुख आकर नीलमणि के पिछवाड़ेवाली झोंपडी में रहने लगा, तो मखना से भेंट हुई। तब मखना ने मुझे हाथी काका का नाम दिया। यह नाम तो नार्मन साहब के बच्चो ने भी नही दिया था। आज मखना कहाँ रह गया? क्या आज उसकी प्यारी-प्यारी बातें सुनने को नही मिलेगी?···

सहसा काका को ध्यान आया कि हो-न-हो मखना दबूर-पूजा देखने न चला गया हो। वहाँ जाने से तो उसे सबने रोका था। वह अच्छा लड़का है; वह वहाँ नही गया होगा। वह कहाँ चला गया? अब तो दबूर-पूजा समाप्त होने का समय हो रहा है। वह वहाँ नही गया होगा। वह तो आज्ञाकारी लड़का है।

दबूर-पूजा समाप्त होने का समय समीप न होता, तो काका भूलकर भी मीरी बस्ती में जाने की बात न सोचता। अब तो कोई भय न था।

काका मीरी बस्ती की ओर चला जा रहा था। कई प्रकार की आशंकाएँ काका के मन मे उठ रही थी—कही मखना धनसिह की दुकान पर न चला गया हो। पर अब तो मीरी बस्ती समीप है। पहले वही पता चलाया जाए। वह वहाँ चला भी गया होगा तो शायद उसके साथ लोगो ने दयापूर्ण व्यवहार किया हो। उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे येगुम में तो नही डाला गया होगा। दयापूर्ण व्यवहार करने से क्या इंद्र देवता किसी का हाथ रोक सकते है?···

चलते-चलते काका ने सोचा कि बच्चा तो बच्चा ही है। दस साल की आयु भी कोई आयु होती है। काका मन-ही-मन दिन गिनने लगा। तीन मास बाद मखना ग्यारह वर्ष का हो जाएगा।···

पचीस

मीरी बस्ती के एक दुर्गधपूर्ण कोने में फूल से भी कोमल मखना पड़ा था, जहाँ साधन मीरी उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे डाल गया था।

मखना के लिए यह स्थान बहुत भयानक था। उसके छोटे-से मस्तिष्क में बड़ी-बड़ी आशंकाएँ चक्कर काटती रहीं।

नाच से वापस आकर साधन मेरे अपराध का न जाने क्या दंड देगा। वह दंड क्या इस दंड से भी बड़ा होगा?···

अंधकार घना हो गया था। उसके चारों ओर सूअर अपनी थूथनियाँ डालकर

मैली-कुचैली मिट्टी खोद रहे थे।

बड़े सूअर, छोटे सूअर, सूअरियाँ और उनके बच्चे। एक सूअरी की बड़ी-बड़ी आँखें छोटी होने लगी।

यह सूअरी यों देख रही थी, जैसे कभी-कभी मखना की माँ देखा करती थी। कभी ये आँखें फैलने लगती, कभी सिकुड़ने लगतीं। वह माँ को आवाज़ देना चाहता था।

पर यहाँ माँ कहाँ थी ?

जब सूअर ऊँची आवाज निकालने लगते तो मखना भी इन आवाजों के संगम मे अपनी नन्ही-सी आवाज मिला देता।

फिर एक बाँबी से काला नाग बाहर निकला।

अंधकार में काला नाग एक रेखा प्रतीत हो रहा था; मखना ने उस हिलती-डुलती रेखा को देखा। साँपों के संबंध में सुनी हुई अनेक कहानियाँ एक साथ उसके मस्तिष्क में घूम गई, जैसे दुनिया-भर के साँपों का विष इस काले नाग के विष के सामने हेच हो, जैसे साक्षात् मृत्यु ही उसकी तरफ़ बढ़ी आ रही हो; जैसे उसके जीवन की बाती अब कुछ ही क्षणो में बुझ जाएगी; फिर यह बाती कभी नहीं जलेगी, चाहे कोई इस दीपक में मनों तेल क्यों न डाल दे !···

छब्बीस

राखाल काका के जीवन में इतना बड़ा धचका पहले कभी नहीं लगा था।

आज रात जोर की वर्षा हुई, जैसे यह वरदान न हो, अंबर का अभिशाप हो; जैसे इंद्र देवता कोप मे आकर दिसाँगमुख को समाप्त कर देना चाहते हों। तूफान बहुत भयानक था। आलीसीगा के बहुत-से वृक्ष उखड़कर गिर गए।

मखना की मृत्यु का आघात राखाल के लिए असह्य था; आधार ने काका के चरणों मे गिरकर क्षमा-याचना की, "अब यह तो कोई न जानता था कि काला नाग बाँबी से निकलकर एक फूल से भी कोमल बालक को डस जाएगा !"

आज रात काका की आँख नही लग सकती थी। नीलमणि और अतुल ने संतुलन बनाए रखा; सोनपाही झोपड़ी की दीवार से सिर पटक-पटककर रोती रही। तूफ़ान में ही मखना का शव नीलमणि के घर पर लाया गया, जैसे मखना के होंठों पर वह बात जमकर रह गई हो, जो वह मृत्यु से पूर्व कहना चाहता था।

जैसे इंद्र देवता का जल-थल एक करने का यह अंतिम निर्णय हो; बार-बार बिजली कड़कती और बार-बार हवा प्रत्येक वस्तु को उड़ा ले जाना चाहती।

राखाल हतप्रभ-सा बैठा था। अतुल बार-बार उसे बुलाने का यत्न करता। क्या मजाल राखाल ने भूलकर भी जबान हिलाई हो।

एक ओर कल्याण भगत अब्दुल कादिर के साथ बैठे इस बात पर जोर दे रहे थे, "आदमी का कोई भरोसा नही। मृत्यु आती है तो कहकर नही आती!"

धनसिह ने पुलिस दारोगा के लहजे में कहा, "मखना को दबूर-पूजा मे जाने के लिए किसने कहा था?"

"कहना किसे था?" रत्न नापित ने बात को किसी ठिकाने लगाने के विचार से कहा, "प्रश्न बालक को दोष देने का नही है। प्रश्न तो यह है कि दबूर-पूजा को मीरी लोग अपनी ही पूजा क्यो समझ बैठे है। इंद्र देवता तो सबके है।"

जोर से बिजली कडकी, जैसे इंद्र देवता भी रत्न नापित की हाँ-में-हाँ मिला रहे हों। कल्याण भगत बोले, "किसी को दोष देना व्यर्थ है। जीवन क्षणभगुर है। आत्मा तो बार-बार चोला बदलती है। सदा के लिए तो यहाँ कोई बैठा नही रह सकता।"

"बडे-बडे बादशाह भी न रहे।" अब्दुल कादिर ने विश्वासपूर्वक कहा, "वे भी कब्रों मे जा सोए। कब्र का भी माँ का दर्जा माना गया है। माटी का पुतला है इनसान! माटी से पैदा हुआ, माटी में जा सोया। इसमें तो कोई बोल ही नही सकता!"

आधार बोला, "सब दोष हमारा है। न हम मखना के हाथ-पैर बाँधकर येगुन में डालते, न बाँबी से निकलकर काला नाग उसे डस जाता।"

राखाल का ध्यान इन बातो की ओर न था। उसकी कल्पना में जैसे मखना की आवाज गूँज रही हो—मै तो अब भी साँस ले रहा हूँ, काका! लो बस शुरू कर दो कोई हाथियों की कहानी। मैं सब सुन सकता हूँ। मुझे किसी नाग ने नही डसा। मैं तो बिलकुल ठीक हूँ।···

सोनपाही का विलाप शव के चारों ओर बैठे लोगो के दिल हिला रहा था। तूफ़ान का वेग भी पहले से बढ़ गया था।

राखाल सोच रहा था, 'यह कितना अमंगल है। मखना हमें छोडकर चला गया। मखना की मुसकान अब कभी देखने को न मिलेगी। प्रतिदिन सूर्य उदय होगा, प्रतिदिन सूर्य अस्त होगा। मखना कही न होगा। दबूर-पूजा तो आती ही रहेगी। यह तो वर्ष में दो बार जाती है। मखना अब कभी यह पूजा देखने नही आएगा। वह कभी अपने काका से मिलने नही आएगा। आलीसीगा की सड़क सदा के लिए उससे वंचित हो गई।'···पर अगले ही क्षण काका को लगा कि मखना की आवाज आ रही है—काका, काका, ओ हाथी काका! मै तो सब सुन रहा हूँ। जो कुछ भी लोग कह रहे हैं। मैं तो सब सुन रहा हूँ!···

कल्याण भगत ने समस्त ज्ञान बघारने के लिए जैसे आज की रात ही चुन ली

हो। उन्होने अपनी परशुराम कुंड की यात्रा की कथा सुनाने के पश्चात् बताया कि दिहाँग नदी को अबोर लोग अपनी भाषा मे सियाँग कहते है। "सियाँग का अर्थ है डूबा हुआ।" भगतजी कहते चले गए, "सदिया मे एक अबोर गाँव-बूढ़ा ने मुझे वह कहानी सुनाई थी जिसमें सियाँग नदी के किनारे दो जन-जातियो के सरदारो के बीच युद्ध का वर्णन किया गया था। एक सरदार नदी में बह गया; फिर उसका कुछ पता न चला। तब से इस नदी को सियाँग कहने लगे। सियाँग हो चाहे दिहाँग, बात तो एक ही है। जैसे वह सरदार नदी में बह गया था, वैसे ही समझो हमारा मखना भी मृत्यु-नदी में बह गया। मृत्यु तो कोई बहाना चाहती है। कम जी लो, चाहे अधिक जी लो। यह संसार तो बडा कठिन है। जीवन बडा सकट है। मै तो कहूँगा कि जो पहले चला गया, वह पहले जाकर भगवान् से मिल गया। भगवान् से तो जितना शीघ्र मिला जाए, उतना ही अच्छा है!"

नीलमणि चुप था, इस ज्ञान-ध्यान मे स्वर मिला सके, इतनी क्षमता उसमे न थी।

पास से अब्दुल कादिर ने वह कहानी छेड़ दी जिसमें एक माँ अपने लडके को ब्रह्मपुत्र से मछलियाँ पकड लाने को भेजती है और लडका तूफान में डूब जाता है।

धनसिह बोला, "ऐसी ही कहानी हमारे बडे-बूढे नेपाल में भी सुनाते है। मृत्यु की कथाएँ तो असख्य है। मृत्यु का पथ किसने रोका है? इसी पथ से बड़े-बड़े साधु-महात्मा गए, और इसी पथ से बड़े-बडे चोर और डाकू भी। मृत्यु का पथ तो महापथ है!"

राखाल अब भी कुछ न बोला, यद्यपि वह कहना चाहता था, 'तुम लोगो को क्या हो गया? क्या एक बालक की मृत्यु से भी तुम्हारे कानो पर जूँ तक नही रेगी? क्या तुम्हारी धार्मिक विचारधारा का यही आशय है कि एक बालक की मृत्यु पर दो आँसू भी न बहाए जाएँ? क्या दिसाँगमुख के लोग इस मृत्यु से कुछ भी शिक्षा नही ले सकते?...'

सत्ताईस

मखना की मृत्यु ने देवकांत की माँ को फिर से निढाल कर दिया था। वह तो पहले ही दो मास से बीमार थी। इधर उसका स्वास्थ्य कुछ सुधर रहा था। वह पचास वर्ष पार कर चुकी थी, पचास वर्ष अभी और जीने का सकल्प रखती थी। जब से देवकांत का पिता लंबी बीमारी में एड़ियाँ रगड़-रगडकर चल बसा था, माँ ने अपने हाथों के परिश्रम से ही घर चलाया था। चित्ताप्रसाद के 'अंडी-मूगा

सहकारी संस्थान' के लिए सर्वोत्तम रेशम के थान और चादरें देवकांत की माँ ही अपने करघे पर तैयार करती थी। इसलिए जब से माँ बीमार पड़ गई थी, चित्ताप्रसाद हर तीसरे-चौथे रोज माँ का समाचार पूछने आता था। दवा-दारू का प्रबध चित्ताप्रसाद ने अपनी ओर से करा दिया था, और भला हो बादल माँझी की बेटी शोभा का जो अपनी माँ से भी अधिक देवकांत की माँ का ध्यान रखती थी। दो मास से शोभा ही तो माँ के लिए दाल-भात पकाती रही थी।

बिस्तर पर पड़े-पडे माँ ने खाँसकर पूछा, "बेटा नीरद, तेरी कहानी कहाँ तक पहुँची ?"

नीरद ने लालटेन के प्रकाश में लिखते-लिखते माँ की ओर नजर उठाकर कहा, "मेरी कहानी एक विशेष मोड पर पहुँच गई।"

"वह कौन-सा मोड है ?"

नीरद ने धीरे से उत्तर दिया :

"मेरी कहानी का नायक रात के अंधकार मे, भयानक तूफ़ान में अपनी माँ से मिलने आता है। वह जानता है कि पुलिस उसकी ताक मे है; पर जब माँ की याद आती है, तो वह संसार की विपत्तियों को भुलाकर भी माँ से मिलने आता है।"

माँ को बड़े वेग से खाँसी उठी, जैसे अंबर पर बड़े वेग से घटा उमड़ती और बिजली कड़कती है। वह कुछ कहना चाहती थी, पर सात दिन की निरंतर वर्षा ने इतनी ठंड पैदा कर दी थी कि उसके बोल बार-बार उसके होंठों तक ही रह जाते।

बड़ी कठिनाई से माँ के मुख से यह बोल निकला, "मेरा···देवकांत तो··· मुझसे···मिलने नही आता !"

नीरद चुप रहा।

"कवि-कल्पना है !" माँ ने अपनी बात जारी रखी। वह कोई लंबी कहानी छेड़ देना चाहती थी—नीरद की कहानी से लंबी, पर खाँसी ने बात न बनने दी।

नीरद को कलकत्ता से दिसाँगमुख पहुँचे आज दसवाँ दिन था। जिस दिन वह यहाँ पहुँचा था, उससे तीन दिन पहले ही काले नाग ने मखना को डस लिया था। माँ कई बार मखना की चर्चा कर चुकी थी। मखना की मृत्यु को बलिदान की कोटि में रखने को तो माँ तैयार न थी; पर उसका यह विचार अवश्य था कि यदि मीरी पंचायत मिलकर यह निर्णय नही करती कि आगे से दबूर-पूजा देखने पर किसी प्रकार की रोक न रहे, तो यह बड़ी लज्जा की बात होगी।

माँ का विश्वास था कि वह ज्वर और खाँसी से एड़ियाँ रगड़-रगड़कर कभी नही मरेंगी। देवकांत के पिता को तो ऐसी ही मृत्यु आई थी। माँ समझती थी कि वह साफ़ बच गई। अब वह बहुत शीघ्र अच्छी हो जाएगी। वह यह तो बिलकुल नही चाहती थी कि अपनी जान जोखों में डालकर देबकात उससे मिलने आए। नारायण दारोगा देवकांत की ताक में है, यह बात उसकी माँ से छिपी न थी। फिर

भी उसे यह भय अवश्य था कि कही मृत्यु चुपके-से आकर ही उस पर न झपट पडे, जैसे बिल्ली कबूतर की गरदन दबोच लेती है; और कही ऐसा न हो कि देवकात को अंतिम बार जी भरकर देखे बिना ही उसे संसार से विदा होना पडे। यही सोचकर वह बोली, "देवकांत कब आएगा ?"

नीरद ने लालटेन उठाकर माँ के चेहरे पर प्रकाश डाला और गभीर होकर कहा, "आराम करो, माँ ! चिंता छोड़ो, मै जो तुम्हारे पास हूँ।"

रेशम का कार्य करते-करते रेशम के तार माँ की आत्मा से छू गए थे। दो मास से माँ बीमार थी; फिर भी उसकी मुसकान मे मूगा के धागे की-सी चमक थी। माँ की आवाज में अंडी का-सा खुरदरापन था। माँ के जीवन में रेशम की-सी दृढ़ता आ गई थी। जिस दिन नीरद यहाँ पहुँचा था, माँ ने मुसकराकर कहा था, "कुछ भी हो, रेशम के कीड़े रेशम के तार कातना नही छोड़ सकते। रेशम के तार कातने का बेचारो को कितना बढ़िया मोल मिलता है !" इसके उत्तर में नीरद ने गभीर होकर कहा था, "उबलते हुए पानी में रेशम के कीड़ो के तैयार किए हुए 'पोलू' को डालकर पोलू के भीतर छिपकर बैठे हुए कीडे को मृत्यु के दर्शन कराए जाते है !"

चित्ताप्रसाद की प्रशसा करते तो माँ थकती न थी। माँ के इस विचार से चित्ताप्रसाद सोलह आने सहमत था कि आदमी की मुक्ति काम करते-करते मर जाने में है, जैसे रेशम का कीडा रेशम कातते-कातते मर जाता है। माँ ने बातो-बातो मे बताया था कि रेशम का काम करनेवालो को अपने लबे अनुभव से यह ज्ञान हो जाता है कि वे ठीक अवसर पर पोलू को गरम पानी में डाल दे। इस काम मे देर की जाए तो रेशम का कीड़ा पोलू को चीरता हुआ बाहर निकल आता है। पोलू में सूराख होने से रेशम अच्छा नही निकलता, लबे तार नही निकलते। वैसे माँ ने इस बात पर भी प्रकाश डाला था कि जैसे बीज के लिए धान रखते हैं, वैसे ही अडे तैयार कराने के लिए पोलू सँभालकर रख लिए जाते है। माँ ने कहा था, "बेटा नीरद, यह चक्कर तो चलता ही रहता है—पोलू से निकलकर रेशम का कीड़ा अंडे देता है, अंडे से कीड़ा और कीड़े से पोलू। पोलू से फिर कीड़ा, फिर अंडे। यह तो लबा कालचक्र है, बेटा ! जन्म-जन्मातर का चक्कर तो चलता ही रहता है।

नीरद को स्मरण था कि किस प्रकार एक बात करने में माँ को बीस बार खाँसी उठी थी। अपनी कहानी में वह माँ का चरित्र पूरी तरह उजागर करना चाहता था। उसका यह प्रयत्न था कि बेटे को भी रेशम के कीड़े के रूप में चित्रित कर सके। उसके सम्मुख यह समस्या थी—क्या रेशम के कीड़े की मृत्यु को बलिदान नही कहा जा सकता जबकि पोलू को उबलते पानी में डालकर कीड़े को उसके भीतर ही मृत्यु-शय्या पर सुला दिया जाता है? उसकी कहानी का नायक तो एक इनसान था, जो विदेशी सरकार के अत्याचार को समाप्त कर देना चाहता था।

वह लोगों को इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए तैयार कर रहा था। वह जानता था कि उसके नायक का मार्ग तो उसे वस्तुतः एक दिन फाँसी तक ले जाएगा। क्या माँ यह नही जानती ? कहानी के नायक के बलिदान से रेशम के कीडे की मृत्यु की तुलना तो सचमुच दूर जा पड़ती थी। माँ की खाँसी फिर से छिड़ जाने का भय न होता तो नीरद अवश्य माँ से इस सबंध में बात करता। आखिर वह तीस-पैंतीस वर्ष से रेशम का काम करती आ रही थी, और जब से चित्ताप्रसाद का 'अडी-मूगा सहकारी सस्थान' का धधा आरभ हुआ था, उसे इस काम से पहले से कही अधिक लगाव पैदा हो गया था। चित्ताप्रसाद को माँ परोपकार का साकार रूप समझती थी। माँ ने नीरद को बता दिया था कि आरंभ में देवकात ने चित्ताप्रसाद से ही चार वर्ष शिक्षा पाई थी। उन दिनो दिसाँगमुख का स्कूल सरकार ने अपने नियत्रण मे नही लिया था। यह स्कूल गाँव-बूढा ने लोगो से चदा जमा करके चलाया था। चित्ताप्रसाद पर यह अपराध लगाया गया कि वह लडकों की फीस खा गया। माँ ने खाँसी से बे-हाल होते हुए जरा सँभलकर कहा था, "चित्ताप्रसाद तो धर्म-कर्मवाला आदमी है, बेटा नीरद ! वह पापी होता तो उसका रेशम का धधा इतना कैसे फलता-फूलता ! मुझपर तो वह बडा दयालु है, कोई भेद-भाव नही रखता। जितनी पेशगी माँग लूँ, मिल जाती है। अब दो मास से वही दवा-दारू भेजता है, वही घर का खर्च चलाता है।" यह कहते-कहते माँ को फिर खाँसी छिड गई थी और उसने सँभलकर कहा था, "चित्ताप्रसाद ने तो बहुतो की डूबती नाव पार लगाई है।"

यहाँ पहुँचते ही सबसे पहले नीरद ने धनसिह की दुकान से देवकात का पता पूछा था। धनसिह ने देवकात के फरार हो जाने की कहानी सुनाने के पश्चात् अतुल को बुलवा भेजा था। अतुल के बार-बार आग्रह करने के बावजूद नीरद ने यही निश्चय किया था कि वह देवकात के घर पर ही ठहरेगा। अतुल ही उसे यहाँ पहुँचा गया था।

बलमा बस्ती मे देवकात का घर बहुत अच्छी जगह पर स्थित था। सामने सडक थी, पिछवाडा दिसाँग नदी के किनारे तक चला गया था। अच्छा-खासा बागीचा भी था, यद्यपि इसकी देख-भाल नही की जा रही थी।

नीरद को विश्वास था कि अतुल अच्छी तरह जानता है कि इस समय देवकात कहाँ है। उसने अतुल से कहा था, "मेरे लिए नही, देवकात को तो अपनी माँ से मिलने के लिए ही अपनी जान हथेली पर रखकर आना चाहिए, क्योकि माँ की खाँसी बार-बार जोर पकड लेती है और वृद्धावस्था में आदमी का भरोसा और भी कम हो जाता है।"

नीरद को देवकांत की प्रतीक्षा थी। उसका विचार था कि यह हो नही सकता कि अतुल ने उसे सूचना पहुँचाई हो और वह मिलने न आए। भले ही वह मुझसे

मिलने आए, पर माँ से मै यही कहूँगा कि वह उसी से मिलने आया है।

बार-बार बिजली चमकती थी और बादल गरजते थे; जैसे कही पास ही रणभूमि के नगाड़े बज रहे हो। माँ ने आज सवेरे ठीक ही तो कहा था, "इंद्र देवता रुष्ट हो गए। जिन लोगो ने मखना के प्राण लिए, उनकी झोपडियाँ तूफ़ान में बह जाएँगी।"

नीरद के मतानुसार यह केवल अध-विश्वास था कि प्रकृति मनुष्य से प्रतिशोध चाहती है। तूफ़ान का वेग बढ़ गया तो धर्मी और पापी सभी बह जाएँगे। तूफान में धर्मी और पापी का भेद नही रह सकता। यह बात वह माँ से तो नही कहना चाहता था। कई बार नीरद सोचता कि उसने असम आने के लिए यह मौसम क्यों चुना। फिर वह अपने निश्चय और कार्यक्रम पर दृढ़ता का प्रमाण देते हुए सोचता कि उसने इस मौसम मे यहाँ आकर कोई भूल नही की। ब्रह्मपुत्र के तेवर देखने के लिए तो यही मौसम ठीक है। यही बात उसने कल लिली से भी कही थी, जब वह उसके निमत्रण पर स्टीमर मे डिनर के लिए गया था। यह डिनर बहुत महँगा पड़ा था। छतरी के बावजूद वह बिलकुल भीगता हुआ वापस बलमा पहुँचा था। उसका छाता बुरी तरह मुडकर पीछे की ओर दोहरा हो गया था।

उसे याद आया कि लिली किस प्रकार देर तक उस चरवाहे की प्रशसा करती रही थी, जिसे कलाकार ने उस चित्र मे प्रस्तुत किया था जो उसके कमरे की दीवार पर लगा हुआ था। लिली के डैडी तो बहुत रोब-दाब रखने के पक्षपाती है। वह अँग्रेज ठहरे। इस जाति के व्यक्ति तो इस समय हिदुस्तान में राज्य करते है। उसकी मम्मी सचमुच नम्रता की मूर्ति प्रतीत होती है—शाति का साकार रूप। लिली ने अपना प्रिय स्वभाव अपनी मम्मी से पाया है। उसकी अंतरात्मा पर क्राइस्ट की छाप है। कलकत्ता मे भी तो हम उससे मिलकर चकित रह जाते थे। अँग्रेज लडकी होकर हिदुस्तान से इतनी सहानुभूति रखती है। इतना सेवा-भाव तो किसी हिदुस्तानी लडकी मे भी बडी मुश्किल से होगा।

कलकत्ता मे लिली से नीरद की जब भेट हुई थी तो लिली ने सदा उसे दिसाँग-मुख आने का निमत्रण दिया था। उसका विचार था कि नीरद को स्टीमर मे ही ठहरना चाहिए। अपने डैडी से कहकर वह उसके लिए अलग कमरे का प्रबध कर सकती थी। वह जानती थी कि नीरद ब्रह्मपुत्र पर एक पुस्तक लिख रहा है। वह इस पुस्तक के कई अध्याय लिली को पढ़कर सुना चुका था। उसकी लेखन-शैली लिली को पसद थी। साथ ही नीरद का यह विचार कि नदी की जीवन-गाथा भी उसी प्रकार लिखी जा सकती है जैसे किसी महापुरुष की जीवनी, लिली को बहुत प्रिय था।

लिली को यदि नीरद की रचना में कोई चीज़ पसंद थी तो यही कि वह जिस भाषा में लिखता है उसके एक-एक शब्द को जीती-जागती वस्तु समझकर उठाता

है और अपने ठिकाने पर रखकर एक नया रंग, एक नया अनुराग जगा देता है; भाषा का यह प्रयोग नया अनुभव चाहता था। वह घटना-स्थल पर पहुँचकर, परिस्थिति को समझकर और बात की गहराई तक जाकर मोती की तलाश मे ग़ोता लगानेवाले के अंदाज़ में लिखता है। इसलिए वह कहती थी कि ब्रह्मपुत्र तो स्टीमर की खिड़की से ही ठीक-ठीक नज़र आ सकता है। देवकांत का मकान तो बलमा में दिसाँग नदी के किनारे था। वहाँ से इस तूफ़ान के मौसम में ब्रह्मपुत्र के किनारे पहुँचना तो बहुत कठिन था। नाव में बैठकर दिसाँग नदी से ब्रह्मपुत्र में जा तो सकते थे, पर यह बड़ा भारी झंझट था।

अब नीरद था कि वह तो झंझट से भागने को कायरता समझता था; इसलिए उसने लिली के निमंत्रण का धन्यवाद देते हुए अंत में यही कहा था, "अभी मैं देवकात की माँ के पास ही ठहरूँगा। कोई कष्ट होगा तो स्टीमर में आ जाऊँगा।"

इसके उत्तर मे लिली ने बडी विनम्रता से कहा था,"यहाँ भी हम बहुत अधिक आराम तो नही दे सकेंगे, पर अधिक-से-अधिक आराम देने की चेष्टा करेंगे।"

लिली के डैडी ने हँसकर कहा था, "लिखना भी बहुत बड़ा काम है। जब टैगोर ने 'गीतांजली' लिखी तो उसे कभी भूलकर भी ध्यान न आया होगा कि इस पर 'नोबल प्राइज' मिलेगा।"

लिली की मम्मी ने हँसकर कहा था, "तुम्हारा मतलब है नीरद के 'ब्रह्मपुत्र' पर भी उसे 'नोबल प्राइज' मिल सकता है।"

लिली के डैडी ने "क्यों नही, क्यों नही" कहकर लिखने के काम मे अपना विश्वास जताया था। उसके सामने लालटेन जल रही थी। बाहर बादल गरज रहे थे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। एक-दो बार माँ की आँख अवश्य खुली और उसने खाँस-खाँसकर बेहाल होते हुए कहा, "नीरद बेटा, अब सो जाओ।" पर नीरद की आँखो में आज नीद न थी।

माँ फिर सो गई। जब भी बिजली चमकती, छत और दीवारों के बीच के सूराखो से आती हुई बिजली की कौंध में माँ का झुर्रियोंवाला चेहरा यों प्रतीत होता जैसे किसी मूर्तिकार ने उसे बड़े परिश्रम से तराशा हो।

अचानक द्वार पर दस्तक हुई।

नीरद ने उठकर द्वार खोला।

वर्षा में भीगता हुआ एक आदमी भीतर आया। उसने अपने आपको अंडी की चादर में लपेट रखा था। पानी से भीगी हुई चादर को उतारते हुए उसने नीरद से हाथ मिलाया।

"ओहो देवकात!" नीरद उसे पहचानते हुए उसके गले लगकर मिला। बिजली की कौध मे देवकांत ने सोती हुई माँ का चेहरा देखा। वह बड़े प्यार से उसके चेहरे पर झुक गया; माँ के चरणों की ओर खड़े होकर माँ को प्रणाम किया।

देवकांत ने हाथ के संकेत से नीरद को दूसरे कमरे में चलने को कहा।

नीरद लालटेन उठाकर देवकांत के पीछे-पीछे चला गया। यह कमरा कई दिन से साफ नही किया गया था।

"पहले वस्त्र बदल लो।" नीरद ने लालटेन की बत्ती उकसाते हुए कहा।

देवकांत ने वस्त्र बदले। गीले वस्त्र एक ओर डाल दिए।

"माँ की दशा कैसी है?"

"ठीक नही है। तुम्हारी बाट जोहते-जोहते उसकी आँख लग गई।"

"कलकत्ता से कब चले थे?"

"कोई दो सप्ताह हो रहे हैं।"

"अतुल से भेंट हुई?"

"हुई।"

"लिली से भी? उससे मिले बिना कैसे रह सके होगे?"

"लिली तो कह रही थी कि स्टीमर में उसके डैडी कमरा दे सकते है।"

"आज क्या लिख रहे थे?"

"एक छोटी-सी चीज।"

"ब्रह्मपुत्र का कोई नया अध्याय?"

"नही।"

"ऊँह!" देवकांत ने विचित्र-सा मुँह बनाकर कहा।

नीरद समझ गया कि देवकांत क्या कहना चाहता है। वह जानता था कि देवकांत के सामने तो अपने आदोलन के काम के अतिरिक्त कोई वस्तु ठहरती ही नहीं।

अपने खास अदाज में सिर घुमाकर देवकात ने जैसे नीरद से कुछ कह दिया। नीरद समझ गया कि देवकात अपनी हजार बार दोहराई हुई बात आज फिर कह रहा है, "असल काम से भागकर तुम कब तक व्यर्थ की रचना में लगे रहोगे?"

"लिली के डैडी तो कह रहे थे कि मेरी पुस्तक पर नोबल प्राइज़ भी मिल सकता है।" नीरद मुसकराया।

"और तुमने विश्वास कर लिया?"

"तुम मुझे क्षमा कर दोगे, देवकांत! अविश्वास का भी तो मैं कोई कारण नही देखता। इसके लिए मैंने अपने जीवन के सबसे अच्छे वर्ष बिता दिए। जहाँ ब्रह्मपुत्र बंगाल मे पद्मा से मिलता है वहाँ मेरा जन्म हुआ; जहाँ तिब्बत मे ब्रह्मपुत्र का उद्गम-स्थल है, उस स्थान की मैंने यात्रा कर रखी है। मानसरोवर से चलकर कई सौ मील तक मैंने नाव मे बैठकर ब्रह्मपुत्र की यात्रा की थी। तुम तो जानते हो कि तिब्बत में मेरे पिता व्यापारी हैं; तुम यह भी जानते हो कि वे किस प्रकार वहाँ पहुँचे।"

"वह कहानी मुझे पसंद है। तुमने ही तो सुनाई थी वह कहानी कि कैसे एक बार कलकत्ता में एक काबुलीवाला ने एक गली मे न जाने किस प्रकार आवेश में आकर अपनी बदूक से एक बालक को मार डाला था और सब लोग अपने-अपने घर मे जा छिपे थे।"

"बिलकुल ऐसे ही हुआ। फिर एक बालक बाहर निकला।"

"हाँ, हाँ! तुम्हारी कहानी का वह बालक बहुत वीर था। उसने गली के दूसरे बालको को जमा किया। वे बालक उस काबुलीवाला के सिर हो गए। काबुलीवाला भाग निकला और वह बालको का अगुवा बालक आगे चलकर विपिन घोष कहलाया। विपिन घोष के घर मे एक बालक ने जन्म लिया, जो नीरद घोष कहलाया।"

"क्यो मुझे बना रहे हो?"

"बना नही रहा, समझा रहा हूँ। मेरी समझ मे यह बात आज तक नही आई नीरद, कि यदि तुम सचमुच अपने पिता के पुत्र हो तो देश की पराधीनता के विरुद्ध तुम्हारे अदर कोई भावना क्यो नही जागी। तुमने ही तो बताया था कि जब श्रीयुत विपिन घोष ने देखा कि कलकत्ता के कुछ होटल ऐसे भी है जहाँ अँग्रेज अपने कुत्तों के साथ जा सकते है, पर जहाँ हिदुस्तानियो का प्रवेष निषिद्ध है, तो उन्होने यह निर्णय किया कि वह इस अपमान को सहते हुए इस देश में नही रहेगे। वह तिब्बत चले गए और कलकत्ता में अपने मित्रो से यह कह गए कि अब तो वे उसी समय लौटेगे जब देश स्वाधीन हो जाएगा। मै पूछता हूँ कि इस भावना का हजारवाँ अश भी तुम्हारे अदर क्यो न जागा?"

"मैने लिखने का रास्ता अपनाया।" नीरद ने देवकात के गले मे बाँहे डालकर कहा, "तुम्हारा रास्ता अपनी जगह महान् है। उससे तो मैने कभी इनकार नहीं किया।"

"तो फिर इनकार किस बात से किया है?" देवकात ने हँसकर कहा, "तुम फाँसी पर चढने से डरते हो? तुम्हे अपना जीवन कुछ अधिक प्रिय है?"

जोर से बादल गरजे और बिजली यो कड़की जैसे देवकांत की हामी भर रही हो।

"देवकात, आज मै तुम्हें वह बात बताना चाहता हूँ, जो मैने आज तक किसी को नही बताई।" नीरद ने गभीर होकर कहना आरंभ किया, "तुम कहोगे यह गप है, पर यह एक सचाई है।"

"मै अवश्य सुनूंगा।"

"ग्वालदो और चाँदपुर के प्रदेश मे स्त्रियों का विश्वास है कि जल-देवता का व्रत रखने से सदा शुभ फल मिलता है। बहुत दिनो तक मेरी माँ के सतान न हुई। उसने जल-देवता का व्रत रखकर भी देख लिया पर उसके कोई संतान न हुई। पाँच

वर्ष तक निरंतर माँ यह व्रत रखती रही और···"

"और फिर व्रत का शुभ फल निकला। आ गए हमारे नीरदजी महाराज !"

"यह कहानी माँ ने मुझे उस समय सुनाई, जब मै दो वर्ष पूर्व तिब्बत गया था। माँ ने बताया कि वह सखियो के साथ पद्मा और ब्रह्मपुत्र के सगम पर राम-नवमी से एक दिन पहले स्नान करने गई थी। अभी सूर्योदय नही हुआ था। किनारे से लगी हुई एक नन्ही-सी नाव नजर आ रही थी, जैसे यह नाव किसी माँझी ने अपने बेटे के लिए खिलौने के रूप में तैयार कराई हो। उस नाव मे कोई वस्तु केले के पत्तो मे ढकी हुई रखी थी और···"

"और वह वस्तु तुम्हारी माँ ने उठा ली।"

"सुनो तो ! माँ को उस समय पता चला जब बालक के रोने की आवाज आई। यह एक नवजात बालक था। उसे माँ घर ले आई और···"

"और वही बालक बडा होकर नीरद कहलाया।"

"अब माँ तो यही कह रही थी।"

"और तुमने इसे सत्य मान लिया ?"

"मेरी कल्पना में तो यह चित्र दूसरा ही रूप धारण कर रहा है।"

"वह क्या ?"

"केले के पत्तो मे लिपटा हुआ एक बालक एक नन्ही-सी नाव में पडा काल-धारा मे वहा जा रहा है। यही मेरे जीवन का प्रतीक है।"

"फाँसी पर झूलने के बजाय तुम केले के पत्तो मे लिपटकर और नाव मे सवार होकर तैरते चले जाना चाहते हो !"

जोर की बिजली कडकी। देवकात लपककर माँ की ओर बढा। माँ सो रही थी। वह उसके समीप खडा रहा। बिजली दोबारा जोर से कड़की। माँ की आँख खुल गई और वह जोर ने खाँसने लगी।

माँ के चरण छूकर देवकात ने कहा, "प्रणाम, माँ !"

"कौन देवकात ?" माँ फिर खाँसने लगी।

देवकात ने माँ के चरणो पर सिर रखकर कहा, "माँ ! तुम सो रही थी। मैंने तुम्हे जगाना उचित न समझा। अब मै चलता हूँ !"

माँ की आँखे खुली-की-खुली रह गई। उसके होंठ हिले। वह फिर खाँसने लगी। छतरी तानकर देवकात वर्षा में बाहर निकल गया।

नीरद माँ के पास खड़ा रहा। उसके हाथ मे लालटेन थी। माँ ने उसे बैठने का संकेत करते हुए कहा, "तुम्हारी कहानी का वह मोड़ ठीक निकला बेटा, पर तुमने मुझे जगा दिया होता !"

नीरद ने गंभीर होकर कहा, "देखा नहीं माँ, देवकांत ने किस तरह दाढ़ी बढ़ा रखी है। सहज ही उसे कोई पहचान भी नही सकता।"

माँ की आँखें चमक उठीं, जैसे देवकांत को एक नज़र देखकर ही वह तृप्त हो गई हो।

अट्ठाईस

अगले दिन नीरद सवेरे-सवेरे अतुल से मिलने गया, तो उसकी आँखो मे नींद का बोझ था। वह रात-भर नहीं सोया था।

तूफ़ान का वेग कम हो गया था। स्थान-स्थान पर पेड़ उखड़ गए थे। कई जगह झोपड़ियाँ बिना छत के ही नज़र आ रही थी। उनकी छतें कहाँ जाकर गिरी, यह सोचने की बात थी। ऐसी झोपड़ियाँ भी थी, जिनकी दीवारें ही बैठ गई थी।

जब वह आलीसीगा से गुजरने लगा तो धनसिह ने आवाज़ दी, "चाय पीते जाओ, नीरद बाबू !"

"अभी नही !" कहते हुए वह आगे बढ़ने लगा, तो रत्न नापित की आवाज़ आई, "नीरद बाबू हज़ामत नही बनवाओगे ?"

नीरद छाता खोले चला जा रहा था। वह रास्ते में रुकने के विचार से नही चला था।

वर्षा निरंतर हो रही थी। वह जरा आगे बढ़ा तो चित्ताप्रसाद की आवाज़ आई, "माँ की खाँसी का क्या हाल है, नीरद बाबू ?"

नीरद ने कहा, "अब तो पहले से बहुत आराम है।"

"भगवान् का लाख-लाख धन्यवाद !" चित्ताप्रसाद का चेहरा फूल की तरह खिल उठा।

जब वह अतुल के घर पहुँचा, तो वह कपिला का दूध दुह रहा था।

धुर-धुर धाँ ! धुर-धुर धाँ !—दूध दुहने का अपना सगीत था। बाँस के चोगे में दूध दुहते-दुहते अतुल ने मुसकान के साथ नीरद का स्वागत किया।

नीरद जानता था कि मखना की मृत्यु के आघात से अतुल अभी तक पूरी तरह सँभल नहीं सका। कपिला की आँखो से प्रकट हो रहा था कि दूध दुहे जाने से उसे एक विशेष प्रकार की तृप्ति हो रही है; पर नीरद को लगा कि मखना की मृत्यु से तो कपिला भी उदास है।

भीतर से रेणु आकर अतुल के पास खड़ी हो गई। वह पत्ते की सीटी बजा रही थी। सीटी की आवाज सुनकर कपिला चौकी नही, जैसे वह सीटी की आवाज़ सुनने की चिर-अभ्यस्त हो।

धुर-धुर धाँ ! धुर-धुर धाँ ! अतुल दूध दुहता रहा।

नीरद ने रेणु के सिर पर हाथ फेरा, तो वह चकित नेत्रों से देखती हुई भीतर को भाग गई। नीरद ने उसकी ओर अधिक ध्यान न दिया। वह तो यह सोचकर आया था कि अतुल से सारी बात कहेगा कि किस प्रकार तूफ़ान के बावजूद देवकांत माँ से मिलने आया था, यद्यपि वह यह निर्णय न कर सका था कि देवकांत माँ से मिलने आया था या स्वयं उसी से। वह अतुल से पूछना चाहता था कि इन दिनों देवकांत कहाँ छिपा हुआ है। फिर उसने सोचा कि यह पूछना तो व्यर्थ है। पूछना होता तो मैं देवकात से ही न पूछ लेता।

उसने निर्णय किया कि वह देवकांत के संबंध में आज बात भी नही करेगा। पुलिस देवकात की ताक मे है। कही लेने के देने न पड़ जाएँ। पुलिस तो मुझे भी हिरासत मे ले सकती है। मै तो इसके लिए तैयार नहीं। मेरा तो वह रास्ता नही। मैं तो लेखनी का धनी हूँ। मेरा कार्य है लिखना; ब्रह्मपुत्र की कहानी, मनुष्य की कहानी, जैसी भी कहानी हो; उसमें कैसा भी मोड क्यों न आए। मेरा कार्य तो फूल को खिलने के लिए तैयार करना है। मेरा कार्य तो जीवन मे सुगंध लाना है। यह सोचकर वह स्वयं ही मुसकरा दिया। उसे यह परवाह न थी कि अतुल उसकी मुसकान को अवश्य देखे।

दूध दुहने के पश्चात् अतुल बाँस का फुट-भर लंबा चोंगा उठाकर खड़ा हो गया। यह चोगा बहुत मोटे बाँस से तैयार किया गया था। चोगे से ताजा दूध की सुगंध आ रही थी। नीरद ने मुसकराकर कहा, "लेखक की रचना से भी सोंधी-सोंधी सुगंध आने लगे, तो समझो लेखक की कला जीवंत हो उठी है।"

पहले अतुल भीतर जाकर दूध का चोंगा रख आया, फिर वह नीरद को पोखर के किनारेवाली अपनी झोंपड़ी में ले गया। "दही-चिड़वा पसंद करोगे या चाय ?" अतुल ने कहा, "जो चाहो वही आ जाएगा।"

"चाय पिएँगे।" नीरद मुसकराया।

"चाय मे थोड़ी देर लगेगी। बापू नया डिब्बा लेने गए हैं।"

"ऐसी जल्दी भी क्या है ?"

देवकांत की माँ की बीमारी की बात चली तो अतुल ने कहा, "लिली की डॉक्टरी और किस काम आएगी ? सुना है उसने कलकत्ता मे डॉक्टरी पढ़ी है।"

नीरद बोला, "अब तक तो एक वैद्यजी का इलाज चल रहा है। चित्ताप्रसाद गोलियाँ और पुड़िया भेज देता है।"

"माँ दवा खाती भी है ?"

"यही तो कठिनाई है। माँ को दवा से घृणा है।"

अतुल के चेहरे पर शोक की रेखाएँ अब भी अंकित थीं। मखना की मृत्यु का दुख वह अभी तक नही भूल सका था। नीरद के कान के समीप मुँह लाकर उसने कहा, "देवकांत को सूचना तो भिजवाई थी ?"

"शायद वह सूचना उस तक न पहुँची हो।" नीरद ने गभीर होकर कहा।

"तो फिर से भिजवानी चाहिए।"

"अवश्य।"

यहाँ बैठे-बैठे नीरद ने निर्णय किया था कि यदि अतुल यह प्रसग आरंभ करेगा तो वह बात को गोल कर जाएगा।

रेणु फिर आ गई। वह वही पत्ते की सीटी बजा रही थी। अतुल ने कहा, "इसके छोटे-से मस्तिष्क में यह प्रश्न नही उठ सकता कि मखना कहाँ चला गया।"

"अब मखना कभी वापस नही आएगा।" नीरद ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर मे कहा और फिर प्रसग बदलते हुए बोला, "परसो रात लिली से मेरी बाते हुई। लिली के कमरे मे मैने तुम्हारा चित्र देखा है।"

"मेरा चित्र ?" अतुल ने साश्चर्य पूछा, "मै वहाँ कब गया ? मेरा चित्र किसने बनाया ?"

"लिली तुम्हारी बहुत प्रशसा कर रही थी।"

"मेरी प्रशसा ? मुझमे ऐसा कौन-सा गुण है ? मुझपर तो उसे नाराज होना चाहिए था।"

"क्यो ?"

"उसकी भेजी हुई असमिया बाइबल मैने लौटा दी थी।"

"उस बात की तो उसने चर्चा नही की। फिर तुम्हारे विवाह की चर्चा चल पड़ी।"

"उसका इससे क्या प्रयोजन ?"

"उसने विष्णुराम से सुना होगा। कोई लड़की जूनतारा है दिसाँगमुख में ?"

"सामनेवाला घर है न !" अतुल ने दृढता से कहा, "उसी घर मे रहती है जूनतारा। उसके साथ मेरे विवाह की बात चल रही है। उसके पिता कल्याण भगत ने दूर-दूर तक तीर्थ-यात्रा कर रखी है। किसी कार्यवश माझुली गए है।"

नीरद बोला, "अभी से विवाह के चक्कर मे न फँस जाना। देवकात सुनेगा तो उसे दुख होगा। वह तो कलकत्ता में तुम्हारी बहुत प्रशंसा किया करता था।"

"देवकात का रास्ता कलकत्ता सेआरभ होता है, मेरा दिसाँगमुख से।"

नीरद ने गभीर होकर कहा :

"या तो मनुष्य, यह भूलकर कि उसका जन्म कहाँ हुआ, सारे संसार की यात्रा करे, या वह अपने मस्तिष्क के भीतर बसी हुई दुनिया की खोज करे, क्योकि मस्तिष्क की गलियो में घूमने से भी मनुष्य को बहुत-कुछ मिल सकता है। मस्तिष्क कोई एक दिन का खिलौना तो नही है। काल की असंख्य पगडंडियो से होता हुआ मस्तिष्क आज के युग में पहुँचा है, पर यात्रा की दूसरी बात है। परसों रात मै लिली से कह रहा था कि अतुल को दुनिया दिखाई जाए।"

"उसने क्या कहा ?"

"वह कह रही थी, 'अतुल में जो विशेषता है वह है उसका शुद्ध आदिम रूप। आज के युग के निकट-संपर्क में आने पर उसका यह रूप बिगड़ जाएगा।' तुम्हारा क्या विचार है ?"

"वह ठीक कहती है। मै तो दिसाँगमुख में रहकर ही काम करना चाहता हूँ।"

"बाँसुरी की धुन को ही लो। अब प्रश्न किया जा सकता है कि संगीत बाँस की पोरी पर आश्रित है या गायक के कंठ पर। एक सगीत ब्रह्मपुत्र की लहरो का भी है; उसे तो किसी के कंठ की चाह नही। प्रकृति का सगीत हो चाहे मानव का, इनका अपना-अपना संदेश है। मानव-सभ्यता विभिन्न देशो मे बडी-बडी नदियो के किनारे विकसित हुई। मानव पर जलधारा की अमिट छाप है और इसका एक ही सदेश है कि मानव प्रत्येक देश की यात्रा करे और वह अनुभव प्राप्त करे, जिसके बिना वह कोई विशेष पग नही उठा सकता। बाहर की दुनिया देखकर तुम दिसाँग-मुख आओगे तो यहाँ अच्छा प्रगति-कार्य कर सकोगे। कलकत्ता और बंबई जैसे शहर तो तुम अवश्य देख आओ।"

"दिसाँगमुख तो न शिवसागर बनना चाहता है न गौहाटी, कलकत्ता-बबई की तो बात ही दूर रही।"

"ब्रह्मपुत्र बहुत दूर से आता है और बहुत दूर जाता है। ब्रह्मपुत्र यही नही है जिसे तुम दिसाँगमुख के गज से नापने की भूल कर रहे हो।" नीरद ने अतिम तर्क प्रस्तुत करते हुए अतुल की ओर देखा।

इतने में चाय आ गई। नीलमणि भी आ पहुँचा। आते ही उसने कहा, "अब जो तुम कहो, वही भगतजी को उत्तर दिया जाए। तुम्हारी जन्मपत्री वह पहले ही ले गए थे। अब वह विवाह की तिथि निश्चित करने का आग्रह कर रहे है।"

"विवाह भी आवश्यक है।" पास से नीरद कह उठा, "पर लोग इतना शीघ्र विवाह क्यों करते हैं, यह मै आज तक नही समझ सका।"

अतुल चुप रहा।

"अच्छा तो मै भगतजी से कह देता हूँ कि अभी रुक जाएँ। लोगो का मुँह भी तो रखना होगा। लोग कहेंगे—कल मखना चल बसा और आज अतुल का विवाह रचाया जा रहा है !"

"चाय ठंडी हो रही है," अतुल ने बलपूर्वक कहा, "पहले चाय के साथ इनसाफ़ किया जाए ! ये बातें तो कभी ख़तम ही नही होगी।"

उनतीस

नीरद राखाल काका की झोपड़ी मे पहुँचा तो काका बैठे गुड़गुड़ी पर कश लगा रहे थे।

"आओ, नीरद बाबू !" काका मुसकराए।

इधर-उधर की बातों के पश्चात् काका ने देवकांत की बात चलाई। पहले तो नीरद ने अधिक दिलचस्पी न दिखाई, पर जब काका इस प्रसंग को छोड़ने को तैयार ही न हुए तो नीरद ने कहा, "देवकात बंगाल के एक आतंकवादी क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हो गया। इन लोगो ने एक के बाद दूसरी, पूरी पाँच हत्याएँ कीं। एक-से-एक बढ़िया पिस्तौल चलानेवाले युवक इस दल में शामिल हैं। दल के कुछ लोग गिरफ़्तार किए जा चुके है और तीन युवक अभी तक पकड़े नही गए। उन्हीं तीन युवकों मे देवकांत भी है। देवकांत के पास सबसे बढ़िया पिस्तौल है। एक अवसर पर तो मै स्वयं इस दल में सम्मिलित होते-होते रह गया था। कलकत्ता के समाचार-पत्रो मे आजकल सबसे अधिक इसी आतंकवादी दल की खबरें छप रही है।"

राखाल काका ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "तो क्या इस दल की ख़बरें गाधी बाबा की ख़बरों से भी अधिक छप रही हैं ?"

"हाँ, काका !" नीरद मुसकराया, "इस दल पर यह मुकदमा चल रहा है कि इन्होंने एक-एक करके पाँच अँग्रेज अफ़सरो को मार डाला।"

"तुम किस दल के साथ हो ?"

"मैं तो किसी भी दल के साथ नही हूँ, काका ! यह बात मैंने कलकत्ता में देवकांत से स्पष्ट कह दी थी। वैसे देश-प्रेम में तो मैं किसी से पीछे नही हूँ।"

"तो तुम सरकार-पार्टी के साथ भी नही हो ?" काका ने गंभीर होकर कहा।

"आज तक तो मैने सरकार की चापलूसी का सपना नही देखा।"

"तो तुम्हारा कौन-सा मार्ग है ? दो ही तो मार्ग हैं—बम और पिस्तौल का मार्ग या फिर सत्याग्रह और अहिसा का मार्ग। हमारे नार्मन साहब चाँदडूबी के जंगल में बीमार हाथियों की देख-भाल करते हुए गाँधी बाबा का प्रसंग छेड़ देते थे। वह तो कहते थे कि गाधी बाबा का मार्ग वही है जो ईसा का मार्ग था। ईसा तो सहर्ष सूली पर चढ़ गया था। तुम्हारा कौन-सा मार्ग है, नीरद बाबू ?"

"मै तो लिखकर ही सेवा करना चाहता हूँ, काका !"

"किसकी सेवा ?"

"सारे संसार की सेवा, अकेले अपने ही देश की नही। सचाई तो सब देशों के लिए एक है, सारे संसार की समस्याएँ एक हैं।"

"एक कैसे हैं सबकी समस्याएँ ? स्वाधीन और पराधीन, सब एक कैसे हुए ? यह प्रश्न तो मैं नार्मन साहब से भी पूछ बैठता था।"

नीरद ने हँसकर बात समाप्त करते हुए कहा, "मैं तो ब्रह्मपुत्र पर पुस्तक लिख रहा हूँ, काका ! हाँ, एक बात अवश्य है। पहले मैं केवल एक नदी की जीवनी लिखना चाहता था; अब मेरी समझ में यह बात आ गई कि नदी के किनारे बसे हुए लोगों का संघर्ष भी नदी की जीवनी से अलग नहीं।"

काका की आँखें चमक उठीं। वह ध्यानपूर्वक नीरद की तरफ़ देखने लगे।

तीस

दोनों सहेलियाँ बलमा जा रही थी। एक का विवाह हो चुका था, और दूसरी अभी अविवाहिता थी।

बहुत देर तक तो आरती इस बात को लेकर जूनतारा का उपहास करती रही कि यदि वह इतनी ही सयानी बनी फिरती है तो यह बताए कि जो चित्र उसके विवाह में लिली ने उसे भेंट किया था उसमें अतुल कहाँ से आ गया था।

वर्षा ऋतु कभी की समाप्त हो चुकी थी। धान की फ़सल कटकर घर आ चुकी थी। जाडा आरंभ हो चला था। आगे और पीछे दूर तक धुध की चादर फैली हुई थी। दाएँ-बाएँ भी तो धुध थी। धुध में लिपटी दोनों सहेलियाँ बलमा की ओर जा रही थी। धान की फ़सल कटने के पश्चात् जूनतारा का अतुल के साथ विवाह हो गया था। इस विवाह पर नीरद ही लिली को लेकर आया था। लिली एक अँग्रेज़ लड़की होकर भी गाँव की बातों में इतनी दिलचस्पी लेती है, यह सबके लिए बड़े आश्चर्य की बात थी। चलते-चलते आरती ने कहा, "कल भी इतनी ही धुंध थी। बापू के जाल में बहुत-सी मछलियाँ आ फँसी थी। बापू कह रहा था कि ब्रह्मपुत्र मे मछलियाँ कभी समाप्त न होंगी।"

जूनतारा ने हँसकर कहा, "यह कौन-सी नई बात है ?"

वे शीघ्रता से चली जा रही थीं। चलते-चलते उस सारस की चर्चा चली जिसे आरती का बापू कमलिया सापरी से पकड़ लाया था। फिर अतुल का प्रसंग आया कि किस प्रकार वह जूनतारा के पास आकर सारस को मुक्त करने का आग्रह करने लगा था। दोनो सहेलियों के वार्त्तालाप में वह दृश्य सजीव हो उठा कि किस प्रकार वे सारस को उठाकर बापू के साथ नाव में बैठकर उसी सापरी पर उसे छोड़ने गई थीं।

"जब से वह सारस अपनी पाँत के साथ उड़ गया, कभी लौटकर दिखाई नही

दिया।" जूनतारा ने हँसकर कहा, "वह माला भी व्यर्थ ही चली गई जो मैंने उसके गले मे डाली थी।"

"तू सोचती थी कि वह सारस फिर कमलिया सापरी पर उतरकर अपनी पाँत से बिछुड जाएगा और बापू फिर उसे पकड़ लाएगा ?"

"मैने तो सोचा था कि माला से मै अपने सारस को पहचान लूंगी।"

"ऐसा नहीं होता, पगली !"

"दूर से तो हर सारस के गले में माला नजर आती है।"

"इसे कहते है नज़र का धोखा।"

जूनतारा ने प्रसग बदलते हुए कहा, "देवकात कहाँ होगा, यह तो कोई नही जानता।"

"वह अपनी पाँत मे उड़ रहा होगा।" आरती मुसकराई।

जूनतारा ने हँसकर कहा, "तेरे सपनो मे देवकात अवश्य आता होगा, पर तू कभी बताएगी थोड़े ही।"

"आता है तो आए, मैं कैसे रोक सकती हूँ ? तू अपने अतुल की बात सुना, कैसा निकला ?"

जूनतारा चुप रही। आरती ने हँसते-हँसते उसके गले मे बाँहे डाल दी। "वर-वधू की कुडलियाँ मिलाकर किए गए विवाह ने कुछ तो रग दिखाया होगा। विवाह से पहले की सात राते कितनी शुभ थी ! तुम्हारे घरवाले ब्रह्मपुत्र से पानी लाकर तुम्हे स्नान कराते रहे, और अतुल के घरवालो ने भी सात दिन तक ऐसा ही किया। बता तो सही कि वर-वधू के लिए लड़कियाँ अलग-अलग पानी क्यों लाती है; वर-वधू की प्रशंसा मे इतने गीत क्यो गाए जाते है ?"

"तू क्यों इतनी उतावली हो रही है ? तू तो ब्रह्मपुत्र मे डुबकी लगा लेगी और हो जाएगा तेरा शुभ स्नान।"

"मैं क्यो डुबकी लगाने लगी ? मै भी दुलहन बनकर बैठूंगी।"

"तेरे लिए आम की समिधाओ से कौन हवन करेगा ?"

"हम भी उसी पंडत को बुलाएँगे। मेरे विवाह में भी एक-दूसरे को पान-तांबूल भेट करने की रीति का पालन किया जाएगा, जैसा तेरे विवाह पर हुआ था।"

"तब तो तुम्हें भी मेरी तरह विवाह से पहले सात दिन तक दूध और केला खाकर रहना होगा। मेरी तरह तू भी वर के माथे पर फूल रखना और तेरा वर इन फूलो को तेरे कंधे पर रख देगा; और जब अग्नि-देवता के सम्मुख विवाह संस्कार हो लेगा, तो तेरे घर में भी वर-वधू के सिर पर वैसे ही फूल और चावल वारे जाएँगे, जैसे हमारे घर में।"

"चावल क्यो वारते हैं ?"

"धरती के साथ संबंध जोडने के लिए।"

"तुझे कुछ भी मालूम नही।"

"तो तू बता ?"

"यह भी एक प्रकार का आशीर्वाद होता है कि जैसे धरती धानवती है वैसे ही वधू भी पुत्रवती बने।" आरती ने अपनी बाँहें जूनतारा के गले मे डाल दी।

वे देवकात के घर पहुँचीं, तो सूरज धुध का परदा हटाकर झाँकने लगा था। माँ ने उनका स्वागत करते हुए कहा, "आओ, आरती ! आओ, जूनतारा !"

"माँ, जूनतारा उलहना देने आई है कि तुम उसके विवाह में क्यो नही आई ?" आरती मुसकराई।

"मैं कैसे आती।" माँ ने खाँसकर कहा, "यह तो समझो कि मरते-मरते बच गई। मैंने सुना है कि राखाल भी विवाह मे सम्मिलित नही हुआ था।"

आरती बोली, "विवाह तो रुकता नही। कोई आए चाहे न आए। राखाल काका तो सबसे यही कहते फिरते है कि मखना की चिता की आग अभी ठंडी भी नही हुई थी और इन लोगो को अतुल का विवाह रचाने की सूझ गई।"

"वह ठीक कहते हैं।" माँ खाँसते-खाँसते बेहाल हो गई।

जूनतारा माँ का सिर दबाने लगी। आरती उठकर माँ के लिए पानी लेती आई। वह माँ के मुँह में पानी की बूँदे डाल रही थी कि शोभा भी आ गई।

शोभा के हाथ में चाय का गिलास था।

आरती ने उलहना दिया, "शोभा, तू जूनतारा के विवाह पर नही आई थी, तो तेरे विवाह पर कौन आएगा ?"

"मैं माँ को देखती या विवाह पर आती ?" शोभा बोली, "माँ, चाय पी लो।"

"मेरा मुँह बहुत कडवा हो रहा है, बेटा ! मेरे प्राण निकलते भी नही।" माँ की आवाज भर्राई हुई थी। बड़ी कठिनता से माँ चाय पीने के लिए राजी हुई।

फिर देवकात के बारे मे बाते चली तो माँ ने कहा, "उसे कभी माँ को देखने का ध्यान नही आता !"

जूनतारा बोली, "कभी तो वह माँ से मिलने आएगा। जिस माँ का दूध पिया है, उसे वह भुला थोड़े ही देगा।"

"देवकांत के मुख पर तो सदा भारत माता का नाम रहता है।" आरती मुसकराई।

"भारत माता पहले है या जननी ?" शोभा ने गंभीर होकर कहा, "पर पुलिस हमेशा देवकात की ताक में रहती है, माँ ! पुलिस उसका पता नहीं चला सकी और इसी कारण नारायण दारोगा की बदली हो गई।"

"दिसाँगमुख का नारायण मे तो पिड छूटा !" आरती ने घृणापूर्वक कहा।

जब तीनों लड़कियाँ चली गई, तो नीरद घबराया हुआ माँ के कमरे में आया।

माँ ने गंभीर मुद्रा में कहा, "मैने उन्हें कुछ नही बताया। तुम घबराओ नहीं।"

नीरद की जान-मे-जान आई और उसने सँभलकर कहा, "माँ, मैने समझा था कि तुमने उन्हें बता दिया।"

माँ बोली, "मैं सब समझती हूँ। दीवार के भी कान होते है, बेटा! अच्छा तो तुम्हारी कहानी कहाँ तक पहुँची? इस कहानी को जल्दी-जल्दी खत्म करो, बेटा!"

इकतीस

राखाल काका की झोपडी के सामने सेमल के फूल वसंत की छाप लगा रहे थे।

काका तो घर से बाहर ही नही निकलते थे। जो कोई भी उनसे मिलने आता, मखना की मृत्यु से सबधित वार्त्ता सुनने के लिए तैयार होकर ही आता। कुछ दिनों तक तो लोगों का यह विचार रहा कि समय स्वतः ही काका के मस्तिष्क से यह बात मिटा देगा, पर लगता था कि यह घटना काका को मानसिक रोग के समान भीतर-ही-भीतर खाए जा रही है। बात करके काका जी की भडास निकाल लेते हैं तो अच्छा ही करते है, यह सोचकर सामने बैठा व्यक्ति कई बार पुरानी कहानी को पूरे ध्यान से सुनने का यत्न करता।

अब तो माघ का महीना था। मखना आश्विन मे मरा था, इस बात को पाँचवाँ महीना जा रहा था। दो मास से कुछ दिन ऊपर तो अतुल के विवाह को भी हो गए थे। कभी काका यह उलहना देने लगते कि दिसाँगमुख के लोग इतने कठोर हो गए हैं कि एक निरपराध बच्चे की मृत्यु से भी उनके कान मे जूँ नही रेंगी; कभी वह गाँव-बूढ़ा नीलमणि और लंबी तीर्थ-यात्रा की डीग मारनेवाले कल्याण भगत की घिसी-पिटी अक्ल पर हँसने लगते। ऐसा भी क्या संकट आ रहा था कि अतुल और जूनतारा का विवाह एक वर्ष के लिए भी न रुक सका। जब स्वयं मखना का बापू मखना की मृत्यु का शोक मनाने से विमुख हो गया, तो दिसाँगमुख के अन्य मीरी, असमिया और नेपाली लोगो से क्या आशा की जाती? आश्विन में मखना मरा और कार्तिक में सदा के समान काती बिहू मनाया गया, जैसे गाँव में कोई दुखद घटना न हुई हो। आश्विन की अतिम तिथि से आरंभ होता है काती बिहू, जब लोग घरो और खेतो मे दीप जलाते हैं। कार्तिक की प्रतिपदा को विशेष रूप से भराली और गोहाली में दिए जलाते है। भराली में अनाज भरा रहता है, गोहाली मे गाय-बैल बँधे रहते है। भला हो इस परंपरा का कि काती बिहू में बोहाग बिहू के समान नाच-गान नही होता, नही तो मखना की मृत्यु के पश्चात् काती बिहू मनाने की बात और भी खटकती। जब काती बिहू मनाया जा रहा था, तो मै दूर

खेतों मे निकल गया था। खेतो में जगमगाते दीप देखकर मेरा हृदय जल उठा था। शाली और बाऊ धान में बालियाँ निकल रही थी, जैसे ये बालियाँ कह रही हो—हम अगहन-पूस में तैयार होंगी ! ठीक ही तो था, शाली और बाऊ धान अगहन ही में तो कटा था। दूर से मैंने अतुल को भी धान काटते देखा था।···

अब्दुल कादिर साँझ को काका के पास आ बैठा तो काका ने छूटते ही कहा, "ये लोग माघ-बिहू का त्योहार भी कैसे रोक सकते थे ?"

"रोक देते तो क्या बुरा था ?" अब्दुल कादिर ने गंभीर होकर कहा, "पर जब ये लोग काती बिहू मनाने से न टले, तो माघ बिहू मनाने से कैसे टलते ? बात तो तब थी कि अतुल का विवाह भी एक साल के लिए रोक दिया जाता। जब नीलमणि ने ही यह बात न सोची, तो आलीसीगावालो को क्यों दोष दिया जाए और बलमा-वालों का भी क्या अपराध गिना जाए ? चितालिया के नेपाली तो न काती बिहू मनाते हैं, न माघ बिहू और न बोहाग बिहू।"

"काती बिहू मनाकर लोगो ने मखना की मृत्यु का उतना उपहास नही किया था जितना माघ बिहू मनाकर।"

"वह कैसे, दादा ?"

"प्रतिवर्ष के समान इस बार भी पूस की अंतिम तिथि को बाँस के पाँच डंडे गाडकर और उनके बीच लकडी का ढेर लगाकर माघ बिहू के उल्लास में लड़के-लड़कियो ने वही रात गुजार दी थी और अगले दिन···"

"यह प्रथा तो पुरानी है, दादा !" अब्दुल कादिर ने टोककर कहा।

"पुरानी तो है, पर इन लोगो ने मखना का शोक मनाया होता तो सदा के समान इस वर्ष भी लकडी के उस ढेर को अगले दिन अर्थात् माघ की प्रतिपदा को प्रातः चार बजे नीलमणि के हाथ से आग न लगवाई होती !"

"आग लगाने के लिए तो ये लोग और किससे कहते ? सभी लड़के-लड़कियों ने आग को प्रणाम किया था। लड़कियाँ आग तापती रहीं और लड़कों के दंगल देखती रही, दादा ! लड़के-लड़कियो के अतिरिक्त बूढ़े लोग भी तो थे।"

"भला माघ बिहू की आग को 'मेजी' क्यों कहते हैं ? इसे तापना शुभ क्यों माना जाता है ?" राखाल ने गंभीर होकर कहा, "आग तापने और दंगल से अवकाश पाकर हर कोई अपने-अपने घर को लौट आया होगा। अब यह तो असमिया लोगों का ही त्योहार है। नेपाली भी 'मेजी' को शुभ मानते हैं। मुसलमान तो दूर से ही इसे देख लेते है।"

अब्दुल कादिर पहले तो चुप रहा। फिर वह कहता चला गया, "माघ बिहू को तो मैं बुरा नही कहता। मीरी, नेपाली और मुसलमान भी इसमें शामिल हो तो क्या बुरा है ? मेजी तापने के बाद वे भी घर-घर माघ बिहू के उल्लास में मीठे पकवान खाने जाएँ, तो क्या बुरा है ? वे भी पठार में भैसों की लड़ाई देखें, तो कोई

बुरी बात नही; वे भी माघ बिहू की खुशी में नए कपड़े पहन सकते है, पर सवाल तो यह है कि मखना जैसा प्यारा बच्चा काले नाग के डसने से मर जाए और उसका बाप भी मृत्यु का सब दुख भुलाकर माघ बिहू की मेजी जलाता फिरे, इससे ज्यादा अफसोस की क्या बात होगी ?"

काका कुछ न बोले। अब्दुल कादिर सोचने लगा कि देखे अब काका क्या बात चलाते है।

माघ का महीना तो 'आहू' धान बोने का महीना था। काका जानते थे कि आहू धान की पनीरी नही रोपी जाती, इसे तो खेत मे हल चलाने के पश्चात् वैसे ही बो दिया जाता था। काका यह भी जानते थे कि अब आहू धान बोया जाएगा तो कही जाकर माघ में काटा जाएगा। माघ बिहू और बोहाग बिहू के बीच मे यह चार मास की अवधि आहू धान के बोने और काटने का ऋतु थी।

अब्दुल कादिर ने हँसकर कहा, "चुप क्यों हो गए, दादा ? पेशन ले आए थे ? तुम्हारी पेशन तो घर बैठे आ जाती है। हम तो घर मे नही बैठ सकते। आजकल आहू धान बोने का काम जोरो से चल रहा है।"

"चार मास से तो मै पेशन लेने भी नही गया।"

"क्यो, दादा ? पेशन फिरंगी के पास क्यो छोड़ते हो ?"

"मखना की मृत्यु ने मुझे उत्साहहीन कर दिया है, अब्दुल कादिर !"

"तो क्या पेशन छोड दोगे, दादा ? हमारे लिए ही ला दो। फिर हम भी आहू धान नही बोएँगे। घर बैठे पेशन मिलती रहे, यह तो बडा आनद है। ये लोग फिरगी को बुरा क्यो कहते है ? दादा, हमे भी चाँदडूबी क्यो नही ले गए थे ? हमें भी पेशन मिलती। क्या तुम्हारे नार्मन साहब हमें नौकरी न देते ?"

"क्यो न देते ? वह तो बहुत अच्छे थे। मै तो उनके उपकार से लदा हुआ हूँ।"

"आनंद से पेशन पा रहे हो, दादा ! इधर हम है कि आहू धान बोने के साथ-साथ बाऊ धान बोने की भी तैयारी कर रहे है। पेट सब कराता है। हमसे तो धर्मानदी ही अच्छा है, उसे तो न आहू और बाऊ धान बोने की चिता सताती है न शाली धान की ! उसका जाल बना रहे, ब्रह्मपुत्र मे मछलियो की कमी नही।"

"अपना-अपना काम है।"

काका जानते थे कि आहू और बाऊ धान मे यह अतर है कि जहाँ आहू ज्येष्ठ-आषाढ मे कटता है वहाँ बाऊ बहुत देर से पकता है। आहू के लिए केवल चार-पाँच महीने चाहिए—माघ मे बोया और ज्येष्ठ-आषाढ़ मे काट लिया, पर बाऊ तो बहुत ढीलम-ढालम था, माघ मे बोते थे आहू के साथ-साथ और अगहन-पूस मे काटते थे —पूरे आठ-नौ महीने बाद। अगहन-पूस ही मे तो शाली की फसल कटती थी। शाली तो वैसे वैशाख से ही शुरू हो जाती थी, जब इसकी पनीरी लगाई जाती थी। सावन में शाली की पनीरी खेतो में रोपी जाती थी और अगहन में शाली काट ली

जाती थी। यदि पनीरी लगाने के तीन महीनों की गिनती न की जाए तो रोपने और काटने के बीच तो वही चार-पाँच महीने लगते थे।

काका यह भी जानते थे कि आहू और शाली में इतना ही अंतर है कि आहू रंग में लाल होता है। बाऊ धान भी रंग में कुछ-कुछ लालिमा लिए रहता है। जिस खेत में एक वर्ष शाली लगाएँगे उसमें प्रतिवर्ष शाली ही लगाएँगे, दिसाँगमुख में ऐसा ही होता था। कभी-कभी आहू और बाऊ को उनकी अपनी-अपनी जमीन मे न बोकर किसी शालीवाली जमीन में बोकर देखते थे, पर आहू और बाऊवाली जमीन मे लाख यत्न करने पर भी शाली उतनी अच्छी नही होती थी जितनी उस जमीन पर जहाँ वह हमेशा से रोपी जाती थी।

"जहाँ तक धान की फसलों का संबंध है," राखाल बोला, "ये तीन ही फसलें है—आहू, बाऊ और शाली। इनमे भी आहू और बाऊ भले ही एक साथ इसी माघ महीने में ही बोते है, पर जब आहू को जेठ-आषाढ़ में काटते है तो बाऊ की बालियाँ पकनी तो दूर रही अभी लगनी भी आरंभ नही होतीं।"

अब्दुल कादिर ने हँसकर कहा, "अरे दादा, ये तो अल्लाह के खेल है—किसी को पहले पकाए, किसी को पीछे।"

"यह तो तुम भी मानोगे कि बाऊ जैसा ढीलम-ढालम और कोई धान नही।"

"अरे दादा, इसमें आदमी क्या करेगा ? तुम्हारे हाथियों में भी तो सब-के-सब एक जैसे तेज नही होते।"

"वह तो ठीक है।"

"सब अल्लाह का खेल है, दादा। अल्लाह ने तो तरह-तरह के आदमी बनाए है। हमारे दिसाँगमुख ही को देख लो, एक आदमी से दूसरा आदमी कितना अलग नजर आता है।"

"आदमी कितने भी अलग-अलग क्यो न हो, हमारे दिसाँगमुख में तो तीन ही जातियाँ है—नेपाली, मीरी और असमिया, पर मुसलमान तो अपने को असमिया ही मानते है।"

अब्दुल कादिर ने हँसकर कहा, "तो तुम इन्हें आहू, बाऊ और शाली से मिला रहे हो ? इनमे बाऊ तो मीरी ही हुए, दादा !"

"फसलें तो तीन हुई, पर धान की किस्में तो अनगिनत हैं, अब्दुल कादिर !"

"अरे हाँ, दादा ! यह तो हम भूल ही रहे थे। 'गोमारी', 'कनकु अंग', 'रंगा जाहा', 'गरून पखी', 'कांगी जोल', 'अहमली', 'जहा' और 'बरा'—धान की ऐसी-ऐसी न जाने कितनी किस्मे हैं।"

"धर्मानंदी भी तो मछलियों की किस्में गिना सकता है।"

"अरे छोड़ो, दादा ! तुम तो मज़ाक करने लगे। तुम्हारा क्या है—न धान की चिंता, न मछली की जंजाल, बस आ गई पेंशन बैठे-बैठाए। साधन तुम्हारी जमीन

सँभाले बैठा है और तुम्हें कोई चिंता नहीं सताती। उससे लेकर आधी ज़मीन मुझे क्यों नहीं दे छोड़ते, दादा ?"

"तुम्हारे पास अपनी ज़मीन क्या कम है ? हज करने कब जा रहे हो ?"

"नीलमणि तो कहता है कि दिसाँगमुख में ही उसकी काशी है, दादा !"

"तो तुम भी दिसाँगमुख को ही काबा मान बैठे ? अच्छा विचार है।"

अँधेरा हो रहा था। काका ने उठकर लालटेन जलाई, अब्दुल कादिर ने गंभीर होकर कहा, "रौशनी भी क्या चीज़ है ! लालटेन की तो हम इतनी क़दर करते हैं; पर अल्लाह मियाँ ने दिन के लिए जो इतना बड़ा सूरज बनाया है, उसके लिए तो हम अल्लाह मियाँ के शुक्रगुजार नही होते।"

इतने में आधार और साधन आ निकले। आधार ने छूटते ही कहा, "हम एक शुभ समाचार लाए है, काका ! मीरी पचायत ने यह निर्णय किया है कि इस वर्ष मखना के शोक मे चैत की दबूर-पूजा बद रखी जाए और आगे चलकर आश्विन की दबूर-पूजा के अवसर पर, जब मखना की मृत्यु की पहली बरसी पड़ती है, दबूर-पूजा सबके लिए खोल दी जाए।"

काका कुछ न बोले। अब्दुल कादिर ने गंभीर होकर कहा, "यह तो अच्छा फैसला है, हमारे अल्लाह मियाँ को भी पसंद आएगा।"

बत्तीस

"तुम कभी-कभी इतने उदास क्यो नजर आने लगते हो ?" जूनतारा ने पास आकर कहा।

"मैं सोचता हूँ राखाल काका ने कितना जादू कर दिखाया है। पहले तो कभी ऐसा नही हुआ था। मखना की मृत्यु का बोझ अब तक अकेले काका ही ढोते आए हैं। वह ठीक कहते हैं कि मखना की चिता की राख ठंडी भी न हुई थी कि···" अतुल कहते-कहते रुक गया।

"तुम्हारी ये बातें कभी ख़तम भी होंगी ? मेरे तो कान पक गए इन्हें सुनते-सुनते। यह ठीक है कि मखना काले नाग के डसने से मर गया था। यह भी ठीक है कि हमारे विवाह की तिथि शीघ्र निकल आई थी। सारी दुनिया विवाह करती है। हमने भी कर लिया तो हमसे क्या अपराध हुआ ?"

"काका तो यही कहते थे कि हम मखना कि चिता की राख ठंडी हो जाने देते।"

"तो काका जो करना चाहें सो कर लें।"

"तुम तो लाल मिर्च बनी जा रही हो। हरि-हरि हे माधव !"

जूनतारा जानती थी कि अतुल ने उसे चिढ़ाने के लिए ही 'हरि-हरि हे माधव' की थाप लगाई है। यदि वह भगतजी की लड़की है तो इसका यह अर्थ तो नही कि उसके सम्मुख भगतजी के प्रिय बोल का उपहास उड़ाया जाए।

"चैत की दबूर-पूजा मीरी लोगों ने इस वर्ष बद रखी।" अतुल ने गंभीर होकर कहा, "पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था ?"

"तो हम क्या करें ?" जूनतारा ने नाक-भौ चढ़ाई, "और यदि आश्विन की दबूर-पूजा का द्वार आगे से सबके लिए खोलने का फैसला भी हो गया तो क्या हुआ ?"

"तुम समझती हो यह साधारण बात है। अब दिसाँगमुखवाले एक मुट्ठी होकर रह सकेंगे।"

"मैं यह नही मान सकती।"

"यह साधारण-सी बात भी तुम्हारी बुद्धि में क्यो नही आती ?"

"मीरी लोग अपने को राजहंस मानते है और असमिया लोगों को तो सूअर से भी घटिया समझते है। नेपालियो को वे सूअर का दरजा देते हुए भी कतराते है। उस दिन सुना नही था, साधन मीरी क्या कह रहा था ?"

"पिछली बातों को भुला देना ही अच्छा है।"

"नई बाते भी कौन-सी है जिन्हे याद रखा जाए ?"

"वह बात तो कब की खतम हो गई कि साधन मीरी ने धनसिंह को गंदे चूहे की गाली दी थी।"

"और वह जो उसने धनसिंह का सिर तोड़ डाला था ?"

"उसका घाव तो कब का भर गया।"

जूनतारा ने झुँझलाकर कहा, "यह कहना सहज नही। उसके सिर पर अभी तक पट्टी बँधी है।"

"नए दारोगा ने धनसिंह को न भड़काया होता तो मुकदमा शिवसागर कभी न जाता।" अतुल गभीर नजर आ रहा था।

"कभी यह भी सोचा कि धनसिह का क्या दोष था ? यह तो कोई भी कर सकता है कि पैसे देकर माटी खरीद ले। धनसिंह ने भी यही किया। उसने एक मीरी की माटी सारी नही केवल आधी खरीद ली थी। यह कौन-सा अपराध था ?"

"यही तो मैं भी कह रहा था।"

"तो क्या अब नेपालियो के सिर टूटने बंद हो जाएँगे ?"

"नेपालियों की वकालत तुमने कब से आरंभ कर दी ?"

"मीरी सोचते है कि असमिया और नेपाली की मिली भगत है और दोनों मिलकर उन्हें दिसाँगमुख से खदेड़ना चाहते हैं।"

"असमिया और नेपाली भी तो मीरियों को अपना शत्रु मानने लगे थे।"

"सो तो वे अब भी मानने है और मानते रहेगे।"

"यह तो न कहो।"

"तुम बस इतनी-सी बात पर रीझ गए कि एक बार मीरियों ने अपनी दबूर-पूजा नही मनाई और आगे से दबूर-पूजा मे सबको आने की आज्ञा दे दी।"

"अब वे हाथ-पैर बाँधकर किसी को 'येगुम' मे नही डालेंगे, जैसे मखना को डाल दिया था।"

"तो क्या इससे आपस की शत्रुता मिट जाएगी? यह सब दिखावा है। राखाल काका भी भोले है जो इनकी बातो मे आ गए।"

"राखाल काका तो स्वयं मीरी है। उनका प्रभाव तो सभी पर है। क्या मीरियो से यह बात छिपी हुई है कि असमिया और नेपाली काका पर जान देते है?"

"साधन और धनसिह मे जो शत्रुता है, वह तो इससे समाप्त नही हो गई। और यह भी क्यो भूल रहे हो कि नए दारोगा के साथ मिलकर साधन मीरी बापू को गाँव-बूढा की पदवी से हटाकर आधार मीरी को गाँव-बूढ़ा बनाना चाहता है।"

"हमे शाति रखनी चाहिए।"

"यह शांति नही, कायरता है।"

"कभी आग से भी आग बुझी है? आग तो पानी से ही बुझती है।"

"अपना ज्ञान अपने पास रखो। मैने तो बडे-बडे ज्ञानियो को भी आग-बबूला होते देखा है। साधन मीरी तो सबसे यही कहता फिरता है कि दिसॉगमुख का गाँव-बूढा असमिया नही, मीरी होना चाहिए। कोई बात हुई भला!"

"और यदि बापू स्वय ही यह बात मान जाएँ या मैं बापू को राजी कर लूँ गाँव की भलाई के लिए?"

जूनतारा ने हँसकर कहा, "सूअर गिर गया गड्ढे में, बोला—कितना ठंडा स्थान है!"

"बड़ डिकडारी! बड़ डिकडारी! मेरी बात तो तुम समझोगी ही नहीं, जूनतारा!" अतुल ने उठकर अपनी पत्नी का सिर थपथपाया, "मै कहता हूँ, शाति बड़ी वस्तु है। शांति से ही महावत हाथी को चलाता है। शाति से ही नावरिया नाव खेता है। तुम तो भगतजी की लडकी हो, शांति की बात तुमसे अधिक कौन समझ सकता है?"

"भक्ति और शाति तुम अपनी ही ज्ञान-गुदड़ी में छिपाकर रखो।" जूनतारा ने हँसकर कहा, "बडी-बडी बाते केवल कहने के लिए होती है।"

"राखाल काका ने मीरी, असमिया और नेपाली को एक-दूसरे के समीप लाने मे कैसा जादू कर दिखाया।"

"तो क्या मीरी यह प्रचार करना छोड़ देंगे कि नेपाली लोगों ने दूध के धधे पर तो इस प्रदेश मे अधिकार कर ही रखा है, अब वे मीरियो की माटी खरीदकर उन्हें बेघर करने पर तुले हुए है।"

"मीरी ये बाते स्वय थोडे ही कहते है !"

"तो और कौन कहता है ?"

"उनके मुख से दारोगा बोल रहा है।"

"कौन दारोगा ? नारायण की तो माझुली मे बदली हो गई।"

"नारायण गया, गोपीनाथ आया। क्या अंतर पड़ता है ? पुलिस तो पुलिस है। फिरगी की पुलिस तो वही करेगी जो फिरंगी चाहेगा।"

"किसमें ऐसी शक्ति है कि फिरगी से टक्कर ले ?"

"देवकात जो कार्य कर रहा है, वह तो किसी से छिपा नही।"

"देवकात तो भागा-भागा फिरता है।"

"देवकात क्या कर रहा है, यह आरती अधिक जानती है।"

जूनतारा ने मुँह बनाकर कहा, "आरती मछुए की लड़की ही सही, पर उसे बदनाम क्यो करते हो ?"

जूनतारा जानती थी कि देवकात के लिए अतुल के हृदय में सम्मान की भावना है। वह यह भी जानती थी कि देवकात का पथ अतुल का पथ नही है, अतुल कभी ऐसा कार्य नही करेगा जिसमे उसे देवकात के समान छिपकर रहना पडे, इसका जूनतारा को पूरा विश्वास था।

"पहले तो मुझे देवकात से शिकायत थी कि वह दिसांगमुख की बात भुलाकर कलकत्ता की बात क्यो सोचता है और अब···"

"और अब तुम देवकात के भक्त बने जा रहे हो ?"

"सुनो तो, जब से उसने माझुली मे कार्य आरभ किया है···"

"नारायण भी नारायण है। वह बदला लेगा कि देवकांत याद रखेगा।"

"देवकांत को तुम इतना बुरा क्यो समझती हो ?"

"तुम भी तो उसे बहुत अच्छा नही समझते। तुमने ही तो कहा था कि पिस्तौल और बमवाला रास्ता तुम्हें बिलकुल पसंद नही है। देवकात का तो वही रास्ता है; चाहे वह कलकत्ता मे रहे चाहे माझुली मे।"

"उपाय अलग-अलग हो सकते है, पर लक्ष्य तो एक ही है।"

"तुम तो कहा करते हो कि जब तुम सो जाते हो तब भी खेत की माटी तुम्हारा पीछा करती है, तुम्हारे साथ सोती है खेत की माटी ! अब वह बात भूल गए ?"

"सो तो मै अब भी कहता हूँ।"

"मछुए का काम है मछलियाँ पकड़ना, किसान का काम है खेती-किसानी और

सिपाही का काम है लड़ना। देवकांत सिपाही हो सकता है, पर तुम तो किसान हो।"

घर के पोखर के किनारे टहलते हुए अतुल और जूनतारा देर तक बाते करते रहे। अब तो सूर्योदय हो रहा था, यही तो गाय दुहने का समय था।

"गाय मैं दुह लूंगी।" जूनतारा मुसकराई।

"अपना रूप तो देखो।" अतुल ने हँसकर कहा, "दिन पूरे हो रहे हैं और कहती है—गाय मै दुह लूंगी!"

जूनतारा लजा गई। पोखर में तैरती हुई बत्तखे कैं-कैं कर उठी, जैसे वे भी अतुल के साथ सम्मिलित होकर जूनतारा को छेड़ रही हो।

अतुल ने प्रसंग बदलते हुए कहा, "नए दारोगा गोपीनाथ, चित्ताप्रसाद और विष्णुराम का गुट बन गया है। तीनों ने मिलकर धाँधली मचा रखी है। बेगार के मारे दिसाँगमुख का नाक मे दम आ गया है।"

"तुम अकेले क्या कर सकते हो?" जूनतारा ने बलपूर्वक कहा, "मैं कहती हूँ, तुम इन बातों मे न पड़ो तो अच्छा है।"

"मैं अकेला नही हूँ। राखाल काका मेरे साथ हैं, तो समझो सारा दिसाँगमुख साथ है। एक बीज वे हैं जो खेत में बोए जाते हैं, फसल उगती है, बालियाँ पकती है, फसल कटती है। एक फसल वह है जिसे नए विचारो की फसल कहेगे। नए विचार भी नए बीजो के समान बोए जाते है।"

जूनतारा बत्तखों के समीप चली गई। एक बार फिर बत्तखें कैं-कैं कर उठी, जैसे वे अतुल की बात दोहरा रही हो। सूरज की किरणे पोखर के जल पर झिलमिला रही थी। बत्तखो के तैरने से उठती हुई हिलोरे बड़ी भली प्रतीत हो रही थी। जूनतारा ने पलटकर कहा, "तो अब जाकर दूध दुह लो। देखते नही, सूरज नारियल से भी ऊँचा उठ गया।"

तेंतीस

लिली खिलखिलाकर हँस पड़ी, जैसे नीले रंग की गुड़िया सजीव हो उठी हो और क्षण-मात्र मे ही वह बोल उठी हो।

नीरद यह निर्णय न कर सका कि लिली आकाश पर सारसो की पाँत को देख-कर हँस रही है या उसे कोई भूली हुई बात याद आ गई है।

नीली फ्राक मे लिली परी-कथा की नायिका प्रतीत हो रही थी। सुनहरे घूंघरों पर सफ़ेद रिबन चमक रहे थे। नीले आकाश पर दूर सारसों की पाँत नज़र आ

रही थी। सारस अपनी जन्मभूमि को लौट रहे थे। यह तो ऐसी बात नहीं थी जिस पर एक अँग्रेज़ लडकी को हँसी आने लगे। नीरद जानता था कि लिली को उसकी बातों में रस आता है। वह यह भी जानता था कि मेडिकल कॉलेज में एम० बी० तक शिक्षा पाने के बावजूद लिली की रुचि साहित्य में ही अधिक है। विज्ञान की महानता तो वह स्वीकार करती थी, पर साहित्य ही सबसे अधिक उसके जीवन का अंग बन गया था।

शायद लिली को किसी सहेली की याद आ गई, या वह देवकात के फ़रार होने पर हँस रही है; नीरद यह समझने का यत्न कर रहा था। लिली क्यो हँस रही है? हँसने की क्या बात है? जाड़े के अंतिम दिन हैं, साँझ का समय है। ब्रह्मपुत्र की विशाल जलधारा पर हमारी नाव चली जा रही है। ब्रह्मपुत्र तो बहुत ही शांत और गभीर नज़र आ रहा है। लिली ब्रह्मपुत्र पर तो हँसने से रही। नीलकंठ और बंसी नाव चला रहे है। मै लिली के समीप बैठा हूँ। मेरी पुस्तक में वह रस लेती है और इस पुस्तक में तो उसके डैडी भी कुछ कम रस नही लेते। उसके डैडी तो कई बार पूछ चुके है कि कितना काम बाकी रह गया है। उसके डैडी तो डंडे से राज्य करने के पक्षपाती हैं। उसकी मम्मी इस प्रसंग को अधिक महत्त्व नही देती। लिली की आत्मा में असम रम गया है, वह हिंदुस्तान के स्वतंत्रता आदोलन के विरुद्ध भी नही है, पर वह गांधीजी के अहिंसावाले उपाय को ही अच्छा समझती है। कलकत्ता में वह देवकांत से कहा करती थी, 'मैं इसके बिलकुल विरुद्ध नही हूँ कि हिंदुस्तान स्वाधीनता माँगे; पर गाधीजी के उपाय से ही स्वाधीनता ली जाय, तो अच्छा होगा।"

इसके उत्तर मे देवकांत कहा करता था, 'तुम भी तो थोड़ा-सा प्रयत्न करो, चाहे किसी भी उपाय से सही।'

शायद लिली यह सोचकर हँस रही है कि एक हिंदुस्तानी लड़के की मूर्खता का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि वह एक अँग्रेज लड़की से अपने देश को भुलाकर हिदुस्तान के स्वाधीनता आंदोलन के आगे बढ़ने में सहायता देने की आशा करे।...

"क्या सोच रहे हो, नीरद?" लिली ने ब्रह्मपुत्र की लहरों से ध्यान हटाकर कहा।

"एक मंत्र सुनोगी, लिली?" नीरद ने हँसकर कहा, "यह ब्रह्मपुत्र का मंत्र है।"

"ज़रूर!" कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी, जैसे उसकी नीली फ्राक और सुनहरे घूँघर भी उसका समर्थन कर रहे हो।

नीरद ने मंत्रोच्चारण आरंभ किया :

ब्रह्मपुत्रो महाभागः शातनु कुलनंदनः।
अमोघः गर्भ सम्भूतः पापं लोहित्य मे हर॥

लिली ने प्रसन्न मुद्रा में कहा, "यह तो कोई पुराना संस्कृत मंत्र है। इसमें क्या कहा गया है ?"

"इसमें कहा गया है—हे महाभाग्यवान ब्रह्मपुत्र ! हे शातनु कुलनदन, हे अमोघ शक्ति के गर्भ से जन्म लेनेवाले, हे लोहित्य, मेरे पाप हरो।" नीरद की मुखमुद्रा पहले से अधिक गभीर हो उठी।

लिली की प्रसन्नता की सीमा न रही। नीरद को लगा कि लिली इस मत्र पर नही, समस्त सस्कृत-कविता पर हँस रही है। या शायद लिली मुझपर हँस रही है। लिली की हँसी की उपेक्षा करते हुए उसने कहा, "चैत मास मे वसत अष्टमी के दिन बगाल और असम मे लाखो व्यक्ति ब्रह्मपुत्र में स्नान करते हुए इस मत्र का उच्चारण करते है।"

लिली की हँसी रुकने मे ही नही आ रही थी। नीरद को लगा कि शायद लिली उसके वस्त्रों पर हँस रही है। सफ़ेद धोती, सफेद कमीज, नीरद को यही वेश पसद था।

"ब्रह्मपुत्र को लोहित्य क्यो कहते है, जानती हो लिली ?" नीरद मुसकराया।

लिली हँसती रही। जैसे उसे यह जानने की तनिक भी चिता न हो। पर नीरद के होठों तक आई हुई बात पीछे न हट सकी, "यह बहुत पुरानी कथा है, लिली ! जब परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता का सिर कुल्हाडे से काट डाला, तो कुल्हाडा उसके हाथ से छूटता ही न था। कहते हैं उसकी माता का रक्त ब्रह्मपुत्र मे गिरने से इसका जल रक्ताभ हो गया है। लोहित्य और रक्ताभ पर्यायवाची है। माता का वध करने के पश्चात् बहुत समय तक परशुराम का मानसिक संतुलन डॉवाडोल रहा। ब्रह्मपुत्र के एक कुड में नहाकर ही परशुराम को शाति उपलब्ध हुई। वह कुड अब तक परशुराम कुड कहलाता है।"

नीलकठ नाव खेते-खेते गाने लगा :

ब्रह्मपुत्र कानो ते, बरहमथूरी जूपी
आमी खरा लोरा जाई
ऊटूबाई नीनीबा, ब्रह्मपुत्र देवता।
तामोल दी मानोता नाई।

लिली ने गंभीर होकर कहा, "यह गीत तुम अपनी पुस्तक में अवश्य दे सकते हो, नीरद !"

नीरद मुसकराया, "ब्रह्मपुत्र के स्नान-मत्र से भी कही अधिक मुझे यह असमिया लोकगीत अच्छा लगता है, 'ब्रह्मपुत्र के किनारे बरहमथूरी गाछ है जहाँ हम ईधन लाने जाते है। इसे बहाकर मत ले जाना, ब्रह्मपुत्र देवता ! हमारी इतनी भी क्षमता तो नही कि ताबूल से ही तुम्हारा सत्कार कर सके !' ब्रह्मपुत्र और जन-जीवन का कितना बढ़िया संतुलन है।"

लिली ने हँसकर कहा, "जब ब्रह्मपुत्र में बाढ़ आती है, तो वह किसी की प्रार्थना पर कान नहीं धरता।"

"असम में घर-घर सुपारी के पेड नजर आते है। घर मे कोई भी आए उसे पान-तांबूल अवश्य देते है। निर्धन-से-निर्धन व्यक्ति भी ताबूल का टुकड़ा तो हर अवस्था में भेट कर सकता है।" नीरद उत्तर की प्रतीक्षा मे लिली की ओर देखने लगा।

लिली गंभीर होकर बोली, "कवि कहता है कि हमारे पास ताबूल तक नही है जिससे ब्रह्मपुत्र का सम्मान किया जा सके; पर प्रश्न तो यह है कि यदि उसे ताबूल भेट कर भी दिया जाए, तो क्या ब्रह्मपुत्र अपनी बाढ़ की लहरो मे बरहमथूरी का पेड़ बहा ले जाने का विचार छोड देगा! मुझे तो इस विचार पर हँसी आने लगती है।"

"तुम प्रकृति को एक अंधी और बहरी शक्ति मानती हो?"

"बिलकुल!"

"मनुष्य ने प्रकृति में अपना रूप ढालने का प्रयत्न किया है, यहाँ तक कि अपने अनुभव को ही नही उसने अपने सहज ज्ञान तक को प्रकृति मे रचाने की परपरा को जन्म दिया है। अब तो यह परपरा बहुत पुरानी हो गई। प्रत्येक देश की कविता में इसके उदाहरण मिलते हैं, जैसे प्रकृति भी मनुष्य के समान सोचती हो, जैसे वह कभी मनुष्य पर खुश हो जाती हो, और कभी उससे बदला लेने की बात सोचती हो, पर देखना तो यह है कि यह दृष्टिकोण कहाँ तक ठीक है।"

नीलकठ ने अपनी ही बात छेड़ दी, "मै और बसी जुडवाँ भाई है।" यह कह-कर वह हँस पडा।

बसी ने हँसकर कहा, "हमारा विश्वास है कि यह बात ब्रह्मपुत्र भी जानता है!"

नीरद बोला, "अब कहो, लिली! यदि तुम्हारी बात ठीक है, तो ब्रह्मपुत्र कैसे जानता कि बंसी और नीलकंठ जुड़वाँ भाई है?" वह लिली की आँखो में झाँकने लगा।

"सुना है नारायण दारोगा माझुली मे बहुत अत्याचार कर रहा है, नीरद बाबू!" नीलकंठ ने प्रसंग बदलकर कहा, "कुछ देवकात बाबू का भी पता है?"

"नया दारोगा गोपीनाथ दिसाँगमुख मे कौन-सा कम अत्याचार कर रहा है?" बंसी ने गंभीर होकर कहा, "पहले नारायण दारोगा, चित्ताप्रसाद और विष्णुराम का गुट था, अब इस गुट मे नारायण के स्थान पर गोपीनाथ आ गया। तीनों ने धाँधली मचा रखी है। बेगार के मामले मे तीनो एक हो जाते है।"

लिली बोली, "क्या हमारा विष्णुराम भी लोगो पर अत्याचार करता है? चित्ताप्रसाद के सबध में भी मैने कभी नही सोचा था कि वह खराब आदमी है।"

नीलकंठ ने क्रोध से थूकते हुए कहा, "चित्ताप्रसाद को ढका ही रहने दीजिए। उसका 'अंडी-मूगा सहकारी संस्थान' किस प्रकार बना, यह तो दिसाँगमुख में सभी जानते है।"

"सभी जानते हैं तो देवकांत की माँ क्यो नहीं जानती ?" नीरद ने आश्चर्य-पूर्वक पूछा, "वह क्यों चित्ताप्रसाद की प्रशंसा करती है ? पिछले वर्ष जब वह बीमार थी तो चित्ताप्रसाद उसे पेशगी अलग भिजवाता था और दवा-दारू मुफ्त रही।"

"एक पर दया दिखाकर चित्ताप्रसाद सौ पर जुल्म ढाता है।" नीलकंठ को और भी क्रोध आ गया, "यही तो उसकी चालाकी है। उसने पहले लोगों से कहा कि थोड़े-थोड़े रुपए दो, सबका इस सस्थान में भाग होगा और लाभ सबमें बाँटा जाएगा। जिन लोगों ने रुपए दिए, पीछे उन्हें वैसे ही टरका दिया गया; वे तो यही कहेगे कि चित्ताप्रसाद ने ठगी का खेल रचाया है।"

बंसी बोला, "देवकात ही एक दिन चित्ताप्रसाद का खेल बंद कराएगा।"

लिली कुछ न बोली। वह ब्रह्मपुत्र की विशाल जलधारा को देखती रही। ठंडी हवा चल रही थी। नीरद ने प्रसग बदलकर कहा, "अब वसंत आएगा, फूल खिलेगे।"

लिली मुसकराई, "किसी भी देश की कविता को उठाकर देख लो, फूलों की प्रशसा जरूर मिलेगी।"

"कविता में कवि फूलों से बाते करता है।" नीरद ने गभीर होकर कहा, "पर यदि तुम्हारी बात सत्य है कि प्रकृति एक अंधी और बहरी शक्ति है, तो मैं पूछता हूँ कि कवि फूलो से कैसे बातें करता है ?"

अभी सूर्य सिर पर नही आया था। नाव चली जा रही थी। नीलकंठ और बंसी प्रसन्न थे। कभी उनके सिर पर से कोई पक्षी गुजर जाता, कभी कोई मछली उचककर अपनी मुखाकृति दिखाती और फिर डुबकी लगा जाती।

नीरद बोला, "जब वसत आता है तो सब वृक्षो पर एक साथ क्यों नही आता ? किसी पर पहले आता है, किसी पर बहुत पीछे।"

"यही तो प्रकृति का खेल है।" लिली ने तेज़ी से गरदन घुमाकर सुनहरे घूंघरो को झटक दिया।

"यदि प्रकृति एक अधी और बहरी शक्ति है, तो पहले तो यही समझ में नही आता कि फूल कैसे खिलते है और फिर यदि फूल खिलते भी है तो एक साथ क्यों नही खिलते ? ऐसा क्यो होता है कि किसी वृक्ष में वसत की उमंग पहले जाग उठे और किसी बावरे को ऋतुराज की पदचाप तक सुनाई न दे सके !" नीरद ने मुसकराकर लिली की तरफ़ देखा।

लिली आज बहुत प्रसन्न थी। उसने गंभीर होकर कहा, "यह बात तो तुमने

एक बार कलकत्ता में भी कही थी, जिस रोज हम बुटेनिकल गार्डन देखने गए थे। देवकात भी था हमारे साथ। देवकांत ने तुम्हें जो जवाब दिया था, मुझे वह भी याद है।"

"देवकांत ने क्या जवाब दिया था?" नीरद ने पानी में हाथ डालकर बालक के समान खेलते हुए कहा, "देवकांत ने कहा था कि जैसे वसत में कोई पेड़ पहले खिल जाता है और कोई बहुत पीछे, इसी तरह कोई देश संसार की प्रगति में पहले कदम बढ़ाता है कोई पीछे।"

लिली मुसकराई और फिर उसने प्रसंग बदलकर कहा, "वह तुम्हारा अतुल क्या कर रहा है?"

"वह क्या करेगा?" नीरद ने हँसकर कहा, "उसका विवाह हो गया। एक दिन मिला था तो गोपीनाथ दारोगा की शिकायत करने लगा कि वह तो नारायण से भी अधिक अत्याचार कर रहा है। जब तक कोई काम करने के लिए आगे न आए, बात नही बनती। आगे आने के लिए प्राणो की बाजी लगानी पड़ती है।"

लिली गंभीर होकर बोली, "कभी-कभी तुम्हारे मुँह से देवकांत बोलने लगता है। बात तो वसंत की चल रही थी।"

नीलकंठ ने जोर से चप्पू चलाते हुए कहा, "जंगल में तो वसंत झूमता-झामता आता है। हर पेड़ के कान में कहता है—श्रीमान्‌जी, जागो, मैं आ गया!···अब कोई पेड़ वसंत की बात पर कान न धरे, तो क्या करे वसंत बेचारा?"

बंसी बोला, "सब पेडो को तो वसंत आदेश नही दे सकता कि अभी खिल जाओ। कोई पेड़ भरे फागुन में खिलता है, तो किसी पर चैत में भी फूल नहीं खिलते। कई पेड़ वैशाख में भी खिलने का नाम नही लेते, जेठ मे जाकर कही उन पर फूल खिलने का नशा सवार होता है।"

"वसंत में आती है वसंत अष्टमी।" नीलकंठ ने प्रसंग बदला, "ब्रह्मपुत्र में पुण्य-स्नान करके उसी दिन पाप क्षमा कराए जाते है।"

"नीलकंठ, तुमने तो कोई पाप नही किया होगा?" लिली मुसकराई, "तुम्हें पाप धुलाने की क्यो चिंता लगी है?"

बंसी ने हँसकर कहा, "पाप धुलाने की चिंता तो गोपीनाथ दारोगा, चित्ता-प्रसाद और विष्णुराम को होनी चाहिए।"

नीरद बोला, "देवकात की बात ठीक मालूम होती है। जैसे वसंत सब पर आता है—किसी पर आगे, किसी पर पीछे, वैसे ही हर गाँव जागता है—कोई आगे, कोई पीछे।"

लिली ने हँसकर कहा, "चला हुआ कारतूस दोबारा नहीं चला करता। तुम्हारी पुस्तक कहाँ तक पहुँची? क्या तुम यह पुस्तक ब्रह्मपुत्र जितनी ही लंबी

लिखना चाहते हो ?" यह कहकर लिली देर तक हँसती रही। फिर वह सँभलकर बोली, "नीलकंठ, अब नाव को वापस दिसाँगमुख ले चलो।"

चौंतीस

चाँदनी रात में नौका-विहार का इतना आनंद लिली को पहले कभी नही आया था। नीरद उसे स्टीमर तक पहुंचाकर चला गया था। उसे रह-रहकर यह बात खटक रही थी कि आज उसने नीरद से यह क्यो कह दिया था—कभी-कभी तुम्हारे मुँह से देवकांत बोलने लगता है !···फिर नीलकठ के शब्द उसकी कल्पना को छू गए—सुना है नारायण दारोगा माझुली मे बहुत अत्याचार कर रहा है ! वह सोचने लगी, नीलकठ ने नीरद से यह भी तो कहा था आज—कुछ देवकात बाबू का भी पता है ? और फिर बंसी के मुँह से निकले हुए शब्द उसकी चेतना को कुरेदने लगे—नया दारोगा गोपीनाथ दिसाँगमुख में कौन-सा कम अत्याचार कर रहा है ?···

स्टीमर मे अपने कमरे की खिड़की से लिली ब्रह्मपुत्र को देखती रही, जो चाँदनी की झीनी चादर ओढ़े ध्यान-मग्न प्रतीत हो रहा था। उसके मन मे कई तरह के भाव उठ रहे थे। मन-ही-मन उसने फ़ैसला किया, आज मै अपने डैडी से साफ-साफ़ शब्दो में कह दूंगी—डंडे के बल पर हम यहाँ बिलकुल नही रह सकते !

उसकी कल्पना मे देवकांत का चेहरा घूम गया, जैसे देवकांत कह रहा हो—मै तुम्हारे डंडे की उपज हूँ; हिंसा मे मेरा विश्वास स्वय तुम लोगो के अत्याचार ने ही दृढ़ किया; और अब मेरे सामने मेरा रास्ता है, जिस पर चलने से मुझे कोई नही रोक सकता !

खिड़की से हटकर वह विशालकाय दर्पण के सामने खडी हो गई और देर तक केश सँवारती रही। पीछे से एकाएक मम्मी का चेहरा दर्पण में मुसकरा उठा।

"कहाँ तक हो आए ?" मम्मी ने आगे आकर पूछा, "नीरद को डिनर के लिए क्यो न रोका ?"

"उसे घर जाने की जल्दी थी, मम्मी !" लिली ने गंभीर होकर कहा, "घर जाकर वह अपनी पुस्तक लिखने बैठ जाएगा।"

"कब पूरी होगी उसकी पुस्तक ?" मम्मी की आँखें चमक उठी, "उससे कहो, हमारी भाषा में भी इसका अनुवाद अवश्य छपवाए।"

"पहले लिखी तो जाए बेचारे की पुस्तक, मम्मी !" लिली खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर ज़रा सँभलकर बोली, "मैं सोचती हूँ, उसकी पुस्तक कभी पूरी

नही होगी।"

"यह तो मत कहो, लिली ! नीरद बडा मेहनती आदमी है। वह ब्रह्मपुत्र पर ऐसी पुस्तक लिखने जा रहा है, जैसी दुनिया की किसी भी भाषा मे किसी दूसरे दरिया पर नही लिखी गई। यह बात मैं तुम्हारे डैडी से भी कह चुकी हूँ। ब्रह्मपुत्र बहुत बडा दरिया है। ब्रह्मपुत्र पर बड़ी पुस्तक लिखने का नीरद का संकल्प मुझे तो दिल-जान से प्यारा लगता है, लिली !"

"कही तुम पर नीरद ने जादू तो नही कर दिया, मम्मी ?" लिली प्रसन्न मुद्रा मे बोली, "असम का पुराना नाम है कामरूप, और मम्मी, कामरूप का जादू तो प्रसिद्ध रहा है।"

बडे ध्यान से लिली ने दर्पण में यह देखने की चेष्टा की कि जब वह हँसती है तो कही उसका चेहरा बिगड़ तो नही जाता। उसे याद था कि कॉलेज में किस प्रकार बहुत-सी हँसोड लडकियों का चेहरा हँसते समय बुरी तरह बिगड जाता था।

"अच्छा तो तुम बाल सँवार लो !" यह कहते हुए मम्मी अपने कमरे की ओर चली गई।

दर्पण के सामने खड़े-खड़े लिली गुनगुनाने लगी; किसी असमिया गीत की धुन थी। जैसे स्वय ब्रह्मपुत्र इस धुन में अपने बोल सुना रहा हो। उसे लगा कि ब्रह्मपुत्र ससार के मानचित्र पर एक महान् नद है।

मन-ही-मन वह सोचने लगी—जब पहले-पहल तिब्बत में मानसरोवर झील से चल पडी होगी ब्रह्मपुत्र की जलधारा, तो उसने कब सोचा होगा कि उसके सामने इतनी लंबी मज़िल है ? फिर वह सोचने लगी कि नीरद ने भी यह बात नही सोची होगी कि उसकी पुस्तक इतनी लबी होती जाएगी। केशो में कघी करते-करते वह सोचने लगी कि सचमुच नीरद ने अपनी पुस्तक मे ब्रह्मपुत्र की आत्म-कथा प्रस्तुत करने का निर्णय कर रखा है। समय-समय पर वह नीरद के मुख से उसकी पुस्तक के कुछ प्रसंग सुन चुकी थी। वास्तव में कही-कही नीरद ने अपनी पुस्तक में ब्रह्मपुत्र के मुख से बडी पते की बातें कहलवाई हैं—'जिस शिला को मै हिला नहीं सकता, उसे मै बारंबार नमस्कार करता हूँ !'···'ब्रह्मपुत्र जानता है कि चप्पू कितना गहरा जाता है !' ···'कथा कहने से कथा बढ़ती है; तीली फेरने से कान का छेद बढ़ता है; माँ के घर में कन्या बढ़ती है; पठार में धान बढ़ता है; बाढ़ में बढ़ता हूँ मैं; मेरा नाम है ब्रह्मपुत्र !' ···'छोटे-छोटे घर बनाओ, जितने चाहो बनाओ; मुझसे डरो, मेरा नाम है ब्रह्मपुत्र !'···'हाथी जिस हिसाब से लादा जाता है, उसी हिसाब से खाता है; जिस हिसाब से वर्षा होती है, उसी हिसाब से मै फैलता हूँ; फिर भी लोग मुझे गाली नही दे सकते, क्योकि मेरा नाम है ब्रह्मपुत्र !' ···'नरो में लघु है वह, जिसका समाज में सम्मान नही; खाते-पीते जनों मे लघु है वह, जिसके भराल में धान नही; नावरियो में लघु है वह, जो मेरी विशाल जल-

धारा पर नाव खेते डरता है; मैं हूँ साक्षात् ब्रह्मा—ब्रह्मपुत्र !'···'धन पाने के लोभ मे धोबी स्त्रियों की मेखला भी धोता है; आगे-ही-आगे बढ़कर सागर से जा मिलने की साध मे मैं इंद्र देवता से कहता हूँ—और बरसो, और बरसो !' ···ऐसी-ऐसी असंख्य सूक्तियाँ नीरद की पुस्तक की पांडुलिपि में हीरे-मोतियों की तरह जड़ी हुई है—यह बात लिली की कल्पना को गुदगुदा रही थी।

कंघी करते-करते उसका हाथ कही अटक नही रहा था। उस गीत के बोल वह फिर गुनगुनाने लगी। वही ब्रह्मपुत्र का गीत, जिसके उत्तर में ही शायद नीरद ने अपनी पुस्तक में लिखा था—'तुम्हारे किनारे मेरा घर है, जैसा चाहो, मेरे साथ व्यवहार करो !' वह सोचने लगी—नीरद बाबू ने अपनी पुस्तक में एक स्थल पर यह भी तो लिखा है—'धरती पर राजा राज्य करता है, और आकाश पर है इंद्र देवता का राज्य, जिसके संकेत पर ब्रह्मपुत्र प्रवाहित होता है, मस्त हाथी की चाल से !' ···यह विचार सचमुच हँसानेवाला था, मस्त हाथी की चाल से ब्रह्मपुत्र की तुलना उसके अँग्रेज मस्तिष्क को कुरेदने लगी। एशिया के लोग यहीं तो यूरोपवालो से अलग हो जाते है, वह सोचने लगी; यही ये लोग कल्पना की भूलभुलैयो में खो जाते है !

फिर उसने ग्रामोफोन खोलकर सातवीं सिंफनी का रिकार्ड लगा दिया। अब खिलखिलाकर हँसने का कोई प्रश्न नही उठ सकता था। यह सिंफनी तो ब्रह्मपुत्र जितनी गहरी है—वह सोचने लगी— यह सिंफनी मुझे बचपन से ही प्रिय है; नीरद ब्रह्मपुत्र पर पुस्तक लिखता है, तो झख मारता है; उससे कही अच्छा तो यह है कि सातवी सिफनी का रिकार्ड बजाया जाए; नीरद की पुस्तक कौन पढ़ेगा ?··· स्टीमर पर बीथोविन की सातवी सिफनी बज रही थी; नीचे शत-बाहु ब्रह्मपुत्र धीरे-धीरे गभीर गति से बह रहा था।

सहसा लिली के मन मे यह विचार उठा—मैं एक अँग्रेज की लडकी हूँ, तो क्या हुआ, मैं असम देश की सेवा करूँगी। मैं अँग्रेजी 'मेडिसन' द्वारा इस देश के रोगियो की सेवा करूँगी। धन्य है यह देश, जहाँ मेरा जन्म हुआ; धन्य है ब्रह्मपुत्र, जो ससार के 'मैप' पर अद्वितीय है !···

फिर छप्प का शब्द हुआ, जैसे पास ही कही कच्चा कगार टूटकर ब्रह्मपुत्र में समा गया। लिली अन्यमनस्क-सी सोचने लगी—डंडे के बल पर हम यहाँ बिलकुल नही रह सकते !···

पैंतीस

वसंत अष्टमी के दिन सबका मुँह ब्रह्मपुत्र की ओर था। अतुल और राखाल काका आज मिलकर ब्रह्मपुत्र में स्नान कर रहे थे। आज तो दिसाँगमुख के सभी लोग मल-मलकर ब्रह्मपुत्र में नहा रहे थे। हर किसी को अपने पाप क्षमा कराने की चिंता सता रही थी; नीलकंठ और बंसी भी क्यों पीछे रहते? आज तो शिवसागर-निवासी भी यहाँ स्नान करने आए थे। इतनी भीड़ तो यहाँ किसी भी मेले पर नहीं होती थी।

"वह कथा तो तुमने भी सुनी होगी?" नहाते-नहाते राखाल काका ने कहा।

"कौन-सी?" अतुल मुसकराया।

"वही कुत्ते की जन्म-कथा।"

अतुल को यह बात विचित्र-सी लगी—हम ब्रह्मपुत्र मे स्नान कर रहे हैं, और इस शुभ अवसर पर काका को कुत्ते की जन्म-कथा सूझ रही है! उसे मौन देखकर काका ने कहा, "क्यो, नही सुनोगे?"

"अच्छा, सुना डालो, काका!" अतुल ने अनमने भाव से कहा।

काका ने कहना आरभ किया, "जब ब्रह्मा ने कुत्ते की रचना की, तो उससे कहा—धरती पर जाओ और अपने लिए स्वामी चुन लो, और···"

"और कुत्ते ने आकर झट आदमी को अपना स्वामी चुन लिया।" अतुल को हँसी आ गई, "काका, यह किधर की कथा है?"

"सुनो तो!" काका कहता चला गया, "धरती पर आकर कुत्ते ने सबसे पहले हाथी को अपना स्वामी बनाना चाहा, और हाथी ने···"

"हाथी ने इनकार कर दिया।" अतुल ने टोककर कहा, "तुम तो तीस वर्ष हाथियो के बीच रह आए हो, काका! तुमने किसी हाथी से ही पूछ लिया होता कि उसके पुरखों ने कुत्ते का स्वामी बनने से क्यों इनकार कर दिया था?"

"सुनो तो। हाथी समझ गया, उसका विशाल शरीर देखकर ही तो कुत्ता उसे अपना स्वामी बनाने जा रहा है। उसने सोचा कि इनकार कर दे, पर वह चुप रहा। कुत्ते ने समझा, ठीक है, हाथी राजी हो गया। रात हुई, तो कुत्ते ने बड़े वेग से चलती हुई हवा में हिलते पत्तों की आवाज़ सुनकर भूँकना आरंभ कर दिया, और ··"

"और हाथी डर गया।" अतुल ने हँसकर कहा, "पर हाथी क्यो डर गया था, काका?"

"हाथी ने कुत्ते को बता दिया—भूँकना तो ठीक नहीं, जंगल में बाघ तुम्हारी आवाज़ सुन लेगा, तो आकर तुम्हें मार डालेगा। कुत्ता समझा—इस हिसाब से

तो बाघ हाथी से भी बलवान् है, क्यों न फिर बाघ को ही अपना स्वामी बनाया जाए ? वह झट बाघ के पास पहुँचा…"

"बाघ ने क्या कहा ?"

"बाघ ने कहा—तुम मुझे अपना स्वामी मानते हो, तो मै तुम्हारा स्वामी हूँ। रात हुई, तो तेज हवा में हिलते-डोलते पत्ते शोर मचाने लगे। कुत्ता भूँकने लगा। बाघ ने कहा—पास ही शिकारी ताक में होगा; वह आकर तुम्हें मार डालेगा। कुत्ता सोचने लगा—इस हिसाब से तो शिकारी ही अधिक बलवान हुआ !"

"फिर क्या हुआ ?"

"कुत्ते ने शिकारी को अपना स्वामी बना लिया।

"शिकारी ने कुत्ते की बात मान ली। रात को हवा चलती, तो कुत्ता अपने स्वभाववश भूँकना आरंभ कर देता और शिकारी प्रसन्न होकर उसकी पीठ प्यार से थपथपाने लगता। तब से कुत्ता आदमी के पास रहने का अभ्यस्त हो गया।"

ब्रह्मपुत्र मे स्नान करनेवालो का कोलाहल पहले से बढ़ गया था। दूर से नीलमणि भागता हुआ आया। उसका साँस चढ़ा हुआ था। वह बहुत प्रसन्न दीखता था। राखाल ने कहा, "क्या समाचार है नीलमणि ? आज तो तुम भी स्नान कर लो। अपने पाप तुम भी क्षमा करा लो।"

"मेरे पाप तो पहले ही क्षमा कर दिए ब्रह्मपुत्र बाबा ने, दादा !" नीलमणि मुसकराया।

"वह कैसे ?"

"बस समझ जाओ, दादा !"

"कुछ कहोगे भी ?"

"जूनतारा के पुत्र हुआ है। हमारी वंशबेल में एक फूल खिल गया।"

"अच्छा तो जल्दी करो। वस्त्र उतारो, पहले स्नान कर लो।"

अतुल ने देखा—काका इस समाचार से बहुत प्रसन्न हैं। वह अपने असीम आह्लाद को मन में दबाए स्नान करता रहा।

"यह तो संसार है, दादा !" नीलमणि ने ब्रह्मपुत्र मे उतरते हुए कहा, "कोई प्रसन्न है, कोई उदास। किसी के लिए शुभ समाचार आता है, किसी के लिए दुख की सूचना। इस विशाल संसार में मनुष्य अपना छोटा-सा संसार बसाकर रहता है।"

"जल्दी-जल्दी स्नान कर लो।" राखाल ने गंभीर होकर कहा, "यह ज्ञान फिर बघारना।"

राखाल दोनों हाथों से पानी उछाल रहा था, जैसे हाथी अपनी सूँड से पानी उछालता है। अतुल ने देखा—काका आज उतना ही प्रसन्न है, जितना उस समय था, जब वह चाँदडूबी से लौटने के पश्चात् धर्मानंदी और आरती के थाने से छूट-

कर आने पर प्रसन्न हुआ था।

"आज तो हमारे घर चलना होगा, दादा!" नीलमणि ने आग्रहपूर्वक कहा।

"अवश्य।" राखाल मुसकराया और उसी तरह दोनों हाथों से पानी उछालता रहा।

अतुल की कल्पना में वे दिन घूम गए, जब मखना राखाल काका को 'हाथी काका' कहा करता था। काका हाथी ही तो था। तीस वर्ष तक हाथियों में रहने के कारण काका हाथी जितना सयाना हो गया था। बैठने-उठने और चलने-फिरने के रग-ढंग में ही नहीं, दोनो हाथो से पानी उछालकर हाथी की सूंड से पानी उछालने के अनुकरण में भी काका पूरा हाथी बन गया था।

दूर से एक कुत्ता भागता हुआ आ रहा था।

पास आकर यह कुत्ता बड़े ध्यान से काका की ओर देखने लगा। अतुल ने हँसकर कहा, "यह आ गया तुम्हारी कथा का नायक, काका! इससे पूछ देखो, अपना स्वामी चुनने मे इससे भूल तो नहीं हुई?"

चतुर्दिक् स्नान करनेवालो का शोर था; ब्रह्मपुत्र मुसकरा रहा था, जैसे कह रहा हो—मुझसे कोई भयभीत न हो, मै तो देवता हूँ—साक्षात् ब्रह्मा!

छत्तीस

सात दिन से वर्षा का यही हाल था। आज फिर मूसलाधार वर्षा हो रही थी। वर्षा की परवाह न करते हुए रत्न अपनी दुकान से धनसिंह की दुकान में आ गया।

"इस वर्ष दिसाँगमुख का बचना कठिन है।" धनसिंह ने भर्राई हुई आवाज में कहा।

"तुम तो व्यर्थ ही घबरा गए!" रत्न ने उस्तरा तेज करने के ढंग से एक हाथ की उँगली दूसरे हाथ की हथेली पर चलाते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र का पानी चढ़ सकता है, तो उतर भी सकता है।"

"पिछले दस दिन में दो फीट पानी चढ़ गया, अभी तक उतरने का नाम नही लिया।"

"यह तो ठीक है, पर घबराओ नही। ब्रह्मपुत्र का कोप तो हम बचपन से ही देखते आए है।"

"हमारा घर ही चितालिया में पहले डूबेगा; अब वहाँ से ब्रह्मपुत्र दूर नही।"

"ब्रह्मपुत्र से इतना ही भय था, तो चितालियावाला घर बेचकर आलीसीगा में

घर क्यों नहीं बना लिया ? इसके दो लाभ होते—एक तो दुकान के समीप होता, दूसरे आलीसीगा तक पहुँचने में ब्रह्मपुत्र को बहुत समय लगेगा।"

"इस वर्ष सारा चितालिया ब्रह्मपुत्र की भेट होकर रहेगा।"

"तो इतनी क्या चिंता है, धनसिंह भाई ! सबके घर डूबेगे, तो तुम्हारा भी सही। तुमने बहुत पैसे बना लिए। बहुत आमदनी होती है, तो खर्च भी होना चाहिए।"

"लगता है ब्रह्मपुत्र ने इधर को करवट ले ली। पहले तो पानी की धार काफ़ी उधर को थी।"

"मेरी मानो तो अभी से अपना घर खाली करके सब सामान इधर ले आओ। इधर नया घर बना लो।

"छू-मंतर से तो घर बनने से रहा।"

धनसिंह और रत्न में ये बाते चल ही रही थी कि कल्याण भगत आ गए। वह वर्षा में बिलकुल भीग गए थे। "अब भी समय है कि लोग हरिनाम की चादर ओढ़ने का विचार ठान ले।" भगतजी ने भीगी हुई चादर एक तरफ़ रखते हुए कहा।

रत्न बोला, "हरिनाम जपने से क्या ब्रह्मपुत्र उतर जाएगा, भगतजी ?"

धनसिंह ने चाय का गिलास भगतजी के हाथ मे थमाते हुए कहा, "चाय पीकर थोड़ा गरम हो लो, भगतजी ! बात तो रत्न की ठीक है। अब मीरी लोग साल में दो बार दबूर-पूजा करते हैं, और सभी जानते है कि दबूर-पूजा तो असल में हमारी इंद्र-पूजा ही है। इंद्र भगवान् से यही प्रार्थना की जाती है न कि वह अपने घडो को तनिक कम ही टूटने दें। वर्ष की दूसरी दबूर-पूजा को अभी बहुत दिन भी नही हुए और वर्षा का जो हाल है, सबके सामने है। वर्षा होती रहेगी, तो ब्रह्मपुत्र और भी चढ़ेगा।"

भगतजी चाय का घूंट भरकर बोले, "सब अपने कर्मों का फल है। लोगो के विचार ठीक नही रहे। वैष्णव धर्म स्वीकार करने मे लोग आगे नही आ रहे, तो भगवान् को क्यों दोष देते है ?"

"छोडिए भगतजी, ये बातें तो पुरानी हो गईं।" रत्न ने हँसकर कहा, "घूंसा मारने से केला नही पकता। जिस शिला को आदमी हिला नही सकता, उसे नमस्कार करने बैठ जाता है !"

भगतजी अपनी ही हाँकते चले गए, "हरि मारे, तो रक्षा कौन करेगा ? और हरि रक्षा करेगा, तो मारेगा कौन ? वह किसी ने कहा है न—मृत्युकाल आ पहुँचने पर हरिनाम ! उससे तो बात नही बनती। हरि से तो सदा यही कहना चाहिए—तुम्हारी माटी पर ही मेरा घर है। निर्धन लंका में भी क्यों न चला जाए, उसके कंधो से बोझ नही उतरता। पर सबसे बड़ी बात तो पापों की गठरी उतारना है;

फिर हरि की कृपा होते देर नही लगती ।"

"धनसिंह पर आपका प्रभाव नही पड सकता, भगतजी !" रत्न ने हँसी की फुलझड़ी छोड़ी, "धनसिंह का तो एक ही सिद्धांत है—जो तुम्हारा है, वह मेरा है, और जो मेरा है उसे तुम्हारा बाप भी मुझसे नही ले सकता ।"

भगतजी बोले, "जब तक मनुष्य ससार मे है, वह मोह-माया से छूट नहीं सकता । सयाने कह गए है—ताबूल के पेड़ की जड़ मे गोबर डालो, बाँस की जड़ में मिट्टी डालो, और उस नारियल की जड़ तुरंत काट डालो, जो फल न दे ! जिस प्रकार नारियल को फल लगता है, उसी प्रकार मनुष्य को भक्ति का फल लगना चाहिए । कभी हमारे साथ आउनियाटी सत्र की यात्रा करो, तो जीवन सफल हो जाए !"

रत्न ने हँसकर कहा, "तो फिर क्या ब्रह्मपुत्र मे पानी चढ़ना बंद हो जाएगा, भगतजी ? धनसिह की तो एक ही शर्त है । अपने हरि से कहकर इस वर्ष चितालिया बस्ती को बचा दीजिए, फिर तो चितालिया के सारे नेपाली वैष्णव बन जाएँगे ।"

भगतजी गभीर होकर बोले, "अब तक चितालिया को ब्रह्मपुत्र काटकर नही ले गया तो यह किसकी कृपा है ?"

इतने में वर्षा मे भीगते हुए राखाल काका और अतुल आ पहुँचे ।

"अरे अतुल, तुमने बताया ही नही कि तुम्हारे लड़का हुआ है !" धनसिह ने हँसकर कहा, "यह बात इसलिए तो नही छिपा गए कि कही लड्डू न खिलाने पड जाएँ !"

राखाल ने प्रसंग बदलकर कहा, "ब्रह्मपुत्र बहुत विकराल हो उठा है आज !"

"यह कोई नई बात तो नही है, काका !" रत्न ने गभीर मुद्रा बना ली, "नदी किनारे के वृक्ष की जो स्थिति होती है, उसी स्थिति मे रहते आए है हम दिसाँगमुख-निवासी ! ब्रह्मपुत्र हमारा देवता है, भले ही वह विकराल नजर आए, भले ही शात-गभीर !"

धनसिह और अतुल कानाफूसी में खो गए । राखाल को मूक देखकर रत्न ने कहा, "ऊपर इंद्र देवता के घड़े टूट रहे है, नीचे ब्रह्मपुत्र अति भीषण और अति प्रचंड हो उठा है । इस स्थिति में कौन है हमारा रक्षक ?" यो ही रत्न ने अपनी बात खत्म की, वर्षा का वेग और भी बढ़ गया, जैसे इद्र देवता और ब्रह्मपुत्र में समझौता हो गया हो ।

पानी तिरछा पड़ने लगा था, एक ही बौछार में सब भीग गए । मुट्ठी पर ठोड़ी टेके अतुल बोला, "देवकांत माझुली मे भीग रहा होगा ।"

सैंतीस

एक ओर आउनियाटी सत्र था, दूसरी ओर था यह गाँव, जिसके संबंध में कुछ लोग कहते थे कि यह आउनियाटी सत्र बनने के बाद आबाद हुआ था। स्वयं इस गाँव के लोगों का विचार था कि यह तो आउनियाटी सत्र बनने से बहुत पहले बसा होगा, और इसीसे इस सत्र को भी यह नाम मिला होगा।

थाने के बागीचे मे नारायण कुरसी पर बैठा था। उसके हाथ में एक पुस्तक थी। पासवाली कुरसी पर अखबार पडा था। दूर बादलो के पीछे सूर्य अस्त हो रहा था। बादलों के नीचे से जैसे अब तक कोई लाल गुलाल उछाल रहा था। फिर यह लाल रग बैजनी बन गया, बैजनी रंग नारायण को बहुत प्रिय था, पर आज यह रग भी उसे देर तक अपनी ओर आकर्षित न कर सका।

जब से वह दिसाँगमुख से बदलकर यहाँ आया था, उसकी सबसे बडी चेष्टा यही रही थी कि किसी प्रकार देवकात हाथ आ जाए। यद्यपि उसने कोई कसर न उठा रखी थी, फिर भी शिकार अब तक हाथ न आया था। यह पहला अवसर था कि उसे मुँह की खानी पडी। वैसे अब तक तो पुलिस विभाग में वह चील के घोसले से भी मास ढूँढ़ लाने मे गुरु माना जाता था।

सूर्य अस्त होने के साथ-साथ जैसे नारायण का सब साहस भी जवाब दे रहा था, पर वह अब भी सोच रहा था—देवकांत आज नही, तो कल अवश्य हाथ आकर रहेगा। वह भागकर कहाँ जाएगा! माझुली तो यही बीस-एक मील लंबी है, पाँच-एक मील चौडी होगी। इतनी बडी भी तो नही है माझुली। अँग्रेज तो माझुली से कही बड़े पूरे असम का मालिक है। असम का ही नही, अँग्रेज तो बंगाल का भी मालिक है। बंबई, मद्रास और बिहार, यू० पी०, पंजाब और फ्रंटियर—सर्वत्र अँग्रेज का झडा फहराता है। माझुली से भी भाग जाए देवकात, तो वह जहाँ भी जाएगा, वही पकडा जाएगा। यहाँ माझुली में जगल तो उतना नही है, कही-कही जगल घास अवश्य दूर-दूर तक चली गई है—हाथी से भी ऊँची घास। इसी हाथी घास ने तो अब तक वर्षा और बाढ़ में भी देवकात की रक्षा की है।···

आज के अखबार की खबरें नारायण को पसंद थी। सबसे आकर्षक खबर तो उसी बम-केस की थी, जो अब कलकत्ता की अदालत में चल रहा था। उसी मुकदमे का एक मुलजिम था देवकात, जो अब तक हाथ नही आया था। पहले हत्या करते हैं, फिर भागते फिरते हैं। चले हैं हिंदुस्तान को आजाद कराने! इनसे तो महात्मा गाधी फिर भी अच्छे हैं, वह भागते तो नहीं। जब भी अँग्रेज उन्हें पकड़ता है, वह खुशी से जेल चले जाते हैं।···

उसका बडा लडका कलकत्ता में वकालत पढ़ रहा था; उससे छोटी लड़की

का विवाह उसने जिस धूम-धाम से किया था, उसकी तो शिवसागर तक के लोगों ने प्रशसा की थी। छोटा लडका गौहाटी मे पढ रहा था। दो वर्ष पहले उसे गौहाटी के कॉलेज में प्रविष्ट कराया था। पढने में तो वह भी निपुण था। वह वकालत करने की अपेक्षा इजीनियर बनना पसंद करता था। यह तो अच्छा होगा। एक भाई वकील बनेगा, एक इजीनियर !···

नारायण का अपना विचार आरंभ में यही था कि छोटा लड़का पुलिस-अधिकारी बने। फिर यह सोचकर कि इस विभाग में वेतन बहुत कम मिलता है, उसने यह विचार छोड़ दिया था। हमने तो किसी-न-किसी प्रकार अपना काम चला लिया। जो लोग पुलिस को 'घूस-विभाग' कहकर हमारे विरुद्ध विष घोलते है, उन्हे यह भी तो नही भूल जाना चाहिए कि वेतन मे तो हमारा पार नही पड़ सकता। हमारे स्थान पर कोई भी हो, ऊपर की आमदनी के बिना तो गुजारा कर ही नही सकता। हमारी कौन-सी खेती होती है ? लोग हमें बेगार के लिए कोसते है, पर हम पूछते है—बेगार न ले, तो हम काम कैसे चलाएँ ? जैसी हवा आजकल चल रही है; यदि लोगों को खुली छूट दे दी जाए, तो लोग तो थाने को धर्मशाला बना दें ! पुलिस दारोगा गरदन ऊँची करके न घूम सके। ··

काग्रेस की चलाई हुई हवा पर उसे क्रोध आने लगा। जेल जानेवालो पर उसे हँसी आ रही थी। यह भी कोई काम है। एक साधारण-सा व्याख्यान दिया और चल पडे जेल का भात खाने ! इस प्रकार भी भला कभी देश आजाद हुआ है ? व्याख्यान में खादी और चरखे की ही बात करें ये लोग, तो कदाचित् हम भी इन्हें हाथ न लगाएँ। पर वे तो विद्रोह की बातें करते है। यदि ये लोग समझते है कि अँग्रेज कच्ची गोलियाँ खेलकर बड़ा हुआ है, तो यह उनकी भूल है। आनंद करे; जैसा भी इनके मन में आता है करे—घर में रहें, चाहे जेल मे। जेल तो बना ही इन लोगो के लिए है, या फिर चोर-डाकुओं के लिए। अदालत में न्याय किया जाता है, जेल में सजा भुगतनी पडती है। काले पानी भी भेजता है अँग्रेज, तो न्याय की खातिर। फाँसी का दड देता है, तो न्याय के नाम पर। न्याय तो महान् है। न्याय से ही सुख और शाति की स्थापना होती है। सुख और शांति के बिना तो कोई देश प्रगति नही कर सकता। पुलिस इस काम मे अँग्रेज का दायाँ हाथ है। पुलिस के बिना तो अँग्रेज एक कदम नही चल सकता। फिर कोई पुलिस को बुरा कहता है, तो उसकी भूल है। घूस भी बहुत अधिक तो नही चलती पुलिस में। बस उतनी ही माया ली जाती है, जितनी से काम चल जाए। पुरोहित भी तो दक्षिणा लेता है, और यदि कोई चार पैसे हमारे हाथ पर रखता भी है, तो हम आठ पैसे का लिहाज करते हैं। यह तो 'इस हाथ ले, उस हाथ दे' वाली बात है। कानून तो कानून है। अँग्रेज़ का कानून तो भला कैसे बदल सकता है ? जो हमारा लिहाज रखता है, उसके साथ हम भी लिहाज़ बरतते हैं।···

रात उतर आई थी। नारायण कुरसी पर बैठा रहा। देवकात पर हाथ न रख सकने का उसे बहुत खेद था।

यहाँ आउनियाटी में न धनसिह था, न कोई रत्न; न कोई चित्ताप्रसाद या विष्णुराम। उसे दिसाँगमुख की याद सताने लगी।

यह गाँव दिसाँगमुख की अपेक्षा बहुत छोटा था। आउनियाटी सत्र बहुत बड़ा था; पर वहाँ तो भक्त लोग रहते थे। उनसे तो पुलिस को घूस और बेगार मिलने से रही। दिसाँगमुख इसलिए भी अच्छा है कि शिवसागर समीप है। आदमी अधिकारियों की नजर में रहता है, उन्नति के अवसर भी अधिक मिलते है।···

बहुत दिनो से नारायण ने सरकार के सम्मुख यह सुझाव रखा था कि शिकारी गाँव में थाना बनाया जाए, जिससे माझुली के उस छोर पर सहज ही अंकुश रखा जा सके। यह बात वस्तुतः बहुत विचित्र थी कि अब तक सरकार को शिकारी गाँव में थाना बनाने का विचार नही आया था। वह प्रसन्न था कि सरकार ने उसके सुझाव को मान्यता दी और अब एक महीने से शिकारी गाँव में थाना बना दिया था। पिछले सप्ताह ही सरकार की आज्ञा से नारायण शिकारी गाँव का दौरा करके आया था; यह देखकर उसे प्रसन्नता हुई थी कि थाने के लिए चार नई झोपडियाँ सड़क के किनारे बनकर तैयार हो गई थी। उसने एक सभा बुलाकर लोगो को समझाया था, "अपने झगडे निपटाने मे आप लोगो को सुभीता होगा। पहले आपको अपने झगड़े बहुत दूर ले जाने पड़ते थे।"

पर उसका भाषण कुछ लोगो को बहुत पसंद नही आया था। एक अधे किसान ने उठकर कहा था, "मै तो कुछ देख नही सकता, दारोगाजी ! पर मैने सुना है कि जो देख भी सकते है, उन्हे भी फिरगी के राज्य में न्याय नज़र नही आता !"

लोगो ने उस आदमी को चुप करा दिया था, नही तो क्या जानें वह क्या कुछ बक जाता। एकदम मूर्ख और निरक्षर है माझुली के लोग। इसीलिए तो दिसाँगमुखवाले जब किसी को उल्लू बनाते हैं, तो उसे 'माझुली से आया हुआ' बताते है।

शिकारी गाँववालों को यह भी तो ज्ञात था कि उनका थाना आउनियाटी थाने के अधीन है। नारायण दारोगा की पत्नी प्रसन्न थी आज मेरा पति दो थानों का दारोगा है, कल मेरे हाथो के लिए सोने के कंगन भी अवश्य बनेगे।

पहरे पर नियुक्त सिपाही ने आकर कहा, "भोजन तैयार है, दारोगाजी !"

"जाकर कहो, थोड़ा ठहरकर खाएँगे।" नारायण ने अनमने भाव से कहा।

सिपाही ने न जाने क्या सोचकर महाप्रभु की प्रशंसा आरंभ कर दी। आज सवेरे के कीर्तन मे वह भी सम्मिलित हुआ था।

"मुझे तो ऐसा लगता है दारोगाजी कि हमारे पाप भगवान् भी क्षमा नही करेंगे।"

"तो जाकर तुम भी भक्त बन जाओ। हमारे भी मन में यह बात आती है कि

भक्ति करके देखा जाए।"

एक दूसरे सिपाही ने आकर शिकायत की, "दारोगाजी, वह हमारे थाने के पिछवाड़ेवाला मछुआ है न, आज उसने मछली देने से इनकार कर दिया।"

"क्या कहता था वह सूअर?"

"कहता था—जाओ जाकर कह दो जिससे भी कहना हो, मैं मुफ्त मछली नही दूंगा।"

"उसका बाप भी देगा मछली।" नारायण ने झुंझलाकर कहा, "चार जूते खाकर ही सीधा हो जाएगा, उसे छत से उलटा लटकाने की भी आवश्यकता नहीं होगी। सूअर को अभी नारायण के हाथ नही लगे।"

इतने में बाहर से एक सिपाही ने आकर कहा, "शिकारी गाँव का थाना जला दिया गया, सरकार!"

"यह कैसे हो सकता है?" नारायण ने हाथ उछालकर कहा, "कौन लाया है यह ख़बर? किस सूअर ने की है यह बकवास?"

अड़तीस

आउनियाटी सत्र से शिकारी गाँव जाने के लिए महाप्रभु की आज्ञा से सबसे बड़ा हाथी मिल गया। नारायण को आशा तो न थी कि महाप्रभु अपनी सवारी-वाला हाथी भेजकर सरकारी काम में हाथ बटाएँगे। जल्दी का काम था, इसलिए महाप्रभु ने भी सरकार का साथ देना इतना आवश्यक समझा। सरकार भी तो बस चलते आउनियाटी सत्र का ध्यान रखती है। क्या मजाल सत्र-निवासियों को कोई कष्ट होने पाए! कमिश्नर साहब दौरा करते हैं, तो सौ काम छोड़कर आउनियाटी अवश्य आते है; फिर महाप्रभु ने अपनी सवारीवाला हाथी भेजकर सरकार के प्रति अपनी निष्ठा का प्रमाण दिया, तो यह साधारण बात है। इतनी आशा तो सहज ही की जा सकती थी।

सरकार का एक थाना गाँववालों ने जला डाला हो और इस मामले की जाँच-पड़ताल करने का काम सामने हो, तो कोई निरक्षर व्यक्ति भी झट समझ सकता है कि यह कितना आवश्यक कार्य है। आउनियाटी सत्र के अधिकारी तो बहुत विद्वान् हैं। भक्तगण उन्हें प्रभु कहकर संबोधित करते हैं; पहुंचे हुए भक्त उन्हें महाप्रभु कहना ही उचित समझते है। अब मैं भी तो उन्हें महाप्रभु कहता हूँ। उनके सम्मुख जाकर मै भूल जाता हूँ कि मै एक पुलिस दारोगा हूँ। उनके चरणों में बैठ-कर अपने पाप सामने आने लगते हैं।

मन कहता है—नाम तो है नारायण, पर बेटा, सिर पर पापों की गठरी उठा रखी है। इतनी भारी गठरी उठाए यमलोक तक कैसे पहुँचोगे ? यमलोक के द्वार पर तो पूरी जाँच-पडताल होगी। झूठ-मूठ यह तो कहने से रहे कि तुम्हारी गठरी मे पाप नही, पुण्य भरे है। नरक का द्वार ही दिखाया जाएगा, बेटा ! स्वर्ग का द्वार तुम्हारे लिए नही है। वे पुण्यात्मा और होते है, जो स्वर्ग मे ही प्रवेश करते है। पर कोई बात हुई भला कि महाप्रभु की अनुकपा हो जाए और आदमी नरक मे ही प्रवेश करे ? महाप्रभु तो वैष्णवजन है। वह वैष्णवजन ही क्या हुआ जो अपनी शरण मे आए किसी व्यक्ति को वैष्णवजन न बना डाले ? महाप्रभु जब मुसकराकर देखते हैं मेरी ओर, तो लगता है कि मेरे पाप कट रहे है। पर मैने ऐसे पाप भी कौन-से किए है। महाप्रभु से क्या यह बात भूली हुई है कि ड्यूटी तो ड्यूटी है ? सरकारी ड्यूटी मे अपना कर्तव्य पालन भी ऐसे ही है, जैसे कोई भक्त भक्ति करता है। जब तक मुलजिम की पिटाई न की जाए, वह सच्ची बात बताता कब है ? पुलिस तो वैसे ही बदनाम है। हम तो मामूली पिटाई से ही काम चला ले। वैसे ही कोई सच-सच कह दे, तो हम गर्द झाड़ने जितनी पिटाई भी न करे। इन लोगो की यही आदत पड गई है। पिटाई का डर उठ जाए तो ये लोग सब शाति-सुरक्षा भंग कर दे। शांति-सुरक्षा का तो महाप्रभु भी समर्थन करते है। कल को कोई आउनि-याटी सत्र को आग लगा दे, तो क्या महाप्रभु पुलिस मे रिपोर्ट दर्ज नही कराएँगे ? अवश्य कराएँगे। कोई बात हुई भला ? शिकारी गाँववालो को यह क्या सूझी ? क्या इस प्रकार थाना बद हो जाएगा ?

उस दिन उस अंधे ने कितनी मूर्खता की बात कही थी। काठ का उल्लू ही तो प्रतीत हो रहा था ! कहता था—शिकारी गाँव में किसी को भी फिरगी का न्याय नजर नही आता। तो क्या अब इस तरह फिरंगी का न्याय नजर आने लगेगा ? अब नारायण के हाथ लगेंगे, तो बैठा अपने कर्मों को रोएगा ! सरकार का क्रोध अभी तक इन लोगो ने देखा ही नही !···हाथी तेज-तेज़ डग भर रहा था।

महावत ने सड़क छोड़कर हाथी घास की सुरंग मे प्रवेश किया, तो नारायण के मस्तिष्क को झटका-सा लगा और वह महावत से बातें करने लगा।

"माझुली मे दलदलवाले स्थान पर ही उगती है हाथी घास !" नारायण ने टंकार लगाई।

"हाँ, महाराज !" महावत ने पीछे मुडकर देखा।

"हाथी घास नाम भी क्या सोचकर रखा है। मेरा तो विचार है, हाथी घास की किसी सुरग मे ही छिपा बैठा होगा वह सूअर का बच्चा !"

"किसको पूछ रहे हो, महाराज ?"

"वह देवकांत है न ! कलकत्ता का एक भगोड़ा ! पहले हत्या करते है, फिर छिपे फिरते है !"

"किसकी हत्या कर दी, महाराज ?"

"पाँच अँग्रेजो की।"

"रात के समय, या दिन के समय ? किस समय की गई यह हत्या ?"

"हत्या तो हत्या है। इससे तो अतर नही पड़ता कि हत्या रात को की गई या दिन मे !"

हाथी घास उनके कंधों तक आ रही थी। महावत ठिगना होता तो उसका सिर भी हाथी घास की ऊँचाई से नीचा ही रहता।

महावत ने हाथी को तेज़ चलने के लिए उकसाया, और खाँसकर कहा, "इस प्रकार तो देवकात हाथ नही आएगा। उसे पकड़ना हो तो पैदल घास की इन सुरगो में से लाँघ-लाँघकर उसे ढूँढ़ना चाहिए।"

नारायण ने सिर हिलाकर महावत के विचार की सराहना की, "कही देवकांत इसी सुरंग मे छिपा हुआ हमारी बातें न सुन रहा हो।"

महावत ने हँसकर कहा, "हमारा हाथी तो बहुत तेज डग भर रहा है। देवकात क्या खाकर हमारा पीछा करेगा ?"

हाथी और भी तेज डग भरने लगा। नारायण को लगा, जैसे हाथी ने उनकी बात समझ ली हो। ऐसे मे देवकात कही दिखाई दे जाता तो नारायण उस पर गोली दाग देता। उसे देवकात पर बहुत क्रोध आ रहा था। उसकी झुँझलाहट लोगो पर भी थी—ये लोग देवकांत को पकड़कर हमारे हवाले क्यो नही कर देते ?

महावत ने गभीर होकर कहा, "माझुली तो सीधा देश है, महाराज ! यहाँ चोर नही, डाकू नही। माझुली मे कोई ताला लगाना भी जरूरी नही समझता। यह बात तो हमारे महाप्रभु भी कई बार कह चुके है अपने उपदेश मे ! महाप्रभु कहते है कि माझुली तो···"

"स्वर्ग है धरती पर !" नारायण ने हँसकर कहा, "पर अब तो माझुली को भी बाहर की हवा लग रही है। देवकात का यहाँ आ छिपना भी इसकी एक दलील है।"

"महाराज, सरकार को थाने बनाने की जितनी चिंता है, उतनी हस्पताल बनाने की चिंता क्यो नही है ?" महावत ने अवसर पाकर निशाना लगाया, "और सरकार, यह बात मैं अपनी ओर से नही, लोगो की ओर से कह रहा हूँ।"

नारायण को महावत की बात बहुत अप्रिय लगी, जैसे महावत के मुँह से देवकात बोल रहा हो। उसने झुँझलाकर कहा, "तुम नए हस्पताल बनाने की बात कहते हो। मैं कहता हूँ, जो बड़ा हस्पताल माझुली में पहले से है, उसे भी बंद कर दिया जाए; और बड़े हस्पताल के नीचे जो सात छोटे हस्पताल बनाने की स्कीम सरकार के सामने है, उसे भी रोक दिया जाए, जब तक देवकात को पकड़कर हमारे हवाले नहीं कर दिया जाता !"

महावत ने इस बात का कोई उत्तर न दिया। हाथी धीरे-धीरे चलने लगा था। नारायण ने डॉटकर कहा, "इस तरह तो शिकारी गाँव पहुँचने में भोर हो जाएगी।"

"इतनी देर तो नही होगी, महाराज !" महावत ने पीछे मुड़कर देखा, और हाथी पर अंकुश चलाने लगा।

शिकारी गाँव पहुँचकर पता चला, थाने को आग लगानेवाला उसी अंधे का पुत्र है। बापू ने उस दिन गाँव की सभा मे यह कहने की हिमाकत की थी, "मैं तो अंधा हूँ, पर शिकारी गाँव के उन लोगों को भी, जिनकी आँखें ठीक है, फिरंगी के राज्य में न्याय नज़र नही आता !" और अब उसके पुत्र ने शिकारी गाँव का थाना जला डाला !

सामने थाने की जली हुई झोपड़ियाँ राख का ढेर प्रतीत हो रही थी। तीनों सिपाही और छोटा दारोगा बहुत घबराए हुए थे।

एक ओर एक वृक्ष के साथ लोहे की जंजीर से एक नवयुवक को बाँध दिया गया था।

"तो यही है उस अंधे सूअर का बच्चा ?" नारायण ने अपनी बदूक के कुदे से उस नवयुवक के सीने पर चोट करते हुए कहा।

छोटे दारोगा ने आगे बढ़कर कहा, "इसका नाम जादू है, सरकार !"

"इसका सब जादू निकालकर छोड़ेगे !" नारायण भूखे शेर की तरह गुर्राया।

उनतालीस

अधे की लकड़ी तो जादू ही था। शाली की फ़सल कटकर घर आ चुकी थी, और बाऊ धान बो दिया गया था। अब जादू पिटते-पिटते मर जाए, तो अंधे दिक्-पाल का क्या हाल होगा ?—यह सोचकर शिकारी गाँव के लोग काँप उठते थे। अंधा दिक्पाल अपने जादू के बिना जीवित नही रह सकता। जादू को कुछ हो गया तो दिक्पाल अपने प्राण त्याग देगा। बाप-बेटे के बिना माँ का भी बुरा हाल होगा, जाकर ब्रह्मपुत्र में कूद पडेगी—शिकारी गाँव मे यह बात हर किसी की जबान पर थी। जादू की बहन पठचली रो-रोकर बेहाल हो रही थी। उसकी आयु विवाह योग्य थी, और उसका विवाह जादू को ही करना था।

कुछ लोग, जो जादू के विरुद्ध थे, हृदय से चाहते थे कि जादू की अभी और भी पिटाई हो। वे चाहते थे कि जादू को हमेशा के लिए सीधा कर दिया जाए, और फिर वह सताग मीरी की बेटी गोपी पर डोरे न डाले।

यह तो अच्छा हुआ कि जादू के बचपन के मित्र प्रभात और मुकन किसी काम

से गाँव-बूढ़ा मणिवर के साथ दिसाँगमुख गए हुए थे; वहाँ से उन्हें शिवसागर जाना पड गया था और वापस शिकारी गाँव पहुँचते तीन दिन लग गए थे। प्रभात और मुकन कही उस दिन गाँव में होते जिस दिन आधी रात और भोर के बीच थाना जलाया गया था, तो यह असंभव था कि वे पुलिस के चंगुल में फँसने से बच जाते।

छोटा दारोगा अचितराम अब तक दाँत पीस रहा था और बार-बार नारायण दारोगा से कह रहा था, "आग भले ही जादू ने लगाई थी, पर प्रभात और मुकन का भी इस मामले में कुछ कम हाथ नहीं था।"

अब क़ानून तो यह आज्ञा न देता था कि प्रभात और मुकन को भी फाँस लिया जाए, जबकि वे इस घटना के समय गाँव से बाहर थे और गाँव-बूढ़ा मणिवर जैसा खाता-पीता आदमी इसका साक्षी था। नारायण ने अचितराम को पहले ही, जब यह थाना बनना आरंभ हुआ था, यह बात समझा दी थी कि मणिवर को हर हालत में खुश रखा जाए, क्योकि उसका विचार था कि मणिवर ही गाँव को देवकांत के विषैले प्रचार से बचाकर रख सकता है।

जादू की पिटाई केवल इसीलिए तो नहीं हो रही थी कि उसने थाने को आग क्यों लगाई। यह तो बहाना था। असल बात तो यह थी कि किसी प्रकार देवकांत हाथ आ जाए; या तो जादू स्वयं मुँह से बक देगा, या हो सकता है कि देवकांत उसकी पिटाई की खबर सुनकर शिकारी गाँव में चला आए और उसे झट गिरफ्तार कर लिया जाए। बीच-बीच में जादू की पिटाई बंद कर दी जाती थी; नारायण पास आकर उसे पुचकारने लगता था।

आउनियाटी सत्र का हाथी उसी दिन वापस भेज दिया गया था। नारायण अभी तक यहीं था। उसका विश्वास था कि शीघ्र ही देवकांत का पता चल जाएगा।

एक दिन जादू की पिटाई करते समय, उसकी माँ को सामने बैठा दिया गया। नारायण का विचार था कि जादू माँ की शर्म से देवकांत का पता बता देगा। माँ रोती रही, जादू ने उफ़ तक न की। आखिर पिटाई बंद कर दी गई।

फिर एक दिन प्रभात और मुकन को सामने बैठाकर जादू को पीटा गया। अगले दिन नारायण को पता चला कि सताग मीरी की बेटी गोपी से जादू का दिल मिला हुआ है। सताग और गोपी को बुलाकर सामने बैठा दिया गया और एक सिपाही नारायण का हुक्म पाकर जादू को भिगो-भिगोकर जूते मारने लगा। गोपी ने दोनों हाथों से आँखें बंद कर ली। वह जादू को इतनी बुरी तरह पिटते न देख सकी।

जो लोग अब तक पुलिस से दबते थे, वे भी हृदय से पुलिस के विरुद्ध हो गए। यह ठीक था कि थाने को जलाने की योजना देवकांत की सुझाई हुई थी। यदि जादू की इतनी बुरी तरह पिटाई न की गई होती, तो गाँव-बूढ़ा मणिवर और गाँव के दूसरे लोग मिलकर यह जिम्मेदारी ले लेते कि अब कभी ऐसा नहीं होगा।

शिकारी गाँव में थाना बनाए जाने के तो सभी विरुद्ध थे, क्योंकि यह नई बात थी। सब यही कहते थे—जब आज तक यहाँ थाना बनाए बिना ही सरकार का काम चल गया, तो अब क्यों नही चल सकता? पुलिस पास होगी तो लाभ के बजाय हानि ही अधिक होगी—यह सबका विचार था; लोगों को ऐसा सोचने से कोई नहीं रोक सकता था। जादू की पिटाई ने इसे सिद्ध कर दिया था। मान लिया कि जादू का अपराध है, उसे जितना चाहो पीटो, चाहे फाँसी पर चढ़ा दो; पर जिसे सामने बैठाकर जादू को पीटा जाता है, उसका क्या अपराध है?

एक दिन कुछ लोग इकट्ठे हो गए और गाँव-बूढ़ा को साथ लेकर साहसपूर्वक नारायण से मिले। उन्होंने शिकायत की, "जादू की माँ को सामने बैठाकर जादू को क्यों पीटा जाता है? प्रभात और मुकन कितने ही जादू के मित्र क्यों न हों, पुलिस को यह अधिकार तो नहीं कि वह इन दोनों लड़कों को सामने बैठाकर जादू पर हाथ उठाए? सताग मीरी और उसकी बेटी गोपी को सामने बैठाकर जादू की नंगी पीठ पर भिगो-भिगोकर जूते लगवाना तो और भी बुरा है।"

नारायण पहले तो बहुत गरम हुआ और गाँव-बूढा को भी कोसने लगा, पर जब लोग अपनी बात पर अड़े रहे, तो उसने यह कहकर जान छुड़ाई, "आगे से इसका ध्यान रखा जाएगा।"

जादू की पिटाई का सबसे अधिक दुख गोपी को था। उसने प्रभात और मुकन पर जोर डाला, "किसी-न-किसी तरह देवकांत तक यह समाचार अवश्य पहुँचाओ और उससे पूछो, अब क्या किया जाए?"

प्रभात ने धीरे-से कहा, "तू घबरा मत, गोपी! जादू का कुछ नहीं बिगड़ेगा।"

गोपी की आँखों में आँसू थे।

मुकन बोला, "जादू तो बहुत पक्का निकला। उसने शिकारी गाँव की लाज रख ली।"

गोपी जानती थी कि किस प्रकार प्रभात, मुकन और जादू तीनों देवकांत से प्रभावित हुए। वह स्वयं भी तो देवकांत से मिली थी। फिरंगी के राज की जो बुराई देवकांत ने की थी, वह सोलह आने सच निकली। फिरंगी का राज तो पुलिस और सेना के अत्याचार का राज था। पुलिस का अत्याचार आँखों के सामने था। सेना भी अवश्य अत्याचार करती होगी। एक बात सच निकली, दूसरी भी सच होगी। गोपी यह भी जानती थी कि जादू अपने माता-पिता का लाड़ला बेटा है।

जब देवकांत आया था, तो जादू ने अपने बापू दिक्पाल से पूछा था, "यदि मैं भी देवकांत के साथ काम करूँ, तो कैसा रहे?"

जादू तो बापू का लाड़ला बेटा है। बापू ने आज्ञा दे दी, पर स्वयं देवकांत नहीं चाहता कि जादू हथेली पर जान रखकर आगे आए। प्रभात और मुकन के तो तीन-तीन चार-चार भाई हैं। उन्हें कुछ हो गया, तो घरवालों की अधिक हानि नहीं

होगी। पर जादू तो अपने माता-पिता का इकलौता बेटा है, उसके बिना तो घर उजड़ जाएगा। घर में कमानेवाला वही तो है।

देवकांत के संबंध में शिकारी गाँव के गाँव-बूढ़ा मणिवर को पूरी खबर रहती थी। गाँव-बूढ़ा होने के नाते सरकार भले ही उसे अपना दायाँ हाथ समझती थी, पर उसके दिल में फिरंगी के विरुद्ध जो आग सुलग रही थी, उसे देवकांत ने भड़का दिया था।

प्रभात और मुकन ने रात के सन्नाटे में मणिवर से सलाह की, "अब क्या पग उठाया जाए?"

चालीस

बाँस-कुज में मचान पर लेटे-लेटे देवकांत ने स्वच्छ, निर्मल, तारों-भरे आकाश को बड़े ध्यान से देखा। टार्च जलाकर उसने कलाई पर बँधी घड़ी पर नजर डाली; जेब में पडे हुए पिस्तौल को टटोलकर देखा; ऊपर की जेब में लगे फाउंटेन पैन को छूकर देखा।

घड़ी ने बताया कि रात के बारह बज रहे है। आज पूस की अंतिम तिथि थी। बाँसो की शाखाओ के बीच से उसने देखा कि माघ बिहू के सिलसिले में गाँव के लोग 'मेजी' की आग ताप रहे है।

युवको और युवतियों के मिले-जुले अट्टहास सुनाई दे रहे थे। कभी किसी गीत का बोल वातावरण में तैरने लगता था। देवकांत का जी तो चाहता था कि वह भी मचान से उतरकर नीचे चला जाए और माघ बिहू की आग तापनेवालों के साथ मिलकर वह भी अग्नि देवता को नमस्कार करे। यही तो इस त्योहार की सबसे बडी विशेषता थी। मचान पर पड़े-पड़े वह शीत से अकड़ा जा रहा था। उसने सोचा—आजकल नारायण दारोगा पूरे ज़ोर-शोर से मेरी तलाश में है; शिकारी गाँव का थाना जलाए जाने की घटना भी बहुत ताजा है; वह स्वयं आउनियाटी सत्र से हाथी की सवारी करते हुए शिकारी गाँव में आ पहुँचा है और आजकल वहीं ठहरा हुआ है।'''उसने यही निर्णय किया कि वह मचान छोड़कर नीचे नही उतरेगा।

वह सोचने लगा—क्या खबर, नारायण अपने सिपाहियो के साथ गश्त कर रहा हो। मैं इतनी आसानी से तो उसके हाथ आने से रहा। मेरा पिस्तौल सलामत रहे। दो-चार आदमियों को तो मैं सहज ही ठंडा कर सकता हूँ। यदि ऐसी ही बात हो जाए—जान पर खेल जाने की घड़ी सिर पर आ पहुँचे—तो मै यह भी कर

सकता हूँ; जीवित तो मैं नारायण के हाथ आने से रहा।

आकाश पर आकाश-गंगा भी तो आज बहुत सुदर लग रही थी। इन तारो में मेरी भी साँझ है, उसने सोचा—तारो के साथ तो मनुष्य का चिरकालीन संबंध है। जिस ग्रह में मेरा जन्म हुआ, वह भी तो इसी आकाश में होगा। क्या यह झूठ है कि एक विशेष ग्रह में जन्म होने पर आयु-पर्यंत मनुष्य पर उस ग्रह का प्रभाव रहता है? इनमें कौन-सा तारा ऐसा है, जिसे मै अपना तारा समझकर देखता रहूँ?···

वह आकाश-गंगा का दृश्य बड़े ध्यान से देखता रहा। किसी स्थल पर उसने पढ़ा था कि जो लोग शहीद हो जाते है, वे मरकर तारे बन जाते हैं। यह कैसे हो सकता है? या शायद यह ठीक है। तो क्या असंख्य शहीद हो चुके है ससार में? क्या ये सब तारे पहले मनुष्य थे? मनुष्य की कल्पना का भी कोई ठिकाना नहीं।···

बाँस की शाखाओ में से दूर काफी अंतर पर जलती हुई 'मेजी' बहुत भली लग रही थी। आज सारा गाँव खुश था। देवकांत सोचने लगा—वहाँ शिकारी गाँव में न जाने किस-किस पर हाथ डाला होगा नारायण ने? शिकारी गाँव की पीड़ा को इस गाँववाले अपनी पीड़ा नही समझते। समझते होते तो माघ बिहू कैसे मनाते?

आकाश-गंगा पर भी उसे रह-रहकर क्रोध आने लगा। यदि यह सत्य है कि ग्रह-नक्षत्रों के साथ मनुष्य का संबध होता है, तो यह वस्तुस्थिति क्यो होती कि शिकारी गाँव में कुछ लोग पुलिस के हाथो बुरी तरह पिट रहे है और आकाश पर इतनी नयनाभिराम आकाश-गंगा अपनी छटा दिखा रही है? आज तो तारो को भी यह हर्षोल्लास नही दिखाना चाहिए।···

मचान पर लेटे-लेटे उसने कई बार करवट बदली, कई बार वह कल्पना-धारा में बह गया—मुकन और प्रभात पिट रहे होगे; जादू अभी इस कार्य में सम्मिलित नही हुआ होगा, मैंने उसे समझा दिया था। जिसका बापू अंधा हो, माँ बीमार रहती हो, उसके पकड़े जाने से तो बेचारों का घर ही उजड जाएगा। जादू ने अवश्य मेरी बात मान ली होगी। मैंने उससे कहा तो था—जब ऐसी स्थिति आ जाएगी जादू, कि तुम्हारे मैदान में कूदे बिना काम ही न चल सके, तो मैं स्वयं तुम्हें हाथ बँटाने के लिए कहूँगा; अभी नही। अभी तो प्रभात और मुकन ही काफी है। नारायण अब प्रभात और मुकन पर गरज रहा होगा। या शायद प्रभात और मुकन उसके हाथ आने से पहले ही भाग गए होंगे। अब शिकारी गाँव से समाचार मिले, तो पता चले।···

बार-बार उसका हाथ जेब में चला जाता था। पिस्तौल को टटोलते हुए वह सोचने लगा—काश, मुझे नारायण को सदा के लिए ठंडा करने का अवसर मिल

जाए ! सिपाही से उन्नति करते-करते उसे दारोगा बनने में न जाने कितने वर्ष लग गए। अब वह मुझे पकड़कर सरकार के सम्मुख अपनी कार्य-कुशलता का प्रमाण देना चाहता है। अधिक-से-अधिक वह सर्कल इंस्पेक्टर बन जाएगा। यह भी कौन जानता है कि उसे यह अवसर अवश्य मिलेगा? शायद मेरे पिस्तौल की गोली उसकी छाती में लगे और वह सदा के लिए सो जाए !···

'मेजी' की आग की ज्वाला ऊँची उठ गई थी। देवकांत को लगा, नई लकड़ी डाली गई है। वह सोचने लगा—शीतकाल में तो अलाव वैसे ही अच्छा लगता है। फिर यह तो माघ बिहू की 'मेजी' है। अग्नि देवता, मेरा नमस्कार स्वीकार करो !···

उसकी दृष्टि आकाश-गंगा की ओर उठ गई। मन-ही-मन यह सोचकर कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य तारा बन जाता है, उसने आकाश-गंगा के तारों की ओर ध्यान से देखा। नमस्कार, आकाश-गंगा ! मेरे लिए स्थान रखना। मैं आ रहा हूँ। मैं बहुत शीघ्र आ रहा हूँ।···

उसके मस्तिष्क को जोर का झटका लगा। अभी तो बहुत कार्य शेष है। अभी तो केवल शिकारी गाँव का थाना ही जलाया गया। अभी तो बहुत कार्य रहता है। नारायण भी क्या याद करेगा कि कभी देवकात से पाला पड़ा था ! माझुली के एक-एक थाने को आग न लगवा दी, तो मेरा नाम देवकात नही। माझुली के संबध में यह तो विख्यात है कि ब्रह्मपुत्र के हाथो ही इसकी सृष्टि हुई है। यहाँ नई माटी एकत्रित होते सहस्रो वर्ष लगे होगे। माझुली की माटी तो बड़ी उपजाऊ है। धन्य है माझुली ! मेरे कलकत्तावाले मित्र सोचते होगे कि देवकांत कायर है। वे क्या जानें कि देवकांत कितना आवश्यक कार्य कर रहा है ! पाँच-पाँच अँग्रेज़ो को ठंडा करने में मैने अपने मित्रों का हाथ बँटाया। यह तो बहुत आसान था कि मैं भी पकड़ा जाता; मुझपर भी अभियोग चलता; मुझे भी फाँसी हो जाती। पर यह जीवन इतना सस्ता भी क्यों बेचा जाए? बेचने का तो प्रश्न ही नही उठता। इस जीवन को यो इतना शीघ्र क्यों गँवाया जाए? माझुली की माटी जितनी उपजाऊ है, उतने ही उपजाऊ हैं माझुलीवालों के मस्तिष्क; नही तो मेरी बात, जो दिसाँग-मुखवालों की समझ में न आई, शिकारी गाँववालो की समझ में कैसे आ गई? अभी तो मुझे यह चक्कर चलाना है। माझुली से अँग्रेज़ का बीज नाश न कर दिया तो मेरा नाम देवकात नही। समूचा हिंदुस्तान न जाने कब स्वतंत्र होगा? पहले तो माझुली ही स्वतत्र होगी। चाहिए तो यह था कि पहले दिसाँगमुख ही स्वतंत्र होता, क्योकि आज से पौने दो सौ वर्ष पूर्व अँग्रेज़ों का पहला स्टीमर दिसाँगमुख के घाट पर ही लगा था, और वही से पूरे असम देश में पराधीनता का बीज बोने का श्रीगणेश किया गया था।···यह सोचते-सोचते वह निद्रा-धारा में बह गया।

उसकी आँख खुली, तो उसे याद आया कि आज तो स्वप्न में अतुल से ही नहीं,

भाभी जूनतारा से भी बातें हुई। अतुल इतना शीघ्र विवाह के चक्कर में फँस जाएगा, यह तो उसने भूलकर भी नहीं सोचा था। स्वप्न में भाभी जूनतारा बेटे को दूध पिला रही थी। अतुल आँखें झुकाए बैठा था, जैसे सोच रहा हो—अब देवकांत के सामने आँखें कैसे ऊँची करूँ? उसने अतुल के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था—कोई बात नही, मित्र! तुम चाहो तो अब भी बहुत-कुछ कर सकते हो। विदेशी सरकार का तख़्ता उलटने के लिए तो बहुत-कुछ करना होता है। हिंसा और अहिंसा दोनों ही सहायक हो सकती हैं। मै जानता हूँ, हिंसा तुम्हे रुचिकर नहीं तो अहिंसा ही सही। कुछ तो करो, अतुल!···

भोर होने में अधिक देर न थी। उसे ध्यान आया, माझुली के चतुर्दिक् पानी है और यह असम की शेष भूमि से कटी हुई है। उसे यह दुख सताने लगा कि तीस दिन से उसे ख़बर-कागज़ देखने को नही मिला। उड़ती चिड़िया जो ख़बर लाती है, यहाँ तो वही खबर मिलती है। न जाने कितने दिन तक ख़बर-कागज़ देखना सुलभ न हो, पिछली बार माझुली की सड़क पर जाते हुए एक व्यक्ति के हाथ में ख़बर-कागज देखा था। उससे लेकर मैंने भी यह ख़बर-कागज़ पढ़ना चाहा, तो उसने यह खबर-कागज़ मुझे ही दे दिया। वह उसे पढ़ चुका था। वह जोरहाट से आ रहा था। जोरहाट से चलकर वह कोकिलामुख पहुँचा; वहाँ से ब्रह्मपुत्र पार कर माझुली के किनारे आ लगा; पहले कमलाबाड़ी सत्र देखने गया, अब आउनियाटी सत्र देखने जा रहा था।

उसके पास माझुली का बड़ा मानचित्र था, जिस पर विशेष रूप से यह सड़क दिखाई गई थी—माझुली में सबसे ऊँचे स्थान पर निर्मित यह सड़क! माझुली के मानचित्र के अतिरिक्त उस व्यक्ति के पास किसी अँग्रेज़ की लिखी हुई एक पुस्तक भी थी, जिसमें बताया गया था—वस्तुतः माझुली की लबाई बीस मील से कही अधिक है, वर्षा ऋतु में बाढ़ आती है तो लंबाई कम हो जाती है। इसकी बीस मील लंबाई तो वर्षा ऋतु में भी बनी रहती है। उसी प्रकार इसकी चौड़ाई भी पाँच मील से ड्योढ़ी तो सहज ही कही जा सकती है। पर वर्षा ऋतु में भी पाँच मील की चौडाई तो सदा बनी रहती है। वैसे बाढ़ का ज़ोर अधिक बढ़ जाता है, तो माझुली के भीतर तक पानी आ जाता है। माझुली के एक गाँव से दूसरे गाँव तक जाने के लिए गुटिया नाव लेनी पड़ती है। माझुलीवालों के लिए यह संकट कई-कई सप्ताह तक रहता है। कुल मिलाकर माझुली में बीस-पच्चीस हज़ार की जनसंख्या तो अवश्य होगी।

बहुत ही गँवार और निरक्षर लोग बसते है यहाँ। विद्या के नाम पर थोड़ा-बहुत प्रकाश माझुली के कमलाबाड़ी, आउनियाटी, दक्षिणपाट और गड़ानूर—इन चार वैष्णव सत्रों में ही दृष्टिगोचर होता है।

असम के धार्मिक जीवन में यह उल्लेखनीय है कि निराकार भगवान् के

उपासक, वैष्णव संत शंकरदेव और उनके साधक शिष्य माधवदेव के संप्रदाय ने अपने चार सत्र स्थापित करने के लिए माझुली को ही चुना। उस व्यक्ति ने मुझसे पूछा था—आप क्या काम करते है? मैंने अपनी ठोड़ी पर हाथ फेरकर कहा था—एक दिन मैं भी आउनियाटी सत्र की यात्रा पर जाना चाहता हूँ। वह बोला—आज ही क्यों नहीं चलते मेरे साथ? मैंने कहा था—आज नहीं, फिर किसी दिन जाऊँगा। वह घूर-घूरकर मुझे देखता रहा, जैसे कोई सी० आई० डी० का आदमी हो। मैने भी अपनी परशुराम-कुंड की काल्पनिक यात्रा की कहानी से उसे बहला दिया था। मेरी कहानी वह कितने मज़े से सुनता रहा था! सड़क से हटकर हम एक पोखर के किनारे जा बैठे थे। उसके पास केले थे। उसने तीन केले मुझे भी दिए थे। पोखर में बत्तखें तैर रही थी।

मेरी आँखें उस अँग्रेज़ की लिखी हुई पुस्तक पर जमी थीं। इसमें माझुली के भूगोल पर ही अधिक ज़ोर दिया गया था। बाढ़ में भरी हुई नदियाँ फिर से जीवित होकर माझुली के बीचो-बीच अपना ताना-बाना बुन देती हैं। ऐसे गाँव बहुत कम हैं, जो बाढ़ में डूबते नही। ले-देकर माझुली के एक सिरे से दूसरे तक लंबाई के रुख़ गुजरनेवाली सड़क ही ऐसी ऊँची जगह है, जो बाढ़ के दिनों में लोगों के लिए सहायक सिद्ध होती है। वे अपने पशुओं को इस सड़क पर ले आते हैं; स्वयं पेडो पर मचान बनाकर दिन गुज़ारते हैं!···मचान का ध्यान आते ही उसने अपने मचान को छूकर देखा—वह मचान तो सचमुच बड़ी सुंदरता से तैयार किया गया है!···

पूर्व में नए रंग जाग रहे थे। अब उषा के घूँघट उलटने का समय आ रहा था। उसका ध्यान तो उसी पुस्तक की ओर था, जो उसने उस दिन पोखर के किनारे केले खाते हुए पढ़ी थी; उस समय वह बहुत भूखा था, केले स्वादिष्ट थे। उस लेखक की विदेशी मनोवृत्ति पर उसे देर तक क्रोध आता रहा था। भोर की प्रतीक्षा करते-करते वह क्रोध फिर से जाग उठा, जैसे उस अँग्रेज़ लेखक के शब्दो में बाढ़ मे भरी हुई नदी जाग उठती है। उस अँग्रेज़ ने माझुली की हाथी घास की सुरंगों का विशेष रूप से उल्लेख किया था। हाथी घास के जंगल दूर-दूर तक चले गए है, यह तो उसने ठीक ही लिखा है। दलदलवाली जगह पर ही उगती है हाथी घास।···पर यह तो माझुली में हर कोई जानता है। यह लिखकर उस अँग्रेज लेखक ने कौन-सा तीर मारा? ख़ैर उसकी पुस्तक तो बाहरवालों के लिए है, जो माझुली को नहीं जानते। अपनी एक यात्रा का उल्लेख करते हुए उस अँग्रेज़ ने यह भी तो लिखा है कि किस प्रकार उसने एक बार माझुली की सड़क के किनारे एक पेड़ पर बने हुए मचान पर एक रात बिताई थी। उसने अपने मेज़बान के आतिथ्य का बदला यों चुकाया था कि अपनी बंदूक से उस बाघ को मार डाला था जो पास के एक जंगल से सडक पर आ गया था और कदाचित् वह बाघ बेचारे मीरी की गर्भवती गाय को मार डालता।···

उस अँग्रेज पर देवकांत को बुरी तरह क्रोध आने लगा। वह कहना चाहता था —हिंदुस्तान के लोग गर्भवती गाय के समान हैं, फिरंगी बाघ के समान गाय पर झपटता है !···

उसने जेब में हाथ डालकर अपने पिस्तौल को टटोलकर देखा—ठीक है, पिस्तौल अपने स्थान पर पड़ा है। उसे अपने ऊपर क्रोध आने लगा—पिस्तौल जेब में है, फिर भी मैं यहाँ छिपा बैठा हूँ।

यह गाँव माझुली की सड़क से ढाई मील भीतर की ओर था। यहाँ से ढाई मील पर था कौसारी गाँव, जहाँ अधिकतर काछारी लोगों के घर थे। कौसारी गाँव से डेढ़ मील था शिकारी गाँव। उसकी दृष्टि आकाश पर जम गई। उषा का दृश्य उसे बहुत प्रिय था। उस अँग्रेज पर फिर क्रोध आने लगा—माझुली की उषा का तो साहब बहादुर ने भूलकर भी नाम नही लिया। मैं कहता हूँ—माझुली में उषा कितनी प्रिय लगती है, कितनी संकेतवाहक, कितनी पुष्ट, कितनी आशाप्रद !···

उसे उस दिन का ध्यान आ गया, जब माझुली स्वतंत्र हो जाएगी। माझुली ही क्यो, जब सारा हिंदुस्तान गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर खड़ा हो जाएगा; जब यहाँ से अँग्रेजी साम्राज्य का तख्ता उलट जाएगा।···

किसी स्वर्णकथा के नयनाभिराम नायक के समान सूर्य ने मुँह बाहर निकाला, तो देवकांत ने बाँसों के बीच से झाँककर देखा। गाँव की ओर से गाँव-बूढ़ा रंजन आ रहा था। गाँव-बूढ़ा के हाथ में एक पोटली थी। देवकांत समझ गया कि उसके लिए जलपान आ रहा है। उसे बहुत भूख लगी थी। ये लोग सचमुच कितने अच्छे है ! उसने सोचा—इन्हें मेरा कितना ध्यान रहता है ! ठीक समय पर हर चीज मिल जाती है !···

रंजन अब मचान के ऊपर आ गया था। उसने पोटली देवकांत को देकर पूछा, "ठंड तो नही लगी थी ?"

"ठंड कैसे लगती ?" देवकांत ने हँसकर कहा, " 'मेजी' की आग जल रही हो गाँव में, और तुम्हारे देवकांत को ठंड लगती ! यह कैसे हो सकता था, काका ?"

"पर 'मेजी' की आग तो बहुत दूर थी," रंजन ने मचान के ऊपर पहुँचकर कहा, "लो थोड़ा जलपान कर लो।"

"काका, एक मेजी वह भी तो है, जो दिल में जलती है !" देवकांत ने गंभीर मुद्रा बना ली।

रंजन ने अपनी ही टेर लगाई, "बेटा, शिकारी गाँव से प्रभात आया हुआ है।"

"तो उसे साथ क्यों न लेते आए ?" देवकांत की आँखें चमक उठीं।

"वह तो तुम्हे देखने की ज़िद कर रहा था, पर मैंने कह दिया, देवकांत तो

कमलाबाड़ी गया हुआ है।"

"यह क्यों कह दिया, काका ? प्रभात तो मेरा साथी है। क्या खबर लाया है प्रभात ?"

"कह रहा था—नारायण ने जादू को ही पकड़ा है, और जादू की बुरी तरह पिटाई हो रही है।"

देवकांत के मुख पर चिंता की रेखाएँ उभरीं। वह चुप बैठा रहा।

"अच्छा, तो मैं प्रभात को बुला लाता हूँ।" रंजन ने मचान से नीचे उतरते हुए कहा, "इतने में तुम जलपान कर लो।"

इकतालीस

शिकारी गाँव पूर्ण रूप से मीरी गाँव होने के कारण यहाँ माघ बिहू नही मनाया जाता था, पर नारायण ने पहले से फ़ैसला कर रखा था कि अबके इस गाँव मे भी 'मेजी' जलेगी। लेकिन दिल की बात उसने किसी से नही कही थी।

शिकारी गाँव के मीरी यद्यपि अन्य असमियाजनो के समान 'मेजी' नही जलाते थे, फिर भी सदा के समान वे इस वर्ष भी साथवाले कौसारी गाँव में माघ बिहू की आग तापने से न चूके। पूरा गाँव खाली हो गया। नारायण ने सोचा—यह अच्छा अवसर है।

जादू तो पहले से पुलिस की हिरासत में था। इधर उसके अंधे बापू और बीमार माँ को भी पकड़ लिया गया था। और अब पूस की यह अंतिम रात नारायण को एक नए सूत्रधार के रूप में देखने जा रही थी।

एक सिपाही को नारायण ने पहले से तैयार कर रखा था कि वह जादू के घर के नीचेवाले मचान में घुस जाए, जहाँ सूअर बँधे रहते है और चुपके से आग लगा-कर भाग आए।

सिपाही ने यह काम बड़ी कुशलता से किया।

उधर कौसारी गाँव में 'मेजी' की आग तापते लोगों के पास यह ख़बर पहुँची कि जादू के घर को आग लग गई। दूर से आग की ऊँची उठती ज्वालाएँ देखी, तो वे शिकारी गाँव की ओर दौड़ पड़े।

एक कम, न एक अधिक, पूरे पचपन घर जलकर नष्ट हो गए। आग दूसरे घरों की तरफ़ भी फैल रही थी। पुलिस के सिपाही आग बुझाने का नाटक खेलते रहे, पर आग उनके वश के बाहर थी।

सात-आठ घरों में सोते बच्चे और कुछ बूढ़े रोगी भी जल मरे। कुल मिलाकर

पाँच-छः स्त्री-पुरुषों को ही पुलिस ने आग में जलने से बचा लिया था।

वैसे नारायण ने एक-एक आदमी के सामने शोक-प्रदर्शन किया। मणिवर का घर बच गया था। नारायण ने उसके सामने जाकर भी रोनी सूरत बनाकर यही कहा, "मुझे इस बात का बहुत दुख है भणिवर कि शिकारी गाँव में अचानक आग लग गई और इतना नुकसान हो गया।"

मणिवर ने बे-घर लोगों की दुहाई देकर कहा, "दारोगाजी, अब तो जादू और उसके माता-पिता को छोड़ दीजिए। अब तो हमारे गाँव को भगवान् ने ही थाना जलाने का दंड दे डाला।"

अगले दिन भोर होते ही जादू के माता-पिता को मुक्त कर दिया गया। फिर साँझ होने पर, जब कौसारी गाँव-निवासी दारोगा के पैरों पर गिर गए, जादू को भी छोड दिया गया। इसके लिए यह शर्त रखी गई कि शिकारी गाँव और कौसारी गाँव के लोग मिलकर बे-घर लोगों की सहायता करें और जले हुए थाने को भी फिर से बना दें।

बनावटी तौर पर नारायण को लोगों के साथ सहानुभूति थी; भीतर से वह खुश था।

जादू का मुख बंद था, पर यह बात उससे छिपी न थी कि शिकारी गाँव के पचपन घरों को जलाने और बीस से ऊपर सोते बच्चो और वयोवृद्ध प्राणियों की निर्मम हत्या का पाप नारायण ने ही कमाया है। उसे इतना संतोष अवश्य था कि उसके माता-पिता बच गए। उसकी बहन भी बच गई थी, क्योकि उस रात वह मणिवर के घर चली गई थी।

प्रभात अपने को भाग्यशाली मानता था, क्योंकि वह देवकांत से मिल आया था, पर इस दुर्भाग्य का भी तो पारावार न था; उसके पीछे न केवल एक चौथाई से अधिक गाँव जलकर राख हो गया, बीस से ऊपर बच्चे और बूढ़े भी इस आग मे जल मरे। मरनेवालों में उसका बापू भी था।

मुकन हतप्रभ-सा बैठा था—शिकारी गाँव में उस रात सर्वप्रथम जादू का घर आग की भेंट हो गया, तो मै अपने घर पर क्यों उपस्थित न था? मैं घर पर होता तो शायद इतना बड़ा दुखांत होने से बच जाता। घरो के जलने से कही अधिक उसे बच्चो और बूढ़ों के जल मरने का दुख था। सूअर, मुरगियाँ और कबूतर भी तो जल मरे थे, उनकी संख्या का अनुमान लगाना सहज न था।

युवकों का विचार था, गाँव को आग लगाने में पुलिस का हाथ है; पर गाँव के अन्य लोग नारायण की बगुला भक्ति के प्रभाव से कह रहे थे, "नारायण लाख बुरा हो, वह गाँव को आग लगाने का पाप नही कमा सकता।"

जादू को सबसे अधिक चिंता इस बात की थी कि गाँव-बूढ़ा मणिवर भी नारायण की बातों मे आकर लोगों से कहता फिरता है—आग लगाने में पुलिस का

कोई हाथ नहीं हो सकता !

"अब क्या किया जाए ?" प्रभात ने जादू के पास आकर कहा।

"बदला लिया जाए, और क्या किया जाए ?" जादू ने गंभीर होकर कहा, "मेरा विचार है कि देवकांत भी यही कहेगा।"

"तुम ठीक कहते हो," प्रभात ने समीप होकर कहा, "मुझे याद है। उस दिन मै देवकात से मिला, तो उसने कहा था—शिकारी गाँववाले जादू की पिटाई को सारे गाँव का अपमान समझें और सब इकट्ठे होकर फिरंगी से लोहा लें।"

"अपनी पिटाई का तो मुझे दुख नहीं," जादू ने हवा में हाथ उछाला। वह बहुत गंभीर नजर आता था।

इतने में मुकन भी वहाँ आ निकला।

"तुम बताओ, मुकन !" जादू ने छूटते ही कहा, "क्या दुनिया की कोई ऐसी शक्ति है, जो हमें बदला लेने से रोक सके ?"

"एक बार देवकांत से मिलकर बात करनी चाहिए।" मुकन जले हुए घरों की ओर देखकर बोला, "हमने कभी न सोचा था कि नारायण यह चाल चलेगा।"

तीनों मित्र देर तक बातें करते रहे। "देखते नही, जो बे-घर हो गए, वे अपने कर्मो को रो रहे हैं।" जादू ने गंभीर होकर कहा, "जिनके बच्चे और बूढ़े जल मरे, उनके आँसुओं में बाढ़ आ गई—ब्रह्मपुत्र की बाढ़ से भी बड़ी बाढ़ !"

ब्रह्मपुत्र हमारे आँसू पीता आया है !" प्रभात ने ब्रह्मपुत्र की ओर संकेत करते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र हमारे सुख-दुख का साक्षी है।"

"हमारा अगला कदम क्या हो ?" मुकन ने प्रभात की बात अनसुनी करते हुए कहा, "यह बातों का समय नहीं, कुछ करने की बेला हमारे द्वार पर आकर खड़ी हो गई। उठो, कुछ करो !"

बयालीस

मणिवर किसी काम से दिखाँगमुख आया था। उसके पीछे-पीछे जादू, प्रभात और मुकन भी अपनी नाव लेकर दिसाँगमुख पहुँच गए। शिकारी गाँव के घर जलाए जाने की ख़बर पहले ही धनसिंह की दुकान तक आ पहुँची थी।

धनसिंह ने एक आदमी को भेजकर अतुल को बुलवा लिया। साथ ही राखाल काका आ गए।

रत्न ने चारों ग्राहकों के बाल छोटे कर दिए, पर जब वे पैसे देने लगे तो उसने लेने से इनकार कर दिया।

अतुल बोला, "आज तो धनसिंह भी चाय के पैसे नहीं ले सकता।"

चतुर्दिक कुहरा छाया हुआ था। धनसिंह की दुकान पर ज्ञान गोष्ठी का समाँ बँध गया।

रत्न बोला, "नारायण ने यहाँ तो कभी इतना अत्याचार नही किया था।"

"तुम्हारी तो नारायण की प्रशंसा करने की आदत रही है।" धनसिंह ने चोट की।

प्रभात बोला, "हमारे जादू भाई की जितनी पिटाई हुई, उसे तो हम भूल भी सकते थे, पर नारायण ने तो हमारे घर जला डाले।"

"पहले मेरी बात का उत्तर दो।" रत्न कह उठा, "शिकारी गाँव का थाना किसने जलाया था और क्यो जलाया था ? यह पट्टी देवकांत ने ही पढ़ाई होगी !"

मणिवर ने ठंड से सिकुड़ते हुए कहा, "देवकांत से मेरी बातें हुई है। वह तो कहता है—विदेशी राज्य का तख्ता तभी उलटा जा सकता है, जब हिंसा और अहिसा के दोनों उपाय काम में लाए जाएँ। उसके मतानुसार न अकेली हिसा कुछ कर सकती है, न केवल अहिंसा ही। हम तो अबूझ किसान है, हम पढ़े-लिखे भी नही हैं। मैंने उसे बहुत समझाया था। इन लड़कों को भी तो मैंने बहुत समझाया था। इन पर देवकांत का प्रभाव अधिक है।"

रत्न ने पूछा, "तो क्या शिकारी गाँव का थाना देवकांत ने जलाया था ?"

जादू बोला, "नही तो !"

राखाल ने कहा, "अब यह पूछने या बताने की बेला नही कि शिकारी गाँव का थाना किसने जलाया। मेरी आयु तो हाथियों के बीच बीती है। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—जो काम करना हो, पहले उस पर विचार कर लो; फिर जो फ़ैसला किया जाए, उस पर पूरी शक्ति से चलो।"

"तो फिर करना क्या है, काका ?" अतुल ने हाथ उठाकर कहा।

राखाल पहले तो ख़ामोश रहा। फिर उसने चबा-चबाकर कहना शुरू किया :

"पहले तो यह समझ लो कि शिकारी गाँव और दिसाँगमुख की पीड़ा कोई अलग-अलग नही है। जो हत्याकाड शिकारी गाँव में हुआ, उसे दिसाँगमुख मे भी दोहराया जाए, तभी हम उस पीड़ा को अनुभव करे, यह तो कोई बात न हुई।"

"बिलकुल सच है, काका !" अतुल ने जैसे सबकी ओर से कहा, "बिलकुल सच !"

धनसिंह ने चाय के गिलास तैयार कर लिए थे। सबके हाथ में एक-एक गिलास थमाते हुए बोला, "पहले जरा गरम हो लो।"

अतुल ने चाय का घूंट भरकर कहना शुरू किया, "मुझसे तो देवकात नाराज है। उसकी बात उड़ती-उड़ती मुझ तक पहुँचती रहती है। माझुली और दिसाँगमुख तो एक ही हैं। बीच में ब्रह्मपुत्र बहता है, बस यही अंतर है। वह कहाँ काम कर

रहा है, मैं यहाँ काम शुरू करना चाहता हूँ।"

"अब यह सुनते-सुनते तो मेरे कान पक गए, अतुल !" धनसिंह ने चोट की, "तुम कुछ नहीं करोगे। पहले जाकर जूनतारा से सलाह कर आओ !"

"जूनतारा बेचारी क्या कहती है ?" राखाल ने हाथ उठाकर कहा, "वह कब अतुल को काम करने से रोकती है ?"

"तो फिर हो जाए फ़ैसला !" अतुल ने कहना शुरू किया, "कल बृहस्पतिवार है, काका ! हाट-बाजार का दिन। दूर-दूर से लोग आएँगे, और मैं तो कहता हूँ·· "

"मैं तो कहता हूँ, जुलूस निकाला जाए !" धनसिंह ने हँसकर कहा, "वैसा ही जुलूस, जैसा गौहाटी, शिवसागर और डिब्रूगढ़ मे निकलता है। भगवान् की सौगंध ! आनंद आ जाएगा। शिवसागर से दिसाँगमुख का फ़ासला बहुत ज़्यादा भी तो नही। अरे अरे, आनंद आ जाएगा !"

राखाल ने भी इस विचार को पसंद किया।

तेतालीस

साँझ के समय दस-बारह नौकाएँ दिसाँगमुख से शिकारी गाँव भेज दी गईं। यह तय हुआ कि बच्चे, बूढ़े और जवान सब दिसाँगमुख आ जाएँ, जहाँ उनके खाने-पीने का प्रबंध दिसाँगमुखवाले करेंगे। दिसाँगमुखवालो ने चंदा करके लंगर का प्रबंध कर दिया। इस कार्य में मीरी, असमिया और नेपाली का भेद नज़र न आता था।

सूर्योदय के साथ-साथ शिकारी गाँव से नौकाएँ दिसाँगमुख पहुँची।

पहले शिकारी गाँववालों को जलपान कराया गया, फिर एक सभा का कार्यक्रम रखा गया।

ढोलिए ढोल बजा-बजाकर हाट-बाज़ार में आए हुए लोगों से प्रार्थना कर रहे थे—आप लोग सभा मे अवश्य पहुँचे।

सभा के लिए आलीसीगा के समीप वह स्थान चुना गया, जो पिछले वर्ष ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के कारण खेती के अयोग्य हो गया था।

सभा में आने के लिए चित्ताप्रसाद और विष्णुप्रसाद को भी संदेश भेजा गया, पर अंतिम क्षण तक प्रतीक्षा करने के बावजूद वे दिखाई न दिए। नीरद आज सवेरे से ही आ गया था; आज वह पहले से अधिक गंभीर नज़र आ रहा था।

शिकारी गाँव के जलने की ख़बर आँधी की तरह फैल गई, पर हाट-बाज़ार तो बंद नहीं हो सकता था। बाहर से आए हुए लोगों के लिए यह समस्या थी कि

वे अपनी चीज़ें किसे सँभालें। पर जब हाट-बाज़ार के बहुत से ग्राहक सभा में आ गए, तो राखाल काका ने हाट-बाज़ार मे जाकर लोगों को इस बात पर राजी कर लिया कि वे अपनी-अपनी चीज़ें समेटकर रख लें। इनकी रखवाली का काम आठ-दस युवकों को सौंप दिया गया; किसी की यह मजाल न थी कि कोई चीज इधर-उधर कर सके। देखा-देखी सब सभा मे आ गए।

सभापति राखाल काका को ही चुना गया। सभा के चारो कोनो पर पुलिस के सिपाही नज़र आ रहे थे। सभा में सबसे पहले उन लोगो के दर्शन कराए गए, जो शिकारी गाँव से बे-घर होकर यहाँ पहुँचे थे।

शिकारी गाँव के गाँव-बूढ़ा मणिवर ने अपने भाषण मे कहा, "यह कहना तो सहज नही कि घरों को आग किसने लगाई, जैसे यह कहना कठिन है कि थाने को आग किसने लगाई। फिर भी मैं एक ही बात कहना चाहता हूँ कि हमारे गाँव मे हमारी इच्छा के न होते हुए सरकार ने थाना बना दिया। इसीसे सारा झगड़ा शुरू हुआ। थाना बनाने का विचार सरकार छोड़ दे, मेरी तो इतनी ही प्रार्थना है।"

मणिवर के पश्चात् अतुल को कुछ कहने का आदेश मिला। उसने उठकर कहना शुरू किया, "मैं बहुत पढ़ा-लिखा आदमी नही हूँ, इसलिए मेरी बात में कुछ भूल हो तो मुझे क्षमा कर दिया जाए।

"जैसे मधुमक्खियाँ मधु इकट्ठा करती है, ऐसे ही हमारे पुरखो की अनगिनत पीढ़ियों ने मिलकर सचाई को इकट्ठा किया। वह सचाई क्या है? वह सचाई लबे अनुभव से पनपी। हमें उस अनुभव की कद्र करनी चाहिए।

"मैं लंबा-चौड़ा भाषण देने की शक्ति नही रखता, फिर भी एक बात अवश्य कहूँगा। जैसे शिकारी गाँव जलाया गया, वैसे ही हमारा गाँव भी जलाया जा सकता है। गाँव-बूढ़ा मणिवर यह क्यो भूल रहे है? शिकारी गाँव मिट जाएगा, तो वे किसके गाँव-बूढ़ा रहेंगे? क्या वे एक उजड़े हुए गाँव के गाँव-बूढ़ा बने रहना पसद करेंगे? इसलिए हमें ऐसा यत्न करना चाहिए कि शिकारी गाँव की रक्षा की जाए। शिकारी गाँव की रक्षा में ही दिसाँगमुख की भी रक्षा है। हमारे बीच ब्रह्मपुत्र बहता है, बस इतना ही अंतर है। यह तो कोई बड़ा अंतर नही।

"देवकांत जब यहाँ था, तो मेरे साथ उसकी हमेशा बाते होती थीं। वह सदा भारत माता की बात कहता था। मैंने तो भारत माता आज तक नही देखी। मैने तो दिसाँगमुख माता देखी है। जैसे शिकारी गाँववालों ने माझुली माता भले ही न देखी हो, शिकारी गाँव माता अवश्य देखी होगी।

"मेरा एक ही प्रस्ताव है, और यह प्रस्ताव मैं दिसाँगमुख की ओर से रख रहा हूँ। हम यहाँ से जुलूस बनाकर चलें, आगे-आगे शिकारी गाँव के निवासी हों, पीछे-पीछे हम दिसाँगमुखवाले। और भी दूसरे गाँवों के लोग यहाँ आए हुए हैं; वे चाहें तो अपनी शक्ति हमारे साथ मिला सकते हैं।"

यह कहकर अतुल बैठ गया।

राखाल काका ने उठकर कहा, "अब मैं प्रसिद्ध लेखक नीरद बाबू से कहूँगा कि वह भी अपने विचार हमारे सामने रखें।"

नीरद ने उठकर कहना आरंभ किया, "भारत माता की जय ! यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि भारत माता को तो आप लोग नही जानते, और आप तो अपनी-अपनी गाँव माता को ही जानते हैं। हमारे देश में तो कई प्रात हैं। बंगाल, असम और उड़ीसा; मद्रास, यू० पी० और बिहार; पंजाब, फ्रंटियर और बंबई। हमारा देश तो विशाल है। यहाँ सात लाख गाँव है। ये सात लाख गाँव माताएँ मिलकर एक ही नाम से पहचानी जाती हैं; वह नाम है भारत माता।

"मैंने बहुत यात्रा की है और सर्वत्र भारत माता के दर्शन किए हैं। एक दिन भारत माता स्वतंत्र होकर रहेगी। इससे तो अँग्रेज़ भी इनकार नही कर सकते। जब भी भारत माता स्वतंत्र होगी, वह अपने बेटों की मिली-जुली शक्ति से ही स्वतंत्र होगी। मैं राजनीति में पड़ा हुआ मनुष्य नही हूँ। मै तो एक साधारण लेखक हूँ।

"ब्रह्मपुत्र पर पुस्तक लिखने की मेरी पुरानी सनक है। मेरी पुस्तक का एक भाग शीघ्र ही छपकर आनेवाला है, दूसरे भाग की तैयारी कर रहा हूँ। मै आज तक जेल नही गया। जेल जाने का मेरा सकल्प भी नही है। फिर भी मै भारत माता का बेटा हूँ।

"देवकांत से कलकत्ता मे अक्सर मेरी बाते हुआ करती थी। वह मुझसे कहता था—क्रांति-पथ अपनाओ। मैं कहता था कि हमारा अपना-अपना पथ है। वह कहता था—लेखक तो और भी बहुत से है। मै कहता था—जो चीज़ वे लिख रहे हैं, मै उससे आगे की चीज लिखना चाहता हूँ; लिख पाऊँगा या नही, यह और बात है, यत्न तो कर ही रहा हूँ। वह कहता था—तुम लिखने के बहाने देश के काम से पीछे हट रहे हो। मैं कहता था—देश के लिए तो वे भी काम करते है, जो अपने चाक पर घड़े तैयार करते हैं; ऐसे ही लुहार और बढ़ई भी देश का काम कर रहे हैं; कपड़ा बुननेवाले जुलाहे और साबुन बनानेवाले मजदूर भी देश के लिए ही दिन-रात एक करते है; और हमारे विशाल देश के अनगिनत किसान, जो रात-दिन लहू-पसीना एक करके फ़सलें उगाते है, वे भी तो देश का काम करते हैं।

"मेरा मार्ग न हिंसा का मार्ग है, न अहिंसा का। मेरा मार्ग तो लेखनी का मार्ग है। शिकारी गाँववालों के साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। यदि मै शिकारी गाँव का गाँव-बूढ़ा होता, तो आग लगानेवालों के विरुद्ध अपना रोष प्रकट करते हुए गाँव-बूढ़ा की पदवी त्याग देता। एक लेखक भी त्याग करना जानता है। मुझे सरकार ने कोई उपाधि नहीं दी। पर इस अवसर पर मुझे रवीद्रनाथ ठाकुर की याद आती है, जिन्होंने अमृतसर के जलियाँवाला बाग़ में डायर के हत्याकाड से दुखी होकर

सरकार को 'सर' की उपाधि लौटा दी थी। मैं कहता हूँ, उस दिन रवीद्रनाथ ठाकुर ने भारत माता की आँखों में आँसू देखकर ही विदेशी सरकार द्वारा दी हुई उपाधि लौटा दी थी।

"भारत माता को अपनी माता मानते हुए आज मैं एक लेखक का धर्म पहचानता हूँ, पर मेरी लेखनी का विस्तार केवल हिंदुस्तान तक ही सीमित नही। मेरे सम्मुख तो समस्त विश्व है—विश्व माता! फिर भी मै कहता हूँ—आप जुलूस अवश्य निकालें। इस अवसर पर उपस्थित होने के नाते मै भी जुलूस में आपके साथ रहूँगा।"

जुलूस निकालने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से मान लिया गया। राखाल काका ने उठकर कहा, "शिकारी गाँव की जय! दिसाँगमुख की जय! आप लोग तैयार हो जाइए!"

जुलूस की कल्पना से राखाल काका पुलकित हो गए—अरे, अरे, सब लोग मिलकर शिवसागर की ओर प्रस्थान करेंगे, तो यो लगेगा जैसे हजारों आँखोंवाला एक विशाल हाथी झूमता-झामता जा रहा है।

चवालीस

सबसे आगे जादू, प्रभात और मुकन थे। उनकी आँखें चमक रही थी; कदमों में दृढ़ निश्चय की छाप थी। अतुल, राखाल काका और नीरद भी आगे बढ़े, और उनके पीछे-पीछे अथाह लोगों के पग उठने लगे।

चतुर्दिक् कुहरा छा रहा था। जुलूस जन-पथ पर चला जा रहा था। सबके मन यह कह रहे थे—ओ भाई सूरज, शीघ्र निकलो; हमें रास्ता दिखाओ! हमें हर प्रकार के अभद्र व्यवहार से दूर रखो।··· एक, दो, तीन! एक, दो, तीन! इसी ताल पर सबके पग उठ रहे थे। उन्हें कई मील चलकर शिवसागर पहुँचना था। इतनी दूर मंजिल तय करके तो आज तक कोई जुलूस नही चला होगा। इस जुलूस का हर व्यक्ति जैसे यही कहना चाहता हो—हम प्रतिनिधि जन-जन के, हम ब्रह्मपुत्र-संतान! हम न्याय चाहते हैं, हम जीने का अधिकार चाहते हैं। जो भी अन्याय की बाढ़ लाएगा, उसे मूक होना पड़ेगा, मुँह की खाकर रह जाना होगा। हम असहाय, विवश नही! हम जन-जन के प्रतिनिधि हैं···!

चलते-चलते जुलूस की गति कहीं भी मंद न पड़ी। कुहरा कुछ-कुछ बिखर गया। जुलूस में चलनेवालों की पदचाप आनेवाली क्रांति का पता दे रही थी। आखिर जुलूस शिवसागर के समीप पहुँच गया।

यह कैसा जुलूस है, शिवसागर में जल्दी-जल्दी यह बात किसी की समझ में न आई।

डिप्टी कमिश्नर की कोठी के सामने पहुँचकर जुलूस के गगनभेदी नारे सुनाई देने लगे :

"शिकारी गाँव पर अत्याचार बंद करो।"

"शिकारी गाँव का जलाया जाना भयानक अत्याचार है।"

"नारायण दारोग़ा असम का डायर बन गया।"

डिप्टी कमिश्नर के हैड क्लर्क ने बाहर निकलकर कहा, "शिकारी गाँव तो लखिमपुर ज़िले में है, जैसे समूची माझुली भी उसी ज़िले में है। साहब बहादुर कहते हैं—शिकारी गाँव हमारे हलके से बाहर है, इसलिए आप लोगों को लखिमपुर जाने की सलाह दी जाती है।"

जुलूस के नारे बराबर गूँजते रहे, जैसे सब लोग यह कहने पर तुल गए हों—आज तो लखिमपुर के साहब बहादुर को भी यही आकर जवाबदेही करनी पड़ेगी।

पुलिस के सिपाही देर तक लोगों को समझा-बुझाकर पीछे लौट जाने की सलाह देते रहे, पर मालूम होता था आज तो स्वयं शिवसागर के डिप्टी कमिश्नर के हाथ बाँधने पर भी वे लोग रात-भर यहीं डेरे डाल देंगे।

पैंतालीस

जब शिकारी गाँववालों को नौकाओं से वापस भेजा जा रहा था, नाव-घाट पर यह खबर पहुँची—देवकांत पकड़ लिया गया।

अतुल ने दाँतों तले उँगली दबाकर राखाल काका की ओर देखा—उसके मुख से एक भी शब्द न निकला।

"यह कैसे हो सकता है?" राखाल ने गंभीर होकर कहा।

"शायद यह खबर झूठ हो, काका!"

अतुल की जान-में-जान आई, "हम कब चाहते हैं काका कि देवकांत को कोई पकड़ ले।"

"यही तो मैं भी कहता हूँ। देवकांत का यही दोष है न कि वह हिंसा में विश्वास रखता है।"

अतुल ने कहा, "भगवान् करे देवकांत सही-सलामत हो।"

पास से किसी ने कहा, "पागल हाथी को तो मार डालते हैं।"

राखाल को उस समय यह बात बिलकुल रुचिकर प्रतीत न हुई। उसने कहा,

"मुझे तो देवकांत के पकड़े जाने की खबर बहुत बड़ी गप मालूम होती है।"

जादू, प्रभात और मुकन कुछ न बोले। उन्होंने काका और अतुल की ओर अहसान-भरी आँखों से देखा और नाव में जा बैठे, जहाँ मणिवर उन्हें बुला रहा था।

सब लोग पहले ही जा चुके थे; अब यह नाव भी धीरे-धीरे माझुली की ओर चल पड़ी।

आज ब्रह्मपुत्र बहुत शांत प्रतीत हो रहा था। राखाल सोचने लगा—यही ब्रह्मपुत्र वर्षा में कितना विकराल हो उठता है; ऐसे ही मनुष्य की प्रकृति है—कभी शांत, कभी एकदम क्रुद्ध।

नाव-घाट पर खड़े-खड़े काका के कदम भारी हो रहे थे। अतुल के कंधे पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, "क्या देवकांत को सचमुच पकड़ लिया गया? मेरा मन कहता है—ऐसा नहीं हुआ होगा!"

"तुम्हारी बात मेरे दिल में भी लगती है, काका!" अतुल ने स्थिर भाव से कहा।

"क्या?"

"देवकात बिलकुल सुख-चैन से होगा। हमारे जुलूस की खबर तो उस तक भी पहुँचेगी। उसे बहुत आनंद आएगा। वह सोचेगा—माझुली में मैं नारायण को तंग कर रहा हूँ, और अब दिसाँगमुख-निवासी मिलकर गोपीनाथ की नाक मे दम करने पर तुल गए है!"

ब्रह्मपुत्र के उस पार जानेवालों का यात्री-दल एक नावरिया से भाड़ा तय कर रहा था। पास ही कुछ मछुए नाव में जाल रखकर मछली मारने जा रहे थे। ब्रह्मपुत्र स्थिर भाव से बह रहा था, जैसे पार जाने अथवा मछली मारनेवालों की ओर ध्यान देने का उसे तनिक भी अवकाश न हो।

काका ने पहले ब्रह्मपुत्र की ओर देखा, फिर अतुल की ओर। उन्हें अतुल से बहुत आशा थी। वह अतुल के समीप मुँह लाकर कुछ कहना चाहते थे, इतने में कहीं से नीरद आ निकला। आते ही बोला, "ब्रह्मपुत्र महान् है, काका! ब्रह्मपुत्र ने हमें भाषा दी—जीवन की भाषा, मरण की भाषा। ब्रह्मपुत्र सदा हमारे साथ है; हमारे पुण्य-पाप पर सदा इसकी दृष्टि रहती है···"

"और तब क्या होता है, जब ब्रह्मपुत्र में बाढ़ आती है?" काका को भी चुनौती देने का अवसर मिल गया।

"ब्रह्मपुत्र हमारा पथद्रष्टा है।" नीरद कहता चला गया, "हमारा सखा, हमारा सह-यात्री; स्वतंत्रता की गुहार लगानेवाला जल-कवि, पथ का दावेदार! आगे-ही-आगे अपनी मंज़िल की ओर जाने के लिए कृत-संकल्प है ब्रह्मपुत्र; हमारे लिए भी उसकी यही टेर है—मंज़िल पहचानो, आगे बढ़ो।"

"हमारी मंजिल तो अब स्वतंत्रता से एक कोस भी इधर नहीं हो सकती!" अतुल ने गुहार लगाई, "कौन है, जो हमें रास्ता दिखाएगा?"

"शाबाश !" काका की आँखें चमक उठी।

"ब्रह्मपुत्र की अपनी परंपरा है", नीरद अपनी ही कहता चला गया, "एक चिरकालीन, जागरूक परंपरा ! बहता जा रहा है, बहता जा रहा है, बहता जा रहा है—ब्रह्मपुत्र ! सुदूर मानसरोवर से आता है, सुदूर सागर की ओर जाता है। स्वयं अपना इतिहास बनाता है ब्रह्मपुत्र, और हमसे कहता है यह हमारा शत-बाहु ब्रह्म-पुत्र—तुम भी गतिवान बनो; शत-बाहु बनो, सहस्र-बाहु बनो; बिको मत, मत बनो कठपुतली; अपना मोल पहचानो; मत बेचो किसी के साथ अपनी मंज़िल, अपनी चिर-यात्रा, अपनी चिर-साधना—कभी मत बेचो !"

"हम बिकेगे नही !" अतुल चुप न रह सका।

"शाबाश !" काका ने अतुल की पीठ ठोकी।

नीरद कुछ न बोला। उसके विचार गुटर-गूं-गुटर-गूं करते कबूतरो के समान एकाएक वातावरण की निस्तब्धता से लिपटकर चुप हो रहे। देश-काल की क़ैद ही क्या सबसे बड़ी सचाई है ? समय की लीक सरीखा बहता हुआ ब्रह्मपुत्र आख़िर क्या सिद्ध कर रहा है ? पानी को क्यों सोख लेती है सूखी धरती ? क्या राजनीति ही सबसे बड़ी सचाई है—देश-काल की क़ैद में जकड़ी सचाई ? देवकात इस सचाई के चक्कर मे कब तक फँसा रहेगा ? अतुल और राखाल काका भी क्या उसी ओर नही जा रहे ? देश-काल मे जकड़ी सचाई की भूल-भुलैयों मे एक बार प्रवेश करके क्या ये लोग कभी आराम से बाहर भी आ सकेगे ? काल का अपना अस्तित्व नहीं है क्या ? उसे क्यो नही देखते ये लोग ? क्या वे उसे देख नहीं सकते ? काल क्या मात्र एक अर्थहीन फैलाव है ? देश-काल का आलिंगन क्या इतना ही आवश्यक है ? देश के आलिंगन-पाश में आए बिना क्या काल अपनी सार्थकता सिद्ध नही कर सकता ?—ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्न नीरद को कुरेदते रहे।

"शाबाश !" काका ने दोबारा अतुल की पीठ ठोंकी, "हम बिकेंगे नही।"

"और नीरद बाबू को भी हम उसकी पोथी के पोखर मे ही नही डूबने देगे !" अतुल ने सँभलकर कहा, "क्यों नीरद बाबू ?"

"ब्रह्मपुत्र पर देवकात अपने हस्ताक्षर करना चाहता है", नीरद ने गभीर होकर अथाह जल-प्रवाह की ओर संकेत किया, "आप लोग भी तो उसी का अनु-सरण करने जा रहे हैं, पर पानी पर क्या किसी की लिखावट टिक सकती है ?"

अतुल ने राखाल काका की आँखों में देखा। काका भी कब स्थिति को हाथ से जाने दे सकते थे ? बोले, "सचाई तो ब्रह्मपुत्र में जमकर डटी हुई चट्टान के समान दृढ़ है ! चाँद-डूबी में हमारे नार्मन साहब कहा करते थे···।"

"सचाई तो ब्रह्मपुत्र की गहराई है, काका !" अतुल मुसकराया।

"और बहना नहीं है ब्रह्मपुत्र की सचाई ?" नीरद ने अतुल को वहीं रोकना चाहा।

नीरद को लगा, जैसे राखाल और अतुल यही कह रहे हों—सचाई तो देश-काल की सीमाओं में बँधकर ही नज़र आ सकती है !···ऊपर से नीरद मुसकराता रहा—भीतर मन की गहन गुफा से यही आवाज आती रही—तुम अपनी पोथी क्यों नही लिखते आराम से बैठकर ? ब्रह्मपुत्र क्या मात्र किसी परी-कथा का सपना है ? कुहासा क्या सदा-सदा के लिए ब्रह्मपुत्र को लपेट सकता है ? 'आज' क्या कभी 'कल' के सूत्र मे बँधने से रुक सका है ? लिली एक अँग्रेज़-दुहिता होकर भी असम से बँध गई, क्योंकि इसी ब्रह्मपुत्र की अथाह जलधारा पर स्टीमर के एक कक्ष में उसका जन्म हुआ। वह असम से बँध न गई होती, तो बार-बार यह क्यों कहती—डंडे के बल पर तो हम यहाँ नहीं टिक सकते···?

अतुल और राखाल काका परे को सरककर आपस में कुछ सलाह करने लगे। नीरद के पैर वही-के-वही जमे रहे। अपनी पुस्तक के इन शब्दों में खोया-खोया-सा वह वही खड़ा रहा—'सेतुहीन ब्रह्मपुत्र पर सेतु अवश्य बाँधा जाएगा एक दिन; जाएगा फिरंगी राज्य, आएगा स्वराज्य ! शायद देवकांत भी वह दिन देखने को बचा रह जाएगा। जी-ए-एन-डी-एच-आई—गाँढी ! जी-ए-एन-डी-एच-आई—गाँढी ! बार-बार रटेगी लिली—फिर से शिशु बनकर ! और हँसेगा देवकांत—लिली के विचार पर नही, उसके उच्चारण पर ! असम मे जन्म लेकर भी, ब्रह्मपुत्र से बँधकर भी यह अँग्रेज़-दुहिता अपने उच्चारण पर काबू नही पा सकी ! अरे गाँढी नही, लिली, गाँढी नही—गांधी कहो गांधी ! यो देवकांत लिली का उच्चारण सुधारेगा। तब फिरंगी राज्य समाप्त हो चुका होगा, स्वराज्य आ चुका होगा; तब लिली को 'ब्रह्मपुट्टर' के बजाय भी 'ब्रह्मपुत्र' कहना सीखना होगा !···'

राखाल काका ने पलटकर कहा, "अब हम नीरद बाबू को छोड़ेंगे नहीं ! देवकात के समान नीरद बाबू हमें छोड़कर कहीं नही जाएगा।"

"हाँ, काका !" अतुल ने हँसकर कहा, "नीरद बाबू हमें छोड़कर किसी माझुली में नही जाएँगे।"

अतुल के साथ जैसे ब्रह्मपुत्र भी हँस पड़ा—नीरवता को चीरकर प्रभात-कालीन सूरज की किरणों का आलिंगन करके जैसे शत-बाहु, सेतुहीन ब्रह्मपुत्र खामोश निगाहो मे बोला—नीरद कही नहीं जाएगा।

छियालीस

जिस दिन शिकारी गाँव के लोग दिसाँगमुख से वापस लौटे, नारायण ने उन्हें थाने के अहाते मे बुलाकर बहुत धमकाया। उधर छोटा दारोगा अंचितराम देर

तक प्रभात और मुकन को पुचकारता रहा; उसका विचार था कि वे देवकांत का पता बता देंगे, पर वे साफ़ इनकार करते रहे।

नारायण को यह पता चल गया था कि जिस रात शिकारी गाँव का थाना जलाया गया, उस रात देवकांत रंजन के बाँस-कुज में मचान पर लेटा हुआ था। जब नारायण को यह सुराग मिला और वह रंजन के बाँस-कुज में पहुँचा, तो वह मचान खाली पड़ा था। पंछी पहले ही उड़ गया था। पहले तो वह रंजन को पुचकारता रहा, वह साफ़-साफ़ बता दे कि पंछी उड़कर किधर को गया है, फिर जब आख़िरी बार रंजन को शिकारी गाँव के जले हुए थाने के अहाते में बुलाया गया, और यहाँ भी उसने कान पर हाथ धरकर यही कहा, "महाप्रभु ! मैंने तो सात महीने से देवकांत की शक्ल भी नहीं देखी," तो नारायण को बहुत क्रोध आया और उसने सबके सामने रंजन को एक पेड़ के साथ बाँधकर उसके सिर पर अपने भारी-भरकम बूट की ठोकरें लगाईं।

रंजन की चीखों से शिकारी गाँव के गाँव-बूढ़ा मणिवर का हृदय भीतर-ही-भीतर रो उठा। वह इस सोच मे पड़ गया कि रंजन की मदद कैसे की जाए, कैसे उसे बचाया जाए।

मुकन और प्रभात को अलग बैठाकर छोटा दारोगा अचिंतराम पुचकार रहा था, "बता दो, बेटो ! तुम्हें कुछ भी नहीं कहा जाएगा। मैं बड़े दारोगा जी से तुम्हें माफ़ी दिला दूँगा। उनका बूट तुम्हारे सिर पर नही पड़ेगा, जैसे रजन के सिर पर पड़ रहा है।"

जादू घर से भाग गया था। पुलिस का खयाल था कि अधा दिक्पाल सब जानता है कि जादू कहाँ गया है।

"जादू ज़रूर देवकात के पास गया होगा।" नारायण चिल्ला रहा था।

इस बहाने अंधे दिक्पाल को खूब पीटा गया। जादू की बहन पठचली पर हाथ उठाने से भी नारायण ने संकोच न किया। और-तो-और, सताग मीरी की बेटी गोपी को थाने के अहाते में बुलाकर जादू के बारे मे पूछा गया; वह बेचारी क्या बोलती, चुपचाप थप्पड़ खाती रही।

"कहो शिकारी गाँव की राधा !" अचिंतराम ने गोपी के पास आकर पुचकारा, "तुम्हारा वह कान्ह-कन्हैया भागकर कहाँ गया है ?"

गोपी रोती रही। उसके होंठ न हिले। उसने बिलकुल न बताया कि जादू किधर गया है।

रंजन के सिर पर बूट की एक और ठोकर लगाकर नारायण ने कहा, "सरकार के दुश्मन को घर में रखकर पालने का मज़ा चख ले, हरामी पिल्ले ! आज तेरी खोपड़ी टूटकर रहेगी।"

थाने के अहाते के पास बहुत भीड़ जमा हो गई थी। रंजन की एक-एक चीख़

पर गाँववालों के दिल दहल जाते थे। उनके हाथ उठना चाहते थे, पर वे मजबूर थे।

एक पेड़ के साथ प्रभात और मुकन को भी बाँध दिया गया था। अपने गाँव के इन वीरों पर अत्याचार होता देखकर शिकारी गाँववालों का खून खौलने लगा!

गोपी को एक झोंपड़ी में बंद कर दिया गया, जो उसी दिन तैयार की गई थी। वहाँ उसे बहुत पीटा गया। उसके बाल नोचे गए। उसकी चीखें दूर तक गूँजती रहीं।

नारायण बीच-बीच में बूट की ठोकरें बंद कर देता था।

"बता, साले!" नारायण गुर्राया, "कहाँ है देवकांत? कहाँ है जादू?" फिर उसने जोर से ठोकर लगाई, पर रंजन तो पहले ही बेहोश हो गया था।

रात के अंधकार में एक दुखांत तैयार हो रहा था। इसका सूत्रधार था नारायण। अब रंजन चीख न सकता था। अब मृत्यु एक हाथ पर खड़ी थी।...

उधर मणिवर के घर में सभा हो रही थी। वहाँ कुछ नवयुवक इस पक्ष में थे कि उसी रात नारायण का अंत कर दिया जाए, पर मणिवर ने कहा, "हम चलकर पहले नारायण से कहेंगे कि वह रंजन को हस्पताल में ले जाए। वह मान गया तो ठीक है, नही तो उसे ठिकाने लगाने से मैं किसी को न रोकूँगा।"

सैंतालीस

गाँववालों की बात नारायण की समझ में आते देर न लगी। उसने अचितराम को बुलाकर कहा, "तुरंत एक नाव का प्रबंध करो।"

उसका क्रोध शांत हो गया था। कुछ क्षणों की खामोशी के बाद उसने अपनी बात दोहराई, "अभी नाव चाहिए।"

"अभी लो, सरकार!" अचितराम उन्ही पैरों लौट गया।

माझुली का बड़ा हस्पताल यहाँ से काफ़ी दूर था। नारायण ने यही फ़ैसला किया कि रंजन को दिसाँगमुख ले जाए, जहाँ लिली ने इन्ही दिनों एक हस्पताल खोला था।

रंजन का सिर बुरी तरह फट गया था। नारायण ने एक-आध ठोकर और लगा दी होती, तो रंजन के प्राण-पखेरू सदा के लिए उड़ गए होते।

थोड़ी देर बाद अचितराम घबराया हुआ आया। उसने बड़ी विचित्र खबर सुनाई, "गोपी भाग गई।"

"कैसे भाग गई गोपी?" नारायण गुर्राया, "भाग गई या उसे कोई भगा ले गया?"

यह पता चलते देर न लगी कि गोपी को जादू भगा ले गया; उसी का यह साहस हो सकता था कि अंधकार की घनी चादर में मुँह लपेटे आकर थाने की झोंपड़ी की पिछली दीवार तोड़कर गोपी को साफ निकाल ले जाए। गाँववाले हाथ जोड़कर क्षमा माँगते रहे। मणिवर ने बीच-बचाव करते हुए कहा, "सरकार, मैं दो दिन के अंदर-अंदर गोपी और जादू को हाज़िर कर दूँगा।"

"गोपी भाग गई तो परवाह नहीं!" नारायण ने वस्तुस्थिति को काबू में रखने का यत्न किया, "पहले नाव तैयार करो। रंजन का इलाज कराना ज़रूरी है। जादू और गोपी को तो फिर भी ठीक किया जा सकता है।" फिर उसने मणिवर के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "अच्छा तो नाव खेने के लिए कौन-कौन-से दो नावरिया भेज सकते हो?"

"प्रभात और मुकन ही जाएँगे।" मणिवर झट कह उठा। नारायण ने सोचा, यह भी अच्छा हुआ कि आज प्रभात और मुकन की मरम्मत नहीं की गई। उसने जैसे क्रोध को थूकते हुए कहा, "मुझे गुस्सा आ गया था। गुस्सा बहुत बड़ा भूत है।"

मणिवर बोला, "फिर भी भगवान् का धन्यवाद है, सरकार! समय पर आपका गुस्सा ठंडा हो गया।"

"रंजन को दिसाँगमुख ले जाना होगा, लिली के हस्पताल में!" नारायण ने शांतिपूर्वक कहा, "घबराओ नहीं। रंजन ठीक हो जाएगा।"

"हाँ, सरकार!" मणिवर ने जैसे सबकी ओर से कहा।

चतुर्दिक् अंधकार था। मुकन बोला, "इस गहरी, काली रात में ब्रह्मपुत्र में नाव खेना संकट से खाली नही, सरकार!"

"मुकन ठीक कह रहा है!" प्रभात ने टंकार लगाई, "रात बीतने दीजिए। दिन मे चला जाए।"

"लाख संकट हो, अभी चलना होगा," नारायण ने दोनों युवकों की पीठ ठोकते हुए कहा, "रंजन के प्राण बचाने का सवाल है। यह न हो कि कल सवेरे का सूरज रंजन के मुँह पर मृत्यु की छाप देखे। जल्दी करो, रंजन को अभी ले जाना होगा।"

"हाँ, सरकार!" मणिवर ने आग्रह किया, "अभी ले जाइए रंजन को! बेचारे को कुछ हो न जाए!"

एक खाट पर डालकर रंजन को ब्रह्मपुत्र के किनारे ले जाया गया। प्रभात और मुकन को हुक्म दिया गया कि वे फौरन सिपाहियों के साथ घाट पर पहुँचें।

"हमे भी साथ ही चलना चाहिए, सरकार!" अंचितराम बोला, "दूसरी नाव तैयार करने में कौन-सी देर लगती है?"

"तुम्हारे जाने की ज़रूरत नही!" नारायण गुर्राया।

घाट पर पहुँचकर मणिवर बोला, "सरकार, आप दिसाँगमुख जाने का कष्ट

न करें। मैं चला जाता हूँ। रंजन का इलाज हो जाएगा। लिली के नाम आप चिट्ठी लिख दें।"

पर नारायण तो स्वयं ही रंजन को दिसाँगमुख ले जाने का फैसला कर चुका था। गाँववालों को यह देखकर संतोष हुआ कि नारायण का दिल अब इतना पिघल गया है।

बड़े आराम से रंजन को नाव में डाला गया। नारायण ने उसके सिर पर हाथ फेरकर पुचकारा, "मुझे माफ़ कर दो, दादा! तुम बच गए। नहीं तो तुम्हें कुछ हो जाता तो मैं कहीं का न रहता। सरकार मुझे फाँसी पर लटका देती।"

रंजन ने कुछ कहने का यत्न किया, पर वह बोल न सका। जब मुकन और प्रभात चप्पू और डाँड लेकर नाव में जा बैठे, तो मणिवर ने अपने हाथ से नाव खोलते हुए सब गाँववालों की ओर से कहा, "भगवान् भला करें!"

"भगवान् ने चाहा, तो हम परसों तक लौट आएँगे।" नारायण ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा, "भगवान् अवश्य भला करेंगे।"

"रंजन का बाल बाँका नहीं होगा!" अचिंतराम ने घाट पर खड़े-खड़े कहा, "लिली की डॉक्टरी की भी परीक्षा हो जाएगी। रंजन के प्राण बचाने का यश लिली को मिलकर रहेगा।"

नाव धीरे-धीरे ब्रह्मपुत्र की वेगवती धारा की ओर बढ़ने लगी।

"आराम से नाव को ले जाना!" मणिवर ने चिल्लाकर कहा, "सुन, रे मुकन! और प्रभात, तू भी सुन रहा है न? आज तो उसी तरह नाव खेना जैसे भगवान् कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में रथ चलाया था।"

"तुम चिंता मत करो, काका!" प्रभात और मुकन एक स्वर से बोले।

नाव आगे-ही-आगे बढ़ी जा रही थी। घना अंधकार ही भयभीत करने के लिए काफ़ी था। कभी-कभी बिजली चमकती, तो लगता कि ब्रह्मपुत्र शांत रूप भुलाकर अत्यंत विकराल हो उठा है।

"अभी तो मौका है, सरकार!" प्रभात ने चप्पू चलाते-चलाते कहा, "फिर आगे जाकर नाव पीछे मोड़ने को कहोगे तो कठिन होगा।"

"हाँ, सरकार!" मुकन ने हामी भरी, "प्रभात ठीक कह रहा है।"

"चाहे सारी रात लग जाए।" नारायण ने शांतिपूर्वक कहा, "आराम से नाव खेते-खेते कल सवेरे सूरज निकलने से पहले ही दिसाँगमुख के घाट पर नाव लग जाए, तो हमारा काम बन जाएगा। दिसाँगमुख-निवासियों के जागने से पूर्व ही हमें लिली के हस्पताल में पहुँच जाना चाहिए!"

ब्रह्मपुत्र मे इस समय नाव खेना सचमुच संकट मोल लेने से कम न था। विकराल लहरें, घना अंधकार, बादल बरसने को तैयार, बिजली की चमक—ये सब इस भयानक नाव-यात्रा को संकटमय बना रहे थे।

चलते-चलते वे कमलिया सापरी जा पहुँचे। रंजन को बुलाने का लाख यत्न करने पर भी उसने मुँह न खोला। जब बिजली चमकती, तो रंजन का चेहरा सबको दिखाई दे जाता।

"तुम नाव को बढ़ा ले चलो!" नारायण ने पुचकारा, "देर करना ठीक नहीं।"

प्रभात ने चप्पू चलाते-चलाते कहा, "हमारी नाव यहाँ डूब जाए, तो फिर भगवान् ही मालिक है!"

"वैसे मरना तो एक दिन सभी को है!" नारायण ने ज्ञान बघारा, "एक दिन आगे, या दो दिन पीछे, सभी को मृत्यु के अंचल से बँधना है!—यह बात मैं आउनियाटी सत्र के महाप्रभु के कीर्तन में भी कई बार सुन चुका हूँ!"

तूफ़ान का ज़ोर बढ़ रहा था। पानी की आवाज़ संकट का पता दे रही थी। प्रभात ने कहा, "कोई मछलियों से पूछे, तो वे यही कहेंगी कि हमारी नाव यही डूब जाए।"

आधी रात उस पार थी, आधी रात इस पार। कमलिया सापरी से थोड़ा दिसाँगमुख की तरफ़ नाव में पानी भरने लगा। अब बालटी भर-भरकर पानी निकालते रहना व्यर्थ था।

रंजन के चिल्लाने का तो प्रश्न ही नही उठ सकता था; नारायण बहुत चिल्लाया, जैसे उसे याद आ गया हो कि पाप की नाव भरकर डूबती है।

आखिर नाव डूब गई।

थोड़ी दूर तक तो नारायण, प्रभात और मुकन साथ-साथ रहे; रंजन बेचारा तो घड़प्प से पानी में डूब गया था। प्रभात और मुकन ने नारायण को सहारा देना चाहा, पर यह उनके बस का रोग न था।

प्रभात और मुकन ब्रह्मपुत्र की धारा के साथ-साथ दिसाँगमुख की तरफ़ बढ़ चले, जैसे आज उनके तैरने की अंतिम परीक्षा हो रही हो।

बिजली चमकी तो नारायण भी हाथ मारता नज़र आया, पर शीघ्र ही फिर अंधकार हो गया। दोबारा बिजली चमकी, तो प्रभात और मुकन को नारायण दिखाई न दिया।

"हाय बेचारा रंजन!" प्रभात ने तैरते-तैरते कहा, "नारायण के डूबने का तो मुझे दुख नहीं।"

"नारायण के डूबने का भी दुख किसे होगा?" मुकन ने झट उत्तर दिया, "जिसने हमारे घर जलाए, आदमियों को भून डाला, रंजन को मार-मारकर अधमरा कर दिया—उस राक्षस के डूबने का भी भला किसी को दुख हो सकता है?"

ब्रह्मपुत्र की वेगवती जलधारा से पार पाना सहज न था। मुकन और प्रभात

शिकारी गाँव के माने हुए तैराक थे, इसलिए तैरते-तैरते वे किनारे पर लग ही गए।

किनारे पर पहुँचकर दोनों मित्रों ने एक-दूसरे को आलिंगन में कस लिया। वे मृत्यु के मुँह से बच निकले थे। भयावह अँधियारी रात में कोई मगरमच्छ उन्हें सहज ही अपना भोजन बना सकता था। ब्रह्मपुत्र की किसी भँवर में फँस गए होते तो कौन उनकी रक्षा करता?

सुबह की किरणें फूट रही थी। वे किनारे-किनारे चलकर दिसाँगमुख जा पहुँचे। नाव में बैठकर उन्होंने दिसाँग नदी पार की। ब्रह्मपुत्र और दिसाँग का संगम तूफ़ान के कारण बहुत फैल गया था।

"यही कभी दिसाँगमुख की चितालिया बस्ती आबाद थी!" मुकन ने गंभीर होकर कहा, "धनसिंह चायवाले का घर भी यहीं-कही था!"

एक नावरिया ने प्रभात को पहचानकर कहा, "तुम शिकारी गाँव से कब चले थे?"

"यह मत पूछो, भैया!" मुकन बोला, "पहले हमें आलीसीगा में धनसिंह की दुकान पर पहुँच लेने दो। चाय के दो घूँट पीकर जान-में-जान आए, तो वहाँ बैठकर हम बताएँगे, कैसे हमारी नाव डूबी, कैसे तैरकर बाहर निकले।"

नावरिया ने कहा, "नाव डुबोने मे तो ब्रह्मपुत्र बाबा को आनंद आता है। उस दिन जुलूस में तुम दोनों को देखा था, ऐसा याद पड़ रहा है।"

जब वे आलीसीगा पहुँचे, तो धनसिह ने अभी-अभी पानी डालकर केतली आग पर रखी थी। वही रत्न खड़ा था; उसने प्रभात और मुकन को पहचान लिया।

धनसिह की दुकान पर माझुली और दिसाँगमुख की बातें चलती रहीं। कभी वे नारायण और गोपीनाथ का मुकाबला करने लगते, कभी यह प्रसंग सामने आ जाता कि क्या तूफान मे बिफरे हुए ब्रह्मपुत्र के अत्याचार फिरंगी के अत्याचार से कम हैं।

धनसिह बोला, "धोबी को तो मैले कपड़े पहनने को मिलेंगे, फ़िरंगी का राज्य हो चाहे कांग्रेस का।"

"ब्रह्मपुत्र जानता है कि चप्पू कितना गहरा जाता है।" रत्न ने कल्याण भगत के अंदाज़ में ज्ञान बघारा, "हमारा जीवन भी एक ब्रह्मपुत्र है; इसमें हम छोटे-छोटे विचारो की नावें खेते हैं।"

धनसिह ने उछलकर कहा, "फिरंगी को जाना पड़ेगा। स्वराज्य आ रहा है, मेरे भाई! चाय पियो गरम-गरम। स्वराज्य जल्द आ गया तो चाय सस्ती हो जाएगी।"

"हम जानते है कि हमारे अंदर कई दोष हैं!" रत्न ने तान तोड़ी, "वह किसी

ने कहा है न—बुद्धिमान शत्रु अच्छा, निर्बुद्ध मित्र नहीं। वैसे देखा जाए तो फिरंगी इतना बुरा नही। सब-के-सब अँग्रेज तो बुरे नही होते होगे। हडसन साहब कितने कठोर-हृदय है, पर उनकी लड़की लिली तो कोई देवी है देवी! निर्धन-से-निर्धन चला जाए उसके हस्पताल में, क्या मजाल वह पैसा माँग जाए! इतना सेवा-भाव तो शिवसागर के किसी असमिया डॉक्टर में भी नहीं होगा!"

"हम अपने सेवा-भाव को भी क्यों भुलाएँ?" धनसिह ने हँसकर कहा, "जहाँ तक हो सकेगा, हम सस्ती चाय पिलाएँगे और तुम भी सस्ती हजामत बनाने की बात न भुलाना! क्यों रे मुकन भैया और प्रभात भैया, क्या मैं कुछ झूठ कह रहा हूँ?"

चाय से निबटकर प्रभात और मुकन ने शुरू से आखिर तक अपनी कहानी सुना डाली।

अड़तालीस

ब्रह्मपुत्र बड़े-बड़े कगार निगलकर भी बराबर भूखा नज़र आ रहा था। यह देखकर तो यही कहा जा सकता था कि ब्रह्मपुत्र देवता नही, दानव है। "इस पर नारियल चढ़ाओ चाहे दूध-भरा सोने का कलस!" राखाल ने बड़ी-बड़ी दरारों की ओर संकेत करते हुए कहा, "अब यह भूमि भी कट जाएगी। फिरंगी का अत्याचार अलग बढ़ गया है। पता नही कांग्रेसवाला स्वराज्य कब आएगा!"

"इस बार तो लगता है कि चितालिया के समान ही आलीसीगा भी बह जाएगा!" नीलमणि ने भर्राई हुई आवाज में कहा, "हम कहीं के भी नहीं रहेंगे। हम नष्ट हो गए, तो फिर क्या अंतर पड़ता है? फिरंगी का राज्य रहे, चाहे गांधी बाबा देश की गद्दी पर बैठ जाएँ!"

राखाल काका कहते चले गए, "शिकारी गाँव में अब थाना नही बनेगा, और अगर बनेगा भी तो फिर से जला डाला जाएगा।" लेकिन नीलमणि की समझ में यह बात बिलकुल न आई। वह खुले शब्दों में काका की बात काटने को तैयार हो गया, "फिरंगी भी कच्ची गोलियाँ खेलकर बड़ा नही हुआ, दादा! उसके पास नारायण जैसा दारोगा है।"

"नारायण कुछ नही कर सकता!" राखाल ने बड़ी दृढ़ता से कहा, "उसे तो मुँह की खानी पड़ेगी। उसका मुकाबला एक देवकांत से होता, तो और बात थी। वहाँ माझुली में तो कई देवकांत पैदा हो गए। उधर माझुली जाग उठी है, इधर हम भी कब सो रहे है! अब हमें माझुलीवालों को अबूझ और उजड्ड कहकर उनका

उपहास करने की आदत छोड़ देनी चाहिए।"

"तो हम क्या करें?"

"क्या करें? यह भी कोई पूछने की बात है! हर आदमी अपना धर्म पहचाने।"

"अच्छा तो मेरा धर्म मुझे बताओ।"

"धर्म बताया नही जाता, इसे समझकर इस पर चला जाता है।"

"फिर भी कुछ तो कहो।"

"तुम तुरंत गाँव-बूढ़ा का पद छोड़ दो।"

"मैं गाँव-बूढ़ा नही रहूँगा, तो कोई और रहेगा। फ़िरंगी के लिए तो कुछ अंतर नही पड़ता।"

"वह हम देख लेंगे।"

"तो तुम भी छोड़कर दिखाओ फिरंगी की पेंशन, तब तुम्हारी बात हमारी समझ में आ सकती है।"

"उसका फ़ैसला मैं कर चुका हूं।"

नीलमणि के लिए यह बात बिलकुल नई थी। एक बार फ़ैसला करके राखाल पीछे हटनेवाला आदमी नही था। राखाल सामने खड़ा था; उसकी आँखो में नई चमक थी, जैसे वह दिसाँगमुख की नई संभावनाओं का प्रतीक बन गया हो।

"पेंशन छोड़कर तो तुम्हें कष्ट होगा।" नीलमणि ने जैसे राखाल की परीक्षा लेनी चाही।

"अरे कष्टों के लिए ही तो बना है यह शरीर।" राखाल मुसकराया, "चाँद-डूबी में हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—पहले सोचकर फ़ैसला करो, फिर उस फ़ैसले से पीछे न हटो!"

"तो यह तुम्हारा अंतिम फ़ैसला है?"

"और नही तो!"

"पर इससे क्या लाभ होगा?"

"लाभ की नही, यह तो चुनौती की बात है; चुनौती हमेशा अपने से आरंभ होती है। चाँदडूबी में हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—आपकी बात का दूसरे पर तभी असर होगा, जब पहले आप कुछ करके दिखाएँ।"

बातें करते-करते वे धनसिंह की दुकान पर पहुँच गए। राखाल ने पेंशन छोड़ दी, यह ख़बर पहले ही धनसिंह तक आ पहुँची थी। उसने छूटते ही पूछा,"क्या यह सच है काका, कि आपने फ़िरंगी की पेंशन पर लात मार दी? हमने तो यही सुना है।"

"सुना तो हमने भी है।" राखाल ने हँसकर कहा, "यह फ़ैसला तो मुझे बहुत पहले ही कर लेना चाहिए था। मैं कहता हूँ—अब शिकारी गाँव में दोबारा थाना नहीं बनेगा।"

रत्न भी आकर इस गोष्ठी में सम्मिलित हो गया। नीलमणि ने गंभीर होकर कहा, "राखाल का यह विचार मेरी समझ में तो नही आता कि शिकारी गाँव में दोबारा थाना नही बनेगा।"

"न बने तो अच्छा है", धनसिंह बोला, "माझुली को फ़िरंगी की गुलामी नही चाहिए।"

"फ़िरंगी की गुलामी तो हमें भी नही चाहिए।" राखाल की आवाज़ में दृढ़ता थी।

"तो क्या हम भी दिसाँगमुख का थाना जला डालें?" रत्न ने बढ़ावा दिया, "क्यों, काका? बोलो, हम क्या करे?"

"तुम क्या करोगे?" राखाल ने पलटकर कहा, "तुम चाहो तो कम-से-कम दारोगा गोपीनाथ की मुफ्त हजामत बनाना ही छोड़ सकते हो।"

"तुम कहते हो तो छोड़ सकता हूँ! पर इससे क्या लाभ होगा, काका? मैं नही तो कोई दूसरा नापित दारोगाजी की हजामत करने के लिए कैंची-उस्तरा लेकर पहुँच जाएगा उनके डेरे पर!"

धनसिंह की चाय बिक रही थी। मालूम होता था कि जब तक सहस्रबाहु ब्रह्मपुत्र आलीसीगा को निगल नहीं लेता, धनसिंह की चाय इसी तरह बिकती रहेगी और इसी तरह की ज्ञान-गोष्ठी भी अवश्य जमती रहेगी।

चाय पीते-पीते राखाल की कल्पना में उस लंबे जुलूस का दृश्य घूम गया, जो उस दिन दिसाँगमुख से चलकर शिवसागर में कमिश्नर साहब के बँगले पर पहुँचा था। कमिश्नर साहब ने कितने आराम से यह मामला लखिमपुर ले जाने की सलाह दे डाली थी। शिकारी गाँव के दुखांत की शिकायत अब तक तो लखिमपुर जा पहुँची होगी। काश, शिवसागर के कमिश्नर साहब चाँदडूबी के नार्मन साहब जैसे होते! दोनों अँग्रेज़ है। एक कितना बड़ा देवता है, दूसरा कितना बड़ा दानव! इस दानव द्वारा डेपुटेशन का अपमान हमारे लिए असह्य था। हमने कभी इसकी कल्पना भी न की थी। वही कमिश्नर साहब की कोठी के सामने खड़े-खड़े मैंने फ़ैसला कर लिया था कि फ़िरंगी के हाथों मिलनेवाली पेंशन पर लात मार दूँगा!···चाय का खाली गिलास नीचे रखते हुए राखाल ने कहा, "अपनी धरती, अपना धान; थोड़ा चाहे ज़्यादा, जितना भी मिल जाया करेगा। अब मैं अपनी धरती के धान से ही दो जून पेट भरकर रह जाऊँगा; फ़िरंगी की पेंशन नहीं लूँगा, नहीं लूँगा, नहीं लूँगा!"

धनसिंह ने राखाल की बात अनसुनी करते हुए कहा, "कहते हैं कौसारी गाँव का गाँव-बूढ़ा रंजन बहादुर निकला। उसने देवकांत को छिपाने में मदद दी। नारायण को पता लग गया। वह रंजन के पास पहुँचा। रंजन ने साफ इनकार कर दिया। नारायण को गुस्सा आ गया, और···"

"नारायण के गुस्से को कौन नहीं जानता?" रत्न कह उठा, "शिकारी गाँव

का प्रभात बता रहा था कि नारायण ने रंजन को अपने बूट की ठोकरों से अधमरा कर दिया !"

इतने में कल्याण भगतजी आ निकले।

"क्या ज्ञान-चर्चा हो रही है ?" भगतजी मुसकराए।

"कौसारी गाँव के गाँव-बूढ़ा रंजन को नारायण दारोगा ने किस तरह अधमरा किया बूट की ठोकरों से—यही बात हो रही थी !" नीलमणि की आवाज़ भर्राई हुई थी।

"अधमरे रंजन को नाव में डालकर नारायण दिसाँगमुख की ओर आ रहा था।" धनसिंह चुप न रह सका, "वह रंजन का इलाज कराना चाहता था हस्पताल में लाकर। पहले पीटते है, फिर इलाज कराने दौड़ते है। कितने विचित्र है फ़िरगी के पिट्ठू ! कमलिया सापरी के पास नाव डूब गई ! शिकारी गाँव के प्रभात और मुकन नाव खे रहे थे। उन्होने तैरकर जान बचाई।"

"तुम्हें किसने बताया ?" राखाल की आवाज भर्राई हुई थी।

"प्रभात और मुकन आज सवेरे यहाँ पहुँचे।" धनसिह ने कहा, "पुलिस के डर से वे कहीं छिप गए होंगे।"

"नारायण और रंजन की लाशे अब कहाँ मिलेंगी ?" नीलमणि ने आग्रहपूर्वक कहा, "तलाश तो करनी ही चाहिए। वैसे लाशें मिल भी गई तो क्या होगा ?"

"यह सब तो ब्रह्मपुत्र बाबा की इच्छा पर है।" कल्याण भगत ने हाथ उछाल-कर कहा, "कोई क्या बोल सकता है ? एक राक्षस और एक देवता साथ-साथ डूब गए। मछलियों के लिए तो कोई अंतर नही। उनके लिए तो सब मास बराबर है। पर सच्चा वैष्णव वही है, जो मास को मुँह नही लगाता !"

"तो क्या भगतजी का विचार है कि कभी ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ भी वैष्णव बन सकती हैं ?" रत्न ने हँसी की फुलझडी छोड़ी।

"हरि नाम की चादर ओढ़कर बात करो, बेटा रत्न !" कल्याण भगत ने जैसे आगत-अनागत की सीमा-रेखा पर खड़े होकर कहा, "यह कलियुग है, और प्रतीत होता है कि ब्रह्मपुत्र बाबा भी वैष्णव धर्म का परित्याग करने पर तुल गए हैं। नाव डूबने की इतनी दुर्घटनाएँ पहले तो नहीं होती थी। पहले इतनी बाढ़ भी नहीं आती होगी—सतयुग, द्वापर और त्रेता में !···तभी तो मै कहता हूँ, हरि नाम की चादर ओढ़कर कलियुग से पार पा लो !"

"तो क्या आपका विचार है कि धनसिह के पाप ही पिछले-से-पिछले वर्ष की बाढ़ में हमारे दिसाँग मुख की चितालिया बस्ती को ले डूबे थे ?" रत्न ने चोट की।

"हरि नाम ! हरि नाम !" भगतजी बोले, "बड़ डिकडारी ! बड़ डिकडारी !"

"बेचारी चितालिया !" धनसिह ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा, "अब तो चितालिया का नाम ही शेष रह गया है। वहाँ तो अब ब्रह्मपुत्र और दिसाँग के

संगम का आँचल फैल गया है। जहाँ कभी हमारा घर था, वहाँ अब पानी-ही-पानी है ! और वहाँ अब बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को मज़े से खाती होंगी।"

"अब यह तो स्वार्थ की चरम सीमा है !" रत्न ने व्यंग्य कसा, "तुम्हारे स्वार्थ का यही हाल रहा धनसिंह, तो देख लेना, ब्रह्मपुत्र बाबा एक दिन हमारे इस आलीसीगा को भी बहा ले जाएँगे। खैर छोड़ो। नई पत्ती डालकर केतली में चाय तैयार करो। आज तुम्हारी चाय में मज़ा ही नही आ रहा।"

अतुल, जो अब तक न जाने क्या सोचकर चुप था, झट कह उठा, "नई पत्ती डालकर चाय बनाने की बात तो रत्न ने मेरे होठो से छीन ली ! धनसिंह भाई, नई पत्ती डालकर चाय का रग बाँध दो।"

राखाल कहता चला गया, "ब्रह्मपुत्र बाबा का हाथ रोकनेवाला अभी तक पैदा नही हुआ। यह तुम्हारा फ़िरंगी कितनी भी डीगें क्यो न मारे, क्या वह आज तक ब्रह्मपुत्र पर पुल बना सका है ?"

"और बाढ़ रोकने की शक्ति तो फ़िरंगी के बापू में भी नही होगी !" अतुल ने दृढ़तापूर्वक कहा, "यह तो ब्रह्मपुत्र को खुद ही हम पर तरस आ जाता है, जो वह ऊँचा उठकर भी नीचे उतर जाता है।"

"हरि नाम ! हरि नाम ! बड़ डिकडारी ! बड़ डिकडारी !" भगतजी ने अपनी ही हाँकी, "इसीलिए तो मै कहता हूँ कि हरि नाम की चादर ओढ़ो। अंडी या मूगा की चादर ओढ़कर कलियुग से पार पाना सहज नही। फिरगी को तो हम वृथा दोष देते हैं। वह तो हमारा भला चाहता है। इसीलिए उसने थाने बनाए, कचहरियाँ बनाईं।"

"वाह वाह !" अतुल ने जैसे चिढ़कर कहा, "इसीलिए फिरंगी ने थाने बनाए, कचहरियाँ बनाई ! मै कहता हूँ, फ़िरंगी बिलकुल नही चाहता कि हमारे आपस के झगड़े मिट जाएँ। वह तो हमारे झगड़ों को हवा देता है। उसका कानून ही ऐसा है। फ़िरंगी के राज्य में अभी तो मुकदमे बढ़ेगे। देखते नही, शिवसागर मे पहले से कही अधिक हो गए हैं वकील, प्लीडर और एडवोकेट ! उनका काम ही यह है कि सच को झूठ बनाकर दिखा दें कचहरी में, और झूठ को सच सिद्ध कर दें। छोड़ो, भाई ! मैं अकेला इसमें क्या बोल सकता हूँ ? फ़िरंगी का मुकाबला तो हम मिलकर ही कर सकते हैं।"

"हरि नाम ! हरि नाम ! बड़ डिकडारी ! बड़ डिकडारी !" भगतजी ने रट लगाई।

इतने में आरती भागती हुई आई। उसकी साँस चढ़ी हुई थी। मालूम होता था, वह नाव-घाट से सरपट भागती आई है। उसने सँभलकर कहा, "घाट पर दो लाशें आ लगी हैं !"

सब उठकर नाव-घाट की ओर चल पड़े।

उनचास

तेज़ हवा चल रही थी। आकाश पर मेघ देखकर लगता था कि किसी भी समय वर्षा की झड़ी आरभ हो सकती है।

कमलिया सापरी की ओर से बहकर आती लाशों को पहले धर्मानंदी ने ही देखा था, जब वह मछली मारने जा रहा था। उसने जाल फेंककर इन लाशों को काबू में कर लिया था।

दिसांगमुख के नाव-घाट पर देखते-देखते भीड़ जमा हो गई। एक लाश की आँखें बंद थी, दूसरी की खुली।

खुली आँखोंवाली लाश नारायण की थी; बंद आँखोंवाला था रंजन, जिसके शरीर पर चोटो के निशान साफ़ नज़र आ रहे थे।

भीड़ में से किसी की आवाज़ आई, "अरे यह बंद आँखोंवाला तो कौसारी गाँव का गाँव-बूढ़ा मालूम होता है।"

"और यह खुली आँखोंवाला है नारायण दारोगा!" दूसरी आवाज़ आई, "बेटाजी को क्या मालूम था कि एक दिन ब्रह्मपुत्र में डूबकर मरना होगा।"

तरह-तरह के बोल सुनाई देने लगे :

"एक देव था, तो दूसरा दानव!"

"बड़ी ही मनहूस मृत्यु पाई बेचारों ने!"

"सब भगवान् का खेल है।"

"ब्रह्मपुत्र बाबा को दोष देना व्यर्थ है।"

"बड़ डिकडारी! बड़ डिकडारी!"

"ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों से बड़ा हुआ ब्रह्मा का पुत्र—यह हमारा ब्रह्मपुत्र! वह किसी को बचाए चाहे मारे।"

"ये दोनों लाशे जीवित क्यो नहीं हो जाती, एक क्षण के लिए।"

"अरे कोई मरकर भी जीवित हुआ है! जिसे ब्रह्मपुत्र डुबोकर मार डाले, उसे तो स्वयं ब्रह्मा भी उठाकर खड़ा नही कर सकते।"

इतने में पुलिस भी आ पहुँची। थाने से वे लोग प्रभात और मुकन को भी अपने साथ लेते आए थे, जिन्हें आज सवेरे ही पकड़ लिया गया था और जिनकी पिटाई करने में पुलिस ने कोई कसर नहीं उठा रखी थी। लाशों की आज सवेरे से ही तलाश थी।

पहले पुलिसवाले धर्मानंदी से पूछताछ करते रहे, फिर उन्होंने सबके सामने प्रभात और मुकन की थप्पड़ों से गत बनाई। गोपीनाथ दारोगा ने चिल्लाकर कहा, "तुमने नाव को क्यों डूबने दिया?"

उसी समय आकाश से ज़ोर का मेघ-गर्जन सुनाई दिया, एक बार बिजली भी चमकी। ब्रह्मपुत्र की लहरें भी क्रोध में आकर गुर्राईं, जैसे वे गोपीनाथ के उलटे प्रश्न पर नाराज़ हो उठी हों।

गोपीनाथ ने मुकन के बाल नोचकर कहा, "तू नारायण दारोग़ा को भी तैराकर क्यों नही ले आया था किनारे पर ?"

एक सिपाही ने प्रभात को जोर से झकझोरकर कहा, "तुमने गाँव-बूढ़ा रंजन को क्यों डूबकर मरने दिया ?"

धर्मानंदी वहाँ खड़े-खड़े विचारधारा में बह गया—ब्रह्मपुत्र पागल हाथी की तरह भागा जा रहा है। इसी पागलपन में ही तो वह दिसाँगमुख की चितालिया बस्ती को निगल गया था एक दिन ! इसी पागलपन के कारण ही वह अब्दुल कादिर की जमीन खा गया था, और जब से वह बेचारा हज से लौटकर आया है, दिसाँगमुख छोड़कर शिवसागर चला गया। उसके संबध में यह प्रसिद्ध हो गया है कि वह शिवसागर की अदालत में बैठा रहता है, और उसने कई मजिस्ट्रटो तक से साँठ-गाँठ कर रखी है। इन दिनो झूठी गवाहियाँ दे-देकर ही वह दो जून का भोजन पा लेता है। 'तुरंत दान महा कल्याण !'—यही आजकल उसका प्रिय मंत्र है !··· फिर उसने पासवाले आदमी को संबोधित करते हुए कहा, "वह सामने अब्दुल कादिर मालूम हो रहा है। उसे बुलाओ तो !"

अब्दुल कादिर ने पास आकर कहा, "कहो, धर्मानंदी ! कभी हमारी याद भी आती है। हमसे तो दिसाँगमुख छूट गया। आप लोगो को भी न जाने क्या मज़ा आता है कि दिसाँगमुख में ब्रह्मपुत्र के किनारे रहने पर अड़े हुए हो। कुछ पता भी है कि ब्रह्मपुत्र अब तक अपने किनारो के कितने ग्रामों की हत्या कर चुका है।"

"बाबा को हत्या का दोष देते हो !" धर्मानंदी ने सँभलकर कहा, "ब्रह्मपुत्र बाबा तो निर्दोष ही माने जाएँगे, मियाँ अब्दुल कादिर !"

"गाँव-के-गाँव बह जाते है, फिर भी ब्रह्मपुत्र बाबा का पेट नही भरता।"

"कुछ हर्ज नही, मियाँ अब्दुल कादिर ! नावें डूब जाती हैं—जैसे अब हुआ—अरे भाई, प्रभात और मुकन की पिटाई से क्या हाथ आएगा ?"

"धन्यवाद नही देते भगवान् को कि ये बेचारे बड़ी वीरता से ब्रह्मपुत्र में तैरते हुए किनारे पर आ पहुँचे और बच गए ! हाँ, तो मै कह रहा था कि दिसाँगमुख डटा हुआ है। पीछे हटते-हटते काफ़ी पीछे आ गया। अरे मियाँ, आता कैसे नहीं ? ब्रह्मपुत्र बाबा जो हमारी तरफ़ ज़ोर मार रहे हैं, फिर भी हम ब्रह्मपुत्र बाबा के साथ ही चिपके रहना चाहते हैं। आज इतने दिनों बाद तुम यहाँ आए। तुमने दिसाँगमुख छोड़कर अच्छा नही किया। अरे मियाँ, यहीं रहो हमारे बीच।"

पास से किसी ने कहा, "यहाँ क्या ब्रह्मपुत्र बाबा की झूठी गवाही देगा अब्दुल कादिर, यहाँ क्या करेगा ?"

"बात तो ठीक कही तुमने।" धर्मानंदी मुसकराया।

अब्दुल कादिर ने झुँझलाकर कहा, "अरे धर्मानंदी, क्यों बढ़-बढ़कर जबान चला रहे हो? घर मे इतनी बड़ी लड़की हो गई हथिनी जैसी। उसके ब्याह की तो तुम्हें कभी चिंता नहीं सताती!···लो वह आ गई आरती भी। किस तरह कुदक्के मारती आ रही है राखाल काका और कल्याण भगत के सामने! अरे वह तो नीलमणि, धनसिंह, रत्न और अतुल भी चले आ रहे है!"

गाँव-बूढ़ा नीलमणि ने गोपीनाथ दारोगा के पास आकर कहा, "ब्रह्मपुत्र बाबा ने तो अपनी लीला दिखा दी। अब इन लाशों को ठिकाने लगाने में क्या देर है?"

"दोनों लाशें पोस्ट मार्टम के लिए शिवसागर जाएँगी।" गोपीनाथ ने शात भाव से कहा, "हमें खुद जल्दी है। आरती को भेजा था। तुम्हारा ही इंतजार था।"

पचास

अब्दुल कादिर अपना घर एक हज़ार से कम में बेचने पर राजी न था, जबकि चित्ताप्रसाद इसे अपने 'अंडी मूगा सहकारी संस्थान' के लिए पाँच-सात सौ मे ही पटा लेना चाहता था।

चित्ताप्रसाद ने टूटी-फूटी झोंपड़ी की तरफ़ उँगली उठाकर कहा, "इस झोपड़ी का नही, मोल तो इस ज़मीन का है।"

"ज़मीन का मोल ही तो माँग रहा हूँ।" अब्दुल कादिर की आँखें चमक उठी और फिर जैसे एकाएक यह चमक विलुप्त हो गई, "एक जी चाहता है—यह सौदा न करूँ, बाप-दादा की निशानी इसी तरह बनी रहने दूं। फिर सोचता हूँ कि जब अपनी कोई औलाद ही नहीं, तो फिर किसके लिए बचाकर रखूँ यह जायदाद? आज नही तो कल, एक दिन इस घर को भी ब्रह्मपुत्र निगल जाएगा, जैसे मेरी ज़मीन चली गई ब्रह्मपुत्र के मुँह में!"

"ऐसे बोल मुँह से न निकालो।" चित्ताप्रसाद ने बागडोर सँभाली, "ब्रह्मपुत्र यह अत्याचार नही करेगा।"

अब्दुल कादिर पहले तो खामोश हो गया, फिर आवेश में आकर बोला, "अरे भैया, इस बस्ती का तो नाम ही आलीसीगा है। इसका तो यही इतिहास है। न जाने कितनी बार टूटी यह आली, जो शिवसागर से यहाँ आकर ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे स्टीमर-घाट तक चली गई है। जानते हो, कभी दिसाँगमुख के नाव-घाट और शिवसागर का बीस मील का फ़ासला था। फिर यह फ़ासला घटते-घटते सत्रह-अठारह मील रह गया, और अब तो यह फ़ासला तेरह मील का भी नही है। इस

छोटी-सी उम्र में ही ब्रह्मपुत्र हमारी पाँच मील जमीन निगल गया थोड़ी-थोडी करके !"

चित्ताप्रसाद ने प्रसंग बदलकर कहा, "हमारे 'अंडी मूगा सहकारी संस्थान' का आदर्श यही है—अच्छी तरह जीने से पहले हमें जीना तो चाहिए।"

"अच्छी तरह जीने का इशारा तो इसलाम में भी किया गया है। अल्लाह से दुआ माँगने से पहले हम हमेशा यह मानकर चलते है कि 'अल्लाह हमारी गरदन की नस से भी हमारे ज्यादा नजदीक है' आप क्या यह नही मानते ?"

"मानते क्यों नही, मियाँ अब्दुल कादिर !" चित्ताप्रसाद ने ज्ञान की तूलिका से चित्र-सा अकित करते हुए कहा, "भगवान् बुद्ध भी कह गए है कि हर आदमी बुद्ध हो सकता है, अर्थात् ज्ञान का प्रकाश सबके लिए है। लिली को ही देख लो—"

"हाँ-हाँ, अँग्रेज की लडकी होकर भी दिसाँगमुख की कितनी सेवा कर रही है !" अब्दुल कादिर ने जैसे चित्ताप्रसाद के शब्द छीन लिए।

"लिली का हस्पताल इस बात का प्रमाण है कि सेवा के काम में देशी और विदेशी का भेद-भाव नही रह सकता।" चित्ताप्रसाद की आँखे चमक उठी, "ईसा के शब्दो मे लिली यह मानकर चलती है कि भगवान् का राज्य तुम्हारे भीतर है।"

"कभी-कभी मै सोचता हूँ कि दिसाँगमुख छोड़कर मैने अच्छा नहीं किया।"

"लिली भी तुम्हारे बारे में अक्सर पूछती रहती है। तुम फिर से दिसाँगमुख में ही रहने का विचार बना लो, तो हम तुम्हारा घर खरीदने का विचार छोड देते है।"

"मैं लिली से मिलकर बात करूँगा।"

"लिली भी इस पक्ष मे तो बिलकुल नही है कि किसी के बाप-दादा की अतिम निशानी हमारा सस्थान खरीद ले।"

"पिछली बार मै एक दिन के लिए दिसाँगमुख आया था तो जुकाम की दवा लेने लिली के हस्पताल गया था।" अब्दुल कादिर मुसकराया, "लिली ने छूटते ही कहा—'तुम बीवी-बच्चो के झंझट से मुक्त हो, मियाँजी ! तो फिर तुम शिवसागर में झूठी गवाहियाँ दे-देकर क्यो बदनामी कमाते हो ?' मैने साफ़-साफ़ कह दिया—'देखो, मेम साहब ! किसी ने झूठ-मूठ बहका दिया है मेरे बारे मे ! मैं तो यह गुनाह न खुद करता हूँ न किसी को इसकी सलाह देता हूँ।' इस पर मैने देखा कि लिली की तसल्ली हो गई।"

"और क्या कहा था लिली ने ?"

"नीरद की बहुत प्रशंसा कर रही थी कि वह एक ऐसी पोथी लिखने मे लगा है, जो सब देशों के सामने ब्रह्मपुत्र की सच्ची तसवीर रखेगा। कह रही थी—नीरद जब से दिसाँगमुख से बाहर चला गया है, उसका एक-एक पल अपनी पोथी के लिए मुनासिब सामग्री जुटाने में ही बीत रहा है। नीरद की चर्चा करते हुए लिली की

आँखें कुछ-कुछ भीग गई। बोली—'नीरद की चिट्ठी बहुत देर से आती है।' मैंने कहा, 'नीरद बहुत निर्मोही है, जैसे यह हमारा ब्रह्मपुत्र है।' मेरी बात बदलकर वह बोली—'नीरद की पोथी के पहले भाग की सबने बडी सराहना की है।' हाँ तो भैया चित्ताप्रसाद, मेरे देखते-देखते लिली अलमारी से नीरद की पोथी निकाल लाई और एक जगह से पढ़कर सुनाने लगी।"

बातें करते-करते वे चित्ताप्रसाद की बैठक में चले आए थे। चित्ताप्रसाद अपनी अलमारी से झट उस पोथी का प्रथम खंड निकाल लाया। पहले उसने पोथी खोलकर नीरद के अपने हाथ के लिखे हुए शब्द दिखाए, जो उसने यह पुस्तक चित्ताप्रसाद को भेट करते हुए लिखे थे। फिर वह पन्ना खोलकर बोला, "लिली ने भी शायद यही पंक्तियाँ सुनाई होगी। नीरद ने क्या खूब लिखा है—'ब्रह्मपुत्र कैसे विशाल बना? असम देश की सभी नदियाँ आकर ब्रह्मपुत्र मे मिलती हैं। वे सब ब्रह्मपुत्र को विशाल बनाती है। ब्रह्मपुत्र का संदेश क्या है? यही कि अलग-अलग दलो के लोग मिलकर एक हो जाएँ, मिलकर आगे बढ़े।"

"मुझे तो लिली ने दूसरी ही पंक्तियाँ सुनाई थी।" अब्दुल क़ादिर ने उठते हुए कहा, "भैया चित्ताप्रसाद, हमारी समझ से तो ऊँची है यह पोथी।"

"अरे सुनो तो, मियाँ अब्दुल क़ादिर!" चित्ताप्रसाद ने उसकी बाँह पकडकर बैठाते हुए कहा, "हमारा सस्थान तुम्हारे घर के पाँच सौ रुपए ही देने को तैयार था, पर मैने तुम्हारा पक्ष लेकर पाँच सौ के सात सौ करा दिए है! बोलो क्या विचार है? तुम पूरा एक हजार माँगते रहोगे तो यह सौदा नही पट सकता, मियाँजी!"

"मुझे घर बेचना ही नही।" अब्दुल क़ादिर ने पैंतरा बदला।

चित्ताप्रसाद झेपते हुए बोला, "सुदर, अति सुदर!"

"सुदर कहो चाहे असुदर! मेरी बात ब्रह्मपुत्र को अच्छी लगे चाहे लिली को!" अब्दुल क़ादिर ने भावावेश मे आकर कहा, "एक मन कहता है कि दिसाँगमुखवाला घर बेचकर शिवसागर मे अपने जीवन के अंतिम दिन आराम से काटना ही अक्लमदी होगी। पर भीतर से यह आवाज आनी भी तो बंद नही होती—'मत बेचना पुरखो का घर, मत करना पहाड़ जैसी भूल!' अब समझ मे नही आता कि मैं क्या करूँ?"

इक्यावन

"अरे भई जलपान मे आज इतनी देर क्यों हो रही है?" चित्ताप्रसाद ने आवाज़ दी। जलपान आते देर न लगी। नारियल के लड्डुओं और घी में तले

काजुओं पर वह हाथ साफ़ करने लगा।

जलपान के पश्चात् शीघ्र ही उसने फिर आवाज दी—"अरे भई, एक कप चाय !"

चाय की चुसकी भरते-भरते वह सोचने लगा—पूरे एक हज़ार मे भी यह सौदा महँगा नही ! कोशिश तो बहुत की, सात सौ में नही तो आठ सौ तक ही मान जाए; चलिए इसकी कसर कहीं और निकालेंगे। आलीसीगा में, बाज़ार के एक कोने पर, इतनी अच्छी जगह तो इससे भी महँगी जा सकती थी। यह सौदा बुरा नही रहा। इससे संस्थान का अवश्य लाभ होगा। अधिक नफ़ा तो हडसन साहब की जेब में ही जाता है। इसीलिए तो उन्होने झट एक हज़ार के नोट निकालकर दे दिए; तब कही अब्दुल कादिर रजिस्ट्री कराने के लिए राजी हुआ। शिवसागर की अदालत में रजिस्ट्री हो गई। यह अदालत बनी रहे, यह रजिस्ट्री शुभ हो, मंगलमय हो ! ··

जीते रहें रेशम के कीड़े, जो रेशम के तार कातते थकते नही—यह सोचकर चित्ताप्रसाद का हृदय पुलकित हो गया। जीते रहें ये लोग, जो सस्ते दामों मे रेशम का कपड़ा—अंडी और मूगा—बुन-बुनकर हमारे लिए इकट्ठा करते है, और हडसन साहब इसे अपने रसूख और बल से विदेशो में बहुत महँगे दामो में बिकवा देते है। दो-तीन सौ की कसर निकालते बहुत देर नही लगेगी।···

चाय की चुसकी भरते-भरते उसकी दृष्टि समाचार-पत्र की एक सुर्खी पर पड़ी—'ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों मे बाढ़'। चाय का कप समाप्त करके उसने पढ़ना आरंभ किया।

"डिब्रूगढ, २० जुलाई। यहाँ अंतिम रूप से प्राप्त समाचार के अनुसार ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियो—बूढ़ी दिहाँग और दिहाँग में भयानक बाढ़ आ गई है। डिब्रूगढ़ सब-डिवीज़न का विस्तृत क्षेत्र जलमग्न हो गया है। अधिक नही, तो इसका प्रभाव एक लाख व्यक्तियो पर तो निश्चय ही पड़ा है।

"दिहाँग के किनारों पर बनाए गए बाँध अनेक स्थानों पर क्षतिग्रस्त हो चुके है। तीगाखेत और डिब्रूगढ़ तथा नाहारकेतिया और मुराने के बीच की सड़कें स्थान-स्थान पर टूट-फूट गई हैं। बाढ़ में अनेक पशु बह गए। कई गाँवो के मकान तीन-तीन फीट पानी में है।

"कुछ स्थानों का संबध देश के अन्य क्षेत्रो से बिलकुल टूट गया है। इसके फलस्वरूप सहायता-कार्यों में विलंब हो रहा है। सरकार ने कई स्थानों पर आवश्यक सहायता-कार्य आरंभ कर दिया है और बाढ़-पीड़ित लोगों को बाढ़वाले प्रदेश से निकाला जा रहा है।···"

"अरे भई, एक कप चाय और चाहिए !" उसने आवाज़ दी, और यह सोचकर कुछ लज्जित भी हुआ कि लोग बाढ़ में डूब रहे है और यहाँ चाय के कप में तूफान

आ रहा है। चाय का कप आया तो उसने सोचा कि इसे बिलकुल न उठाया जाए। शीघ्र ही चाय की चुसकी भरते-भरते वह सोचने लगा—ख़बर-कागज़ की भाषा बाढ का वास्तविक चित्र कहाँ खीच सकती है? इन्हें तो खबर छापने से मतलब। यहाँ दिसाँगमुख में भी तो ब्रह्मपुत्र का पानी हमारे आलीसीगा से डेढ़ मील भी नही रह गया; और कौन जाने कब हमारे घर भी पानी मे डूब जाएँ! फिर तो अब्दुल क़ादिरवाला घर भी पानी में डूब जाएगा! चलो यह सौदा हो गया, यह अच्छा हुआ। हमारे संस्थान के लिए यह शुभ हो, मंगलमय हो।···

शिवसागर की अदालत में अब्दुल कादिर के घर की रजिस्ट्री का दृश्य उसकी कल्पना को छू गया। सौ-सौ के दस नोट अब्दुल क़ादिर ने कितने मज़े से मेरे हाथ से ले लिए थे। पूरा घाघ ही तो है अब्दुल कादिर। अब ये नोट उसके पास जमा रहेंगे।

उसने एक गहरी साँस ली--पट्ठे ने सौ-सौ के दस नोट मार लिए! हज से आकर तो उसे उदार बनना चाहिए था। वह उलटा और भी लालची बन गया। मै कहता हूँ, उसने हज नही किया होगा। यो ही रास्ते से लौट आया होगा। हाजी क्या ऐसे होते है? मैंने क्या हाजी नही देखे? हाजी तो बहुत उदार होते हैं।··· अब्दुल कादिर का क्या है? वह स्वयं भी तो कहता है--दम-का-दम, न धोखा न गम! फिर वह सात सौ मे क्यों न माना? और अधिक लेता, तो आठ सौ में राजी हो जाना चाहिए था। बाप रे बाप! पूरे एक हजार मे राजी हुआ; एक पाई कम पर भी न माना। अच्छा बेटा, तुम खुश रहो! तुमने यह न सोचा कि चित्ताप्रसाद पर पूरी गृहस्थी का भार है। यहाँ तो निर्वाह होना कठिन हो रहा है। ऊपर से लिफाफ़ा बनाए रखना पड़ता है। बचत तो होती ही नही। खर्च पर खर्च। बाप रे! खर्च तो यो आता है जैसे चेहरे के आसपास मच्छर मँडराता है···।

वे दिन उसकी कल्पना में घूम गए, जब वह यहाँ के स्कूल में अध्यापक बनकर आया था। किस तरह गाँव-बूढा नीलमणि ने उसे स्कूल से निकलवाया, किस तरह उसने विपत्ति के दिन काटे, किस तरह हडसन साहब की सहायता से यह 'अडी मूगा सहकारी संस्थान' खडा किया; फिर तो सैकडो रुपए आए और गए पिछले अनेक वर्षो मे—यह लंबी कहानी है। नीलमणि से मै अभी तक बदला नही ले सका। नीलमणि के स्थान पर साधन मीरी को गाँव-बूढ़ा बनवाने का मेरा विचार अभी तक पूरा नही हुआ। मैने नीलमणि से बदला न लिया तो वह भी क्या याद करेगा···?

उसने उठकर स्नान किया, फिर धुली हुई धोती-कमीज़ पहनी। विशालकाय दर्पण के सामने खड़े होकर बालो मे कघी की। नई चप्पल पहनकर वह बाहर जाने के लिए तैयार हुआ। फिर उसे विचार आया—वर्षा और बाढ़ के दिन है, नई चप्पल तो खराब हो जाएगी, धेले की भी नही रहेगी।

फिर से पुरानी चप्पल पहनकर वह उस तरफ़ निकल पड़ा, जहाँ ब्रह्मपुत्र के किनारे बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गई थीं। एक क्षण के लिए उसे उन लोगों का विचार आया जिनके पशु ब्रह्मपुत्र में बह गए थे या जिनके घरों में दो-दो फीट पानी आ गया था। इस तरह तो लोग दरिद्र और कंगाल बन जाएँगे, उन्हें दरिद्र नारायण कहा जाएगा; सुनने में यह नाम कितना ही भला क्यों न लगे भद्रजनों के मुख से, पर दरिद्र और कंगाल होना तो बहुत कष्टदायक है···! चलते-चलते वहाँ पहुँच गया जहाँ बहुत-से लोग एकत्र हो चुके थे और जहाँ दरारें मुँह बाए नजर आ रही थी।

कोई कह रहा था, "यह तो ऐसे है जैसे हवन करते हुए किसी के हाथ जल जाएँ!"

"हाँ भाई, हम लोग ब्रह्मपुत्र पर नारियल चढ़ाते नहीं थकते, फिर भी इसका कोप दूर नही होता।"

"हरि इच्छा! बड़ डिकडारी! बड़ डिकडारी!"

"सरकार स्थान-स्थान पर सहायता तो कर रही है, पर यह आटे में नमक से भी कम है।"

"अरे भाई, सरकार भी क्या करे?"

"विदेशी सरकार है न! अपनी सरकार होती तो बे-मन से थोड़े ही करती सहायता।"

जन-जन की त्रस्त मुद्रा देखकर चित्ताप्रसाद ने भी वैसी ही मुद्रा बना ली। वह सोचने लगा—इस बाढ़ से कैसे त्राण मिलेगा? उसका मन तूफ़ान में डोलनेवाली नाव के समान असमंजस में पड गया। यह सब नियति की विडंबना है। पर लोगों को बाढ़ से बचाने के लिए सरकार कुछ कम सहायता तो नही कर रही। फिर भी लोग सरकार को दोष देते नही थकते, सरकार को 'विदेशी' कहकर असहयोग की धमकी देते है।

लोग एकटक ब्रह्मपुत्र को देख रहे थे। असमिया, मीरी, नेपाली—सभी लोग एकत्रित थे। किसान, मछुवे और नावरिया; ग्वाले और दुकानदार। किसी ने कहा, "हमारे आलीसीगा को डुबोते ब्रह्मपुत्र को उतनी देर भी नही लगेगी जितनी श्राद्ध दिवस पर ब्राह्मण के सम्मुख केले का पत्ता रखकर भोजन परोसने और उसके आचमन करने में लगती है!" यह कल्याण भगत की आवाज़ थी।

"ऐसा मत कहो, भगतजी!" चित्ताप्रसाद ने पास आकर भर्राई हुई आवाज मे कहा, "दिसाँगमुख से ब्रह्मपुत्र का कोई वैर तो नही है।"

इतने में आलीसीगा की तरफ़ से अब्दुल क़ादिर आता दिखाई दिया।

"कहिए, हाजी साहब!" चित्ताप्रसाद ने आगे बढ़कर अब्दुल क़ादिर का स्वागत किया। वह उसका बाजू खींचकर भगतजी के पास ले गया और बोला,

"हाजी मियाँ से पूछो भगतजी, कि अपने घर के बदले इतनी बड़ी रकम उन्हें कैसे हज़म होगी ?"

"एक हज़ार भी कोई मोल होता है अपने बाप-दादा के घर का ?" अब्दुल क़ादिर मुसकराया, "भले ही मैंने अपना घर बेच दिया, फिर भी आज सवेरे शिव-सागर में बैठे-बैठे सोचा, चलकर देखें कि कहीं दरारें हमारे घर के बिलकुल पास तो नहीं आ गईं।"

"यह कहो कि एक हज़ार लेकर भी घर से मोह नही टूटा ?"

बावन

अतुल देर तक वह श्लोक गुनगुनाता रहा, जो एक बार उसने अपने ससुर कल्याण भगत से सुनकर कंठस्थ किया था। इसमें मानो भगतजी की आत्म-कथा बोल उठी थी। उसका ध्यान बार-बार भगतजी की अंडी की चादर की ओर चला जाता, जिसे वे अनेक वर्षों से सँभालकर ओढ़ते आए थे।

वह घर के बागीचे में खड़ा कभी बत्तखो और हंसों की किलकारियाँ सुनने लगता, कभी उसका ध्यान अपने बेटे विक्रम की ओर चला जाता, जो अब आठ वर्ष का हो गया था और इस समय बत्तखो के पीछे भाग रहा था।

फिर अतुल को ध्यान आया कि वह चार बच्चों का पिता है। पहला अतिथि तो विक्रम ही था; फिर एक-एक करके तीन कन्याएँ आई। जूनतारा की रूप-छटा पर जैसे चार बच्चो की माँ होने का तनिक भी प्रभाव न पड़ा हो। विक्रम के बाद पहले नीरजा आई, फिर पद्मप्रिया और फिर हेमप्रतिमा।

वह सोचने लगा—किस प्रकार मै सर्वप्रथम जूनतारा की ओर आकर्षित हुआ था; जूनतारा भी तो मेरी ओर आकर्षित हुई होगी। स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण तो चिर-सत्य है। जूनतारा सुहासिनी है, पवित्रवसना है, कल्याणी है। हमारा विक्रम बड़ा होकर महाप्रतापशाली बनेगा। नीरजा पाँच वर्ष की होने आई, पद्म-प्रिया दो वर्ष की है और हेमप्रतिमा तो मुश्किल से सात मास की होगी।

नीरजा गिलहरी के पीछे भाग रही थी, पद्मप्रिया माँ की बगल में सो रही थी, नन्ही हेमप्रतिमा माँ का दूध पी रही थी। वह सोचने लगा—हमारा घर बिलकुल नही बदला; हाँ, पेड़ बड़े हो गए। नारियल के पेड़ तो आकाश को छू रहे है। पोखर वैसा ही है, जैसा पहले था। दिसाँगमुख के लोगों में चित्ताप्रसाद ने ही सबसे अधिक धन कमाया है; अब तो उसने अपने संस्थान के लिए अब्दुल कादिरवाला घर भी ख़रीद लिया। हडसन साहब का रोब बढ़ा है, पर लिली का सेवा-भाव

देखकर तो चित्तप्रसाद की अमीरी अच्छी लगती है न हडसन साहब का रोब। नीरद बहुत दिनो से बाहर चला गया। राखाल काका का समय अब धनसिंह की दुकान पर ही बीतता है। हमारा हाट-बाजार यथापूर्व लगता है; वैसे ही चीजें बिकती हैं और ख़रीदी जाती है। बहुत कम अंतर पडा, है, बहुत ही कम ! पठार में यथापूर्व धान उगता-पकता है, वैसे ही मधुमक्खियाँ मधु जुटाती है फूल-फूल से रस लाकर। बापू अब पहले से अधिक धीर, गंभीर और शांत प्रतीत हो रहे है। शायद बापू मेरी बात मान जाएँ; शायद वे फ़िरंगी की पराधीनता का बिल्ला उतार फेंकें। मैं तो कई बार सलाह दे चुका हूँ, "बापू, तुम गाँव-बूढ़ा का पद छोड़ दो।" अब तो राखाल काका भी यह सलाह दे रहे है···।

वह गुनगुनाने लगा—

अयं पटो मे पितुरंगभूषणं पितामहाद्यै रुपभुक्तयौवनः।
अलंकरिष्यत्यथ पुत्रपौत्रकान् मयाधुना पुष्पवदेव धार्यते॥

जूनतारा ने पास होकर पूछा, "यह कैसा पाठ कर रहे हो?"

"जूनतारा, बड़ा ही मंगलमय श्लोक है। कवि कहता है—'मेरे पितामह आदि ने इस वस्त्र के यौवन का उपभोग किया, यही वस्त्र मेरे पिता के अंगो का भूषण रहा, अब यही वस्त्र मेरे पुत्र-पौत्रों के अंग सुशोभित करेगा; इसलिए मै इसे पुष्प के समान धारण किए हुए हूँ।' कवि-वाणी की वदना करो, जूनतारा !"

"इतना पुराना होने पर भी यह वस्त्र फटा क्यो नही ?" जूनतारा हँस पडी।

हँसते समय जूनतारा के दाँत चमक उठे, जैसे आज से अनेक वर्ष पूर्व चमक उठे थे, जब वह सर्वप्रथम अतुल के संपर्क मे आई थी। हँसते-हँसते वह परे को घूम गई। अतुल फिर विचारधारा मे बह गया—दिसाँगमुख के मुखमंडल पर तनिक भी क्षीणता नही आई। यथापूर्व अतिथि का आदर-सत्कार होता है। यथापूर्व बोहाग बिहू नाचते है, और माघ बिहू की 'मेजी' तापते है। यथापूर्व गाँव की पंचायत में पचपरमेश्वर की आवाज़ सुनते है। जो धूर्त है, वे धूर्तता नही छोड़ते, पर पचपरमेश्वर बार-वार कहते है, "धूर्तता तो लँगड़ी-लूली वस्तु है, पर सचाई अपने पैरो से चलती है !"···

विक्रम बराबर बत्तखों के पीछे भाग रहा था। बाल्यकाल भी कैसा स्वर्णयुग होता है ! अतुल फिर विचारधारा में बह गया—साधन मीरी वैसे ही बापू से द्वेष करता है। मै जानता हूँ, बापू ने गाँव-बूढ़ा का पद छोड़ दिया तो साधन के घर घी के दीए जलेगे। फिरंगी से हाथ मिलाकर वह झट दिसाँगमुख का गाँव-बूढा बन जाएगा। जब से उसने सुना है कि बापू गाँव-बूढ़ा के पद से मुक्त होने की सोच रहे है, वह ऊपरी मन से बापू का निकटस्थ मित्र बन रहा है। शिकारी गाँव का जादू अपनी प्रेयसी गोपी के साथ भागकर यहाँ आया, तो बापू ने उन्हें अपने यहाँ आश्रय दिया; उनका विवाह कराने में बापू के साथ साधन ने भी हाथ बँटाया, पर बाद में

फ़िरंगी के पास जाकर साधन ने यही रिपोर्ट की—'दिसाँगमुख के गाँव-बूढ़ा ने शिकारी गाँव का थाना जलानेवाले अपराधी के विवाह में योगदान दिया !' साधन तो दिसाँगमुख को फ़िरंगी का गुलाम बनाए रखना चाहता है। फ़िरंगी के आगे लार टपकाना ही वह श्रेयस्कर समझता है। अधम ! पामर ! वह क्या खाकर बापू का मुकाबला करेगा ? बापू तो दिसाँगमुख के हितचिंतक हैं।···

एकाएक उसके कल्पना-क्षितिज पर धर्मानंदी का चेहरा उभरा। उसने सोचा—उस दिन जब धर्मानदी ने आकर कहा, "कहो, गाँव-बूढ़ाजी ! आरती को नीलकंठ से ब्याह दे, या कहो तो शिकारी गाँव के मुकन या प्रभात में से एक को वर चुन लें ?" बापू बोले, "आरती की क्या राय है ?" धर्मानंदी ने साफ़-साफ़ कहा, "आरती तो मन-ही-मन देवकात का वरण कर चुकी है।" बापू बोले, "फिर तुम चिंता छोडो। समय आने पर देवकात के साथ ही आरती का विवाह होगा।" मैने पास से कहा, "देवकांत की भी इच्छा होगी, तब न ?" "अरे हाँ हाँ।" बापू ने गंभीर मुद्रा बनाकर कहा, "दिसाँगमुख में तो सदा से यही होता आया है; वर और कन्या की परस्पर स्वीकृति के बिना कब कोई विवाह संपन्न हुआ ?"···अरे वाह री आरती, तुम धन्य हो ! कब से बैठी देवकांत की प्रतीक्षा कर रही हो। तुम्हारा विवाह हो गया होता, तो तुम भी चार बच्चों की माँ बन गई होतीं ! चार बच्चो की माँ ! अपने इस विचार पर वह हँस पडा।

जूनतारा ने पास आकर कहा, "किस बात पर हँसी आ गई ?"

"सोच रहा था, न आरती का विवाह हुआ, न वह चार बच्चों की माँ बनी !" अतुल फिर हँस पडा।

"आरती तो देवकात से ही विवाह करेगी।" जूनतारा ने सरल भाव से कहा, "वह पूछ रही थी—कुछ देवकांत का भी पता है ? तुम तो जानते होगे।"

"देवकात माझुली से आकर शायद आरती को पहचाने भी नही, यह पूछना तो अलग रहा कि तेरे मुँह मे कितने दाँत है। आरती से कहना—क्यो मिथ्या कल्पना मे आयु गँवा रही है ? दिसाँगमुख में उसकी जोड़ का मछुआ मिलना कठिन क्यों न हो, असंभव तो नही।"

"गोपी कह रही थी, देवकात तो मेधावी वीर है और वह आरती को भूला नही होगा।"

"ये लड़कियाँ भी कितनी मूर्ख होती हैं !"

"ये लडके कितने अशिष्ट होते हैं, मगरमच्छ के समान !"

अतुल ने वस्तुस्थिति पर काबू पाते हुए कहा, "देखो भई, लड़ो मत। आरती की क्या आयु होगी ?"

"चौबीस की तो होगी !" जूनतारा मुसकराई, "जितनी मैं हूँ, उतनी समझो। आरती कहती है—देवकात जैसे लड़के सारे हिंदुस्तान में कम ही होगे।"

"छिनाल !" अतुल ने व्यंग्य कसा, "देवकांत की इतनी तारीफ़ कर रही थी। उससे कहना—बिल्ली के भाग्य से यह छीका टूटने का नही।"

"मेरी सहेली को छिनाल कहते हो ! तुम्हारी तो वह बात है—ब्रह्मपुत्र में जितना बाँध लगाओ, उलटा और भी चढ़ने लगता है।"

"ब्रह्मपुत्र तो हर साल चढ़ता है। कोई ऐसा साल भी जाता है, जब यह चढ़ता न हो ? खैर, छोड़ो। आरती क्या सचमुच सोचती है कि देवकांत से उसका विवाह होगा ?"

जूनतारा झुंझलाकर बोली, "आरती दूध-पीती बच्ची नही है कि उधर का स्नेह जाने बिना इधर से दीए की बाती सँजो दे।"

"आरती और देवकांत का विवाह हो भी जाए, तो कितना बड़ा अनमेल जोड़ा बनेगा। वधू मछलियो की बातें करेगी, तो वर महाशय क्रांति-चर्चा मे संलग्न रहेगे।"

जूनतारा ने विनयपूर्वक कहा, "आरती पर तो तुम्हें दया आनी चाहिए।"

"दया क्यो ?" अतुल हँस पड़ा।

जूनतारा ने भिन्नाकर कहा, "सुना नही—कभी ब्रह्मपुत्र की नाव बैलगाडी पर, तो कभी बैलगाडी ब्रह्मपुत्र की नाव पर। दूसरों की खिल्ली उड़ाने से पहले सोच-समझ लो कि कोई हमारा भी उल्लू बना सकता है।"

"अच्छा, अच्छा !"

जूनतारा गंभीर मुद्रा बनाकर रसोई की तरफ़ चली गई। अतुल वैसे-का-वैसा बागीचे में खड़ा रहा। विक्रम यथापूर्व बत्तखों के पीछे भाग रहा था। उसके जी में तो आया कि उससे कहे – इधर आ जाओ बेटा, तुम थक गए होगे। पर वह अनमने भाव से खड़ा रहा।

ब्रह्मपुत्र की ओर से पानी से भीगी हवा आ रही थी। चतुर्दिक् काले मेघ घिरे हुए थे। कभी-कभी श्यामल मेघपट पर दामिनी आँकी-बाँकी छाप दिखा जाती थी।

बाहर से फाटक उठाकर नीलमणि ने बाग़ीचे में प्रवेश किया और छूटते ही आवाज लगाई, "किधर हो, अतुल बेटा ?"

"आया, बापू !" कहते हुए अतुल आगे बढ़ा।

"तुम्हारे लिए सुख समाचार है। मैं फ़िरंगी को गाँव-बूढ़ा की पदवी लौटा आया।"

"यह तो बहुत अच्छा किया, बापू !" अतुल ने प्रशंसापूर्वक कहा, "अब उस चुगलखोर की बन आएगी। परवाह नही, आज दिसाँगमुख के भाग जागे। मैं कहता हूँ बापू, अब आनंद आएगा। दिसाँगमुख मे दो गाँव-बूढ़ा होगे; जन-जन की ओर से तुम होगे बापू, और फ़िरंगी की ओर से होगा साधन मीरी ! अब फ़िरंगी से हमारी लड़ाई चलेगी।"

नीलमणि ने अपने कंधे पर अंडी की चादर दुरुस्त करते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र बढ़ा आ रहा है, और लोगों को दिखाने के लिए फ़िरंगी सहायता का नाटक खेल रहा है। मैं देखकर आ रहा हूँ। बडी-बड़ी दरारें पड़ गई है किनारे-किनारे।"

"अब तो बाँध बाँधने की आवाज़ लगानी होगी, बापू !"

अतुल और नीलमणि फाटक उठाकर बाहर निकल गए।

तिरपन

चित्ताप्रसाद ने अब्दुल कादिरवाले घर की पूरी तरह मरम्मत कराने से पहले ही सफेदी की एक कूची फिरवाकर इसमें अपने निवास का प्रबध कर लिया।

पहला घर, जो इस घर से बिलकुल सटा हुआ था, जहाँ उसने अपने निवास के अतिरिक्त 'अंडी-मूगा सहकारी सस्थान' का केद्र रख छोडा था, अब नए प्रबंध के अनुसार संस्थान के केद्र के लिए ही प्रयोग में लाने का फैसला किया गया।

ब्रह्मपुत्र बाढ़ का गान गाए जा रहा था, तैराकों को चुनौती देता, किनारो की परिधि फैलाता, जैसे कोई लालची सेठ अपना व्यापार बढ़ाता है। चित्ताप्रसाद को लगा कि पिछले दस-पंद्रह वर्षों मे विशेष रूप से उनके संस्थान ने वैसे ही प्रगति की है, जैसे ब्रह्मपुत्र का पाट पहले से चौड़ा हो गया था।

रात का समय था, घरवाले सो गए थे।

चित्ताप्रसाद लैंप के प्रकाश में बैठा कुछ पढ़ रहा था। पुस्तक से नजर हटाकर वह आकाश की ओर देखने लगता। मेघाच्छन्न आकाश पर एक भी तारा दिखाई नही देता था। बिजली चमक जाती थी। अपनी विजय पर वह मन-ही-मन पुलकित हो उठा—अब्दुल कादिर का घर मिल जाने से संस्थान का रोब बढ़ गया। इसका मोल इतना अधिक देने का कारण यही था कि यह जगह संस्थान के केंद्र से सटी हुई थी। उसकी कल्पना में अब्दुल कादिर की छवि उभरी—'सलाम, हाजी साहब !' उसने मन-ही-मन कहा— मेरे जीवन पर तो श्रम की छाप है। मेरे पथ में कई जोखम आए। तुम्हें क्या याद नहीं, नीलमणि ने स्कूल से मेरी नौकरी छुडवा दी थी ? फिर भी क्या मैने पराजय स्वीकार की ?···

सहसा ज़ोर की बिजली कड़की। चित्ताप्रसाद की पत्नी उठकर दौड़ी-दौडी आई और बोली, "तुम सोते क्यों नही ?"

"सो जाऊँगा। तुम जाकर सो रहो !" कहकर चित्ताप्रसाद फिर पुस्तक खोल-कर बैठ गया।

अपने कक्ष से पत्नी ने फिर आवाज़ दी, "बिजली कड़क रही है। मुझे डर लगता है।"

"डरने की क्या बात है?" चित्ताप्रसाद ने भी बिजली के समान कड़ककर कहा।

वह पढ़ने लगा :

'जैसे लता वृक्ष से लिपट जाती है, वैसे ही तुम मुझसे लिपट जाओ!···तुम मेरे वश में आ जाओ; मै मधु से भी अधिक मधुर हूँ!···जैसे हवा धरती पर घास को हिला देती है, वैसे ही मै तुम्हारे मन को हिला दूँ जिससे तुम मुझसे प्रेम करो!···'

अथर्ववेद में वर्णित प्रेम-संबंधी दृष्टिकोण का यह सुदर उल्लेख देखकर उसकी कल्पना में अपना लंबा दापत्य-जीवन घूम गया। वह सोचने लगा—जीवन की मंजिल तो बहुत लंबी है। जीवन में लता और वृक्ष के परस्पर आलिगन की बात ही होती, ती फिर यह हमारा 'अंडी-मूगा सहकारी संस्थान' जन्म न लेता। हवा घास को धरती पर हिला देती है। उस पर तो कुछ खर्च नहीं होता। पर पत्नी को वश में रखने के लिए क्या केवल 'मधु से भी अधिक मधुर' बनकर ही गुजर होनी संभव है? घर में पैसा न हो, सब चौपट हो जाता है। वही स्त्री, जो कल तक मुसकराती प्रतिमा थी, घर के खर्च के लिए पैसा न मिलने पर विकराल डाइन बन जाती है।···

वह उठकर अपनी पत्नी के कक्ष मे गया। वह बेसुध सो रही थी। दूसरे कक्ष मे बच्चे सो रहे थे।

वह फिर आकर अपनी जगह पर बैठ गया। उसने सोचा—आज नीद क्यों नही आ रही?

अब मूसलाधार वर्षा आरभ हो गई थी। हवा की धमाचौकड़ी, बिजली की कड़क, दूर से ब्रह्मपुत्र की बाढ़ का अकड़-फूँ स्वर!—यह तो बड़ी भीषण पृष्ठभूमि थी। जैसे यह प्रलय की रात हो, जैसे आज सब बह जानेवाला हो।

चित्ताप्रसाद सोचने लगा—व्यर्थ ही अब्दुल कादिर को एक हज़ार के नोट दिए। दिसाँगमुख का तो अंत आ गया। अब नही बच सकता। अब कोई आशा नही। उसने अपने मन में कहा—बेटा, कैसे पार करोगे वैतरिणी नदी? किस गाय की पूँछ थामकर तैरोगे? गाय भी डूबेगी और तुम भी नहीं बच पाओगे!···

उसने उठकर अपनी पत्नी को जगाया। बच्चे उसी तरह सो रहे थे।

सहसा बिजली कड़की। पत्नी ने भयभीत होकर पति को जकड़ लिया। चित्ताप्रसाद को लगा—मैं वृक्ष हूँ, लता मुझसे लिपट गई है।

वे देर तक भयभीत-से बैठे रहे; आँखों की नीद जाने कहाँ विलुप्त हो गई थी।

"यह घर हमारे लिए शुभ प्रतीत नहीं होता!"

"यह क्यों कह रही हो ? इसमें अशुभ क्या है ? अब्दुल कादिर तो हाजी है; बीस पीढ़ियों से उसके पुरखे यही रहे। वे सब नेक इनसान थे। हमारे हाजी साहब भी तो कम नेक नहीं।"

"बहुत देखे है हाजी और तीर्थ-यात्री। मुँह मे राम, बगल में छुरी ! अरे, आज का मेंह तो दिसाँगमुख को डुबोकर ही छोड़ेगा।"

"तुम तो व्यर्थ ही डर रही हो।"

अचानक बिजली कड़की। चित्ताप्रसाद की पत्नी पति के भुजापाश से निकलकर बच्चों के कक्ष में चली गई। चित्ताप्रसाद सोने का यत्न करने लगा।

सहसा बिजली कड़की। चित्ताप्रसाद की पत्नी चौककर उठी। बिजली तो पास ही गिरी थी, बहुत पास, ठीक इसी घर की छत को छेदती हुई, ठीक उसी जगह गिरी थी, जहाँ चित्ताप्रसाद लेटा हुआ था।

"हाय ! पतिदेव !" चित्ताप्रसाद की पत्नी ने चीख भरी और फिर वह बच्चो को छाती ने लगाने लगी, जो इस दुखांत से बुरी तरह भयभीत हो गए थे।

चौवन

मुरगे के बाँग देने के घंटा-भर बाद लोग आने आरंभ हुए। किसी के हाथ में कुदाल थी, किसी के हाथ में टोकरी। देखते-देखते सारा दिसाँगमुख आकर खड़ा हो गया।

हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने अथवा नारियल या दूध का घड़ा ब्रह्मपुत्र पर चढ़ाकर ही उसका कोप शात करने का युग समाप्त हो गया था। क्या मीरी, क्या असमिया, क्या नेपाली; हिदू-मुसलमान, पुरुष और स्त्रियाँ, युवक और वृद्ध, सभी दृढ़-प्रतिज्ञ थे—अपने हाथो के परिश्रम से हम ऐसा बाँध तैयार करेंगे, जिसके सामने ब्रह्मपुत्र घुटने टेक देगा; इस सामूहिक कार्य द्वारा तो हम फिरगी के मन पर भी अपनी छाप लगा देंगे।···

और तो और, देवकांत की माँ भी टोकरी उठाए आ पहुँची। राखाल काका ने उसे बहुत रोका, पर उसने एक न मानी। "हम दिसाँगमुख का नया नक्शा बनाने जा रहे हैं !" उसने टोकरी उठाते हुए कहा।

"हमें बहुत बाद में अकल आई !" राखाल ने कहा, "चलो आई तो सही।"

कुदालें चल रही थी, टोकरियाँ उठ रही थी। मिट्टी की लंबी और मोटी दीवार उठाने का शुभ संकल्प बता रहा था कि जनशक्ति का रुख किधर है।

देवकांत की माँ को पुत्र के अज्ञातवास का इतना दुख न था जितना बिजली

गिरने से चित्ताप्रसाद के मरने का। मिट्टी ढोते-ढोते वह सोचने लगी—ज़ोर से बिजली गिरने की आवाज़ आई, तो किसने सोचा होगा कि किसका परवाना कट गया। बेचारा चित्ताप्रसाद! लोग कहते हैं कि वह दिसाँगमुख का ठग था; मेरा तो वही त्राता था। भगवान् उसकी आत्मा को शाति दे!···

किसी ने आवाज देकर कहा, "जल्दी-जल्दी हाथ चलाओ। यह बेगार नहीं, फिर हाथ धीरे-धीरे क्यो चलें?"

हाथ पहले से तेज चलने लगे। तरह-तरह की आवाज़े आ रही थी :

"बाढ़ उतार पर है। ब्रह्मपुत्र में ही नही, दिसाँग मे भी पानी कम हो गया।"

"धान की खड़ी फसले तो नष्ट हो गई।"

"सुनते हैं, माकिदपुर चाय बागान को बाढ़ से भारी नुकसान पहुँचा है।"

"सड़क के आठ मील लंबे भाग मे बाढ़ का पानी भर गया था। सुना है, अभी तक पानी नही उतरा।"

"तुम तो ख़बर-कागज खोलकर बैठ गए। टोकरी उठाओ, टोकरी!"

"असम ट्रंक रोड के कई भागो में पानी भरा रहा दो सप्ताह तक। यह झूठ नही है।"

"और कोई ख़बर हो तो उसे भी ढेर कर दो मिट्टी के साथ! ख़बर-कागज़ में यह हमारी खबर नही छपेगी।"

"कौन-सी खबर?"

"यही कि दिसाँगमुख में बहुत बड़ा बाँध बाँधा गया।"

"पहले तैयार तो हो जाए! ख़बर होनी चाहिए सच्ची, फिर उसका ढोल बजता है।"

"बिजली गिरने से दिसाँगमुख के सेठ चित्ताप्रसाद मर गए, यह ख़बर भी तो छपी होगी।"

"बुरा आदमी तो नही था चित्ताप्रसाद।"

"भाई, अब तो वह मर गया। अब उसकी बुराई क्यो की जाए?"

"बेचारे की घरवाली की माँग का सिदूर पुँछ गया, जैसे ब्रह्मपुत्र गाँव को बहाकर ले जाता है।"

किसी का मुँह निस्तेज न था। वे लोग भी, जिन्होने आरंभ में बाँध की योजना को 'बिल्ली के गले में चूहों द्वारा घंटी बाँधने' की संज्ञा दी थी, पूरी तरह आस्थावान थे।

ऐसे लोग भी थे जो सुनकर भी इन बातों को अनसुनी कर रहे थे। वे बस मिट्टी खोद रहे थे, मिट्टी डाल रहे थे। निर्निमेष दृष्टि से वे आकाश की ओर देखने लगते, जैसे कह रहे हों—इसी तरह बिना वर्षा के एक मास और बीत जाए, फिर यह बाँध तैयार हो जाएगा!

"अरे वाह रे पट्ठे, कमाल कर दिया।"

"दिसाँगमुख का इतना मोह न होता यो हम यहाँ से भाग खड़े होते !"

"इस मथर गति से काम चला तो तीन मास में भी बाँध नहीं बन पाएगा।"

"रोम-रोम से जवानी फूटी पड़ती है, और हाथ चला रहा है मरियल की तरह !"

बाँध बनते कई दिन हो गए थे; मुरगे के बाँग के देने के घंटा-भर बाद कार्य आरभ हो जाता था। हवा में बडी ताजगी थी; धूप साबुन से धुले शीशे के समान पारदर्शक; आकाश नीलवर्ण। एक सप्ताह से निरंतर दिसाँगमुख का वातावरण ऐसा ही था।

अब्दुल कादिर भी आकर मिट्टी ढोनेवालों में सम्मिलित हो गया था। उसे देखकर एक तरफ़ खेलते बच्चे धमाचौकडी मचाने लगे।

"अल्लाह मियाँ कहते है कि बच्चे तो बहिश्त के फूल हैं !" अब्दुल कादिर बोला, "दिसाँगमुखवालो के सिर पर जितने बाल है, उतने साल की उम्र अल्लाह मियाँ दिसाँगमुख के इन बच्चो को बख्शे !"

बच्चो ने अब्दुल कादिर के मुँह से यह प्यारा-सा बोल सुना, तो उनमें से एक ने नारा लगाया, "हाजी साहब···" दूसरे बच्चे बोल उठे, "ज़िंदाबाद !"

"आवाज पूरी नही निकली !" अब्दुल कादिर ने ठट्ठा किया, "निकले कैसे ? उतना भी तो नही खाते, जितना चुगा चिड़िया के बच्चे के मुँह मे जाता है। जब हम बच्चे थे तो दिन-दिन-भर चरते रहते थे।"

बच्चे हँस पडे और किलकारियाँ मारते अब्दुल कादिर के चारो ओर नाचने लगे।

"मुझे तुमसे यही आशा थी, अब्दुल कादिर !" राखाल काका ने पास आकर कहा, "क्या हुआ, अगर तुम्हारा घर बिक गया, दिसाँगमुख के साथ तो तुम अब भी जुड़े हुए हो।"

अब्दुल कादिर ने आकाश की तरफ हाथ उठाकर कहा, "जहाँ का अन्न-जल मेरी घुट्टी मे मिला हुआ है, क्या मै उसे भुला सकता हूँ ? मुझे किराए के मकान मे ही क्यो न रहना पड़े, मै दिसाँगमुख में ही रहूँगा। मेरा घर ख़रीदनेवाला भी तो बिजली का शिकार हो गया। हाय बेचारा चित्ताप्रसाद !"

"ठग विद्या में कुशल था चित्ताप्रसाद !" राखाल ने विवेचनात्मक स्वर में कहा, "फिर भी देवकात की माँ को ठगते समय थोड़ा हाथ रोक लेता था।"

"अरे मियाँ, कोई आता है, कोई जाता है।" अब्दुल कादिर ने दुआ के अंदाज़ मे हाथ उठाए, "जीवन की नाव तो चलती ही रहती है। हमारी तो बीस पुश्तें यही बीती, यही दिसाँगमुख में, यही ब्रह्मपुत्र के किनारे। अब यह बाँध तैयार हो गया, तो दिसाँगमुख बच जाएगा अनेक पुश्तों तक !" यह कहते-कहते अब्दुल कादिर की

भर्राई हुई आवाज़ में वेदना और भी तीव्र हो गई, जैसे उसे ख़याल आ गया हो—मेरी तो कोई संतान नहीं, फिर मेरी पुश्त कैसे आगे बढ़ेगी ?

राखाल बोला, "हमारी और हमारे बच्चो की रक्षा करेगा यह बाँध। मियाँजी, आनेवाली पीढ़ियाँ हमें सम्मानपूर्वक याद करेंगी। इस बाँध के बनने की कहानी का उल्लेख तो लोरियों में भी होगा। माघ बिहू की 'भेजी' गाते समय जब कोई गाँव-बूढ़ा ब्रह्मपुत्र और माझुली के बीच चलनेवाली मयूरपंखी नाव की कथा सुनाने बैठेगा, तो अंत में इस बाँध का नाम भी जोड़ दिया करेगा।"

"मयूरपंखी नाव की कथा में देवकांत का प्रसंग भी तो जुड़ जाएगा, जिसकी बाट जोहते एक मछुए की बेटी ने अब तक ब्याह नही कराया।" अब्दुल कादिर का सिर नारियल की तरह डोल रहा था, "रानी गुइडालो अभी तक फिरंगी की कैद में है ! उसने नागा पहाड़ियों में क्राति का झंडा ऊँचा किया था। फिरंगी ने उसे पकड़कर कैद कर लिया। कई साल से वह कैद है। उसका भी तो कोई प्रेमी होगा, जैसे हमारी आरती का प्रेमी है देवकांत।"

राखाल ने झूमकर कहा, "जब तक फ़िरंगी का पत्ता नहीं काट दिया जाता, न रानी गुइडालो जेल से छूट सकती है और न देवकांत ही दिसाँगमुख लौट सकता है। जब रानी गुइडालो और देवकांत के बाल पक जाएँगे, दाँत झड़ जाएँगे, अगर उस समय फ़िरंगी का बिस्तर यहाँ से गोल हुआ भी, तो उन बेचारों का क्या बनेगा ?"

पास से किसी ने कहा, देवकांत और रानी गुइडालो का जोड़ा कैसा रहेगा ?" और वह खिलखिलाकर हँस पडा।

"क्रातिकारियो की खिल्ली उड़ाना पाप है !" दूसरे ने बढ़ावा दिया।

राखाल काका अपनी ही कहते चले गए, "मैं भी बाल-बच्चोंवाला आदमी नही हूँ, अब्दुल कादिर ! पर दिसाँगमुख के सभी बच्चे अपने ही बच्चे तो हैं। उनकी भावी मुसीबतों का हल है यह बाँध, जो हम बाँध रहे है। यह हमारा उपहार होगा आनेवाली पीढ़ियों के लिए ! सोने का कंगन, या चंद्रहार, या नीलम की अँगूठी ही उपहार होता हो, यह बात नही।"

"हाँ, हाँ।" अब्दुल कादिर की कल्पना-शक्ति सजग हो उठी, "अगर हमने यह बाँध तैयार करने में ढील की होती, तो ब्रह्मपुत्र सारे दिसाँगमुख को निगल जाता, जैसे वह मेरी जमीन को हड़प गया था !" उसकी आँखों में आँसू आ गए, और उसने बच्चे की तरह बिलखते हुए कहा, "मैने अपना घर बेचकर गुनाह किया। अल्लाह मियाँ मुझे कभी माफ़ नही करेंगे।"

राखाल ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "हज़ार के नोट तो तुमने सँभालकर रख छोड़े होगे न ! हम उसी मोल पर तुम्हारा घर वापस दिला देंगे।"

अब्दुल कादिर फिर बिलखने लगा, "मेरा घर अब मुझे नहीं मिलेगा !"

जहाँ दरारें पड़ गई थीं, वहाँ से आधा फलाँग गाँव की तरफ़ हटकर बाँध बाँधा जा रहा था। अद्‌भुत तेज़ी से काम हो रहा था, जैसे मिट्टी छलाँग लगाकर बाँध की दीवार पर जा रही हो। सात छलाँगों में सात टोकरी मिट्टी बाँध पर पहुँच जाती, जैसे बाँधवाली मिट्टी नीचेवाली मिट्टी से कह रही हो—तुम भी ऊपर आ जाओ; सौ गज़ नीचे पड़ी रहने से तो कहीं अच्छा है कि सौ गज़ ऊपर चली आओ।

एक तरफ़ बच्चे बातें कर रहे थे :

"कल हाट बाज़ार है, बाँध का काम बंद रहेगा।"

"कल हम लेमनजूस खरीदेंगे। चूरनवाला चूरन बेचेगा, आवाज़ लगा-लगाकर —भात हज़म, मिट्टी हज़म, बत्तख हज़म, पत्थर हज़म !"

"लेमनजूस की लाटरी ! लेमनजूस की लाटरी ! खटमिट्ठे लेमनजूस ! मुँह में पानी, आँख में सुरमेदानी !"

"और हम लेमनजूस खरीदेंगे—शिवसागर के बने हुए नहीं, गौहाटी के बने हुए।"

एक तरफ़ जूनतारा और आरती मिट्टी ढो रही थी। आरती ने अवसर पाकर कहा, "जूनतारा, आज वह भी यहाँ होता तो कितना अच्छा लगता !"

"किसी क्रांतिकारी को दिल देने से तो कहीं अच्छा है, बैठकर प्याज के छिलके गिनती रहो !" जूनतारा हँस पड़ी।

आरती के चहरे पर एक शांत, स्निग्ध आभा थी; उसकी आँखों में एक मछुए की लड़की की-सी धूर्तता तो नाम को भी न थी। चेहरे का रंग, जैसे तपा हुआ ताँबा। उसकी आँखें बता रही थीं कि देवकांत के लिए वह अंतिम क्षण तक प्रतीक्षा करती रहेगी।

"क्या तुझे विश्वास है कि देवकांत की प्रेमिका रानी गुइडालो नहीं, आरती है ?" जूनतारा ने मज़ाक के स्वर में कहा, "तुझे मछलियों की पहचान तो है, आदमी की पहचान बिलकुल नहीं।"

आरती ने बड़ी स्निग्धता से कहा, "कभी तो माझुली में उसका काम खत्म होगा, कभी तो वह दिसाँगमुख आएगा। वह एक बार आए तो सही, मैं उसे वश में कर लूँगी।" और फिर उसने ठंडी आह भरकर कहा, "शायद भगवान् ने यही लिख दिया हो आरती के माथे पर कि वह अपने निर्मोही की बाट जोहते-जोहते मर जाएगी।"

"यह बात तुम आज सोच रही हो ?" जूनतारा ने व्यंग्य कसा, "अभी तो सौ-सौ टोकरी मिट्टी ढोने का काम सामने है, फिर कहीं छुट्टी मिलेगी।"

वे फिर मिट्टी ढोने लगीं।

पचपन

बाँध को तैयार होते-होते ढाई मास लग गए। दूसरे-तीसरे दिन लिली भी वहाँ जा निकली थी; वह भी टोकरी उठाने की इच्छा प्रकट करती। अतुल हमेशा यही कहता, "रोग के विरुद्ध हस्पताल भी तो एक बाँध है, जो पहले ही तैयार कर रखा है आपने !" लिली पुलकित हो उठती और हस्पताल में आकर रोगियों की देखभाल और दवा-दारू मे अपना समय बिताने लगती।

इधर वह कुछ दिनो से उदास रहने लगी थी। नीरद का कोई पत्र नही आया था। उसके पिता को उसका मार्ग पसंद न था; वे तो यही चाहते थे कि वह सरकारी नौकरी करे और अपने वंश की ख्याति बढ़ाए, पर लिली के मन पर तो ईसा के सेवा-धर्म की छाप थी।

एक दिन सहसा लिली को एक लिफ़ाफ़ा मिला। खोलकर देखा, तो नीरद का पत्र था :

प्रिय लिली,

इतने दिनों से तुम्हें कोई पत्र नही लिखा, पर श्वेत कमलिनी के समान तुम्हारा अपूर्व रूप मेरे मानसरोवर में बराबर खिला हुआ है।

इधर मैंने एक कविता लिखी है। तुम भी रस ले देखो। यह मेरी पहली कविता है; अभ्यास न रहने के कारण कही-कही छंद-भंग हुआ होगा निश्चय ही; बीच-बीच में लय भी टूटी होगी; पर यदि तुमने इसे औपचारिक कसौटी पर परखने के बजाय इसका रस लेने की चेष्टा की, तो मुझे संतोष होगा :

वर्तमान का अत हो चला,
अच्छा तो अब विदा,
उठाओ डंडा-डोली,
स्थान करो खाली।
वह देखो भविष्य-पाहुना
मंगल-सूत्र सँवारे,
आ गया हमारे द्वारे !
बोली अरी ओ भोली,
अब तो आ गई डोली;
चार कहार,
खड़े तैयार !
विद्यापति की कविता से अपना मन खाता है मेल—
'जनम अवधि हम रूप नेहारिलु,

नयन न तिरपित भेल !'
चंडीदास की कविता से लो सीख,
अरी ओ स्वप्नमयी, यह मिथ्या आनाकानी :
'एमन पीरिति कभू देखी नाइ सुनि,
पराने परान बोध आपना आपनि !'
इस वातायन से मै देख रहा हूँ—
कोई एकाकिनि, चिर-सुभाषिणी, सेवाव्रत-चारिणि,
थर्मामीटर लिए हाथ में सोच रही है—
ज्वर बहुत अधिक है,
देना होगा कोनिन-मिक्सचर !
तंग आ गया मै भी लिखते-लिखते अपना यह 'ब्रह्मपुत्र'
जाने कब होगा पूरा ।
मैं भी ज्वर में हूँ, ओ सेवाव्रत-चारिणी !
सोचा था, मै कभी नही लूँगा कडवी कोनीन !
कलकत्ते में कहे तुम्हारे शब्द आज भी गूँज रहे मेरे कानों में—
"खाँड-चढी कोनिन-गोली तो डरपोको के लिए बनी है !
अरे मूर्ख, सोचो तो जब तक खाँड घुलेगी,
उससे पहले कडवी कोनिन-गोली अपना असर करेगी !'
आज तो मै भी पी सकता हूँ कड़वा कोनिन-मिक्सचर !
लिए हाथ में मगल-सूत्र, मै दे सकता हूँ
लबा लैक्चर !
धन्य तुम्हारा हस्पताल, हे सेवाव्रत-चारिणि !
धन्य यह मेरा चिर-अपूर्ण ग्रंथ 'ब्रह्मपुत्र', हे मंदाकिनी !
लिली, तुम श्वेत कमलिनी,
और मै नीरद कजरारा मेघ !
आज करो स्वीकार मेरी पाती,
सजोओ दीया-बाती ।
सच जाना तो मै कहता हूँ,—
जैसाकि लिखता है एक शायर—
'लाख बरस के बाद शायद
हासिल हो सके जबाँ को कुव्वत,
जिससे वह कर सके बयान
जजबात का फ़रमान
अलफ़ाज की है क्या मजाल कि कुछ करें बखान,

जवानी की यादो का दर्द
कि जिसका होता आया इम्तिहान !
इसकी तो है एक मिसाल—
ऊँचे एक पहाड़ पर
साल में एक बार
आती है नन्ही-मुन्नी चिड़िया
और चली जाती है करके तेज़ अपनी चोंच;
चिड़िया की इस कोशिश से,
सोचो तो कितनी मुद्दत बाद
वह पहाड़ घिस-घिसकर हो जाएगा गायब ?
उतनी ही मुद्दत दरकार
कि शायर अपने लफ़्जो में कर सके बयान
अपने दिल के ब्रह्मपुत्र का ख़ौफ़नाक तूफान !
कि बस एक आहे सर्द के सिवा,
कि बस एक अश्के गरम के सिवा,
इस सिलसिले में और कुछ कहना नही आसान !'

पुनश्च :

मेरी इस तुकबंदी पर हँसना मत।

तुम्हारा
नीरद।

इस चिट्ठी को बंद करके अभी कुछ सोच ही रही थी कि किसी ने आकर कहा, "राखाल काका देवकांत की माँ को लाए है। उसे तेज़ बुखार है।"

लिली झट उठकर खड़ी हो गई।

छप्पन

जहाँ कभी अँग्रेजों ने सर्वप्रथम दिसाँगमुख के नाव-घाट पर उतरने के पश्चात् बाँसो का जेल बनाया था, और जहाँ से उठकर जेल के शिवसागर चले जाने पर जेल-गाँव की बस्ती बस गई थी, वहाँ शिवसागर-दिसाँगमुख सड़क के किनारे लिली ने बाँसों का हस्पताल खोल रखा था। असमिया कारीगरों ने इस प्रदेश में मिलने-वाले बाँसों से ही हस्पताल के वार्ड खड़े किए थे; बाँसो से ही लिली ने अपने रहने के लिए क्वार्टर बनवाया था।

अब तो खैर इस हस्पताल को सरकारी सहायता भी मिलने लगी थी, पर लिली का खयाल था कि हस्पताल जैसी संस्था को अन्य आत्म-निर्भर संस्थाओं के समान चलाना उचित नही। जिस दिशा से भी सहायता आए, ठीक है; सरकार दे तो ठीक है; मिशनवाले अपने फ़ंड से रुपया दें, तो ठीक; या शिवसागर, डिब्रूगढ़ और गौहाटी के धनी-मानी व्यक्तियों से चंदा लिया जाए, या दिसाँगमुख और आस-पास के गाँवो के खाते-पीते लोग अपनी इच्छा से हाथ बटाएँ; जैसे भी हो काम चलना चाहिए।···यह सोचते-सोचते वह देवकांत की माँ के पास पहुँची, जिसे सवेरे का जलपान दिया जा रहा था।

"कैसी तबीयत रही रात-भर ? नीद आई ?"

"नीद दो-तीन बार टूटी, हाथ-पैर सुन्न होने लगते है।"

लिली जानती थी कि देवकांत की माँ खून की कमी से पीडित है, उसके अनुसार इलाज शुरू कर दिया था। "तुम बिलकुल ठीक हो जाओगी !" लिली मुसकराई और दूसरे बीमारो को देखने के लिए आगे बढ़ गई।

गाधीजी के किसी व्याख्यान की रिपोर्ट में लिली ने पढ़ा था कि वह इस देश के प्रत्येक गाँव को आत्म-निर्भर देखना चाहते है। 'हमारा हर गाँव एक उद्योगशाला बनना चाहिए !' ये शब्द तो ठीक ही है, इनके पीछे सचाई झलकती है। हमारा हस्पताल भी तो किसी उद्योगशाला से कम नही।

सवेरे के 'राउड' के पश्चात् लिली अपने क्वार्टर के बरामदे मे कुरसी डालकर बैठ गई और जेब से निकालकर नीरद का पत्र पढ़ने लगी। इस पत्र को वह सातवी बार पढ़ रही थी।

कुछ समझ में नहीं आता कि नीरद कहना क्या चाहता है? उसने सोचा, 'उठाओ डंडा-डोली !' वर्तमान को संबोधित करते हुए कवि ने दूर की कौड़ी ढूंढ़ लाने की कोशिश की है।···वह मन-ही-मन हँस पड़ी—'पोइट्री' का खब्त चालीस साल की उम्र के बाद अजीब लगता है। ये तो फ़ुजूल-सी लाइने हैं, उलझी-उलझी; बे-सिर-पैर···फिर भी अंत में सिहरन-सी हुई।···

भीतर जाकर उसने दर्पण मे चेहरा देखा—छोटे-छोटे बिल्लौरी दाँत, बालो की घूंघरवाली लटे, होठों पर लिपस्टिक का हल्का-सा रंग। सफेद स्कर्ट को ध्यान से देखा, कमर पर बँधी लाल पेटी को थोड़ा कस लिया। जी में आया, ब्रह्मपुत्र की ओर घूमने चला जाए।

वह हर रोज़ ब्रह्मपुत्र पर घूमने जाया करती थी। किसी-किसी दिन रात को वह स्टीमर-घाट पर अपने डैडी और मम्मी के साथ भी रात गुजारने चली जाती, पर जब से डैडी ने साफ़-साफ़ कह दिया, 'नीरद से तुम कोई रीलेशन (संबंध) न रखो', उसका मन कुछ फट गया था। उसने अपने मन को समझाया—जल्दी नही, मैं हर रोज़ की तरह शाम को ही सैर को निकलूंगी।

सध्या समय लिली निर्निमेष दृष्टि से ब्रह्मपुत्र को देखती रही, जिस पर डूबते सूरज की किरणें नाटकीय ढंग से झिलमिली-सी अंकित कर रही थीं। वह सोचने लगी—नीरद इसी ब्रह्मपुत्र पर विचित्र-सी पोथी लिख रहा है। भानुमती के पिटारे की तरह वह इधर-उधर से जुटाई हुई बातें किसी-न-किसी तरह सजा-सँवारकर भर देना चाहता है। शायद उसे इस बात की परवाह नहीं कि पुस्तक का पूरा और एकाकी 'इफैक्ट' क्या होगा। वह परछाइयों के पीछे भाग रहा है। शायद उसके सामने कोई प्लान नही। इसीलिए उसकी गाड़ी बीच-बीच में रुक जाती है। अधिक पन्ने ही पुस्तक को बड़ा नही बनाते। उतनी बात लिखी जाए, जितनी पूरी तरह महसूस की जाए। फिर तो लेखक नोवल प्राइज़ भी पा सकता है।···यही ब्रह्मपुत्र के किनारे खडे-खड़े मैने ये बातें नीरद से कही थी। मैंने उसकी तरफ मुसकराकर देखा था। उसने हँसकर कहा था, "लिली, तुम कोई मेनका नही हो कि मेरी तपस्या भंग कर सको!"···मुझे बहुत गुस्सा आया। जी हुआ कि साफ़-साफ़ कह दूँ—मेनका के बच्चे, यहाँ से हट जाओ! पर हँसकर बात टाल दी। घिसे हुए ताँबे के समान चमक रहा था नीरद का चेहरा। लिखना कोई छूमंतर नही; लिखना तो सचाई चाहता है, अनुभव चाहता है, लगन चाहता है, खाली भाषा के दम पर नही हो सकता। इसके लिए लेखक का दृष्टिकोण चाहिए, विवेक चाहिए, पुराने और नए साहित्य का अध्ययन चाहिए!···

उसकी कल्पना मे डैडी का चेहरा उभरा। डैडी ठीक सोचते है कि मैं ऐसे आदमी से 'मैरेज' करूँ जो इज्जतवाला हो और जो उनकी लड़की की लाइफ तबाह न करे।

कई नावे आ-जा रही थी। नाव-घाट से नावरियों और मछुओं की आवाजें सुनकर लिली को लगा कि इनमें उसके लिए कोई आवाज़ नहीं। मुझे नीरद पसंद है, तो डैडी को बीच में बोलने का क्या 'राइट' है? मम्मी पर भले ही हुक्म चलाया करे, भले ही राह चलते लोगो पर रौब गाँठें, स्टीमर पर काम करनेवालों को भले ही डिसिप्लन की धमकी दिया करें, मैं तो डरनेवाली नहीं हूँ। गुस्से मे आकर डैडी घर को सिर पर उठा लेते है। घर में तो घर की तरह रहना चाहिए, घर को मछली बाजार तो नही बनाना चाहिए। और वह सोचने लगी—यह विशाल जलधारा अपने भीतर कोई भयंकर तूफ़ान छिपाए बह रही है।···आज डैडी मेरे और नीरद के मामले में बोलते हैं, कल हस्पताल के मामले मे टाँग अड़ाएँगे।···

नाव-घाट से लौटते हुए लिली को रास्ते में जूनतारा मिली जो कलसा उठाए पानी-घाट से पानी लाने जा रही थी। "देवकांत की माँ का बुखार कुछ उतरा, डॉक्टरनीजी?" जूनतारा ने पूछ लिया।

"वह चंगी हो जाएगी।" लिली मुसकराई।

"एक बात कहूँ," जूनतारा ने समीप होकर कहा, "जब मेरा विवाह हुआ, तो

मैने अपनी माँग के सिंदूर से थोड़ा-सा तुम्हारे सिर पर लगा दिया था···"

"मुझे याद है।" लिली हँस पड़ी।

"उस सिंदूर ने असर क्यों नही दिखाया?" जूनतारा मुसकराई और फिर सँभलकर बोली, "नीरद बाबू कब आएँगे? उन्हें बुला लो न।"

"बुला लेंगे।" लिली ने बिना झेंपे उत्तर दिया।

लिली हस्पताल लौटी, तो नीरद के पत्र का जवाब लिखने बैठ गई, पर कुछ लिखा ही नही जा रहा था। उसे याद आया कि नीरद उसे कलकत्ता से शांति-निकेतन घुमाकर लाया था, जहाँ से उसने एक चित्र खरीदा था, जो अब तक उसके पास था।

डिनर पर बैठे-बैठे उसे लगा कि नीरद अब जल्दी आएगा और आकर अपनी तुलना रेशम के कीडे से करेगा—"जैसे रेशम का कीड़ा रेशम कातता है, मै यह पोथी लिख रहा हूँ! हम एक शर्त पर 'लाइफ पार्टनर' बन सकते है कि तुम हस्पताल चलाओ और मै लेखनी चलाऊँ!" ···वह मन-ही-मन हँसी—यह कैसी शर्त है?···

'स्कर्ट' उतारकर उसने 'नाइट गाउन' पहना और नौकर को आवाज दी, "डिनर में क्या देर है?"

सत्तावन

आरती ने कजरारी आँखें नीले अबर की ओर उठाई। खड़े-खड़े उसने अँगड़ाई ली। एकदम नितंबिनी, जो कभी मछली-सी चंचल थी। आज तो वह गंभीर प्रतीत हो रही थी—मर्यादा में बँधी, परंपरा से जुड़ी। अब पच्चीसवें वर्ष में पदार्पण कर रही थी।

दो दिन से वह बराबर कमलिया सापरी पर आ रही थी; देवकांत की बाट जोहकर वापस दिसाँगमुख चली जाती। आज तीसरा दिन था; आज फिर वह बापू से बहाना करके आई थी।

आ रे आ, अब आ जा रे!—वह मन-ही-मन कह रही थी। कलहंसो का झुड आधी चूड़ी के समान अर्द्ध गोलाकार बनाता दूर निकल गया। आरती का उड़नछू मन भी कलहंसों के साथ ही उड़ जाता, पर उसे तो देवकात की प्रतीक्षा थी।

उसने खड़े-खड़े फिर अँगड़ाई ली—लोग क्या सोचते होगे? किसी और मछुए की बेटी तो इतने दिन बिन-ब्याही नही बैठी रही। प्रथम फाल्गुन था उस दिन,

जब मैंने मन-ही-मन देवकांत को वर लिया था। मदारी है मदारी—यह हमारा देवकांत। अपने झोले से क्राति का गोला निकालकर हवा मे क्या उछाला, नेह लगाने की सुध ही बिसर गई। ऐसा भी करते हैं ?···

जैसे वह सदियों से देवकात से स्नेह किए खडी थी। वह शिकारी गॉव की दिशा में देखने लगी, जिधर से देवकात के आने की आशा थी।

उसका सिर चक्कर काटने लगा—क्या देवकात आज भी नहीं आएगा ? पास से खरगोशों की जोड़ी सिर से ऊँची घास की ओर जाती पगडंडी की तरफ सिर पर पैर रखकर भागी। मुझसे तो ये खरगोश भी अच्छे है !

उसने मन-ही-मन कहा—देवकांत का शायद यह विचार हो कि ब्रह्मपुत्र की मछली, ब्रह्मपुत्र में ही भली ! मुझसे बात करने के लिए उसे अवकाश नही। होता, तो वह कभी अवश्य मिलता।···वह शिकारी गॉव की दिशा में निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी।

स्नेह तो सनातन है—वह सोचने लगी—प्रतिदिन नूतन बन जाता है स्नेह। ·· और फिर जैसे भीतर ये आवाज आई—ओ री ओ, नितंबिनी, मैं आऊँगा। · अवश्य आऊँगा।···उसका हृदय पुलकित हो उठा।···आज मै उससे कहूँगी—बहुत हो ली क्राति। अब घर में रहो। तुम्हारी क्राति से तो कुछ आता-जाता नही। पुलिस का दबदबा तो इंचभर भी कम नही हुआ। नाव-घाट पर गोपीनाथ दारोगा का मामूली सिपाही भी पहुँच जाता है, तो हर नावरिया और मछुआ भय से काँपने लगता है। तुम दिसाँगमुख आकर यही रहने लगो, तो अब गोपीनाथ दारोगा तुम्हे हाथ नही लगाएगा। तुम्हें तो नौकरी भी मिल सकती है। स्टीमर-घाट पर कंपनी को एक आदमी चाहिए। स्कूल मे भी एक मास्टर की जगह खाली है। पुलिस से लडकर तो घाटा-ही-घाटा है। गॉव-बूढा नीलमणि ने अपनी पदवी छोड़ दी, तो क्या सरकार को दूसरा गॉव-बूढ़ा नही मिला ? अब साधन मीरी गॉव-बूढ़ा बना बैठा है। व्यर्थ ही उस दिन जुलूस निकाला। उससे क्या होता है ? लिली ने हस्पताल खोलकर दिसाँगमुख को लाभ पहुँचाया। अतुल ने भी कुछ तो किया; उसी ने तो ब्रह्मपुत्र का बाँध बाँधने के लिए लोगो को ललकारा था। उस दिन नाव-घाट पर खड़ा अब्दुल क़ादिर बापू से मछली खरीदते समय कह रहा था, "आजादी अलादीन के चिराग से नही आ सकती, एक दिन में !" देवकांत क्या इतना भी नही समझता ? राखाल काका बापू से अपनी ही कहते है, "एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों पर तभी तक हुकूमत कर सकते हैं, जब तक गुलाम देश गुलामी के लिए राजी हो !" वह फिर शिकारी गाँव की दिशा में देखने लगी—अब तो देवकांत को आ जाना चाहिए ?···

बाँहें ऊपर उठाकर उसने शिकारी गाँव की दिशा में देखा। कोई नाव नही आ रही, एक भी नही ! मैं देवकांत से कहूँगी—अतुल की बात मानकर दिसाँगमुख में

रहो। तुम्हारे चरित्रवान होने में तो मुझे संदेह नही। तुम अच्छे हो, तुम्हारा स्वभाव अच्छा है, तुम्हारा रूप अच्छा है; बस एक बात मान जाओ। दिसाँगमुख मे रहो, वही से कम चलाओ। साधन मीरी को भी अपने हाथ में कर लो। ऐसी स्थिति लाओ कि फ़िरंगी को दीया लेकर ढूँढ़ने से भी गाँव-बूढ़ा न मिले। मैं कहूँगी —घर का सुख बडी चीज है। तुम अब दिसाँगमुख में ही जमकर रहने का सकल्प करो। मेरे प्रति तुम्हारा कर्तव्य तभी शुरू होगा, जब हमारा विवाह होगा; पर माँ के प्रति क्या तुम्हारा कोई कर्तव्य नही? माँ की सेवा क्या देश-सेवा से अलग है? माँ को कुछ हो गया, तो तुम हमेशा के लिए कलंकित हो जाओगे?···

वह एक घर चाहती थी, अपना घर, पिता का घर नही, पति का घर, जहाँ वह स्वतत्रता से रह सके, अपने मन की कर सके। फ़िरंगी के हाथों दिसाँगमुख की स्वाधीनता से कही पहले, वह अपने पिता के हाथों स्वाधीन होना चाहती थी। वहाँ बापू मेरी राह देख रहे होगे!—उसे ध्यान आया—परवाह नही। मैं बापू के नाम लिखी हुई तो नही हूँ। मैंने अपना जीवन किसी के हाथ गिरवी नही रखा। अपने जीवन का भाडा मै खुद चुकाऊँगी!···

दूर से कलहसो की तिरछी पाँत गगन-पथ से आई और शिकारी-गाँव की ओर निकल गई। आरती सोचने लगी -- अतुल ने झूठ तो नही बताया होगा कि एक दिन इसी कमलिया सापरी पर उसकी देवकात से भेंट हुई थी। वह तो कह रहा था —देवकात स्वयं तुमसे मिलने को उत्सुक है कमलिया सापरी पर! वह आए तो सही, मुझसे कहे तो सही— ब्रह्मपुत्र की मछली ब्रह्मपूत्र में ही भली! मै कहूँगी -- प्यार करो, प्यार को ही लक्ष्य बनाओ। प्यार की पालकी में बैठो। प्यार का इतिहास लिखो। मै तो मछुए की लडकी हूँ। मैं तो मछली पकड़कर गुज़र करना जानती हूँ। मैं तुम्हें भी यह काम सिखा दूंगी, अगर तुम मानोगे। नही तो, जो भी करो, बस दिसाँगमुख में आकर रहो मेरे साथ। मैं तुम्हें अपनी आँखो पर बैठाऊँगी, पलको की चिक डालकर छिपा लूंगी, ताकि तुम्हें नज़र न लग जाए।···

साँझ उतर रही थी। शिकारी गाँव की ओर से कोई नाव आती दिखाई न दी। "अच्छी बात है," उसने मन-ही-मन कहा, "न आए देवकात। अब तो नाव खोलनी चाहिए।" और वह नाव मे बैठकर चप्पू चलाने लगी।

ब्रह्मपुत्र शात गंभीर गति से बह रहा था। जाड़े में ब्रह्मपुत्र का यही रूप था। आरती ने सोचा, ब्रह्मपुत्र ने दही माँगनेवाली बिल्ली के समान अपनी आवाज़ बदल ली। अधकार घना हो गया था। आरती जल्दी-जल्दी चप्पू चला रही थी। वह जानती थी कि पीछे से एक नाव आ रही है। वह इस नाव से आगे रहने की चेष्टा करने लगी।

पीछे से आवाज आई, "आरती!"

उसने चौककर पीछे देखा। बोलनेवाले का चेहरा नज़र न आया।

पीछे की नाव समीप आ गई। फिर आवाज आई, "आरती !"

आरती की नाव रुक गई। "देवकांत, तुम ? अच्छा, तो तुम आ गए ?"

अट्ठावन

दोनों नावें साथ-साथ जा रही थी। एक में आरती चप्पू चला रही थी, दूसरी में देवकात।

"मै बस आधा घंटा देर से पहुँचा।" देवकांत बोला, "तुम तक पहुँचने के लिए मुझे बहुत तेज चप्पू चलाना पडा। मेरे तो हाथ रह गए।"

"एक घंटा देर से पहुँचे होते, तो तुम मुझे न मिल सकते।" आरती ने उलाहना दिया, "तो तुम लौट क्यो न गए ?"

"कैसे लौट जाता ?"

"जैसे लौटा जाता है, और कैसे ?"

"तुम्हारे दिल में गुस्सा है। इस गुस्से से तुम अपनी रक्षा करो, जैसे आजकल माझुली फिरंगी से अपनी रक्षा कर रही है।"

"मुझे उपदेश नही चाहिए।"

"थोडा विचार करो, मैं मजबूर था।"

"अब यह सफाई नही चाहिए। जिसकी कथनी और करनी में धरती और पाताल का अंतर हो, उसे उपदेशक तो बिलकुल नही बनना चाहिए।"

"तो मैं क्या करता ?"

"समय पर आते।"

"तुमने थोड़ा और देख लिया होता, और गुस्से के बजाय संयम से काम लिया होता।"

"फिर उपदेश शुरू कर दिया ?"

"एक बात तो साफ़ है। प्रेम ही मेरे लिए जीवन का सर्वस्व नही है। मैं माझुली मे काम कर रहा हूँ।"

"दिसॉगमुख को भूल गए ? जानते हो, तुम्हारी माँ हस्पताल में है।"

"जानता हूँ।"

"तुम तो माँ को भी भूल गए, फिर मैं क्या शिकायत करूँ ?"

"पुलिस मेरा पीछा कर रही है, मैं मजबूर हूँ।"

"यह सफ़ाई तो बहुत हो ली।"

बातें हो रही थी। दोनों नावें साथ-साथ जा रही थी। रात साफ़ थी। ब्रह्मपुत्र

शांत और गंभीर था; जाड़े के गगन पर तारे ठिठुर रहे थे। किनारे की तरफ़ कहीं किसी झोंपड़ी के समीप आग चमकती नजर आ जाती, जैसे कोई अगिया बैताल आग उगल रहा हो। हवा तेज़ हो गई थी।

"यह रात कितनी काली है!"

"उतनी काली तो नही, जितने काले तुम्हारे लंबे केश है।"

"यह चापलूसी किसलिए?"

"अच्छा तो छोडो, क्यों न हम मिलकर ब्रह्मपुत्र का गुणगान करें? कितना पवित्र है ब्रह्मपुत्र!"

आरती कुछ न बोली और चप्पू चलाती रही। कुछ क्षणो की खामोशी के बाद देवकांत ने कहा, "तुम्हारा गुस्सा अभी तक ठंडा नही हुआ। मेरी स्थिति को समझो। पुलिस मेरे पीछे पडी है। मेरे हाथ मे जो काम है, उसमे मै अपनी आत्मा को उतारे बिना नही रह सकता।"

"तुम टिटहरी के समान एक टाँग आकाश की ओर उठाकर सोते हो कि कही आकाश गिर न पडे।" यह कहकर आरती खिलखिलाकर हँस पड़ी, जैसे उसका गुस्सा ठंडा हो गया हो।

आरती को हँसते देखकर देवकात भी हँस पड़ा; दोनो नावो के चप्पू हँस पडे, ब्रह्मपुत्र भी हँस पडा।

देवकांत ने सँभलकर कहा, "मै आज माँ से जरूर मिलूँगा।" और वह गुनगुनाने लगा—स रे ग म प ध नी!

आरती बोली, "पुलिस के हाथ पड़ गए तो?" और जैसे वह अपने भय को सरगम में बाँधने लगी, "स नी ध प, स नी ध प!"

"म ग रे स!" देवकात बोला। जैसे कह रहा हो—परवाह नही।

जब दोनो नावें दिसाँगमुख के नाव-घाट पर पहुँची, तो आरती के लाख मना करने पर भी देवकात पीछे लौटने के लिए तैयार न हुआ।

नावे घाट से बाँधकर वे नाव पर बनी झोपड़ी की ओर चल पड़े।

आरती ने दस्तक देकर कहा, "बापू, बापू, किवाड़ खोलो! देखो कौन आए है!"

द्वार खोलकर धर्मानंदी बाहर आया तो वह देवकांत को इस रूप में देखकर बिलकुल न पहचान सका।

आरती ने बापू के कान में कुछ कहा और वह अंदर चली गई।

धर्मानदी ने देवकांत के सिर पर हाथ फेरा, उसे गले से लगाया, "धन्य भाग हमारे, जो पाहुन घर पधारे!" धर्मानंदी फूला नही समा रहा था, "भीतर चलो, बेटा! तुम बहुत थक गए होगे। कब चले थे?"

भीतर जाकर किवाड़ बंद करते हुए पहले आरती ने आग जलाई, फिर बापू

को संबोधित करते हुए बोली, "तुम खाना गरम करो; मै जाकर अतुल को बुला लाऊँ !"

धर्मानंदी कहता रह गया, "तुम बैठो, मैं जाता हूँ !" पर आरती शीघ्रता से बाहर निकल गई।

उनसठ

एक का चेहरा सफाचट, दूसरे के चेहरे पर पाँच अंगुल दाढ़ी। वे बिलकुल सट-कर चले जा रहे थे, जैसे दोनो एक डोरे में गुँथे हों।

हस्पताल के फाटक पर पहुँचकर दरबान को जगाना पड़ा।

"वह बुढ़िया है न—वह देवकांत की माँ।" अतुल ने कहा, "ये उससे मिलेगे। डिब्रूगढ से आए है। उसके संबंधी हैं। कल सवेरे ही इन्हें यहाँ से चले जाना है।"

"बड़ डिकडारी !" दरबान के मुँह से निकल गया।

"बुढ़िया से मिले बिना तो चल ही नही सकता इनका काम। कहो तो डॉक्टरनी से पूछ आएँ !"

डॉक्टरनी का नाम सुनकर दरबान मान गया। भीतर जाकर वह उन्ही पैरो वापस आ गया। बोला, "वह बुढ़िया तो सो रही है, बड़ डिकडारी !"

"ये तो बुढ़िया के चरण छूकर ही चले आएँगे।"

"हरि इच्छा !" कहते हुए दरबान उन्हें बुढ़िया की खाट के पास ले गया और बोला, "आप बैठकर थोड़ा आराम कर लें। बुढ़िया की आँख खुल जाए, तो मिल लेना। मै चलता हूँ।"

बॉस की खपचियों से तैयार किए हस्पताल के इस कमरे में दीया जल रहा था। अतुल ने धीरे से माँ को आवाज़ दी, "माँ ! माँ ! देखो कौन आए है ?"

माँ हड़बड़ाकर जाग गई, "कौन ?"

"मै अतुल हूँ, माँ !"

"और यह दूसरा ?" माँ भौचक्की-सी देखती रह गई।

देवकांत ने माँ के चरण छूकर कहा, "मुझे नही पहचाना ?"

"कौन ? तुम ! अच्छा, अच्छा ! मैं समझ गई। तुम क्यों आए ?"

"जी किया तो चला आया !" देवकांत ने माँ के चरणों पर सिर रखकर कहा, "अब कैसी तबीयत है ?"

"पहले से अच्छी है।" माँ ने खाँसकर कहा, "तुम क्यों आए ? तुम चले जाओ। जाना ही ठीक है।"

"डरो मत। मैं चला जाऊँगा।"

"चित्ताप्रसाद बेचारा बिजली गिरने से मर गया, सुना ही होगा तुमने ?" माँ खाँस-खाँसकर बेहाल हो गई।

देवकांत माँ के चरण दबा रहा था; अतुल ने माँ का सिर थाम लिया। ज़रा सँभलकर माँ बोली, "तुम्हारा काम ठीक चल रहा है ?"

"जैसे करघे पर रेशम बुनते है, वैसे ही हम नया जीवन बुनने जा रहे है, माँ !" देवकांत कहता चला गया, "जैसे करघे पर कपड़ा बुनते-बुनते नए-नए नमूने काढ़ते हैं, वैसे ही हम नए नमूने काढ़ेगे, माँ ! ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के सामने हम बाँध बन जाएँगे। ब्रह्मपुत्र एक है, हम अनेक है। ब्रह्मपुत्र से हमारा मुकाबला है। हम डटे रहेंगे। ब्रह्मपुत्र परे हट जाएगा; उसे हटकर ही बहना पड़ेगा।"

"ब्रह्मपुत्र देवता !" माँ ने ठंडी साँस भरकर कहा, "अतुल का नाम तो दिसाँग-मुख मे अमर हो गया। अतुल न होता तो दिसाँगमुख मे ब्रह्मपुत्र का बाँध भी न होता।"

"अतुल दिसाँगमुख का वीर है।"

"मैं तो इतनी प्रशंसा का पात्र नही।" अतुल भी चुप न रह सका, "अब हम नया आंदोलन चलाना चाहते है !"

"कौन-सा आदोलन ?" देवकात ने झट पूछ लिया।

"ब्रह्मपुत्र मे बहकर आई हुई लकड़ी को घर लाने से पहले हमे सरकार को टैक्स देना पड़ता है। ब्रह्मपुत्र हमारा है, तो उसमें बहकर आई हुई लकड़ी भी हमारी है। इस टैक्स के विरोध में चलेगा हमारा आदोलन।"

"कौन-कौन तुम्हारे साथ हैं ?"

"सभी। बस, गाँव-बूढ़ा साधन मीरी ही हमारा साथ नही देगा !"

माँ बोली, "अतुल वीर है।"

"वह युग तो कभी का लद गया, माँ ! जब एक-दो वीर काम चला सकते थे।" अतुल कहता चला गया, "अब तो सबको मिलकर आगे बढ़ना होगा। मिलकर हमने बाँध बाँधा, मिलकर ही हम ब्रह्मपुत्र में बहकर आई हुई लकड़ी को मुफ्त घर लाने के आदोलन में सफल होकर दिखाएँगे।"

बाहर से किसी के क़दमो की चाप सुनाई दी। माँ डर गई—कही पुलिस तो नही आ गई ? वह बोली, "तुम जाओ, जल्दी जाओ। मेरी चिंता न करना। तुम्हें पाकर तो मेरी कोख धन्य हुई। मैं मर भी गई, तो यही आशीर्वाद देकर जाऊँगी कि दिसाँगमुख में मेरे लाल जैसे बेटे जन्म लें।"

"अब चलना चाहिए।" अतुल ने देवकांत का कंधा झंझोड़ा, "अब देर करना ठीक नहीं।"

उठने से पहले देवकांत ने माँ के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। फिर

वे दोनों बाहर निकल गए।

माँ उन्हें फटी-फटी आँखों से देखती रह गई।

साठ

अहंवादी नाटक के सूत्रधार के समान हडसन साहब आग-बबूला हो उठे। आखिर लिली ने अपनी मनमानी करके छोड़ी। नीरद के साथ लिली का जोड़ा उन्हें नापसद था; लिली ने एक न सुनी, शिवसागर जाकर विवाह के रजिस्टर पर हस्ताक्षर कर दिए।

जब लिली बुलाने आई, तो मम्मी शायद मान भी जाती, पर डैडी के साफ़ इनकार करने पर लिली अपना-सा मुँह लेकर चली गई। विवाह तो रुक नही सकता था।

"लिली तो पागल हो गई है। 'मैरेज' की एक "बैकग्राउंड' होती है, एक 'अंडरस्टैंडिंग'। मेरी समझ में नीरद दो शिलिंग का आदमी भी नही है।"

"उसे 'एक्सक्यूज़' कर दो।" मिसेज़ हडसन मातृसुलभ स्नेह को छिपा न सकी।

"जिसने हमारी 'प्रैस्टीज' को डुबोया, उसे 'एक्सक्यूज' कर दूँ?"

"सीधी-सी बात है। लिली की 'मैरेज' तो होनी ही थी एक-न-एक दिन। शायद यही 'डेस्टिनी' का तकाज़ा था लिली के लिए। मै तो नीरद को बुरा नही समझती।"

"नीरद के साथ 'मैरेज' करने से तो अच्छा था कि लिली ब्रह्मपुत्र मे डूबकर 'सुइसाइड' कर लेती।"

मिसेज़ हडसन को अपने पति के मुँह से यह बात बहुत अखरी। उसकी कल्पना मे वे दिन घूम गए, जब कलकत्ता से दिसाँगमुख आते हुए रास्ते मे इसी स्टीमर पर ही लिली का जन्म हुआ था। उसे उन दिनो बहुत कष्ट रहा करता था। उसका पति हमेशा यही कहा करता था, "'प्रेगनेंट' होकर 'चाइल्ड' की 'बर्थ' तक यह सब मुश्किल-ही-मुश्किल है, फिर एकदम 'रिलीफ' हो जाएगा।" उसे याद था कि लिली का जन्म होने पर वह तीन दिन तक बेहोश रही थी। लिली स्वस्थ थी। उसका अपना स्वास्थ्य ही ठीक नही था। वह मरते-मरते बची थी। उसने ज़ोर देकर कहा, "नीरद इतना बुरा तो नही।"

हडसन की भृकुटी उसी तरह चढ़ी रही। वह कुछ न बोला।

मिसेज़ हडसन जानती थी कि लिली और नीरद की अपनी-अपनी कल्पना

और अनुभूति है, अपने-अपने दृष्टिकोण हैं, फिर भी उसका खयाल था कि दोनों एक अच्छे उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न रह सकेंगे। उसका विश्वास था कि जब हडसन का गुस्सा ठंडा हो जाएगा और वह शात मन से सोचेगा, तो वह भी इसी परिणाम पर पहुँचेगा। विवाह को वह बहुत बड़ी घटना मानती थी—आग में से गुज़रने के बराबर, फूलों की सेज पर सोना नही। इसलिए लड़के-लड़की का एक-दूसरे को जानना-समझना जरूरी था। उसका विश्वास था कि जितना समय लिली और नीरद को एक-दूसरे को जानने-समझने को मिला, इतना बहुत कम लड़के-लड़कियों को मिला होगा।

"मैं कंपनी के बड़े दफ़्तर को लिख रहा हूँ कि यहाँ से मेरी बदली कर दी जाए।"

"इससे क्या 'डिफ्रेस' पड़ेगा ?"

"न लिली सामने होगी, न मुझे गुस्सा आएगा।"

"गुस्सा तो तुम यहाँ रहते भी ठडा कर सकते हो, डारलिग ! नीरद अच्छा लड़का है। वह टिब्बट गया था जहाँ उसके माँ-बाप रहते है।"

"वैसे ही गप्प हॉक रहा होगा।"

"वह तो कह रहा था कि उसका बाप बहुत साल पहले 'कैलकटा' से लहासा चला गया था।"

"बड़ा गप्पी है !"

"सुनो भी, डारलिग ! नीरद का बाप 'कैलकटा' के एक होटल के इस बरताव से नाराज़ था कि 'इंगलिशमैन' अपने 'डाग' को तो भीतर ले जा सकता है, पर एक 'इंडियन' के लिए उस होटल मे 'एंट्रेस' मिलना 'इंपासिबल' है···"

"नॉनसेंस !"

"नीरद कह रहा था कि उसके बाप ने यह 'ओथ' ले ली कि वह ऐसे 'स्लेव कंट्री' में रहेगा ही नही, और लहासा से उस वक्त लौटकर आएगा, जब यह 'स्लेव कंट्री' 'इडिपेडेट कट्री' बन जाएगा।"

"बट ए शेम ! इस 'कट्री' को इंडिपेंडेंट' बनते सौ साल लगेंगे। यह 'टाइम' भी थोडा है···"

"मेरा तो दिल कहता है कि 'इंडिया' अब अधिक दिन 'स्लेव' नही रह सकता !"

"लिली ने यह सब जानते हुए भी कि नीरद एक ऐसे आदमी का लड़का है जिसे 'इंगलिश मैन' का 'इडिया' में रहना पसंद नही, एक 'इंडियन' से 'मैरेज' कर ली ! मै समझ लूँगा कि लिली नाम की मेरी कोई 'डॉटर' थी ही नहीं।"

मिसेज हडसन को अपने पति का यह रुख अच्छा न लगा। वह कुछ न बोली।

हडसन ने प्रसंग बदलकर चित्ताप्रसाद की चर्चा आरंभ कर दी। बिजली गिरने

से चित्ताप्रसाद की मृत्यु होने की दुखद घटना से उन्हें दुख हुआ था। 'अंडी मूगा सहकारी संस्थान' का काम अब चित्ताप्रसाद के बड़े लड़के ने सँभाल लिया था। "बेटा बाप का मुकाबला तो नही कर सकता, फिर भी मैं खुश हूँ कि मेरा 'शेयर' पहले की तरह ही 'सेफ' है।" हडसन की आवाज़ में कुछ नरमी आ गई।

मिसेज़ हडसन ने गहरी उपेक्षा से पति की बात अनसुनी कर दी। उसने उठकर ग्रामोफोन पर बीथोविन की सातवी सिंफनी का रिकार्ड लगा दिया।

हडसन को इस समय अपनी पत्नी की यह हरकत बहुत बुरी लगी। "बंद करो यह रिकार्ड।" उसने मुँह बनाकर कहा, "डारलिंग, इस रिकार्ड में ऐसी क्या बात है? मैं जानता हूँ, लिली को यह बहुत पसंद है।"

मिसेज़ हडसन मुसकरा दी, जैसे वह कहना चाहती हो—संगीत से गहरी कोई चीज नही! रिकार्ड बजता रहा। मिसेज़ हडसन की मुद्रा अद्‌भुत थी, एकदम अभूतपूर्व; जैसे आज पहली बार वह इस सिंफनी को समझने में सफल हुई हो।

ब्रह्मपुत्र मुसकरा रहा था, और ब्रह्मपुत्र का बाँध दिसाँगमुखवालों की मिली-जुली मेहनत का प्रतीक प्रतीत हो रहा था। गगन-पथ पर सारसों और कलहंसो की टोलियाँ जैसे दिसाँगमुख का यशोगान करती निकल जातीं। स्टीमर-घाट का शोर बता रहा था कि अभी-अभी किसी चाय-बागान से एक ट्रक आया है। ट्रक से चाय की पेटियाँ उतारी जा रही थी।

ब्रह्मपुत्र की जलधारा पर लहरों की सिलवटे बड़ी सुंदर लग रही थीं। रिकार्ड बंद हुआ तो फिर से इसे ही लगा दिया गया। हडसन को यह बात बड़ी विचित्र-सी लगी।

"मुझे तो यह सिंफनी बिलकुल 'टच' नहीं करती।"

"बाहर बजनेवाली सिंफनी पहले हमारे अंदर बजे, तब बाहर की सिंफनी भी अच्छी लगती है, डारलिंग!"

"मैं सोचता हूँ, यह बाँध नहीं बचेगा, 'ब्रह्मपुट्टर' इसे 'वाश अवे' करके ले जाएगा।"

"तुम्हारा खयाल है, इन लोगों ने बेकार ही बनाया यह बाँध? यानी इंसान अपने 'डिफेंस' की कोशिश न करे?"

नीचे से पालतू बत्तखों की आवाज़ें आ रही थीं! रिकार्ड बंद हो गया था। मिसेज़ हडसन अनमनी-सी बैठी रही। हडसन आरामकुरसी पर पैर फैलाए बैठा सिगरेट के कश लगाता रहा।

" 'फ्लड' आता है तो 'वाटर'-ही-'वाटर' हो जाता है। सैकड़ों गाँव यों डूब जाते हैं, जैसे 'कर्ड' में 'साल्ट' के टुकड़े। फिर भी ये लोग 'ब्रह्मपुट्टर' से 'लव' करते हैं, डारलिंग!"

"'ब्रह्मपुट्टर' से 'लव' न करने का तो सवाल ही नहीं उठता ! वट ए ग्रेट रिवर !"

कही-कही नावें आ-जा रही थीं। ब्रह्मपुत्र के जलमार्ग पर मानव का शासन था, जैसे मगल-ही-मंगल हो। किसी नाव के चलने से ऐसी आवाज़ आती, जैसे शिशु माँ के स्तन को मुँह मे लेकर चूसता है; किसी से ऐसी आवाज़ आती, जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर डकार लेती है। मिसेज हडसन सोच-सोचकर बोली, "यहाँ रहते हमे कितना 'टाइम' हो गया, पर इन लोगो के साथ हम 'फैमिलियर' नही हो पाए। हम इन्हें 'स्लेव' क्यो समझते है ?"

"ये हैं ही 'स्लेव' !" हडसन ज़ोर से हँस पड़ा, "फिर हम इन्हें 'स्लेव' समझते हैं तो क्या 'मिस्टेक' करते हैं ?"

"चाय की पेटियाँ 'लोड' करा-कराकर हम बुड्ढे हो गए।"

"इसी काम की तो तुम्हे 'पे' मिलती है।"

"सारा-सारा दिन 'बोट्स' आती-जाती है। ये लोग अपना काम करते है। ये तो किसी से 'पे' नही लेते। 'ब्रह्मपुट्टर' में 'फिश' की कमी नहीं। 'फिशर-मैन' मजे से 'फिश' पकड़ने निकलते हैं। 'ब्रह्मपुट्टर उन्हें 'फ़िश' देता है और वे इसे बेचकर पेट पालते है; वे किसी की 'पे' के मोहताज नही।"

"फिर भी ये लोग हमारे 'स्लेव' हैं।"

"इनके अपने 'हाउस' है, अपने 'विलेज' है, अपना 'ब्रह्मपुट्टर' है। इन्हें 'अंडर-स्टैंडिग' हो रही है। ये बहुत दिन 'स्लेव' नही रह सकेंगे, डारलिंग !"

"इनके बाप को भी हमारा 'स्लेव' रहना होगा।"

"इनके अपने 'फील्ड' है, जहाँ 'पैडी' होती है; अपने 'स्पिनिग व्हील' है, जिन पर वे घर के पाले रेशम के कीडो का तैयार किया रेशम 'स्पिन' करते है, अपने 'हैडलूम्ज़' है, जिन पर ये घर के कते रेशम से कपड़ा 'वीव' करते हैं। कपड़ा भी ऐसा, जो बड़ी-बडी मिलों के कपड़े को 'डिफीट' देता है।"

"यह तो ठीक है। 'दे आर वंडरफुल स्पिनर्स एड वीवर्स !"

"मै कहती हूँ, ये लोग बहुत दिन हमारे 'स्लेव' नही रह सकते।"

चाय की पेटियाँ उतारकर ट्रक फिर से शिवसागर की ओर जाने के लिए मुड़ा तो ज़ोर से उसका हॉर्न बज उठा। मिसेज़ हडसन ने बेरुख़ी से अपने पति की ओर देखा, जैसे कह रही हो—ब्रह्मपुत्र के शात, मधुर गान के साथ इस हॉर्न का ज़रा भी मेल नही।

इतने में किसी ने नीचे से आकर कहा, "लिली और नीरद आ रहे है।"

हडसन ने आँखों-ही-आँखो में अपनी पत्नी को बताया—मैं उनसे बिल्कुल बात नही करूँगा।

"लिली फिर भी तुम्हारी 'डॉटर' है। उसका 'हार्ट ब्रेक' न करना। अब तो

उसने 'मैरेज' कर ही ली।" और अगले ही क्षण लिली और नीरद के मुसकराते चेहरे देखकर वह बोली, "कम आन, लिली ! कम आन, नीरद ! आज हम तुम्हें बहुत 'रिमेंबर' कर रहे थे। बैठो, नीरद ! तुम्हारे माँ-बाप की कोई 'लैटर' आई लहासा से ? बहुत अच्छा 'कंट्री' है 'टिब्बट', हमारे 'ब्रह्मपुट्टर' का 'बर्थप्लेस'। आज तो 'ब्रह्मपुट्टर' के 'बर्थप्लेस' की बातें ज़रूर सुनाओ !"

"जरूर, जरूर !" हडसन भी चुप न रह सका।

माँ ने उठकर बेटी के लिए ग्रामोफोन पर बीथोविन की सातवी सिंफनीवाला रिकार्ड लगा दिया।

इकसठ

"बगाल में प्रवेश करने के कई रास्ते हैं, निकलने का एक भी रास्ता नही है।" सवेरे की चाय पीते-पीते लिली कई बार कह चुकी थी। ये शब्द उसने कलकत्ता की इंपीरियल लाइब्रेरी मे किसी पुस्तक में पढ़े थे; उसी लाइब्रेरी मे नीरद से प्रथम परिचय हुआ था, तब वह क्या जानती थी कि यह परिचय एक दिन विवाह का रूप धारण कर लेगा।

एक दिन लिली बोली, "हमारी 'मैरेज' को सात महीने हो गए, फिर भी डरती हूँ, डैडी इधर आकर गाली न देने लगें; उन्हें बहुत गुस्सा आता है, डार्लिंग !"

नीरद ने हँसकर कहा, "ब्रह्मपुत्र मे बाढ़ आती है जरूर, पर हमेशा तो बाढ़ नही रहती। जो बात बंगाल के बारे मे सही है, वह असम देश पर भी ठीक उतरती है।"

"बगाल तो 'ब्लैक मैजक' के लिए 'फेमस' है !" लिली हँस-हँसकर दोहरी हो गई, "कहते है ढाका की स्त्रियाँ आदमी को मेंढ़ा बनाकर घर मे छिपा लेती हैं।"

"यह तो सब गप्पबाजी है।" नीरद ने गभीर मुद्रा में कहा।

"गप्पबाज़ी कैसे है ? मैं कहती हूँ, ढाका की स्त्रियाँ 'मैजक' जानती होगी, तो क्या वहाँ के पुरुष यह विद्या नही जानते होगे ?"

"अरे हाँ, डार्लिंग !" नीरद को भी हँसी आ गई, "जानते है, जरूर जानते हैं; न जानते होते, तो क्या हडसन साहब की बेटी बिपन गुप्त के बेटे नीरद से विवाह करती ? जादू वह जो सिर चढ़कर बोले। बिलकुल ठीक। बंगाल मे प्रवेश करने के कई रास्ते है, निकलने का एक भी रास्ता नही।" और फिर उसने गंभीर होकर कहा, "और जो एक बार असम पहुँच गया, वह भी वापस नहीं जाता, जाता

भी है तो बहुत जल्द लौट आता है।"

"तुम तो देर से लौटे !" लिली हँस पड़ी।

"अपने डैडी को भी अब यही का समझो।"

"मेरे डैडी तो इंग्लैंड लौट जाने का 'ड्रीम' देखते हैं दिन-रात।"

"असम देश को छोड़ सकना अब उनके लिए सहज नहीं। अब तो दिसाँगमुख में ही उनका जीवन बीतेगा।"

"यह ज्योतिष-विद्या कब से सीख ली ?" लिली हँस पड़ी और उसने टोस्ट पर मक्खन लगाकर नीरद के हाथ मे थमाते हुए कहा, "डैडी को दिसाँगमुख बहुत पसद नही, नौकरी के सिलसिले में वह यहाँ रहते ज़रूर हैं।"

"ब्रह्मपुत्र का इतना सुदर दृश्य असम देश में है और कही नही, और फिर माझुली यहाँ से इतनी नज़दीक है। जानते हो दुनिया-भर की नदियो में और किसी भी नदी मे इतना बड़ा द्वीप नही है। बीस मील लबी है, माझुली और सात-आठ मील चौड़ी।"

"मैने तो देखी नही माझुली। दिखाकर लाओ तो मानूँ।"

"अरे दिखा लाएँगे, डार्लिग !" कहते हुए नीरद उठकर भीतर से वह सुदर एलबम उठा लाया, जिसमे उसने अपनी हाल की तिब्बत-यात्रा के फोटो लगा रखे थे।

लिली ये फोटो देखती रही। नीरद बीच-बीच में लिली के चेहरे की ओर निहार लेता। उसे अपने उस पत्र की याद आई, जिसमें उसने लहासा में बैठकर लिखी हुई एक कविता भी लिली को भेजी थी।

"डार्लिग, मैंने अपने पिताजी से साफ-साफ़ पूछ लिया था—'क्या आप यह पसंद भी करेंगे कि जिन अँग्रेजों के अभद्र व्यवहार के कारण आप अपनी जन्मभूमि को छोड़कर लहासा मे आ गए, मैं उन्ही के कुल में जन्मी एक भद्र कुमारी से विवाह कर लूँ ?' "

"उन्होने क्या जवाब दिया ?" लिली ने उत्सुकता से पूछ लिया।

"उन्हें शुरू में यह बात विचित्र-सी लगी थी, पर वह कुछ बोल नही सके थे। पास से माँ बोल उठी थी—'अरे बेटा, तू विवाह करा तो सही, चाहे मेम से ही करा।' याद है न, विवाह के पश्चात् यहाँ से अपना और तुम्हारा एक साथ खिचवाया हुआ फोटो माँ को भेजा था, तो उसने अत्यंत संतुष्ट होकर लिखा था—'ऐसी चाँद-सी दुलहन तो हरेक को मिले।' "

उस फोटो की एक प्रति नीरद ने इस एलबम में भी लगा रखी थी। यह शिवसागर के एक स्टुडियो में लिया गया था। इस एलबम में तो विवाह के उपरांत लिए गए और भी कई फोटो लगाए हुए थे। लिली इस समय उन्हें ध्यान से देख रही थी। मन-ही-मन वह सोच रही थी—यह रूप नहीं बहुरूप है !

"तुम्हारा यह फोटो ही सबसे अच्छा है।" नीरद ने उस फोटो की ओर संकेत किया, जिसकी एक प्रति माँ को भिजवाई गई थी।

लिली की दृष्टि एक और फोटो पर जमी थी, जिसमें वह अपने स्कर्ट के बजाय ठेठ असमिया वेष में नज़र आ रही थी—वही मेखला, चादर और अँगिया। उसे याद था कि यह मेखला देवकांत की माँ ने अपने हाथ से तैयार करके दी थी; चमकीली सुनहरी रेशमी मेखला उसने अभी तक अपने सूट-केस मे सँभालकर रख छोड़ी थी। फोटो में उसने सुदर डिज़ाइनवाला 'रहा' भी तो अपनी कमर पर मेखला में एक ओर खोंस रखा था।

"इस 'रहा' ने तुम्हारी मेखला की शोभा बढ़ा दी!" नीरद ने जैसे लिली के मन की बात कह दी।

"तुम भी तो पूरे असमिया 'ब्राइडग्रूम' नजर आ रहे हो!" लिली मुसकराई।

"क्यों नही?" नीरद ने झूमकर कहा, "और क्या मै साधारण धोती-कुरते में अच्छा लगता, जिन्हें पहनकर मैने शिवसागर के उस मजिस्ट्रेट के सामने 'मैरेज रजिस्टर' पर हस्ताक्षर किए थे?"

पाँच फोटो ऐसे थे जिनमें लिली क्रमशः नागा, खासी, लुशाई, गारो और कूकी वधू के वेष मे थी, और प्रत्येक फोटो में नीरद भी जाति-विशेष के वर के समान ही बहुरूप बनाने मे सफल हुआ था। शिवसागर की एक नाट्य-मंडली के संचालक ने लिली की इच्छानुसार वर-वधू को क्रमशः इस वेष से विभूषित किया था।

बासठ

धनसिंह चायवाला चाहता था कि दिसाँगमुख पथभ्रष्ट न होने पाए। वह यह भी जानता था कि इसकी सबसे अधिक चिंता अतुल को है।

"सचाई हमारे सामने मशाल लेकर चलती है रात के अँधेरे मे!" अतुल ने एक दिन धनसिंह की दुकान पर बैठे लोगों से कहा, "सरकार की चापलूसी से हमें क्या मिलेगा?"

"सेवा से जीवन में निखार आता है!" धनसिंह ने बात को आगे बढ़ाया, "कोई हमें खरीद न सके।"

अतुल ने हाथ उठाकर कहा, "कोई हमारी जबान पर ताला न लगा सके, इसके लिए हमें दिन-रात जूझना पड़ेगा।"

सभी मित्रों को लगा जैसे अतुल के बोल मंत्रसिद्ध हों। उनका तो यहाँ तक

विश्वास हो गया था कि अतुल चाहे तो कुत्ते के काटे को अच्छा कर सकता है, ब्रह्मपुत्र के पवित्र जल की सात बूंदें छिड़ककर; चाहे तो साँप के डसे का विष उतार सकता है, मंत्रसिद्धि के बल पर, चाहे तो गाँव का इतिहास भी बदल सकता है। जिसने अपने पिता को गाँव-बूढा की पदवी से मुक्त कराने तक में ढील न की, वह कोई साधारण जन तो नही है; वह तो सर्वोपरि है; जिसने तट-बंध बनाने की प्रेरणा दी और वह तैयार हो गया, उसे हम अपना नेता क्यों न माने ?—यह सोचकर हर किसी का सिर श्रद्धा से झुक जाता।

कोई-कोई युवक अब तक अतुल के विरोध में कहता, "साधन मीरी का क्या बिगडा ? उसकी तो पाँचो उँगलियाँ घी में है।"

कोई कहता, "हाँ भाई, इसमे तो अतुल की मूर्खता ही सिद्ध होती है।"

फिर भी सभी जानते थे, साधन जरूरत से ज्यादा लंबा सलाम ठोंककर फ़िरगी को खुश करता है, गोपीनाथ दारोगा को देखते ही उसके मुँह से रबड के खिलौने की तरह निकल जाता है—हुजूर, माई-बाप ! गाँव की तो उसे कोई चिंता नही।

"हिटलर के साथ फ़िरंगी की लडाई हो रही है, तो क्या इसका जुर्माना सबसे ज्यादा दिसाँगमुख के सिर ही पड़ेगा, धनसिंह भाई ?" अतुल ने शाम की चाय की चुसकी भरते हुए कहा, "कभी पुलिस की मदद से, कभी शिवसागर के किसी मजिस्ट्रेट के रौब से, कितनी बार चंदा जमा किया जाएगा ? इन लोगों का काम फिरंगी के लिए चदा जमा करना ही रह गया है ?"

दिसाँगमुख का स्कूल-मास्टर अभिराम फूकन बैठा समाचार-पत्र सुनाने लगा। एक ही साँस में उसने बता दिया कि वहाँ भी हिटलर की जीत हुई, वहाँ भी हिटलर का ही पलडा भारी रहा, और वहाँ भी हिटलर ही स्वर्गलोक से उतरे हुए मत्रसिद्ध देवता के समान बवंडर से भी तेज गति से देश-के-देश अपने सामने चारो खाने चित्त करता लडाई के मैदान में आगे निकल गया।

अतुल बोला, "और दो चंदा। फ़िरंगी को बचाओ !"

"किसी ने सोचा भी न था कि हिटलर ऐसा मजा चखा सकता है।" धनसिंह ने तान अलापी।

"सोचा क्यो नही था ?" पास से रत्न कह उठा, "झूठ और पाप तो एक ही बात है। चंदे पर चंदा जमा किया जा रहा है; टैक्स भी बढ़ गया। हमे बार-बार वचन दिया गया, शिवसागर से रेलवे लाइन दिसाँगमुख आएगी। आज तक तो फ़िरगी ने वचन पूरा नही किया। तो समझ लो, हमने सोचा था, जरूर सोचा था, कोई हिटलर आकर फ़िरंगी का गड़बड़झाला बंद करे।"

स्कूल-मास्टर अभिराम फूकन ने सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए कहा, "हिटलर तो दुनिया का नक्शा बदल रहा है। जब यह युद्ध शुरू हुआ तो फ़िरंगी ने हिदुस्तान

को भी इस युद्ध में धकेलना चाहा। गांधीजी ने कहा—ऐसा नहीं होगा।"

राखाल बोला, "गाधीजी तो हमारे सबसे बडे नेता हैं। वैसे कांग्रेस के चार आना देनेवाले मेंबर भी नही है, फिर भी कांग्रेस उन्हें पूछे बिना कोई कदम नहीं उठाती।"

अभिराम फूकन ने ज्ञान बघारा, "सौ की एक बात है। हिंदुस्तान के जिन प्रांतो में कांग्रेस मंत्रिमंडल काम कर रहे थे, सबने त्यागपत्र दे दिए। फिर असम का काग्रेस मंत्रिमंडल ही कैसे कुरसी पर जमकर बैठा रहता? वह भी बाहर आ गया।"

किसी की आवाज़ आई, "मै बस आज तक यही नही सोच सका, त्यागपत्र देकर उन्होने भलाई की या बुराई।"

रत्न ने हँसकर कहा, "लाल कपड़ा देखकर साँड डरता है। उन्होने फ़िरगी को लाल कपडा दिखा दिया!"

जिसने यह आपत्ति की थी, उसकी आवाज़ आई, "फ़िरंगी की सरकार तो वैसे ही चल रही है। टैक्स और बढ़ गए युद्ध के नाम पर। भाई, हम तो चदा देते तंग आ गए!"

अभिराम फूकन ने ख़बर-कागज परे रखकर आँखों से ऐनक उतारी, और शीशे साफ करते हुए कहा, "फ़िरंगी को जाना पड़ेगा।"

"कहाँ जाना पड़ेगा?" पास से आवाज़ आई, "झूठी बात है; फिरगी यहीं रहेगा। हम देश-सेवा की भावना से बहुत दूर जा पड़े है। फ़िरंगी यही रहेगा।"

अभिराम फूकन बोले, "दिसाँगमुख को ही लो। मीरी समझते हैं, यहाँ उनका बहुमत है, दूसरे लोग उनसे दबकर रहे। साधन मीरी पर वे अपना अधिकार समझते है। साधन तो किसी का मित्र नही। मीरी लोग बस इसी पर बगले बजाते हैं कि असमिया गाँव-बूढ़ा नही रहा, और कोई नेपाली भी गाँव-बूढ़ा नही बन सका।"

धनसिह भी खामोश न रह सका, "किसी नेपाली को दिसाँगमुख का गाँव-बूढा बनने का तो शायद कभी अवसर नही मिलेगा। हम बाहर से आए, यहाँ आकर हमने मेहनत की। मेहनत करना तो पाप नही। हमने मेहनत की और पैसा बनाया। दूध का सारा काम हमारे हाथ में आता गया। हममें से कुछ लोगो ने ज़मीन भी खरीद ली। अब मीरी लोग कहते हैं, नेपाली लोग एक दिन दिसाँगमुख की सारी जमीन खरीदकर यहाँ के छत्रपति बन जाएँगे। दिसाँगमुख का गाँव-बूढ़ा कोई नेपाली बना दिया जाए, तो इन लोगों को आग लग जाए!"

अभिराम फूकन ने उचित अवसर देखकर कहा, "मेरा मन कहता है कि आपसी भेद-भाव मिटाने के लिए हमें एक-दूसरे के राखी बाँधनी चाहिए। रक्षाबंधन का इतिहास तो बहुत पुराना है। प्रसग तो यह है कि—"

"हाँ, हाँ," राखाल ने गंभीर होकर कहा, "जब देवासुर संग्राम में देवताओं के राजा इंद्र बारह साल तक लड़ते रहने पर भी असुरों को नही हरा सके, तो इंद्राणी

ने पूजा-पाठ के पश्चात् अपने पति के हाथ में राखी बाँधकर हरि से प्रार्थना की कि यह युद्ध देवताओं के पक्ष में समाप्त हो जाए।"

अभिराम फूकन ने बात को आगे बढ़ाया, "हाँ, हाँ ! और आधुनिक काल में बंगाल में रक्षा-बंधन का एकदम नूतन प्रयोग किया गया। फ़िरंगी ने बंगाल के दो खंड कर डाले तो सारा बंगाल एक साथ खड़ा हो गया।"

"और अब सारे दिसाँगमुख को एक साथ खड़ा हो जाना चाहिए !" रत्न एक हाथ की हथेली पर दूसरे हाथ की उँगली उस्तरे की तरह तेज़ करते हुए बोला, "जीते रहो, मास्टरजी ! बहुत अच्छा प्रसंग है।"

"हाँ, तो मै कह रहा था," अभिराम फूकन गंभीर मुद्रा में कहता चला गया, "सारा बगाल एक साथ खड़ा हो गया था। एक ने दूसरे के हाथ में, दूसरे ने पहले के हाथ में और इस तरह सबने एक-दूसरे के हाथ में राखी बाँधकर फ़िरंगी को बता दिया, सब बंगाली भाई-भाई हैं। और फ़िरंगी को झख मारकर अपना फैसला बदलना पड़ा।"

आज यह गोष्ठी देर तक जमी रही। सब लोग बढ़-बढकर बोलते रहे। अतुल ख़ामोश बैठा सुनता रहा।

"तुम क्यो चुप हो, अतुल ?" धनसिंह ने चकित होकर कहा, और इससे पहले कि अतुल कुछ कहे, वह स्वयं ही कह उठा, "अतुल को दिसाँगमुख की चिता सता रही है।"

सबने अनुरोधपूर्वक अतुल से कुछ बोलने के लिए कहा, तो उसके कंठ से यही स्वर निकला, "अब मौका है, हम फिरंगी को चुनौती दें। ब्रह्मपुत्र हमारा है, तो उसमें बहकर आती लकड़ी भी हमारी है।"

अभिराम फूकन ने समाचार-पत्र पर नज़रे गाड़ते हुए गंभीर मुद्रा बना ली और कहा, "अभी वह अवसर नही आया।"

रत्न ने तान तोड़ी, "अतुल ठीक कहता है, मास्टरजी !"

"लोहा गरम हो, तो चोट करने से चूकना मूर्खता है !" धनसिंह भी चुप न रह सका।

राखाल ने मानो किसी हाथी पर अंकुश लगाया, "अरे ज़रा आगे भी कदम उठा, दिसाँगमुख ! मट्ठर तो न बन ! जब दिसाँगमुख ऐसे काम को हाथ में लेगा, जिसमे सबको लाभ हो, तो मीरी, असमिया और नेपाली के भेद-भाव खुद ही मिट जाएँगे।"

अभिराम फूकन ने टेक लगाई, "क्यों न हम एक-दूसरे के राखी बाँधें ? हमारा एक संकल्प होना चाहिए।"

सारी गोष्ठी मंत्रमुग्ध-सी नज़र आने लगी। अतुल कुछ न बोला। सब उसी के मुख की ओर देखते रह गए।

तिरसठ

साधन मीरी ने घर-घर घूमकर यह कहना शुरू कर दिया, "सरकार को टैक्स दिए बिना ब्रह्मपुत्र में बहकर आती लकड़ी को उठाकर घर लाने का विचार भीतर से थोथा है।"

एक दिन उसने भरी पंचायत मे यहाँ तक कह दिया, "ऐसी चोरी की लकड़ी पर तो मैं थूकता हूँ।"

गोपीनाथ दारोगा ने गाँव के लोगों को थाने में बुलाकर धमकाया, "ख़बरदार, अगर किसी ने अतुल के पीछे लगकर ब्रह्मपुत्र से मुफ़्त लकड़ी लाने की बात भी सोची !" और पीछे उसने पुचकारा, "टैक्स लिए बिना तो कोई सरकार नही चल सकती !"

अतुल ने निडर भाव से कहा, "दारोगाजी, सरकार को यह तो देखना चाहिए कि वह लोगों को टैक्स देने योग्य बना सकी है या नही। हम पहले से कही अधिक निर्धन हो गए है। बाढ़ हमारा कचूमर निकाल देती है। सरकार हमारी सहायता करती भी है, तो केवल नाममात्र के लिए ! फिर यदि वही ब्रह्मपुत्र, जो हमें नष्ट करता है, हमारे लिए उपहार-स्वरूप लकड़ी ही बहाकर लाता है, तो वह लकड़ी हमारे लिए कर-मुक्त क्यो न हो ?"

गोपीनाथ दारोगा ने मन-ही-मन अतुल के तर्क की प्रशंसा की, पर प्रत्यक्ष रूप से उसने सरकार का दबदबा जमाते हुए कहा, "यह तो सरकार के सम्मान का प्रश्न है। विदेशी सरकार हो चाहे देशी, कर तो वह लगाएगी ही। क्या देशी सरकार कर लगाए बिना ही काम चलाएगी ?"

अतुल के जी मे आया, अभी उठकर उस दिन की घोषणा कर दे जब यह आंदोलन आरंभ होगा; पर वह चुप बैठा रहा। अभी अगले ही दिन जूनतारा ने उसे सलाह दी थी, "तुम पहले घर को देखो, फिर बाहर को ! फिरंगी से लोहा लेना खेल नही। बापू की गाँव-बूढ़ा की पदवी छुड़ाकर तुमने पहली भूल की। अब तुम यह दूसरी भूल करने जा रहे हो। या तो पहले मेरा गला घोट डालो, बच्चो को उठाकर ब्रह्मपुत्र में फेंक आओ, या फिर चैन से रहो और घर के लिए काम करो।"

इसके उत्तर में उसने कहा था, "मुझे तो तुम जानती हो। मै कोई गलत कदम नहीं उठाता। घर को देखने से पहले मै सदा बाहर को देखता हूँ। बाहर को देखे बिना घर को देखते रहना स्वार्थ है।"

पर जूनतारा का तर्क तो दूसरा ही था, "तुम चार बच्चो के बाप हो, यह मत भूल जाओ।"

उस समय अतुल को लगा था कि जूनतारा भी साधन के चक्कर मे आ गई।

गोपीनाथ आधा घंटे तक व्याख्या करता रहा, अँग्रेजी राज्य के अंतर्गत आने से हिदुस्तान को कितने लाभ पहुँचे, उसके कथनानुसार अँग्रेज न आते तो न डाकघर बनते, न रेले चलती, न हवाई जहाज नजर आते, न रेडियो बजता। अतुल को चुप देखकर उसने कहा, "तुम नही जानते अतुल कि मैंने कितनी बार तुम्हारा वारंट कटते-कटते बचाया। अब भगवान् के लिए लोगो में सरकार के विरुद्ध प्रचार करना छोड़ दो।"

अतुल ने पहले तो गोपीनाथ का धन्यवाद किया, फिर साफ-साफ कह दिया, "सचाई किसी के रोके रुकने की नही, दारोगाजी ! दिसाँगमुख को तो ब्रह्मपुत्र भी नही हरा सका; ब्रह्मपुत्र से बडा हम किसी को नही समझते।"

यह कहकर वह चुप हो गया। उसे याद आया कि किस तरह जूनतारा ने उस रात घर में कुहराम मचा दिया था। उसने यहाँ तक धमकी दे डाली थी, "यदि तुम्हारा वारट निकल गया, तो मै इस घर में नही रहूँगी।"

सामने से कल्याण भगत आ निकले थे और आधी रात तक बैठे अतुल को समझाते रहे थे। 'फिरंगी से टक्कर लेना मूर्खता है।'—उनका यही मत था।

गाँव की स्थिति यह थी कि साधन ने सब मीरियो को सरकार के पक्ष में कर लिया था। राखाल के सिवाय एक भी मीरी नजर नही आता था, जो अतुल के सुझाए हुए रास्ते पर चल सके; बल्कि कुछ असमिया और नेपाली लोगों को भी सरकार ने खरीद लिया था। अतुल ने थाने के वातावरण की परवाह न करते हुए कहा, "सरकार कब तक हमें वशीभूत करती रहेगी ?"

गोपीनाथ ने पुचकारा, "सरकार तो दिल से दिसाँगमुख का भला चाहती है। आप लोग भी ऐसा काम न करे, जिससे सरकार का काम ठप्प होने का भय हो।"

अतुल की अंतरात्मा सिहर उठी। वह खुलकर कहना चाहता था—अपना काम तो हम करेगे ही; करके ही छोड़ेगे अपना काम, उससे तो हमे ब्रह्मपुत्र भी नही रोक सकता।

गोपीनाथ दारोगा का ध्यान खीचते हुए अतुल ने उठकर कहा, "कई बार मैं अपने खेत की मिट्टी मुट्ठी में भरकर नाक के पास लाता हूँ। इसकी सोंधी-सोंधी सुगध मुझे बहुत भली लगती है। मै सोचता हूँ, दिसाँगमुख की माटी दिसाँगमुख-वालो को एकता के सूत्र में क्यो नही बाँध सकती ?"

"बैठो, बैठो !" गोपीनाथ मुसकराया, "यह तो तुम ठीक ही कह रहे हो। सरकार भी कब चाहती है, दिसाँगमुख की एकता जाती रहे ?"

थाने मे लौटते समय साधन ने ताना दिया, "इतनी ही ऐंठ है, तो कल ही शुरू करके दिखाओ अपना सत्याग्रह !"

वह घर पहुँचा तो राखाल ने भी उसे बहुत समझाया कि सत्याग्रह के लिए यह उचित समय नही है। वे नारियल के पेड़ों की ओर देखते रहे, जिनके पीछे से पूनम

का चाँद झाँक रहा था।

अतुल बैठ गया और सोचने लगा—जूनतारा गर्भवती न होती, तो शायद मैं उससे बिना पूछे ही मैदान में कूद पड़ता है। आठवाँ मास आरंभ हो गया। जूनतारा को कही कुछ हो न जाए! नया शिशु आ रहा है; नवांकुर के समान झूम-झूम उठेगा नया शिशु। चाँद-सा मुखमंडल; शरीर केले के समान गठा हुआ। कई काम ऐसे है जो बापू न कर सका, मैने कर डाले। कुछ काम जो मैं न कर सकूंगा, मेरा बेटा करेगा। जो वह भी नही कर सकेगा, वह कोई और करेगा। मुझे जूनतारा का दिल नही दुखाना चाहिए। मुझे कुछ दिन रुक जाना चाहिए।

अतुल को दृढ़-प्रतिज्ञ देखकर राखाल ने कहा, "वैसे तो मै अब भी यही सलाह दूँगा अतुल कि अभी यह कदम न उठाओ; पर अगर तुम यह सत्याग्रह शुरू करोगे तो मै पीछे नही रहूँगा। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—या तो आदमी सोचे नही कि एक काम करना है, सोचे तो पीछे न हटे।"

चौंसठ

वर्षा ऋतु में हो लकड़ी बहकर आती थी। बहकर आती लकडी उठाकर लाने की तो कोई मनाही न थी; अहोम राजाओ के समय से ऐसा ही होता आया था। अहोम राजाओं से पहले के राजाओ ने भी तो कभी इसकी मनाही नही की होगी। मनाही तो वहाँ शुरू होती थी, जहाँ कोई इसे किनारे लाने के बाद सरकार को कर दिए बिना घर ले जाए। अहोम राजाओ के हाथ से असम का राज्य फ़िरंगी के हाथ में आया, तो वही पुराना कानून कायम रहा।

राखाल ने ब्रह्मपुत्र के किनारे खडे-खड़े अतुल की आँखो में झाँककर कहा, "और कोई नही आया, परवाह नही।"

"परवाह नही!" अतुल मुसकराया, "तुम मेरे साथ हो काका तो सारा दिसाँगमुख मेरे साथ है!"

"मुझे तो इस बात पर आश्चर्य होता है कि कुछ वर्ष पूर्व, जब हिटलर ने जोर पकडकर लडाई छेड दी थी, असम मे काग्रेस मंत्रिमंडल कायम हुआ, तो उसने भी इस कानून पर छाप लगा दी। काग्रेस मंत्रिमंडल के त्यागपत्र देने के पश्चात् कानून वैसे-का-वैसा रहा।"

"हम इसे बदलकर दिखाएँगे, काका!" उसका स्वर स्थिर था।

सूर्योदय से पहले ही वे नाव लेकर ब्रह्मपुत्र मे उतर गए। उनका प्रण था कि सूर्य ब्रह्मपुत्र के बीच जाने पर उदय हो। सूर्योदय के प्रकाश में ब्रह्मपुत्र में बहकर

आते बड़े-बड़े विशालकाय वृक्ष देखे, तो अतुल तन्मय हो गया; उसके हाथ चप्पू चलाते रहे।

"क्या सोचने लगे ?" राखाल मुसकराया, "जूनतारा अब के बेटे को जन्म देगी। मेरा मुंह मीठा कराना होगा।"

अतुल ने मन की बात स्पष्ट करते हुए कहा, "मैं सोच रहा था कि कोई तीसरा आदमी भी हमारे साथ होता।"

राखाल हँस पड़ा, "कौन होता वह तीसरा आदमी ? देवकांत ?"

"देवकात का तो इस सत्याग्रह में विश्वास नही।"

"तो और कौन होता वह तीसरा आदमी ?"

अतुल चप्पू चलाता रहा। सूर्य का रक्ताभ गोला धीरे-धीरे सुनहरा होता गया; अतुल चप्पू चलाता रहा। उसे नीरद का ध्यान आया। दो-तीन अलमारियो में रखी हुई उसकी श्रेणी-बद्ध पुस्तके उसकी कल्पना में घूम गईं। वह काका से कहना चाहता था, नीरद जैसे लोग तो पुस्तको के कीड़े बनकर ही रह जाते है। परंतु स्पष्ट शब्दो में उसने यही कहा, "काका, नीरद को भी हम बुरा क्यों कहें ? धनसिंह कभी-कभी हँसकर कहता है—'पट्ठा नीरद मजे कर रहा है। लिली की कमाई मे कमी नही, और नीरदजी महाराज की पुस्तक कभी समाप्त नही होगी। वाह रे नीरद, लिखते जाओ, लिखते जाओ; कभी तो पुस्तक समाप्त हो ही जाएगी।' पर मैं तो नीरद पर व्यंग्य नही कस सकता।"

राखाल ने गंभीर होकर कहा, "दूसरो पर टीका-टिप्पणी करना सहज है। धनसिंह यह देखे कि वह स्वय क्या कर रहा है।"

अतुल हँसकर बोला, "ठीक है, काका ! नार्मन साहब भी यही कहते होगे !"

नार्मन साहब का नाम सुनकर राखाल मुसकराया। उसे चाँदडूबी का जंगल याद आ गया। बोला, "हाथियो का संग छोड़कर मैंने अच्छा नही किया। मै सोचता हूँ, नार्मन साहब को भी अवश्य हाथियो की याद सताती होगी।"

ब्रह्मपुत्र में नावें आ-जा रही थी; आकाश पर मेघ छा रहे थे। एक नाव मे दूध की मटकियाँ रखी थीं। ब्रह्मपुत्र में बहते एक विशालकाय वृक्ष पर मजबूत रस्से की फाँस फेककर उस वृक्ष को काबू कर लिया गया। इसी नाव से नातिदूर एक स्थान पर बहुत बडा बेड़ा आ रहा था, जो अनेक गट्ठो को जोड़कर बनाया गया था। एक और विशालकाय वृक्ष को बहते देखकर इसे बेडेवालो ने फाँस लिया।

"ये लोग टैक्स भरेगे इस लकडी पर, जैसे सदा से होता आया है !" अतुल ने गंभीर होकर कहा, "पर यदि हमारा सत्याग्रह सफल रहा, तो बहती लकड़ी पर से टैक्स हट जाएगा।"

"पहले कमलिया सापरी तो पहुँच लो। राखाल ने धीरे से कहा, "हमारा सत्याग्रह तो वहीं से शुरू होगा। कमलिया सापरी के साथ गगन नावरिया की कथा

जुड़ी हुई है। निस्तब्ध रात्रि में कमलिया सापरी के पास तुमने भी कभी सुना है गगन नावरिया का गान ? मैंने तो सुना है।"

"मैंने भी सुना है !" अतुल की मुख-मुद्रा गंभीर थी, "गगन मरा नहीं, अपने गान में आज भी जीवित है। गगन ने कमलिया सापरी पर झोंपड़ी बनाई थी। वह ब्रह्मपुत्र से डरता नही था। लोगों ने लाख कहा, कमलिया सापरी तो कई बार बनी और कई बार डूबी, तुम यहाँ झोंपड़ी न बनाओ, नहीं तो डूब जाओगे; वह न माना। यह उसका सत्याग्रह था। इसमें वह सफल हुआ। वह मरकर भी नही मरा, काका !"

"नीरव रात्रि में गगन का गान ब्रह्मपुत्र की लहरों पर तैरता है, तो यही सिद्ध होता है। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—सचाई को कोई सूली पर भी क्यों न चढ़ा दे, सचाई कभी नही मरती !"

नार्मन साहब का बखान करते-करते वह चुप हो गया। कुछ क्षणों के मौन के पश्चात् उसने कहा, "हथिनी को देखकर ही बता देते थे नार्मन साहब कि उसके पेट में कितने महीने का बच्चा है।"

"कैसे जान लेते थे ?"

"सहज-बुद्धि और लंबे अनुभव से। तुम भी चाहो तो यह सब जान सकते हो।"

राखाल आत्म-विभोर हो गया। एक चलचित्र के समान पिछले वर्ष उसकी कल्पना में घूम गए, जिनमें शनैः-शनैः उसने हाथियों के संबंध में गहरा अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था। उसे इस बात का दुख था कि हाथियों से उसका संग कभी का छूट गया; अब तो उसकी पेंशन हो चुकी थी। पेंशन उसने छोड़ दी थी। उसने फिरंगी का विरोध करना आवश्यक समझा। उसे यह भी याद था कि जब पहले-पहल फिरंगी की पेंशन छोड़ने के पश्चात् उसने नार्मन साहब के घर के पते पर पत्र लिखवाकर इस घटना की सूचना दी थी, तो लौटती डाक से ही नार्मन साहब का उत्तर आया था। वह पत्र पढ़वाने के लिए हडसन साहब के पास गया था। हडसन साहब ने बताया था कि इस पत्र में नार्मन साहब ने हडसन साहब को भी प्यार लिखा था। हडसन साहब ने बताया था कि नार्मन साहब ने यह बात पसंद नही की कि इतने साल चाँदडूबी के जंगल में हाथियों की नौकरी करने के बाद राखाल ने अपनी पेंशन से हाथ धो लिए। हडसन साहब ने बहुत समझाया था, वह चाहे तो अभी समय है; उसकी पेंशन फिर से बहाल कराई जा सकती है। पर राखाल को कोई कैसे उलटी पट्टी पढ़ा सकता था ? उसने यह सलाह मानने से साफ इनकार कर दिया था। अब तक उसका यही विश्वास था, नार्मन साहब ने अवश्य उसे उसके इस शुभ निर्णय पर बधाई दी होगी; यह सिर्फ़ हडसन साहब की चालाकी थी, वह झूठ-मूठ नार्मन साहब के कंधे पर रखकर बंदूक चलाना चाहता था।

"नीरद मूर्तिवत् बैठा होगा अपनी पुस्तकोवाली अलमारी के सामने कुरसी डाले !" अतुल ने राखाल का ध्यान खीचा, "सच है, काका ! नीरद की वह पोथी कभी समाप्त नही होगी। वह बस बैठा लिख रहा होगा। मै सोचता हूँ, इतना लिखने से क्या होता है ?"

"जैसे तुम धान उगाते हो, वह लिखता है। लिखना क्या व्यर्थ का काम है ?"

"अच्छा होता यदि वह भी इस सत्याग्रह में हमारे साथ रहता।"

"यह तो अपनी इच्छा की बात है, कोई जोर-जबरदस्ती तो है नही।"

"देवकात माझुली में है।"

"उसका रास्ता दूसरा है। अपना-अपना रास्ता है। घबराओ मत, अतुल ! मै अकेला ही काफी हूँ। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे —अकेला आदमी दस हाथियो जितनी बुद्धि रखता है।"

अतुल कृतज्ञतापूर्वक मुसकराया। जल के प्रवाह के विपरीत नाव चलाते हुए उसे काफी जोर लगाना पड रहा था। वर्षा ऋतु के कारण ब्रह्मपुत्र अपने सामान्य तल से ऊँचा उठ गया था।

"हाँ, तो मै कह रहा था, तीस साल तक चाँदडूबी के जगल में, जहाँ मैं और नार्मन साहब साथ-साथ रहे, हाथी ही हमारे सबसे बडे मित्र रहे।"

"तुम्हे हाथियो पर इतना अधिक विश्वास था, काका ! और अब हम पर विश्वास करने को मन नही ! यह हाथी पुराण खोलकर क्यो बैठ गए ? आज तो हम सत्याग्रह करने निकले हैं।"

राखाल सोचने लगा—शायद इस सत्याग्रह की सूचना तक किसी खबर-कागज में नही निकलेगी। निकले तो नार्मन साहब भी अपने देश में बैठे-बैठे पढ सके, दिसाँगमुख मे राखाल का क्या तौर-तरीका है; वहाँ बैठे-बैठे वह देख सके, दिसाँगमुख क्राति की ओर बढ़ रहा है, जैसे कोई हाथी अपनी मजिल की ओर बडे वेग से चलता है।

अब वे कमलिया सापरी के किनारे पहुँच गए थे। बडे आराम से नाव से उतरे और इसे किनारे से बाँधकर खुली आँखो से ब्रह्मपूत्र का दृश्य देखने लगे। विशालकाय और लघुकाय सभी प्रकार के वृक्ष जड़ से उखडकर अथाह जल-प्रवाह मे बहते आ रहे थे। वह सब ब्रह्मपुत्र का उपहार था। जैसे ब्रह्मपुत्र कह रहा हो—यह सब तुम्हारे लिए है, मेरे निकट बसनेवालो ! यह मेरी भेट है तुम्हारे लिए, इस अनुकंपा के लिए मै धन्यवाद का एक भी शब्द नही चाहता।

वे यह भी जानते थे कि बहते वृक्ष को फाँसने मात्र से ही उनका सत्याग्रह आरंभ नही हो जाता; इसकी तो सभी को खुली छुट्टी थी। कानून की पकड़ तो वहाँ आरभ होती थी, जहाँ कोई बहते वृक्ष को फाँसकर घर ले जाए और घर लाने से पहले सरकार को टैक्स न चुकाए।

शीघ्र ही वे नाव में बैठ गए। उधर से एक वृक्ष बहता आ रहा था। अतुल ने सापरी की धरती पर खडे-खड़े ही इसे फाँस लिया था। अब वह वृक्ष नाव के साथ-साथ चला जा रहा था और अब उनके अधिकार में था।

दिसाँगमुख के नाव-घाट के थोड़े इधर ही उन्हे नीरद भी नाव मे बैठा जल्दी-जल्दी चप्पू चलाता मिल गया।

"तुम कैसे आए, नीरद बाबू ?" राखाल चिल्लाया।

"बैठकर लेखनी चलाते !" अतुल ने व्यग्य कसा, "सत्याग्रह का ध्यान तो तुम्हे आने से रहा !"

"क्यो ? मै क्या दिसाँगमुख में नही रहता ? मै भी आप लोगों के साथ हूँ।"

"सोचकर बात करना !" राखाल ने गभीर होकर कहा, "याद करो उस जुलूस की बात, जिसमे तुम हमारे साथ थे। तब जेल मे नही भेजा था फ़िरंगी ने; अब वह नही चूकेगा। साधारण-सा जुर्माना करके ही नही छोड़ेगा।"

"जुर्माना किया तो नही भरेगे !" नीरद की आँखे चमक उठी।

"लिली से पूछ आए हो ?" अतुल ने हँसते-हँसते अपनी नाव नीरद की नाव के साथ भिड़ा दी।

दोनो नावें अब दिसाँगमुख की ओर जा रही थी। अतुल ने सकेत किया, "लिली का भय नही है तो मारो फाँस उस पेड को !"

नीरद बोला, "रस्सा तो नही लाया।"

"छोड़ो यह बखेड़ा, नीरद बाबू !" राखाल ने सलाह दी, "तुम मत पड़ो इस सत्याग्रह मे !"

अतुल ने नीरद की नाव मे एक रस्सा फेकते हुए कहा, "कैसे कह रहे हो, काका ? हम नीरद को अपने साथ रखेगे।"

नीरद ने अगले ही क्षण उस वृक्ष को फाँस लिया और अब दोनो नाव के साथ-साथ एक-एक वृक्ष भी चलता नज़र आने लगा।

जब वे नाव-घाट पर पहुँचे तो साधन मीरी पहले से विरोध के लिए तैयार था; उसके बाई ओर गोपीनाथ दारोगा भी खड़ा था।

"नीरद बाबू, आप भी जेल-यात्रा करेंगे ?" साधन मीरी ने गाँव-बूढ़ा के अंदाज़ में कहा, "लिली से पूछ आए हो ? अब भी समय है, पूछ आओ दौड़कर !"

"कोई सत्याग्रह नही होगा !" गोपीनाथ ने हँसकर कहा, "साधन, तुम तो मूर्ख हो ! वृक्ष फाँस लाना तो अपराध नहीं। सरकार टैक्स वसूल करेगी। फिर ये वृक्ष इन लोगो के हो जाएँगे।"

"हम टैक्स नही देंगे।" अतुल ने बड़ी दृढ़ता से कहा, "सरकार का इन वृक्षो पर हम कोई अधिकार नही समझते !"

"अतुल ठीक कह रहा है।" राखाल ने भी अपना स्वर जोड़ दिया।

"तुम क्यों चुप हो, नीरद बाबू ?" गोपीनाथ ने पुचकारा, "टैक्स देने का इरादा हो तो सरकार तुम्हें कुछ नहीं कहेगी।"

"मैं भी टैक्स नही दूँगा !" नीरद ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"तो आप तीनों गिरफ्तार हैं।"

"हमें कोई आपत्ति नही !" तीनों एक स्वर होकर बोले, "जय ब्रह्मपुत्र ! जय दिसाँगमुख !"

पैंसठ

एक-एक करके दिसाँगमुख के दिन बीतते गए। नीलमणि आकर धनसिंह की दुकान पर मूर्ति के समान बैठा रहता।

धनसिंह समझाता, "यह तो ठीक है कि लिली तीनों की ज़मानत देने को तैयार थी, और यह भी ठीक है कि जुर्माने से ही तीनों का निपटारा हो सकता था। पर क्या यह दिसाँगमुख के वीरों को शोभा देता ?"

अतुल, राखाल और नीरद को छः-छः मास की सज़ा हो चुकी थी।

नीलमणि के लिए एक-एक घड़ी लंबी हो रही थी। अतुल के बिना उसका संसार सूना हो गया था। उसका छरहरा शरीर मानो और भी दुबला-पतला हो गया; आँखों की दृष्टि भी कमजोर होने लगी; उसके मुख पर सदैव विषाद की रेखाएँ नज़र आती।

कल्याण भगत यही कहते, "देवकांत ने अतुल को भी खराब किया।"

अभिराम फूकन कभी-कभी खबर-कागज़ की बात छोड़कर धनसिंह की दुकान पर दिसाँगमुख के वीरों का अभिनदन करने लगता। उसकी आँखों में एक प्रकार का विजयी प्रकाश नजर आता।

धनसिंह कहता, "मास्टरजी, सुना है देवकांत का जोर माझुली में बहुत बढ़ गया है।"

"बढ़ेगा कैसे नही ?" अभिराम फूकन उत्तर देता, "ब्रह्मपुत्र की प्रेरणा व्यर्थ नही जाती। ब्रह्मपुत्र की बाढ़ से लड़नेवालों मे जब कोई वीर जन्म लेता है, तो वह ऐसा-वैसा वीर नहीं होता।"

दिसाँगमुखवाले अतुल की प्रशंसा करते नहीं थकते थे। दिसाँगमुख में ब्रह्मपुत्र का तट-बंध अतुल के साहस और परिश्रम का प्रतीक था। ब्रह्मपुत्र का इतिहास तो लोगों को मालूम नहीं था; इस तट-बंध का तो इतिहास था, अतुल ने ही इसके लिए सबसे पहले आवाज़ उठाई थी। ब्रह्मपुत्र के किनारे हवाखोरी करता अभिराम फूकन

तट-बंध की ओर देखता और सोचता—काश, मैंने इस बंध को बनते हुए देखा होता ! जिस समय यह तट-बंध बनाया गया, अभिराम फूकन किसी दूसरी जगह पढ़ाता था। गाँव के एक प्रतिष्ठित भद्र पुरुष के समान वह मन-ही-मन कहता—शाबाश अतुल ! तुम्हारा नाम तो इस तट-बंध के साथ सदा के लिए जुड़ गया। ब्रह्मपुत्र के विस्तृत प्रवाह के समान है तुम्हारा जीवन। अरे तुम तो यह सुनकर भी अडोल रहे कि जूनतारा के मरा हुआ बच्चा जन्मा है। अरे शाबाश अतुल, तुमने केवल इसी बात से संतोष नहीं किया कि इस तट-बंध पर तुम्हारा नाम अदृश्य अक्षरों में लिखा हुआ है। जब से यह बंध बाँधा गया, ब्रह्मपुत्र ने गाँव पर चढ़ाई नही की। अब तो ऐसा लगता है, मानो ब्रह्मपुत्र ने दिसाँगमुख का प्रहरी बनना स्वीकार कर लिया है।

गाँव के साधारण नर-नारी अपना स्वाभाविक जीवन बिता रहे थे। इस पठार में धान की कमी न थी, भूमि की कमी न थी; बाढ़ के कारण बहुत-सी भूमि किसी सीमा तक परती का रूप धारण करती चली गई थी, पर इससे कोई विशेष अंतर नही पड़ता था; यहाँ का विस्तृत पठार प्रचुर मात्रा में, और वह भी थोड़े से परिश्रम से ही, धान उपजाता था। वैसे तो हल चलाए बिना कोई उपाय न था; पर वस्तुतः यहाँ का पठार इतना उर्वर था कि यदि वैसे ही बीज फेंक आओ, और फिर जाकर देखो भी नहीं कि बीज का क्या बना, तो फसल के दिनों में जाकर फसल काट लो। वैसे रोपावाला धान तो रोपनेवालों का श्रम माँगता था। उनके श्रम के बदले धरती उन्हें सुनहरी फ़सल से मालामाल कर देती।

ब्रह्मपुत्र में बहकर आते वृक्षों को करमुक्त कराने के सत्याग्रह का कोई विशेष महत्त्व है, यह बात बहुतों की समझ से परे थी। अतुल, राखाल और नीरद का जेल जाना दुखद विषय था, पर बहुतों का यही विचार था कि सरकार अपना अधिकार नहीं छोड़ सकती।

कोई कहता, "अरे बाबा, सरकार से टक्कर लेना तो ऐसा है, जैसे एक छोटी-सी नाव बाढ़ के पानी से होड लेना चाहे।" दूसरा कहता, "तुम नहीं ले सकते होड़, तो उनको तो न रोको जो होड़ ले सकते हैं।"

बहुतों का विचार था कि जैसे ब्रह्मपुत्र द्रुतगामी है, वैसे ही सरकार का कानून भी द्रुतगामी है। लड़ाई की ख़बरें भी उनके कान में पड़ती रहती थीं। यह भी सुनने में आया था कि नेताजी सुभाषचंद्र बोस जापान जा पहुँचे। जर्मनी का नया शिष्य था जापान। जर्मनी का शिष्य तो वैसे इटली भी था, पर जापान बहुत ज़ोर मार रहा था। धनसिंह की दुकान पर ड्राई बैट्री का रेडियो सेट इन्हीं दिनों आया था। वैसे तो रेडियो की ख़बरों में हिटलर की बहुत बुराई की जाती थी, पर मालूम होता था, हिटलर को रोकनेवाला अभी तक पैदा नहीं हुआ।

कोई कहता, "तेजस्वी होगा हिटलर।"

कोई कहता, "बता, "फ़िरंगी पट्ठे ! अब बोल अपने इस बापू के सामने।"

कोई कहता, "फ़िरंगी का दावा था, वह अजेय है। आया था हमारी सहायता को, हमारा घर-बार सँभाल बैठा, हमे उल्लू बनाकर !"

कोई कहता, "जिसका आरंभ है, उसका अंत भी; अब नही टिक सकता फ़िरंगी।"

किसी-न-किसी तरह लोग अतुल, राखाल और नीरद के सत्याग्रह का महत्त्व समझने का यत्न करते। वे सोचने लगे कि फ़िरंगी का पतन अवश्यंभावी है।

नीलमणि बराबर दिन गिनता रहता। वह और लोगो के समान यह नहीं सोचता था कि कुछ ही दिनों में हिटलर अपने पैर हिदुस्तान तक पसार लेगा, और शिवसागर जेल के दरवाजे खोलकर कैदियो को मुक्त करने का श्रेय भी उसी को मिलेगा। दिसाँगमुख में सुख-सुविधा की तो कमी न थी, पर घर में अतुल की कमी नीलमणि को सबसे अधिक अखरती थी।

वैसे ही उषा के रंग फैलते; वैसे ही सूरज उगता; वैसे ही सूरज डूबता, वैसे ही जन्म और विवाह के दिन आते; वैसे ही नावे चलती; वैसे ही मछुए मछलियाँ पकड़ते। दिसाँगमुख की शोभा में तो कोई अतर नही आया था। वैसे ही धनसिह की चाय बिकती; वैसे ही रत्न नापित की दुकान पर लोगो के बाल बनाए जाते, 'शेव' की जाती। मीरी, असमिया और नेपाली का झगड़ा वैसे-का-वैसा बना हुआ था।

साधन के जिम्मे यह काम आ गया था कि वह लोगो को हिटलर के पक्ष में होने से रोके। वह कहता फिरता था, "हिटलर के पैर अभी दूर है; फिरंगी उसे लाल कपडा दिखाकर रहेगा। नए मित्र से पुराना मित्र लाख दर्जे अच्छा होता है। हिटलर का सर्वनाश ! फ़िरंगी की जय !"

लोग हँसने लगते।

कोई कहता, "यह बताओ साधन, फ़िरंगी को नीद भी आती है या नही ?"

कोई कहता, "अपने पाप भूल गया फ़िरगी ? हमारे असम देश में आकर उसने आरंभ में किस तरह राजवंश के लोगो को समाप्त किया, किस तरह निरपराधियों को सूली पर लटकाया था मणिपुर में ! वह सब भूल गया फ़िरंगी ?"

कोई कहता, "फ़िरंगी की व्यवस्था समाप्त होगी, ब्रह्मपुत्र इसी तरह बहेगा।" इस पर सब हँस पड़ते, और साधन अपना-सा मुँह लेकर रह जाता।

गोपीनाथ से कहकर साधन किस-किस का मुँह बंद करा सकता था ? कई बार वह उन्हें चेतावनी देता—फ़िरंगी से डरो। पर वे समझ चुके थे, फ़िरंगी को जाना पड़ेगा।

गोपीनाथ लोगो को थाने में बुलाकर समझाता, अँग्रेज़ के राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता। हिटलर को मुँह की खानी पड़ेगी। आप लोग दिसाँगमुख की

रक्षा के लिए तैयार रहें। ये युद्ध के दिन हैं। किसी भी समय हमारे ऊपर बम-वर्षा हो सकती है।"

बम-वर्षा की बात सबके लिए नई थी। आकाश पर हवाई जहाज देखकर सब भयभीत हो जाते, जैसे वह उन्ही पर बम-वर्षा करने आया हो।

कल्याण भगत की एक ही टेर थी, "बड़ डिकडारी! हरि नाम की चादर ओढ़ लो। उसी में सर्वनाश का अंत है। मछली-मास त्यागो; शुद्ध, सात्विक, वैष्णव भोजन ग्रहण करो। जीवन का उद्देश्य है त्याग, विलास नही।"

लोगो की समझ मे यह बात नही आती थी कि त्याग और विलास की होड़ के कारण ही हिटलर का जन्म हुआ है।

कभी कोई कहता, "एक ओर से हमे ब्रह्मपुत्र दबा रहा है, दूसरी ओर से फिरंगी। हम किधर जाएँ? इधर या उधर?"

देवकात माझुली मे था; पुलिस उसे पकड़ नही सकी थी। अतुल, राखाल और नीरद शिवसागर जेल में थे; शिवसागर के न्यायाधीश की चिकनी-चुपड़ी बातें भी उन्हें उनके मार्ग से नही हटा सकी थी। अत में सब यही सोचने लगते—देवकात को कब मुक्त-भाव से दिसाँगमुख आने का अवसर मिलेगा! अतुल, राखाल और नीरद के छूटने मे कितने दिन रह गए!

देवकात की आगमन-तिथि को अपरिचय का कोहरा ढाँप रहा था; पर अतुल, राखाल और नीरद के छूटकर आने का दिन समीप आ रहा था।

जैसे भोर व्यतीत होती, वैसे मध्याह्न और अपराह्न भी कटता रहता; वैसे ही रात के घटे शेष होते रहते! दिसाँगमुख में जीवन-धारा वैसी-की-वैसी चलती रही। रेशम के कीड़े वैसे ही पाले जा रहे थे। वैसे ही करघे पर अंडी और मूगा के थान बुने जा रहे थे। वैसे ही हाट-बाज़ार लगता था; वैसे ही दूर-दूर के घाटों की नावें आकर दिसाँगमुख के घाट पर लगती थी। वैसे ही मछलियाँ पकडी और बेची जाती थी। किंकर्तव्यविमूढ़ होना तो दिसाँगमुख ने सीखा ही न था। यहाँ ब्रह्मपुत्र भी स्थिर-कर्तव्य था; दिसाँगमुख भी काल-नदी के समान प्रवहमान था।

धीरे-धीरे समय कटता गया। क्षण, पल, घड़ियाँ, दिन, सप्ताह, मास। अब तो लगता था कि अतुल, राखाल और नीरद के स्वागत के लिए सभी अधीर हो उठे है।

नीलमणि के मुख पर भी मुसकान लौट आई थी। धनसिह कहता, "अब तो थोड़े-से दिन रह गए।"

नीलमणि उत्तर देता, "ये भी व्यतीत हो जाएँगे।"

दिसाँगमुख का अतलस्पर्शी सौदर्य-बोध और पूजा-पर्व का हर्षोल्लास जैसे फिर से लौट रहा था। रात को निशब्द आकाश-गंगा भी मानो उसी आनंद-वेला की बंदनवार बन जाती, जिसे दिसाँगमुख अपने वीरो के लिए आलीसीगा के बाज़ार के सिरे पर लगाने का विचार कर रहा था। निस्तब्ध अंधकार मे बहता ब्रह्मपुत्र भी

मानो पूछने लगता—कब छूटकर आएँगे दिसाँगमुख के वीर ?

अब तो मालूम होता था कि दिसाँगमुखवाले इस बात पर लज्जित हैं कि वे सब मिलकर सत्याग्रह में सम्मिलित क्यों नहीं हुए। सबको छः-छः मास की कड़ी कैद ही हो जाती न बस ! और तो कोई दंड न मिलता। जेल से आकर अगले वर्ष वे फिर सत्याग्रह करते। फ़िरंगी कब तक उन्हे पकड़ता चला जाता ? चलो इस बार सही। अतुल, राखाल और नीरद को आ जाने दो। हम उन्हें वचन देंगे, हम उनके साथ हैं। फ़िरंगी हमें सूली पर तो चढ़ाने से रहा। यह सत्याग्रह हमें नए अधिकार देगा, हमारी पराधीनता को समाप्त करेगा। हम कहेंगे, हममें कोई दोष-त्रुटि नही है, हम तुम्हारे नेतृत्व में काम करेंगे, अतुल !

लगता था दिसाँगमुख को विश्वास हो गया, स्वाधीनता की देवी यथासमय यथास्थान प्रवेश करती है। बहुत पीछे से आ रहा था ब्रह्मपुत्र, बहुत आगे जा रहा था, अतीत से भविष्य की ओर जा रहा था जीवन का विरामहीन पथ। कितना पथ कट गया, कितना शेष है, यह प्रश्न तो अनंत काल से पूछा जा रहा था।

पिछले कई महीनों में कई बार दिसाँगमुख को भूकंप के झटके लगे, पर भूकंप से कुछ गिरा नही। यहाँ की झोंपड़ियों की बनावट भूकप के झटकों के अनुरूप ही तो निश्चित की गई थी। युग-युग से दिसाँगमुख में ये झोपड़ियाँ बनती आई थीं, जो भूकंप के बड़े-से-बड़े झटके को भी सह लेती थी।

एक दिन भूकंप का स्पंदन आधी रात के समय आया। धनसिह की दुकान का बोर्ड गिर पड़ा। और किसी का कुछ नुकसान न हुआ।

सवेरे-सवेरे कल्याण भगत ने आकर कहा, "थोड़ा अनुष्ठान कराओ। बड़ डिकडारी ! बड़ डिकडारी !"

नीलमणि भी आ निकला। वह बोला, "धरती का दिल धड़कता है तो भूकंप होता है !"

"वह देखो, कौन आ रहे हैं ?" रत्न नापित एक हाथ की हथेली पर दूसरे हाथ की उँगली उस्तरा तेज करने के अंदाज़ में चलाने लगा।

सबकी आँखे सड़क की तरफ़ उठ गई। आगे-आगे राखाल था, पीछे अतुल और नीरद बाँह-में-बाँह डाले।

छः मास मानो रात-की-रात मे कट गए।

छियासठ

देखने में एकदम गुरु-शिष्य परंपरा का प्रतीक; दाढ़ी-मूंछ और सिर के बाल

बढ़े हुए; जैसे माझुली को उसका यही रूप पसंद है। सिर पर गमछा डाले रखता है।

कभी वह सोचता है, सारा दिसाँगमुख एक साथ उठकर खड़ा हो जाए तो मैं माझुली छोड़कर दिसाँगमुख चला जाऊँ। पर अभी इसकी कोई संभावना नही।

अतुल, राखाल और नीरद के सत्याग्रह का समाचार समय पर मिल गया था; जिस दिन वे जेल से छूटकर दिसाँगमुख पहुँचे, यह समाचार भी अपने विशेष साधनों द्वारा उसे मिल गया।

इस प्रकार तो स्वतंत्रता आते सौ साल लग जाएँगे!—वह मन-ही-मन कहता है, ये लोग क्राति का 'क ख' भी नही जानते।

इस बीच वह एक बार परशुराम कुंड की यात्रा कर आया है। अभी तक पुलिस उस पर हाथ नहीं डाल सकी। इस पर स्वयं उसे भी आश्चर्य होता है।

माझुलीवाले मरते मर जाएँगे, पर मुझे कभी भूलकर भी पुलिस के हवाले नहीं करेंगे।—उसने मन-ही-मन कहा, माझुली जाग उठी। माझुली का पासा अब उलटा नही पड़ सकता। वैसे 'गुरुजी' संबोधन सुनते-सुनते कान पक गए। फिर भी शिष्यो का कमाल इसे ही कहते है कि शिकारी गाँव से सरकार को थाना उठा लेना पडा। धन्य हो माझुली! तेरी धरती पर फ़िरगी के पैर कम ही पड़ते है। कई वर्ष से कोई कमिश्नर भी दौरे पर नही आया।

खातिरदारी में भी माझुली पीछे नही। जितना चाहो दूध पिओ, जितना चाहो मक्खन खाओ। वे स्वयं मूर्ख हैं, जो माझुली को मूर्खों की भूमि कहते है। माझुली को भी सुबुद्धि आएगी, इसकी आशा बहुत कम लोगों को थी। शिकारी गाँव मे थाना बनाने दिया जाता, तो फ़िरंगी ने माझुली में पग-पग पर थाना बना दिया होता। गुरु तो निमित्तमात्र है, कार्य तो शिष्यो को करना पडता है! धत्त तेरे की! सात समुद्र तेरह नदियाँ पार करके तू यहाँ क्यों चला आया—यहाँ हमारे असम देश में? माझुली मानो मन-ही-मन कहती है—कम-से-कम मुझे तो अपने पैरो से भ्रष्ट मत करो। मैं तो ब्रह्मपुत्र के जल से जन्मी, आदर-यत्न से मैंने स्वाधीनता की भावना को प्रश्रय दिया।

देवकांत को लगता, मानो स्वयं माझुली कह रही है—गुरुजी, स्वाधीनता के अनुष्ठान में और क्या चाहिए? आज तो नारियल की बर्फी और गुड़ का संदेश खाइए, गाय का एक सेर दूध भी पीना होगा! कभी उसे लगता, मानो माझुली एक नारी है—बड़ी-बड़ी आँखें, माथे पर चंदन का नहीं, श्रद्धा और आस्था का तिलक; बड़ी-बड़ी आँखों में ब्रह्मपुत्र की मूक भाषा। मानो माझुली की बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य से और बड़ी हो जाती हैं, और उसे आज से सैकड़ो-हज़ारों वर्ष पूर्व का वह पुण्य दिवस स्मरण हो आता है, जब ब्रह्मपुत्र की विशाल धारा से उसका जन्म हुआ। जैसे मुँह में आँचल दबाकर हँसती है कोई बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नारी,

ठीक वैसे ही तो हँसती है माझुली। कोई यह न पूछे माझुली से, उसकी आयु क्या है। अपनी आयु तो उसे स्वयं भी ज्ञात नही। कभी-कभी तो लगता है, मानो माझुली अभी यौवनाधिरूढ़ा है, एक नव-विवाहिता वधू, सिर पर घूँघट घसीटती हुई वधू। मानो उसकी शिकायत यही हो, रात को मच्छर बहुत काटते हैं; मच्छर-दानी के बिना तो गुजारा नही। मुख-कमल प्रसन्नता से खिला हुआ। कभी लगता है, मानो माझुली स्तब्ध-सी खड़ी कुछ सोच रही है; कभी लगता है, अभी खिल-खिलाकर हँस पडेगी। कभी लगता है, माझुली विराट् शून्य में देखती हुई किसी प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ रही है; आँखों में काजल-रेखा, जूडे में रजनीगंधा के फूल। महापुण्य से माझुली का जन्म हुआ, विशाल जलधारा से जन्म हुआ, इसलिए उसकी निष्ठा क्षणभंगुर नही। अविचल भाव से वह किस बात का संधान कर रही है?··· यह सोचकर 'गुरुजी' विभोर हो जाते है।

पर सच पूछो तो 'गुरुजी' का मन अब माझुली से उचाट हो गया है। माझुली कदाचित् इसी बात का रहस्य पाना चाहती है कि 'गुरुजी' का मन उचाट क्यो हो गया। माझुली इस बात को लेकर हँस भी सकती है। उसकी हँसी से तो दिग्-दिगत गूँज उठते हैं। विह्वल दृष्टि से माझुली 'गुरुजी' की ओर देखती है—मन उचाट क्यों हो गया? न जलपान का कष्ट है, न भोजन का, फिर मन उचाट क्यो हो गया?···यही सोचकर तो 'गुरुजी' खीझ उठते है—क्या मै यहाँ केवल जलपान अथवा भोजन के लालच से आया?

किसी ताल पर झूम रही है माझुली। यह ताल तो बहुत पुराना है। कितनी गहरी है उसकी कुतूहल-भरी दृष्टि, निद्रालु-सी आँखे, मानो अभी-अभी नीद से जाग उठी हो। माझुली तो कई बार सोई, कई बार जागी। इससे पहले भी इसे जगाने के लिए कई 'गुरुजी' आए।

बाँसुरी बजती है तो गीत जन्म लेता है, यह जानती है माझुली, यह भी जानती है कि डूबना ही हो तो गंदे नाले की अपेक्षा ब्रह्मपुत्र में क्यों न डूबा जाए। माझुली यह भी समझ गई है कि समय से पहले तो आदमी मर ही नही सकता।

जिसके भाग्य में डूबकर मरना लिखा है, वह जलकर राख क्यों होने लगा? ब्रह्मपुत्र के किनारे रहनेवालों को मछलियों की क्या कमी? ब्रह्मपुत्र पर नाव चलाते समय ब्रह्मपुत्र का पानी ही तो पीने को मिलेगा। अपने लंबे अनुभव से माझुली यह भी समझ गई है, चप्पू से नही, नाव तो मस्तिष्क से चलती है।

ब्रह्मपुत्र में गिरकर ही सब नदियों की मुक्ति है, पर माझुली अपने लंबे अनुभव से जान गई है, आदमी की मुक्ति ब्रह्मपुत्र में डूबने पर नही है। आदमी की मुक्ति तो ब्रह्मपुत्र के विशाल वक्षःस्थल पर तैरने में है।

जल के जिस शाप से धरती को बचाने का देवताओं ने यत्न किया था, आदमी ने उसे वरदान मे बदलने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। माझुली यह जान गई है।

लाख 'गुरुजी' का मन उचाट हो, माझुली के हृदय में जो जाग पड़ चुकी है, वह अब निद्रा में बदलने से रही। माझुली की चेतना कभी अवसन्न नहीं हो सकती। कौन-सा शुभ मुहूर्त रहा होगा जब सर्वप्रथम माझुली की अवसन्न देह में चेतना का संचार हुआ ? 'गुरुजी' के मन में यह प्रश्न बार-बार उठता है।

जादू, प्रभात और मुकन छद्मवेष में माझुली में रहते हैं, वे 'गुरुजी' के पट्ट शिष्य है, पुलिस से बचने के लिए उन्होने भी और-और नाम रख लिए है। गुरु-शिष्य की परपरा भी धन्य है। गुरुजी, प्रणाम ! प्रत्येक शिष्य के होठों पर यह बोल थिरक उठता है। माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी, सास-बहू—ये सब तो जीवन के रास्ते-घाट है। माझुली सब जानती है। गुरु-शिष्य परंपरा को भी इन्हीं में से एक घाट समझ लो। गगन पर कलहंसों की पंक्ति देखकर मानो माझुली भी अपने पंख पसारने लगती है। 'गुरुजी' सब समझते है। माझुली उड़ भी सकती है, माझुली में बड़ी शक्ति है—यह बात वह प्रत्येक शिष्य से कहते रहते हैं। सर्वप्रथम कब माझुली का नामकरण हुआ था ? बाँस की बाँसुरी से मिलता है माझुली का स्वर। माझुली की अपनी परंपरा है; इस परंपरा का एक अंश-मात्र है राजनीति, सब कुछ तो नही। बस यही 'गुरुजी' भूल कर जाते है कदाचित्। इसीलिए उनका मन यहाँ से उचाट हो चला है। माझुली के गान में राजनीति का एक एकाकी स्वर ही कैसे स्थान पा सकता है ? गान कभी एक ही स्वर से नही बनता; गान के तो कई रास्ते-घाट होते है।

जैसे डुग्गी पर अँगुली से थाप देते हुए गाता है गायक, ऐसे ही गाती है माझुली। गाते-गाते वह कई युग पार कर आई।

"माझुली का भविष्य उज्ज्वल है, गुरुजी !"

"यह कहना अभी कठिन है।"

"यह सशय क्यों, गुरुजी ?"

"माझुली के कान कुछ-कुछ दूसरी ओर लगे हैं।"

लगता है माझुली हँस पड़ी, मानो कह रही हो, मेरा ध्यान तो तुम्हारी ओर भी है, गुरुजी ! माझुली मानो कहती है—ब्रह्मपुत्र का जल हाथ में लेकर ही मैं बता सकती हूँ, कितने घंटे की गति से जल बह रहा है।

माझुली अपना परम कर्तव्य जानती है। माझुली कृतसंकल्प है। जैसे चाँदी का रुपया हाथ में अथवा ज़मीन पर बजाकर इसकी टंकार से खरे-खोटे की पहचान की जाती है, ऐसे ही माझुली भी अपने संकल्प की परीक्षा कर चुकी है। 'गुरुजी' की आवाज़ भी उसने यही लक्ष्य रखकर सुनी; उसमें नई स्फूर्ति आई, पर जीवन के अन्य सभी कर्तव्य भुलाकर 'गुरुजी' के एकाकी स्वर पर ही सारा ध्यान केंद्रित कर दिया जाए, यह तो कठिन है···।

"गुरुजी, आप खिन्न-से क्यो हैं आजकल ?"

देवकांत के मन पर अतुल, नीरद और राखाल के कार्य की थाप पड़ रही है। वह सहसा बोल उठता है, "चलो अतुल ने कुछ कार्य तो किया; पर इस प्रकार तो स्वतंत्रता आने में सौ साल लग जाएँगे !"

सरसठ

इधर कुछ दिनों से गोपीनाथ दारोगा भी धनसिंह की दुकान पर आ बैठता है, और घंटों गपशप करता रहता है।

सबसे पहले दिसाँगमुख स्कूल के अध्यापक अभिराम फूकन ने ही यह बात सुझाई, गोपीनाथ अब पहले जैसा जी-हुजूर नही रहा; राखाल ने इसका समर्थन किया।

अतुल बोला, "बड़ डिकडारी !"

"तुम भी बूढ़ों के समान बोलने लगे, अतुल !" धनसिंह ने व्यंग्य कसा। फिर वह गंभीर होकर बोला, "वातावरण आदमी को बदल सकता है।"

अभिराम फूकन के हाथ में ख़बर-काग़ज था, जिसमे मोटे अक्षरो मे बंबई की खबर छपी थी। "सवा लाख की ख़बर है !" उसने आँखे नचाकर और धनसिंह की बैंच पर उँगलियाँ बजाकर कहा, "पर गोपीनाथ के सामने मत कह देना यह बात। जैसे उस्तरा कैंची नही बन सकता, मैं कहता हूँ, कोई जी-हुजूर कभी देश-भक्त नही बन सकता।"

"सवा लाख की तो यह बात है !" अतुल ने ज्ञान बघारा, "बंबई की खबर तो यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कुछ कमजोर पड़ सकती है, जैसे दूर पहुँचने पर लहर की गति धीमी होती जाती है।"

"पर इस लहर में यहाँ पहुँचकर वेग आना चाहिए !" अभिराम फूकन ने ख़बर-काग़ज़ पर नज़र जमाते हुए कहा, "ताज़ा रसगुल्ले से कभी मुँह कड़वा हुआ है ?"

प्रसंग था 'भारत छोडो' प्रस्ताव, जो कांग्रेस कार्यकारिणी ने बंबई की एक सभा में पास कर दिया था। अब ख़बर-काग़ज़ में तो यह भी लिखा था, गांधीजी समेत बड़े-बड़े नेता पकड़ लिए गए।

अभी ये बातें हो ही रही थी कि गोपीनाथ दारोगा दूर से आते दिखाई दिए। ये लोग सहम गए। धनसिंह ने कहा, "अब ऐसी-वैसी बात मुँह से न निकालें।"

"बैठिए, दारोगाजी !" अतुल ने बड़े प्रेम से कहा और उसने झट भीतर से निकालकर एक कुरसी ला रखी।

"क्या समाचार है ?" गोपीनाथ मुसकराया।

अभिराम फूकन ने खबर-काग़ज़ गोपीनाथ की ओर बढ़ाते हुए कहा, "पढ़ लीजिए।"

गोपीनाथ ने खबर-काग़ज़ ले लिया। उसकी मोटी सुर्खी पर एक उचटती-सी नज़र डाली, और उखड़ी-उखड़ी-सी आवाज़ में कहा, "देश का क्या बनेगा?"

सब चुप हो गए; एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। आज गोपीनाथ को सभी विशेष संदेह की दृष्टि से देख रहे थे। फुटकर बातों का समय नही, यह सभी जानते थे। गोपीनाथ के एकाएक आ जाने से सभी को एक विचित्र-सा सकोच अनुभव हुआ। अन्य दिनो की तरह कोई भी मुँह मे आई बात कहने की चेष्टा नही कर रहा था, जैसे सभी को छंद-भंग का भय हो।

गोपीनाथ को यह समझते देर न लगी। उसका विचार था, पिछले कुछ दिनों के मेल-मिलाप से लोग उसे जी-हुजूर समझने का रुख छोड़ते जा रहे है, पर उसका विचार गलत निकला। वह उठकर जाने के लिए तैयार हुआ तो राखाल ने हाथ पकड़कर कहा, "बैठो, दारोगाजी ! हम से क्या नाराज़गी ?"

गोपीनाथ जाने की जिद करता रहा। उसने भाँप लिया था, आज सब-कुछ पहले की तरह नही चल रहा। आश्चर्य ! उसने मन-ही-मन कहा और हाथ छुडाने लगा।

अब तो धनसिंह को भी कहना पडा, "दारोगाजी, बैठिए। चाय आ रही है। जाना ही हो, तो चाय पीकर जाइए।"

"मैं आप लोगों की आजादी में रोड़ा नही बनूंगा।" गोपीनाथ बोला, "मैं जाऊँगा।"

अब तो अभिराम फूकन को भी उठकर गोपीनाथ को रोकना पड़ा। दूसरी तरफ़ से अतुल ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "बैठो भी, दारोगाजी ! मैं यह मानकर चलता हूँ कि जब सबकुछ बदल रहा है, आप भी बदल सकते हैं।"

"आश्चर्य !" गोपीनाथ ने मन की बात मुँह पर लाते हुए कहा।

"बैठो, दारोगाजी !" धनसिंह बोला, "मेरी चाय मे तो कोई दोष नही। आप फिर भी हमारे दारोगा है।"

गोपीनाथ बैठ गया। अपेक्षाकृत स्वस्थ मस्तिष्क से सोचने पर उसे लगा, यदि मन में उठकर चले जाने का विचार ही लाना था, तो फिर यहाँ आया ही क्यो था; ये सब तो अपने बंधु-बांधव है, सात समुद्र और तेरह नदियाँ पार से आनेवाला फ़िरंगी तो बंधु-बांधव होने से रहा।

"ब्रह्मपुत्र में बहकर आती लकड़ी को घर लाने पर टैक्स नही लगना चाहिए।" गोपीनाथ ने कहा, "अब मेरी भी यही राय है।"

सब आश्चर्य से गोपीनाथ की ओर देखने लगे।

अड़सठ

नाव में एक ही सवारी थी। आरती ने तेजी से चप्पू चलाते हुए कहा, "चलो, किसी तरह माझुली मे आपका काम तो समाप्त हुआ, गुरुजी !"

"यही समझ लो !"

आरती को लगा, 'गुरुजी' संबोधन में बड़ा बे-मेल है। मन को शांत करने के लिए उसने जेब से गुड़ का तिलकुट निकाला और एक टुकड़ा बढ़ाते हुए कहा, "लेंगे, गुरुजी ?"

"तुम खाओ। अपनी इच्छा नही इस समय।"

इस उत्तर मे भी आरती को कोई अपनत्व न लगा, जैसे वह देवकांत, जो उसका अपना था, जो उसके सपनो का राजा था, कोई और था, और यह 'गुरुजी' कोई और। पहली बात तो यह थी, 'गुरुजी' का संबोधन करते ही आरती को लगा, जो प्राप्त था वह भी अप्राप्त हो गया, हाथ से निकल गया। जैसे हाथ मे आई थैली का मुँह बंद हो और इसे खोलने की आज्ञा न हो। वह अनमनी-सी चप्पू चलाती रही।

'गुरुजी' कुछ सोचने लगते है। स्थिति को समझना चाहते हैं। इतने दिन माझुली मे रहे 'गुरुजी' बनकर, अब दिसाँगमुख जा रहे है। स्वयं आरती लेने आई। कोई और भी आ सकता था, पर दिसाँगमुखवालो ने स्नेह की लाज रखी। स्नेह बडी वस्तु है। ढोल पीटकर स्नेह नही किया जाता। आरती मेरे मौन को अस्नेह की संज्ञा दे सकती है। वह भले ही यह सोचे। अपने सामने तो अभी दूसरा काम है। दिसाँगमुख तो पहुँचे, वहाँ की स्थिति को समझें। देखें क्या होता है।...

वह आरती की ओर देखने लगा। आरती के हाथ चप्पू चला रहे थे; उसकी आँखे गगन पर टिकी थी, मानो वह उस विशाल पट पर किसी देवकांत की मुख-छवि निहार रही है।

"तो यह सच है, गोपीनाथ हमारी तरफ़ आ गया ?"

"सवा सोलह आने सच है।"

ब्रह्मपुत्र की लहरें भी मानो चप्पू से टकराकर यही कह उठी—सवा सोलह आने सच है !

"अतुल कैसा है ?"

"अच्छा है।"

"राखाल काका ?"

"काका भी अच्छे है।"

"धर्मानंदी काका ?"

"अच्छे है।"

'अच्छे है' की रट आरती को बहुत अच्छी न लगी। सबकी बात पूछ रहे है 'गुरुजी'। मै सामने बैठी चप्पू चला रही हूँ। मेरी बात क्यों नहीं पूछते मुझसे? उसे लगा, 'गुरुजी' का काम तो कभी समाप्त ही नही होगा, कभी माझुली का काम, कभी दिसाँगमुख का; मेरे साथ बात करने का तो उन्हें अवकाश ही नहीं मिलेगा। यही सोचकर उसने सिर को एक झटका दिया और बे-मन से चप्पू चलाने लगी। मै न जानती थी, 'गुरुजी' का रंग-ढंग ही बदल गया। सब नीरस लगता है। देश-सेवा की बात करते है; आदमी चाहे प्यासी ज़मीन की तरह सूखा ही अनुभव करता रहे। 'गुरुजी' के सामने तो बड़े-बड़े काम हैं; मुझसे वह क्यो बात करने लगे?

चाँदनी रात। ब्रह्मपुत्र मे नाव-यात्रा। गगन पर मेघ छा रहे है। कभी चाँद बाहर निकल आता है, कभी मेघ उसे ढाँप लेता है। चाँदनी हो चाहे गहन अंधकार, क्या अतर पड़ता है? आरती सोच रही है—मेरे ज़िम्मे एक काम सौपा गया। मै यह काम कर रही हूँ। 'गुरुजी' पर तो कोई अहसान नही। जूनतारा सच कहती है, देश-सेवा करनेवाले स्नेह को क्या जानें?···

"धनसिह कैसा है?"

"अच्छा है।"

"रत्न?"

"अच्छा।"

"नीरद?"

"अच्छा है।" कहते-कहते आरती को लगा, नीरद बाबू तो भद्रलोक है, उनके लिए तो 'अच्छे है' कहना उचित होगा। फिर वह सोचने लगी। अब इस आदमी को ही लो। 'गुरुजी' बन गया। कैसे पूछूं—कौन-सी मछली खाने में अच्छी लगती है? अरे मै तो मछुवे की बेटी हूँ। आदमी से अधिक मछली को ही जानती हूँ। हर मछली का रंग-रूप और स्वभाव जानती हूँ। किसका कैसा स्वाद है, यह भी जानती हूँ। एक प्रकार से देखूं, तो मैंने भूल की, जो अब तक कुँआरी बैठी रही। 'गुरुजी' के मन में शायद मेरी कोई छवि ही न हो। होती तो मुझसे कुछ तो कहते। पर पहले तो ऐसे नही थे 'गुरुजी'!···

आशा-आशंका, उद्वेग-उत्कंठा मे डूबती-तैरती वह चप्पू चलाए जा रही है। वह, कल को जानती है—कल, जो बीत गया; या फिर आज, जो बीत रहा है। आगामी कल के बारे मे उसे अधिक चिंता नही।

···'गुरुजी' के सामने अपनी बात कैसे बताऊँ? माझुली का काम समाप्त हुआ, तो दिसाँगमुख का काम आरंभ हो जाएगा। हर समय क्या काम की बात ही सोची जाती है? सोचा था, इस आदमी के साथ गृहिणी बनकर रहूँगी। पर

इसका तो काम ही समाप्त होने में नही आता। मेरे साथ की पाँच-पाँच बच्चों की माताएँ बन गईं; मैं ही रह गई। वे मुझ पर हँसती है, मुझे निपट मूर्ख समझती है। मेरी सुविधा-असुविधा की 'गुरुजी' को क्या चिंता? सारा ब्रह्मांड क्यों न बदल जाए, इन्हें मेरी चिंता नहीं होगी। अधिक-से-अधिक दस-बारह वर्ष ऊपर हो गए, या थोड़ा और भी; बस यही न! मैं तो आज भी किसी षोडशी से कम नही हूँ; उस जैसी निर्बुद्धि भले ही नही रही। भला-बुरा परख सकती हूँ; थोड़ा सोचना भी आ गया है। ब्रह्मपुत्र का रंग देखकर कह सकती हूँ, बाढ़ कितनी दूर पर आ रही है। मछलियाँ किस जगह अधिक मिलती है, कहाँ जाल फेकने से ठीक होगा—यही समझते-बूझते आयु बीत गई। फिर भी मै कहती हूँ, 'गुरुजी' चाहें तो मैं अनुगामिनी बन जाऊँ—एकदम सती सावित्री, पर वह ऐसा चाहें, तब न।···

स्नेहातुर आरती कुछ कह भी तो नही सकती। अब वह षोडशी नही है, अब तो भला-बुरा पहचानती है। क्या उचित है और क्या अनुचित है, वह खूब समझती है। अंट-शंट कैसे बोल दे अपने मन की बात! युक्ति-तर्क से तोलना होगा; संसार उपहास न करे, वही काम करना होगा। आरती का ऐसा-वैसा मन नहीं है! मन पर पूरा अधिकार है। खुशामद से कुछ मिला, तो सर्वनाश! बड़ डिकडारी!···दस वर्ष पूर्व तो यह 'बड़ डिकडारी!' उसके होठों पर नही आया था।

थोडा समय बीत गया, थोड़ा और बीत जाएगा। जैसे समय भी एक बहुत बड़ा जाल है, जो किसी मछुवे ने मछलियाँ पकड़ने के लिए डाल रखा है। आरती को लगता है, वह भी एक मछली है। यह जाल उसे पकड़कर रहेगा। जाल ब्रह्मपुत्र से बाहर निकलेगा, तो वह उस जाल में फँस चुकी होगी; बचना सहज नही।··· वह फिर सोचने लगती है—कर्तव्य-ज्ञान का उदय तो ठीक है, बुरा नही। थोडा बीत गया, थोड़ा और बीत जाएगा। क्या यह सब किसी नाटक का सुदर अथवा असुदर दृश्य मात्र है? सब अभिनय है? माझुली का काम, दिसाँगमुख का काम; और फिर शिवसागर, डिब्रूगढ़ और गौहाटी का काम! सब अभिनय है! मैने तो सोचा था, स्नेह ही मूलधन है। स्नेह क्या पर्याप्त नही? स्नेह क्या स्वतंत्र-संपूर्ण नही? 'गुरुजी' मुझसे बात तो करे, स्नेह का स्वर छेडे तो सही, बाँस की बाँसुरी मे निश्चय ही गान जन्म लेगा। 'गुरुजी' कुछ कहे तो सही, मै उनके वचन को वेद-वाक्य समझूंगी। पर 'गुरुजी' पर तो कार्य का दबाव है; हर समय कार्य, कार्य, कार्य!···हमारी नाव ब्रह्मपुत्र मे जा रही है। यह क्या कार्य नही? ब्रह्मपुत्र किसकी साक्षी दे रहा है? ब्रह्मपुत्र क्या कार्य नही कर रहा? तिब्बत की मानसरोवर झील से निकलने पर तो बहुत छोटा-सा रहा होगा। इसे इतना बडा किसने बनाया?—कार्य ने। यह कार्य क्या अकेले ब्रह्मपुत्र ने किया? रास्ते में कितनी ही नदियाँ ब्रह्मपुत्र में मिलती रही और ब्रह्मपुत्र विशाल बनता गया। नदियो का

मिलन क्या व्यर्थ है ? नारी और पुरुष के मिलन में क्या इतनी भी सार्थकता नहीं ? 'गुरुजी' तो टस-से-मस नहीं होते।···

"क्या सोच रही हो, आरती ?"

"कुछ नही।"

···कल जब अतुल ने भरी सभा में कहा, देवकांत को तो आरती ही ला सकती है, तो लाज के कारण मेरी पलके झुक गई थी। मैं क्या जानती थी, मेरे जिस प्रेम का सारे दिसाँगमुख ने सम्मान किया, और यह आदमी जो मेरे प्रेम का आधार है, मेरी अवहेलना करेगा। यह विचार आते ही आरती ने गहरा निःश्वास लिया; आँखे ऊपर उठा उसने ध्यान-मग्न देवकांत को देखा। फिर मन की बात मन की तहो मे समेटकर वह ज़ोर-ज़ोर से चप्पू चलाने लगी।

रात आधी से ऊपर जा चुकी थी, जब नाव दिसाँगमुख घाट पर जाकर लगी।

उनहत्तर

वह रात देवकांत ने धर्मानंदी की झोपड़ी में ही बिताई। उषा से पहले ही उठकर नाव पर बनी इस झोपड़ी की खिड़की में वह दोनों कुहनियाँ टेककर खड़ा हो गया।

वह ब्रह्मपुत्र का प्रवाह देखता रहा। कभी-कभी पीछे मुड़कर वह चटाई पर सोती आरती को देख लेता।

धर्मानदी ने सवेरे ही गरम चाय बनाकर उसे पिला दी थी और स्वयं ब्रह्मपुत्र के किनारे जाल फैलाकर उसकी मरम्मत करने बैठ गया था।

वह धर्मानंदी के पास जाकर खड़ा हो गया, और बोला, "बहुत पुराना हो गया तुम्हारा जाल, काका !"

"नया जाल कहाँ से लाऊँगा ?" धर्मानंदी ने खाँसकर कहा, "मरम्मत करते-करते मेरे हाथ रह गए।"

फिर वापस आकर देवकांत खिड़की से ब्रह्मपुत्र का दृश्य देखते हुए सोचने लगा—यह सुदूर तिब्बत से आता है और अठारह सौ मील की यात्रा करके समुद्र तक पहुँचता है।

उसे बत्तख़ की आवाज़ सुनाई दी; यह अंडे सेती बत्तख़ की आवाज़ थी। उसने उधर जाकर देखा। वर्षा से बचाव के लिए बत्तख़ के ऊपर दड़बे के समान फूस का छप्पर डाल दिया गया था।

बत्तख की आवाज सुनकर आरती भी जाग उठी। वह लपककर बत्तख के पास चली गई। देवकात मुसकराया। अंडे से एक चूजा निकल आया था। आरती लजा गई। कोई और समय होता तो वह बत्तख के मुख पर प्यार से हाथ फेरती और चूजे को उठाकर छाती से लगा लेती।

नीचे से बापू की आवाज आई, "देखो कौन आए है।"

देवकात और आरती लपककर नीचे आ गए। राखाल, नीलमणि, अतुल, नीरद और धनसिंह—सभी बारी-बारी देवकात से गले लगकर मिले।

"मै अब गोपीनाथ से मिलने जाऊँगा।" देवकात ने निश्चयपूर्वक कहा।

"तुम मत जाओ।" आरती ने अपना कर्तव्य पहचानते हुए सलाह दी, "अतुल जाकर यह समाचार दे सकता है।"

"तुम डरती हो, कही गोपीनाथ उसे पकड़ न ले!" अतुल हँस पड़ा, "हम ऐसा नही होने देगे।"

इतने मे दूर से गोपीनाथ भी इधर आता दिखाई दिया।

वह भी आकर देवकात से लिपट गया। देवकात हँसकर बोला, "अब भी चाहो तो मुझे गिरफ्तार करके इनाम पा सकते हो।"

"मुझे नही चाहिए ऐसा इनाम!" गोपीनाथ ने गभीर होकर कहा, "तुम स्वयं मेरा इनाम हो।" यह कहते-कहते वह रुक गया, और देवकात की ओर देखने लगा, फिर सँभलकर बोला, "तुम मेरे घर चलो।"

आरती डर रही थी, मानो गोपीनाथ चालाकी से देवकात को ले जाकर गिरफ़्तार करने की सोच रहा हो।

ब्रह्मपुत्र के किनारे सभा का दृश्य नजर आने लगा। बहुत से नावरिया, मछुवे और किसान देखते-देखते जमा हो गए। गोपीनाथ ने सबको समझाया, "नीति से काम लेना ठीक होगा। अभी यह हवा बाहर नही निकलनी चाहिए कि देवकात दिसाँगमुख मे है। बाकी मै सँभाल लूँगा।"

"ऐसा ही होगा।" अतुल ने सबकी ओर से कहा।

"अच्छा तो अब मै चलता हूँ।" गोपीनाथ ने कहा, "नौकरी का मामला है।"

देवकांत की माँ स्वय चलकर बेटे से मिलने आई। उसने यह शिकायत न की कि वह रात को ही घर क्यो नही चला आया था। इस समय भी उसने यह आग्रह न किया कि वह घर चले। स्थिति ही ऐसी थी, उसने तीन बार देवकात को गले लगाया; तीनों बार माँ का प्यार आँसू बनकर टपक पड़ा।

लोग बड़ी घनिष्ठता से देवकात को देख रहे थे। इस भीड़-भड़क्के मे आरती को लगा, उसका देवकात उससे छिन गया।

एक-एक करके सब चले गए, और केवल अतुल ही खड़ा रह गया, आरती हँसकर बोली, "ऊपर चलो झोपड़ी में, तुम्हें नया जन्मा शिशु दिखाएँ।"

"किसका शिशु ? कैसा शिशु ?" अतुल हँस पड़ा, "अच्छा चलो। देखेंगे।"

ऊपर ले जाकर आरती ने बत्तख का चूजा उठाकर दिखाया। छोटी-छोटी आँखें, कोमल देह, बड़ा ही सुकुमार चूजा था।

चाय बनाकर आरती ने एक-एक गिलास देवकात और अतुल के सामने रख दिया। बोली, "भद्र लोग जैसी चाय पीते है, वैसी नही है, फिर भी ग्रहण करे।"

"अवश्य !" अतुल बोला, "उठाओ चाय का गिलास, देवकात ! लगाओ मुँह से, चाहे होंठ जल जाएँ।"

दोनों के होठ जल गए। चाय बहुत गरम थी। आरती खाना पकाने बैठ गई।

"मैं तो मछली नही खाता।" अतुल ने गंभीर होकर कहा, "हमारे 'गुरुजी' से भी पूछ लो। शायद वह भी वैष्णव जनो के समान ही निरामिष भोजन पसद करे।"

"मछुवे के घर मे निरामिष भोजन !" आरती हँस पडी, "अच्छा बाबा ! 'गुरुजी' के आगमन की खुशी मे आज हम सभी निरामिप भोजन करेगे।"

भोजन के पश्चात् अतुल और देवकांत खेतो की ओर चल दिए, जहाँ धान के सुनहरे पौधे कटने के लिए तैयार खड़े थे।

"भारी वर्षा के कारण फ़सल नही काटी जा सकी।" अतुल बोला, "नही तो अब तक तो कटकर घर आ जाता है धान। अब यही सोच रहे है, जो पाँच-दस बार वर्षा और होती है हो ले; फिर थोडी धूप पड़ जाए तो फसल काटेगे।"

देवकात अनमना-सा धान के खेतो की ओर देख रहा था।

"मैं तो किसान का बेटा हूँ।" अतुल कहता चला गया, "इस पठार की माटी कभी-कभी सोते मे भी मेरा पीछा करती है, पर तुम्हे शायद मेरी बात पर विश्वास नही होगा, देवकात !"

"कैसे नही होगा विश्वास ?"

"यही पठार हमारी जायदाद है। बखार मे धान हो, फिर कुछ नही चाहिए। गाय दूध देती रहे। केले के पेड़ फलते रहें। ताबूल-पान की भी कमी न रहे। फिर कुछ नही चाहिए।" कहते-कहते अतुल रुक गया और देवकात की ओर देखने लगा।

देवकांत ने कुछ उत्तर न दिया।

"रेशम के कीड़े रेशम तैयार करते रहे हमारे लिए !" अतुल ने फिर कहना आरंभ किया, "हमारे करघे चलते रहे; अंडी और मूगा के थान बुनती रहे हमारी कन्याएँ। और क्या ? तुम्ही बताओ और क्या ?"

"और क्या ?" देवकात ने स्तंभित-सा होकर कहा, "तुम कहोगे, मछलियाँ फँसती रहे ! पर नही, हम फ़ैसला कर चुके है। वह मछुवा, जो सात समुद्र और तेरह नदियाँ पार करके ब्रह्मपुत्र मे जाल डालने आया, उसे अब यहाँ से जाना होगा !"

दोनों मित्र एक-दूसरे को देखने लगे। मछुवे का प्रतीक आज सचमुच नए ही अर्थ में उछाला गया था। वे धीरे-धीरे चले जा रहे थे; बहुत-कुछ सोचते हुए, किसी

एक बिंदु पर उँगली रखने को उत्सुक।

"जब रिमझिम पानी बरसता है, तो धान के पौधे किस प्रकार लहलहाने लगते है।" अतुल कहता चला गया, "मेरी आयु तो धान उगाते बीती; मैं तो न राखाल काका की तरह हाथियो को जानता हूँ, न धर्मानंदी काका की तरह मछलियों से ही मेरा अधिक परिचय हुआ। मैं तो इस पठार की माटी में जन्मा, जो सपनों मे भी मेरा पीछा करती है। यह पठार कितना विशाल है! दूर, बहुत दूर, जहाँ गगन-रेखा पठार से मिलती है, वहाँ तक चला गया है यह हमारा पठार। तुम्हारी और नीरद बाबू की तरह मैंने पढ़ाई-लिखाई नही की। हल चलाता हूँ, बीज बोता हूँ, और फ़सल काटता हूँ।" कहते-कहते रुककर वह देवकांत की ओर देखने लगा।

"कल का क्या कार्यक्रम है?" देवकांत ने अतुल की भावावेशमयी भाषा को एकदम अनसुना कर दिया।

"यह तो तुम बताओगे। विचार करना होगा।" अतुल ने सहज भाव से कहा।

और वे जल्दी-जल्दी कदम उठाने लगे।

सत्तर

गोपीनाथ दारोगा से एक भूल हुई। अच्छा होता कि साधन मीरी को बुलाकर समझा दिया होता; उसे अपनी ओर मिलाने की विशेष चेष्टा करने की गोपीनाथ ने कोई आवश्यकता न समझी।

साधन मीरी जब शिवसागर जाने लगा, तो उसके घरवालों ने उसे रोका, क्योकि वे समझ गए थे कि दाल मे कुछ काला है। साधन ने घर से चलते हुए कहा, "मुझे कोई लालची भले ही समझे, थोड़ा-बहुत ठग भी हो सकता हूँ, स्वार्थी और चार सौ बीस भी हूँ किसी सीमा तक, पर मैं देशद्रोही बिलकुल नही हूँ।"

घरवालों ने समझा वह ठीक कहता होगा, और किसी दूसरे काम से शिवसागर जा रहा होगा।

इधर कुछ दिनो से शिवसागर से दिसाँगमुख तक बस चलने लगी थी। वह बस में जा बैठा और सोचने लगा—बस चलने में अभी देर है, न जाने कब तक भरेगी पूरी बस। वह चाहता था कि उड़कर शिवसागर जा पहुँचे, और गोपीनाथ को मज़ा चखा दे। "यह देशद्रोह नहीं!" उसने मन-ही-मन कहा, "ठीक समय पर बुद्धि से काम लेने को कोई देशद्रोह कहता है तो कहता रहे, मैं क्या करूँ?" फिर उसे ध्यान आया—जब मोटर चलेगी, तो धूल उड़ेगी ही; दोनों ओर की दुकानों पर

बैठे दुकानदार धूल से बचने के लिए मुँह पर रूमाल डालते हुए मन-ही-मन बस के ड्राइवर और कंडक्टर तक को मोटी-सी गाली दे डालेंगे। देखना तो यह है कि बस आराम देनेवाली चीज़ है या नही !···इसी बीच चार-पाँच सवारियाँ आ बैठी थी।

इतने मे अंधे सूरदास ने आकर गाना शुरू किया :

सुनोर देशोर माटि ओइ सुनोर देशोर माटि
ए माटि ते पराने मोर खताऊँ दिने राति[1]

सूरदास एकतारे पर गा रहा था। यह उसका प्रिय गान था। सहस्र बार गाया हुआ गान। उसके इस गान का बहुत मूल्य पड़ता रहा था। आज भी उसकी मुट्ठी पैसों से भरने लगी।

साधन की जेब से पैसा निकलकर बाहर न आया, सूरदास की मुट्ठी में जाना तो दूर रहा। उसे याद था कि पहले उसे भी यह गान अच्छा लगता था और सूरदास की मुट्ठी मे उसकी गाँठ का पैसा भी कई बार चला गया था। आज उसने सूरदास को घृणापूर्वक देखा—इसकी और कोई माटी नही। इसके लिए यही भीख माँगना रह गया है। जब देखो भीख माँगता रहता है !···

वह सोचने लगा—इससे अच्छा तो सूरदास का वह गान है जिसमें कहा गया है—गगन पर राजहंसों का एक जोड़ा उड़ गया। वह गान भी बुरा नही जिसमें कहा गया है—ब्रह्मपुत्र के किनारे रेत पर कछवी गिन-गिनकर अंडे दे रही है। उसके जी मे आया कि सूरदास से वह गान सुनाने के लिए कहे, जिसमे कोई प्रेमी मुग्ध प्रेयसी का हाथ अपने हाथ में लिए हुए दिसॉग नदी के बीच से होता हुआ उस पार चला जाता है। "प्रेम का नशा जो भी करा डाले, थोड़ा है !" उसने मन-ही-मन कहा, "पर इसी प्रकार दो प्रेमी हाथ-में-हाथ लिए हुए ब्रह्मपुत्र के उस पार माझुली मे तो पहुँचने से रहे। माझुली की यात्रा तो नाव में ही हो सकती है। एकाएक उसे आरती का ध्यान आया, जो अपनी नाव में देवकांत को माझुली से लेती आई थी। "मैं सबको मज़ा चखाऊँगा !" उसने मन-ही-मन कहा।

अब सूरदास अपने एकतारे पर दूसरा गान गा रहा था :

देशोते लागिले जुई ओ बान्धोई,
देशोते लागिले जुई।
तेल ना पाबो लोई,
लोन ना खाबो लोई,
कानि नाइ लबो लोई गात ![2]

---

१. सोने की है इस देश की माटी, सोने की इस देश की माटी। इस माटी में लगा रहता है मेरा प्राण दिन-रात !

२. देश में आग लग गई, ओ बंधु, देश में आग लग गई। लगाने को तेल नहीं मिलता, खाने को नमक नही मिलता, गात ढाँपने को वस्त्र नहीं मिलता।

साधन ने देखा, सूरदास की मुट्ठी पैसों से भर गई। उसकी अपनी जेब से एक भी पैसा न निकला। इस गान में फ़िरंगी राज को कोसा जा रहा था।

किसी ने कहा, "सूरदास बाबा, बदन का गान सुनाओ न आज !"

और सूरदास नाच-नाचकर, और बीच-बीच मे सिसकियाँ भरने तथा वेदना के पोखर मे डूबने की भंगिमा का प्रदर्शन करते हुए एक सफल लोक-गायक के समान गाने लगा।

साधन अपनी सीट पर बैठे-बैठे उन दिनों की बात सोचने लगा, जब असम देश के एक कुपुत्र ने अपने देश के राजा से प्रतिशोध लेने के लिए बर्मियों को आमंत्रित किया था। एक चलचित्र के समान इतिहास का वह रक्त-रंजित पृष्ठ उसकी कल्पना में घूम गया। किस प्रकार बर्मी सेना आगे बढी और पहले असम देश को अपने पैरों तले कुचला; किस प्रकार निहत्थो को मौत के घाट उतारा और फिर किस प्रकार फिरंगी की सेना का सामना करना पड़ा; बर्मी हार गए, और उनकी हार के पश्चात् असम देश भी फिरंगी का गुलाम बनने पर विवश हुआ। उसके जी मे तो आया कि अभी बस से नीचे उतर जाए, क्योकि वह आज दूसरा बदन नही बनना चाहता था। पर अगले ही क्षण पाप का पलड़ा भारी होने लगा, और वह चुपचाप बैठा रहा।

सूरदास ने बदन का गान दोबारा आरभ किया :

बदन तयि आनिली मान, ओ बदन तयि आनिली मान
एने हेन अमया आई रे बुकुते, सेलेर हागिली हान
पुआटिर छिलिर पेटोर पुआलि, गड़त थोई कासिली लोरा
जाथि रे सालिलि आबोरि छुआली, सागत थोई पुरिली बुढा
बरनइ रंगा कोई तजोर सोत बुआलि, देश तल नियालि मान
गरु रे तेजे रे प्रतिमा धुआलि, धुआलि गोसाईं रे थान
जनमे जनमे जगते शपिद, पाबि कुने काले त्रान।[1]

गान समाप्त हुआ, तो बस चल पड़ी। बस द्रुतगति से चली जा रही थी; पूरी

---

१. बदन, तुमने बर्मा-वासियों को आमंत्रित किया, ओ रे बदन, तुमने बर्मा-वासियों को आमंत्रित किया। ऐसी स्निग्ध माँ के कलेजे में तुमने कटार घोंप दी। उन्होंने गर्भवती नारियो के पेट चीर डाले, शिशुओ की बलि दे दी। युवतियों को नचाया तलवार पर, आबाल-वृद्ध को ऊपर लटकाकर नीचे से आग जला दी ! बरनई की जलधारा रक्त से लाल हो गई, देश में बर्मियों को आमंत्रित किया। गाय के रक्त से प्रतिमाओं को धुलाया, उसी से देव-स्थानों को धुलाया। जन्म-जन्मांतर तक देश तुम्हें अभिशाप देता रहेगा, किस काल में मिलेगा तुम्हें त्राण ?

सवारियाँ शिवसागर की ही थी।

शिवसागर में बस से उतरकर भी साधन के जी में एक बार यह विचार आया, उसे हर्गिज दूसरा बदन नही बनना चाहिए; पर पाप की प्रेरणा पुण्य की प्रेरणा पर विजयी हुई, और वह पुलिस सुपरिंटेंडेंट के बँगले की ओर चल पड़ा।

इकहत्तर

आज बुधवार है; कल बृहस्पतिवार। कल दिसाँगमुख में हाट बाज़ार लगेगा, जैसे सदा से लगता आया है। सोमवार का शिवसागर गया हुआ साधन अभी तक नही लौटा, लौट आता, तो गोपीनाथ के हाथो बुरी तरह पिटता।

आज शाम जब शिवसागर से सुपरिंटेडेंट पुलिस के कार्यालय से स्पेशल इस्पेक्टर आया, तो गोपीनाथ ने कह दिया, देवकांत दिसाँगमुख मे नही है। देर तक प्रश्नोत्तर चलते रहे थे। स्पेशल इस्पेक्टर लौट गया।

गोपीनाथ खूब समझता है, अब शिवसागर मे देवकात की खबर पहुँच गई, तो बात सहज ही आई-गई नही हो सकती। देवकांत ने स्वयं कहा था, अभी स्थिति अनुकूल न हो तो वह फिर माझुली को लौट सकता है। अब तो यह सुझाव स्थिति को सुलझाने के बजाय उलटा उलझानेवाला प्रतीत होता है।

नीरद और अतुल ने देवकात को एक ऐसी जगह छिपा दिया, जहाँ से पुलिस के फरिश्तो को भी उसकी टोह नही मिल सकती। गोपीनाथ को इतना भरोसा अवश्य है, उसके सिपाही उसके साथ है; वे कह चुके है, गोपीनाथ के संकेत पर वे जान पर खेल सकते है। अपने परिवार को गोपीनाथ पहले ही माझुली के एक सुदूर गाँव में भेज चुका है।

नीरद का यही विचार था, देवकात को माझुली चले जाना चाहिए; अनुकूल स्थिति के बिना उसका यहाँ रहना संकट से खाली नही। अब यह तो कोई नही जानता था कि साधन देशद्रोही निकलेगा। गोपीनाथ ने नीरद का प्रस्ताव काटते हुए कहा, "देख लिया जाएगा। देवकांत यही रहे। हाँ, वह छिपकर रहे तो ठीक है। साधन को लौट आने दिया जाए। उसे ठोक-पीटकर ठीक किया जा सकता है। अधिक-से-अधिक यही होगा न, दोबारा पुलिस सुपरिटेडेंट स्वयं आकर पूछ-ताछ करेगा, पर उन्हें यह संदेह तो होने से रहा कि उनका दारोगा उनका नहीं रहा। फिर जब स्थिति अनुकूल देखेगे, तो कुछ करेंगे।"

उसने तो पहले ही दिन देवकात से कह दिया था, "मैंने सब प्रबंध कर रखा है। माझुली के थानों मे मेरा नाम लेकर खबर पहुँचाने-भर की देर है; उन थानो

के सिपाही यही चले आएँगे।"

खबर भेजी जा चुकी थी; अब उन्ही का इतज़ार था। वे किसी भी समय यहाँ पहुँच सकते थे।

गोपीनाथ ब्रह्मपुत्र के किनारे खड़ा था। वह मन-ही-मन विचार कर रहा था। "स्थिति तो किसी भी समय बिगड सकती है!" उसने मन-ही-मन कहा, "देख लेगे। थोडा खून गिर सकता है। देख लेंगे।" उसे नीरद के शात, शिष्ट, गंभीर चेहरे का ध्यान आ रहा था। फिर विचार आया, नीरद संकट मे पड़ने में विश्वास नही रखता; पुस्तक लिखने मे ही उसका ध्यान है। लिली कमा रही है, वह खा रहा है। उसे क्या परवाह है? फिर पुस्तक समाप्त करने की जल्दी क्यो हो? अतुल के मस्तिष्क पर वैसे तो खेत-खलिहान की बात ही सवार रहती है, पर अपनी आशा-आकाक्षा मे उसने दिसाँगमुख की आशा-आकाक्षा को मिला लिया है। देवकात असल क्रातिकारी है। मै उसे भगोड़ा समझता रहा। अब समय आया कि मै भी कुछ कर जाऊँ, चाहे जान से भी क्यो न हाथ धोने पड़ें। परिवार को भेज ही चुका हूँ, उन लोगो को अफसोस जरूर होगा, यदि मुझे कुछ हो गया, पर क्या किया जा सकता है?

जरा सँभलकर वह सोचने लगा—शायद कुछ भी नही होगा। शायद वह स्पेशल अफसर ही जाकर समझा देगा, देवकांत के दिसॉगमुख मे होने की अफ़वाह गलत है।

उसे याद आ रहा था, नीरद ने अपनी पुस्तक मे लिखा था: जहाँ अब हिमालय पर्वत खड़ा है, वहाँ आज से लाखो-करोड़ो वर्ष पूर्व कभी अनंत पारावार ठाठे मारता था, उस समय तक आदमी नही जन्मा था। नीरद ने बड़े-बड़े वैज्ञानिको के अनुमान जुटाते हुए यह वक्तव्य दिया था कि उस युग मे उत्तर से जो बर्फ़ानी आँधी आती थी उसके कारण यह असंभव था कि किसी प्राणी का जन्म हो सके। कैसा था वह अतीत, वह अज्ञात युग, जब भूकप आया और धरती की काया मे आमूल परिवर्तन हो गए; थल के स्थान पर जल हो गया, जल के स्थान पर थल; और तभी प्रकृति के माया-चक्र ने कुछ ऐसा रूप भरा कि वहाँ की धरती ऊपर उठती चली गई और हिमालय को जन्म देकर ही रुकी। महाकवि कालिदास का उल्लेख करते हुए नीरद ने लिखा था: दोनों छोर सागर मे डुबोए हिमालय पृथ्वी नापनेवाले मापदंड के सदृश स्थित है। इसके इसी प्राचीन महिमामय रूप को लक्ष्य करके ही तो इसे देवात्मा कहा गया था। गोपीनाथ ने सोचा, अब मजा तो तब है कि हम मनुष्य भी देवात्मा बनें, और हो सके तो देश-प्रेम को मापनेवाले मापदंड बनकर दिखाएँ। उसकी कल्पना मे नीरद द्वारा अंकित मानसरोवर का चित्र उभरा। कैलास का रजत शिखर किस प्रकार मानसरोवर के नील और पीत कमलों से सजे दृश्यपट पर प्रतिबिंबित होता था, यह पढ़ते-पढ़ते उसके जी में आया

था, एक बार लंबी छुट्टी लेकर तिब्बत की यात्रा की जाए। नीरद से पूछ-पूछकर उसने सब मालूम कर रखा था कि कलिपौंग की ओर से तिब्बत कितने दिन में पहुँचा जा सकता है, और रास्ते के लिए क्या-क्या सामान साथ रखना होगा। मानो ब्रह्मपुत्र कह रहा था—हिमालय न होता तो उत्तर की ओर से आनेवाली बर्फ़ानी आँधी भी कब रुक पाती; हिमालय न होता तो इस देश मे मानसून हवाएँ भी सागर से उठकर कैसे उससे टकराती, कैसे साल-के-साल नियमित वर्षा ऋतु का कार्यक्रम चल सकता? क्या मजाल कभी नागा हो जाए; मानसून हवाएँ सीधी सागर से उठकर ठीक ऋतु मे हिमालय से टकराती है, और मूसलाधार वर्षा आरंभ हो जाती है। गोपीनाथ सोचने लगा—यह कहना तो गलत है कि प्रकृति एक अंधी शक्ति है। जब प्रकृति के नियम इतने सच्चे और खरे है, तो आदमी भी सच्चा और खरा क्यों न बने? असम देश की यह माटी इसी ब्रह्मपुत्र की देन है। यह पठार बनने मे लाखों वर्ष लगे होगे। अब भी ब्रह्मपुत्र अपनी बाढ के साथ बहाकर लाई हुई माटी से इस पठार को उपजाऊ बनाए रखने का दायित्व बराबर निभा रहा है। फिर आदमी का क्या कोई दायित्व नहीं है? उसे लगा कि ब्रह्मपुत्र कह रहा है—मैंने अपना मार्ग स्वयं चुना, विशालकाय चट्टानो को फलाँगता, उच्च शिखर प्रपातो की सृष्टि करता, प्रत्येक विघ्न-बाधा को तिनके के समान फूँक मारकर उड़ाता, मैं कहाँ-से-कहाँ आ पहुँचा; और अभी तो रास्ता बहुत लंबा है! ···उसे यह भी याद था कि नीरद ने अपनी पुस्तक मे ब्रह्मपुत्र और पद्मा के संगम का चित्र प्रस्तुत करते हुए किसी अन्य लेखक के हवाले से लिखा था : जिस प्रकार विजयी सेना खडी-खड़ी बिखर जाती है और विजय से विभोर सैनिक इधर-उधर घूमते है, गोयालदो के समीप जहाँ ब्रह्मपुत्र और पद्मा का सगम है, अनेक नदियाँ अनेक मुख बनाकर सागर मे गिरती है।·· तो क्या आदमी सारी आयु फ़िरंगी की गुलामी ही करता रहेगा? मै हर्गिज़ देवकांत को पुलिस सुपरिटेडेंट के हवाले नही करूँगा।···

सारी रात रतजगे मे बीती। सवेरे-सवेरे गोपीनाथ थाने मे पहुँचा, जहाँ अतुल, नीरद, राखाल और अभिराम फूकन उससे आकर मिले। नीरद ने फिर यह सुझाव रखा, देवकात दोबारा माझुली चला जाए।

"आप लोग निश्चित होकर जाएँ। कुछ नही होगा। डरने का कोई कारण नही।" गोपीनाथ ने निश्चयपूर्वक कहा।

× ⊠ ⊠

यथापूर्व आज हाट-बाजार लगा। दिन-भर आराम से गुजर गया। हथियारबंद सिपाही हाट-बाज़ार में पहरा दे रहे थे। संकट की पूर्वछाया-सी नजर आ रही थी। जहाँ देवकांत को छिपाया गया था, वह स्थान धनसिह की दुकान के पास ही था। गोपीनाथ ने देवकांत की सुरक्षा के लिए पूरा प्रबंध कर दिया था। 'गुरुजी' के वेष

मे होते हुए भी देवकांत पूरी तरह हथियारबंद था।

अतुल ने धनसिंह को पुकारकर कहा, "यह कैसा शोर है, दादा?"

लोग भाग-भागकर इधर को आने लगे।

"लगता है, मिलिट्री आ पहुँची।" अतुल ने घबराकर कहा।

माझुली से ही नहीं, आस-पास के थानो से भी कुछ सिपाही भागकर यहाँ आ गए थे सवेरे-सवेरे! रत्न ने कहा, "गोपीनाथ होशियार आदमी है। यह रण उसी के हाथ रहेगा।"

धनसिंह ने कहा, "शायद हमारा अंत आ गया।"

"गोपीनाथ ने मोरचा बना रखा है।" रत्न बोला, "डरते क्यों हो?"

गोलियाँ चलने की आवाजे आने लगी। 'गुरुजी' बाहर आ गए।

बाहर से आए हुए लोग नाव-घाट की ओर भाग रहे थे। गोलियाँ चलने की आवाजे समीप आती गईं।

'गुरुजी' बोले, "हमारे लिए तो धनसिंह की दुकान ही मोरचा बनेगी।"

"जो इच्छा, 'गुरुजी'!"

गोलियो के धमाके कानों के पर्दे हिला रहे थे। फिर किसी ने आकर कहा "गोपीनाथ मारा गया!"

'गुरुजी' ने पिस्तौल मे कारतूस भरते हुए कहा, "वह वीरगति को प्राप्त हुआ। हम पीछे रह गए!"

बहत्तर

एक साथी ने दूसरे साथी को अपनी पीठ पर उठा रखा था। नीचेवाले की दाई भुजा में गोली लगी थी; भुजा को कसकर बाँध लिया था। ऊपरवाले की दोनो टाँगों मे गोलियाँ लगी थी। नीचेवाले की भुजा से उतना रक्त नहीं निकला था, जितना ऊपरवाले की टाँगों से।

मौसम बहुत ख़राब था। वर्षा हो रही थी। फिर भी बार-बार फिसलता, गिरता-पड़ता, नीचेवाला साथी ऊपरवाले साथी को लिए चला जा रहा था। यह रणभूमि से पीठ दिखाकर भागनेवाली बात न थी; जीवन को बचाकर रखने का प्रयत्न था। नीचेवाले की साँस चढ़ने लगती, तो वह रुक जाता। ऊपरवाले को कोई होश न था। पीछे से गोलियाँ चलने की आवाजे आ रही थीं।

उन्हें नाव-घाट तक पहुँचना था। एक स्थान पर रुककर नीचेवाले ने ऊपर-वाले को नीचे लिटा दिया। ऊपरवाले ने आँखें न खोली। सीने पर हाथ रखकर

देखा। मुख पर हाथ फेरा। नीचेवाला फिर से उसे उठाकर चलने लगा। साथी को बचा सका, तो मैं अपना सौभाग्य मानूंगा !—उसने मन-ही-मन कहा।

ऊपरवाले को होश आ रहा था। "मैं कहाँ हूँ ?" उसकी आवाज़ आई।

"चुप रहो।" नीचेवाले ने कहा, "चुप रहना ही अच्छा है। बोलने से शक्ति घटती है।"

वर्षा उन्हें निरंतर भिगो रही थी। नीचेवाले को ऊपरवाले पर क्रोध आ रहा था—देवकात कैसे गोपीनाथ की बातों में आ गया ? स्वयं भी गोपीनाथ ने जान से हाथ धोए ! जो काम सारा दिसाँगमुख मिलकर ही कर सकता था, वह अकेला गोपीनाथ और वह भी थोड़ी-सी बंदूकों से कैसे कर सकता था ?···

रास्ते में कई जगह घुटनों तक पानी में से गुज़रना पड़ा। अतुल ने सोच रखा था, देवकात को धर्मानंदी की झोंपड़ी में पहुँचाकर ही दम लेगा।

धर्मानंदी झोंपड़ी में न था। वहाँ आरती ही मिली। देवकांत को घायल देखकर वह घबरा गई। उसने सँभलकर तुरंत देवकांत के कपड़े बदलवाए। फिर बोली, "अतुल, तुम भी बापू के वस्त्र उठाकर पहन सकते हो।"

लालटेन के प्रकाश में देवकात के मुख पर मुस्कान दौड़ गई। खिड़की बद कर दी गई थी।

अतुल बहुत थक गया था। उसकी आँख लग गई।

आरती देवकात पर झुक गई।

देवकांत की तबीयत अच्छी न थी, वह ठीक से बोल नहीं सकता था।

आरती समझ गई कि देवकांत का बचना तो कठिन है। फिर भी उसने आग जलाई; चाय के लिए पानी रखा।

"मुझे ब्रह्मपुत्र को···" कहते-कहते देवकांत रुक गया।

आरती दौडकर आई। पर देवकांत केवल अपना वाक्य ही पूरा कर पाया, "सौंप आना !"

अतुल खर्राटे भर रहा था। बाहर से वर्षा की आवाज़ आ रही थी, जिसमें ब्रह्मपुत्र की आवाज़ दब गई थी।

देवकांत में बोलने की शक्ति न थी। आरती ने मुश्किल से चाय की दो-चार बूँदें उसके मुँह मे टपकाईं, और वह उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, "हम इकट्ठे मछलियाँ पकड़ने जाया करेंगे !"

देवकांत के होंठों पर अंतिम मुस्कान उभरी। बाहर बादल ज़ोर से गरजे, बिजली कड़की। आरती सहम गई।

आरती चाय लिए खड़ी थी। उसने देवकांत के सीने पर सिर रख दिया। उसके मुँह से चीख निकल गई।

अतुल उठ बैठा। उसने देवकांत का हाथ देखा; नब्ज़ बंद थी।

आरती ने दोबारा चीख मारी।

देवकांत की आँखें बंद थी। आरती ने मन-ही-मन कहा, "पंछी उड़ गया!" देवकांत की अंतिम इच्छा का उसे ध्यान था।

अतुल भी स्त्रियों के समान रोने लगा।

आरती ने सँभलकर कहा, "मैं देवकात की अंतिम इच्छा अवश्य पूरी करूँगी।"

वर्षा बंद हो चुकी थी। रात आधी से ज्यादा बीत गई थी। आरती बोली, "हम देवकांत को नीचे ले चलें।"

अतुल भूल गया कि उसकी भुजा में गोली लग चुकी है। उसने आरती के साथ मिलकर देवकात को नीचे ले जाकर नाव मे डाल दिया।

"मैं कमलिया सापरी तक जाऊँगी।" आरती ने हाथ मे चप्पू लेते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र को सौपकर आ जाऊँगी। तुम यही रहना।"

भुजा पर गोली न लगी होती, तो अतुल ने नावरिया की सेवाएँ अर्पित की होती।

× × ×

अतुल खिड़की मे खड़ा सोच रहा था, ब्रह्मपुत्र जानता है चप्पू कितना गहरा जाता है, तो यह भी जानता होगा दिसाँगमुख पर क्या बीती।

धर्मानंदी झोपड़ी के कोने मे भारी-भरकम जाल पर धरना दिए बैठा था। उसे यहाँ आए आध घंटा हुआ होगा। अतुल ने सिसक-सिसककर उसे बता दिया था, देवकांत पर क्या बीती; यह भी बता दिया था, आरती उसे ब्रह्मपुत्र को सौपने गई है।

नीचे से राखाल ने आवाज़ दी। उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह ऊपर आ गया। उसके साथ नीरद भी था।

अतुल ने सुबक-सुबककर रोते हुए नीरद और राखाल को स्थिति से परिचित किया।

राखाल बोला, "देवकांत उन लोगो में सबसे आगे था जो परीक्षा की घड़ी को पास ला रहे थे। उन अभागो का क्या दोष था, जो हाट-बाज़ार करने आए और सहसा मृत्यु के फंदे मे फँस गए।"

नीरद ने आह भरकर कहा, "उस अंधे सूरदास की मृत्यु तो सारे अत्याचार पर भारी है। मुझसे उसका चेहरा नही देखा गया। उसकी आँखें खुली थी, मानो मरने के बाद उसे नज़र आने लग गया हो।"

राखाल ने अतुल की भुजा पकड़कर देखी, "गोली बीच में तो नही रह गई?"

"नही, काका!" अतुल ने रोते-रोते कहा।

नीरद बोला, "गाँव के निर्दोष लोग मारे गए, मानो बारात से भरी नाव

ब्रह्मपुत्र में डूब जाए।"

राखाल के बुलाने पर भी धर्मानंदी कुछ न बोला, न वह अपनी जगह से उठा। राखाल बोला, "यह तो कुछ भी नही हुआ। अभी तो कई तूफ़ान आएँगे। यह मैं कह रहा हूँ, जिसने फ़िरंगी के नीचे काम किया है।"

अतुल देर तक चुप खड़ा रहा। फिर उसके मुँह से यह बोल निकला, "तुम कहाँ थे नीरद?"

"मै घर पर था। पहले ख़बर मिली, मिलिट्री आ गई। फिर ख़बर मिली, गोपीनाथ मारा गया। फिर ख़बर मिली, पुलिस मुकाबला कर रही है। फिर ख़बर मिली, मिलिट्री हाट-बाज़ार को भून रही है। लिली के रोकते-रोकते मै बाहर निकल आया। रास्ते मे मुझे देवकात की माँ मिली। वह देवकात को ढूँढ़ रही थी, मैंने उसे समझा-बुझाकर वापस भेजा और वचन दिया, मै देवकात को अवश्य ले आऊँगा।"

नीरद भी आँसू न थाम सका, रोते-रोते बोला, "देवकात ने हमे यह अवसर भी न दिया कि हम उसके अंतिम दर्शन ही कर सके। अब मै माँ को यह ख़बर कैसे सुनाऊँगा?"

राखाल भी रो रहा था। अब कोई किसी को ढाढस बँधानेवाला न रहा। नीरद ने आँसू पोंछकर कहा, "अभी तो तुम अतुल को समझा रहे थे, काका! अब तुम भी रो रहे हो।"

जो कुछ हुआ, बहुत ताज़ा था। राखाल ने धर्मानंदी का कंधा सहलाया। उसे तो जैसे काठ मार गया था।

नीरद ने पूछा, "तुम कहाँ से आ रहे थे, काका? मैने कल्याण भगत और नीलमणि से तुम्हारा पता चलाना चाहा, उन्हे कुछ मालूम न था।"

राखाल बोला, "मैं भी धनसिंह की दुकान मे था, जहाँ देवकात ने मोरचा बनाया था।"

"तब तो तुमने सब देखा होगा, देवकात कैसे घायल हुआ?"

"यह तो मैने नही देखा। वह अंधा सूरदास निर्दयता से न मारा गया होता, तो शायद देवकात पर भी आँच न आती। सूरदास के बोल ने मरवाया। सडक पर खड़ा वह रट लगा रहा था—मै तो अंधा हूँ, पर जिनकी आँखे है उन्हें भी फिरगी के राज मे न्याय नज़र नही आता। एक बार तो धनसिंह अपनी जान जोखो में डालकर उसे दरवाज़े तक खीच लाया। हाथ छुड़ाकर वह फिर चला गया। अब दरवाज़ा बंद था। अतुल भी तो वही था। हम दरवाज़े की दरारो मे से बाहर का दृश्य देख रहे थे।"

अतुल खिड़की के पास से हटकर राखाल के पास आ गया; मुँह से कुछ न बोला।

राखाल कहता चला गया, "एक गोरे ने वहाँ आकर बक-बक की। फिर उस गोरे ने सूरदास के गोली मार दी। उसी समय भीतर से गोली चलाकर देवकांत ने उस गोरे को वही ठंडा कर दिया।"

बीच-बीच में बादल गरजने लगते; तूफ़ान सिर पर खड़ा था।

अतुल ने सँभलकर कहा, "कल धनसिंह की दुकान पर देवकांत ने कहा था, न अकेली अहिंसा आजादी दिला सकती है, न केवल हिंसा ही। और उसने कहा था, आगे जाकर दोनो रास्ते मिल जाते है।"

"अभी तो हमारी लडाई चलेगी। तुम तैयार रहो। विजय तो उसी दिन हो गई समझो, जिस दिन गुलाम ने आज़ादी के लिए पहला कदम उठा लिया।" राखाल बहुत गंभीर नजर आता था।

नीरद ने धर्मानंदी की पीठ थपथपाकर कहा, "आरती अब आती ही होगी!"

अतुल ने अपनी ही बात छेड़ दी, "कल जब उस गोरे के मरने के बाद देवकात धनसिंह की दुकान का दरवाजा खोलकर बाहर निकलने लगा, तो मैं भी उसके साथ बाहर निकल गया। तुम तो देख रहे थे न, काका! हम जानते थे, मौत के मुँह में जा रहे है। दुकानों के पीछे से होते हुए हम हाट-बाज़ारवाले नुक्कड़ पर पहुँचे, जहाँ गोपीनाथ के सिपाही मिलिट्री से लोहा ले रहे थे। वहाँ देवकांत भी एक सिपाही की बंदूक लेकर दो हाथ दिखाने लगा; पिस्तौल उसकी जेब में ही रहा।"

नीरद ने कहा, "और तुम जमीन पर लेट गए होगे; मैं होता तो यही करता।"

"एक-एक करके देवकांत के पाँच गोलियाँ लगी। वह बेहोश हो गया। मैने अपना कर्तव्य पहचाना। मै उसे यहाँ तक लाया।" वह फिर सुबक-सुबककर रोने लगा।

धर्मानंदी पागल के समान अपना सिर खिड़की से टकरा रहा था; मानो उसकी एक आँख के आँसू आरती के लिए है, दूसरी के देवकांत के लिए।

तिहत्तर

देवकांत का बलिदान हुए आठ वर्ष हो गए। छः वर्ष बहुत होते हैं। इन वर्षों की एक-एक घटना अतुल को याद है। अब तो अतुल दिसाँगमुख का गाँव-बूढ़ा है।

उसे दिसाँगमुख का गाँव-बूढ़ा बने तीन वर्ष बीत गए। काल-चक्र तो रुकता नही; गुलामी हो, चाहे आजादी।

आज भी दिसाँगमुख यथापूर्व नींद से जागा। वैसे ही मुरगों ने बाँग दी; वैसे ही पक्षियों का कलरव सुनाई दिया। अतुल ने उठकर फ़ैसला किया, वह ब्रह्मपुत्र

पर नहाकर आएगा। और अब वह ब्रह्मपुत्र में नहा रहा है।

स्वतंत्रता की तीसरी वर्षगाँठ का दिन है। आज के दिन ही तीन वर्ष पूर्व दिसाँगमुख के कधो से फ़िरगी का जुआ उतर गया था। स्वतंत्रता के पश्चात् ही तो बूढ़े नीलमणि की इच्छा पूर्ण हुई, उसका बापू गाँव-बूढ़ा था, तो अब उसका बेटा भी गाँव-बूढ़ा बने। यह सोचकर अतुल ने ब्रह्मपुत्र मे डुबकी लगाई।

गत वर्ष भी आज के दिन सवेरे-सवेरे अतुल ब्रह्मपुत्र में नहाने आया था। तीन वर्ष से यह दिन खुशी का दिन है। अतुल ने एक और डुबकी लगाई; फिर एक और। आज दिसाँगमुख के लोग इकट्ठे होकर स्वतंत्र भारत का तिरंगा फहराएँगे। झडे मे तीन रंग है। तीन वर्ष से ही स्वतंत्रता आई है।

"प्रसन्न चित्त रहो, ब्रह्मपुत्र देवता !" अतुल ने मन-ही-मन कहा, "तुमने हमें उन दिनो देखा, जब हम गुलाम थे; तुम हमे आज भी देख रहे हो, जब हम आजाद है। इस शुभ अवसर पर तो दिसाँगमुख ऊँघने से रहा।"

नहाते-नहाते उसे देवकात की याद आ रही है। आज तो देवकात को भी यहाँ होना चाहिए था। आजादी के परवाने इसी प्रकार आते है; अपना काम करके चले जाते है। उसे गोपीनाथ दारोगा की याद भी आ रही है, जो दिसाँगमुख के मोरचे पर मारा गया था। गोपीनाथ के जो सिपाही बचे रह गए थे, उन्हें गिरफ्तार करके न जाने कहाँ भेज दिया गया था, मानो वे तिनकों के समान ब्रह्मपुत्र की बाढ़ मे बह गए हो। मिलिट्रीवालो को विश्वास ही नही होता था कि देवकात मारा गया; उनके सामने यह बात न आ पाई कि मैं ही घायल देवकांत को पीठ पर उठाकर आरती के यहाँ नाव-घाट पर ले गया था। आरती के सामने देवकात ने प्राण छोड़े। प्राण छोड़ने से पहले देवकांत ने यह इच्छा प्रकट की थी कि उसे वह ब्रह्मपुत्र की गोद मे सौप आए—कमलिया सापरी के पास। आरती ने वैसा ही किया। इस घटना को आठ वर्ष हो गए; और आजादी आए तीन वर्ष हो गए। तीन वर्ष कम नही होते। ब्रह्मपुत्र मे बहकर आती लकड़ी पर सरकार को उसी तरह टैक्स देना पड़ता है। कभी सुनते है, यह टैक्स उठ जाएगा। कभी सुनते है, बिलकुल उठना तो सभव नही।···

पानी से बाहर आकर वह अपना शरीर पोंछने लगा। इतने में राखाल आ गया।

"धर्मानंदी की तरफ़ चला गया था।" राखाल ने ब्रह्मपुत्र में उतरते हुए कहा, "कहकर आ रहा हूँ, वह सभा मे अवश्य आए। आरती की दशा मुझसे नही देखी जाती। उसका दिमाग़ हिल गया। अब उसका दिमाग़ कभी ठीक नही हो सकता।"

"ऐसा ही होता है, काका !" अतुल ने ज्ञान बघारा, "जिसे हम पागल कहते हैं, वह हमें पागल कह सकता है।"

× × ×

ठीक समय पर वे सभा मे पहुँचे। नीरद ने झंडा फहराने के पश्चात् छोटा-सा भाषण दिया, और जैसीकि अतुल और राखाल को आशा थी, उसने अपनी पुस्तक की चर्चा करने का अवसर हाथ से नही जाने दिया :

"मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ, इस समय मैं अपनी पुस्तक के अंतिम खंड के अंतिम अध्याय लिख रहा हूँ। जब ये अंतिम अध्याय भी समाप्त हो जाएँगे, तो पूरी पुस्तक एक मोटी जिल्द में छापी जाएगी। पाठको को यही लगेगा कि यह हमारा दिसाँगमुख भी ब्रह्मपुत्र का ही एक रूप है।"

इस पर लोगो ने तालियाँ बजाईं।

नीरद कहता चला गया :

"हमारे राखाल काका बात-बात में यही कहा करते है, नार्मन साहब यह कहा करते थे और नार्मन साहब वह कहा करते थे। इससे पता चलता है नार्मन साहब से राखाल काका ने बहुत-सी बातें सीखी। फ़िरगी ने भले ही हमे गुलाम बनाया, ब्रह्मपुत्र के समान ही उसने भी गला काटा, पर कोई यह न कहे कि फ़िरंगी की गुलामी से हमने कुछ नही सीखा। हमने बहुत-कुछ सीखा।"

हडसन साहब और लिली ने एक स्वर होकर कहा, "हियर, हियर !"

अब लोगों की ऑखो मे हडसन साहब के लिए घृणा न थी। उन्हे याद था, जब गाधीजी की भस्म दिसाँग नदी और ब्रह्मपुत्र के संगम मे डाली गई थी—आज से तीन वर्ष पूर्व, तो उस अवसर पर हडसन साहब ने गांधीजी का बहुत गुणगान किया था। और लिली के सेवा-भाव पर तो लोग जी-जान से मुग्ध थे।

नीरद कहता चला गया :

"हम सोचते रहे, दिसॉगमुख दो ब्रह्मपुत्रो के बीच घिरा हुआ है। एक तो यह हमारा ब्रह्मपुत्र, जो बाढ़ के दिनो मे एक तरफ से माटी बहाकर ले जाता है तो दूसरी तरफ नई माटी बनाता भी है। असम देश की यह विशाल घाटी और विशेष रूप से हमारा यह पठार इसी की देन है। हॉ, तो हम सोचते रहे कि हमारे दूसरी तरफ फ़िरंगी की शक्ति का ब्रह्मपुत्र बह रहा है और वह हमारी आजादी की माटी काट रहा है। लेकिन राखाल काका को देखकर मुझे विचार आया, यह कहना तो असत्य है कि फिरंगी केवल माटी काटता रहा है और उसने नई माटी नही बनाई। यह हमारे राखाल काका, जो नार्मन साहब की बातो से इतने प्रभावित हुए, जितने शायद हाथियो से भी प्रभावित नहीं हुए, फ़िरंगी की बनाई नई माटी के प्रतीक है।"

इस पर सारी सभा एक बार फिर तालियो से गूँज उठी।

सभा समाप्त हुई, तो लोग अपने-अपने घर चले गए।

× × ×

धनसिह की दुकान पर मित्र-मडली जमकर बैठ गई। इधर-उधर की बातें होने लगी। आजादी की बातें, फ़सल की बाते, ब्रह्मपत्र की बातें। राखाल ने 'नार्मन

साहब कहा करते थे कहकर' कुछ कहना आरंभ किया, तो सबने उसकी खिल्ली उड़ाई।

गोष्ठी ऐसी जमी कि साँझ के सात बज गए।

इस बीच में कई ग्राहक आए और चाय पीकर चले गए। धर्नसिंह की दुकान पर ड्राई बैंट्रीवाला रेडियो बज रहा था। असमिया प्रोग्राम आ रहा था। पंद्रह अगस्त के उपलक्ष्य में असमिया राष्ट्र-गान गाया जा रहा था, गायिका कोकिल-कंठी प्रतीत हो रही थी।

ब्रह्मपुत्र की ओर से तेज हवा आ रही थी, जो धर्नसिंह की दुकान के पिछवाड़े के केले और सुपारी के पेडों को झकझोर रही थी।

राखाल की आँखो मे साँझ की उदासी झलक रही थी। उसने गंभीर होकर कहना आरंभ किया :

"मेरी आयु के तीस वर्ष हाथियो के बीच गुजरे। समय ने मुझे हाथियो से इतनी दूर यहाँ ला पटका। पर सच पूछो तो मेरी कल्पना मे सदा एक घना जंगल विराजमान रहता है और उसमे बड़े-बड़े हाथी घूमते है। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे, जिसकी अधिक आयु जंगल में बीती, तुम उसकी कल्पना से जंगल को बिलकुल नही छीन सकते।" यह कहते-कहते वह रुक गया।

शाम के झुटपुटे मे ब्रह्मपुत्र की तेज हवा के रहते हुए भी भारी-भरकम थकान-सी फैल गई। सहसा रेडियो चलते-चलते बद हो गया। सब चुप हो गए, सब सहम गए।

धरती डोल रही है!—उन्होने एक-दूसरे को संकेत द्वारा समझाया। अगले ही क्षण वे बचाव के विचार में सड़क पर आ गए।

देखते-ही-देखते बहुत-सी दुकानें काठ के खिलौनो के समान गिर गई। धर्नसिंह और रत्न की दुकाने भी मलवे का ढेर मालूम होने लगी।

धरती डोल रही थी। बाजार के इस नुक्कड से थोड़ा हटकर सड़क फट गई। नीचे से रेत का ढेर ऊपर आ गया। एक जगह से पानी का फव्वारा फूट पड़ा। कुछ ही क्षणो में क्या-से-क्या हो गया। वायु भी मानो जोर-जोर से सिसकियाँ भर रही थी, मानो यह भूकंप धरती का पेट चीरने का निर्णय कर चुका हो। आकाश पर बिजली कड़की। अंधकार और भी सघन हो गया।

धरती डोल रही थी।

चौहत्तर

जहाँ कल तक दिसाँगमुख आबाद था, वहाँ अब जल-ही-जल है। प्यारे-प्यारे हाथों से बनाए प्यारे-प्यारे घर, प्यारे-प्यारे हाथो से लगाए प्यारे-प्यारे बागीचे, प्यारे-प्यारे हाथों से तैयार किए प्यारे-प्यारे पोखर अब कही भी दिखाई नही देते। चतुर्दिक् जल-ही-जल है, जल-ही-जल। जैसे यहाँ प्रलय आ गई हो। चतुर्दिक् चीख-पुकार है और ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिघाड रहा है।

न जाने कितने हाथियो के शव ब्रह्मपुत्र मे बहते हुए निकल गए। राखाल काका को सबसे अधिक इन हाथियो के मरने का दुख सता रहा है। अतुल को बाबा के हाथो लगाए नारियल के पेड़ उखड़ जाने का दुख है। धर्मानंदी को यह चिंता है कि ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ अपने आप कैसे मर गई। धरती ने यह कैसा विष उगल दिया कि मछलियो के लिए भी आफ़त आ गई। नीरद किसी हद तक इस विपत्ति से बच गया होता, क्योकि हस्पताल थोडा ऊँचे स्थान पर होने के कारण जल की मार से बाहर था। पर बुरा हो उद्दड और हठी 'हाथीसूँड' का, जिसकी लपेट मे आकर हस्पताल की छतें उड़ गई, और हस्पताल के अहाते के पेड़ उखड़कर धराशायी हो गए। स्वयं नीरद 'हाथीसूँड' की लपेट मे आकर उड गया, और काफ़ी दूर जाकर गिरा; अब हस्पताल मे उसका इलाज हो रहा है। दिसाँग-मुख के निवासी चिरकाल से 'हाथीसूँड' की भयकरता से परिचित है। अतुल सोच रहा है, चक्कर खाते स्तंभ के समान घूमते इस मेघ को भी क्या इसी समय आक्रमण की सूझी ?

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिघाड़ रहा है।

जो कुछ बचाया जा सकता था, बचा लिया गया। रुपया-पैसा, रसोई का सामान, घर का सामान, पशु, धन, बाल-बच्चे, जो कुछ भी जल मे डूबने से बचाया जा सकता था, उठाकर जल की मार से बहुत पीछे ले आया जा चुका है। उसी घडी, उसी रात, उन्हे यह कदम उठाना पडा। इस बीच मे 'हाथीसूँड' सात बार धावा बोल चुका है। दूर से इसे देखकर ही लोग इधर-उधर भाग जाते है। कुछ लोगों का सामान सौ-सौ गज दूर जाकर गिरा। कुछ लोग उड़कर दूर जा गिरे, और उनकी कमर टूट गई। यह महासंकट कब समाप्त होगा ?

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिघाड रहा है।

जो लोग कहा करते थे कि ईर्ष्या का जन्म आदमी से बहुत पहले ही हो गया था, और वे लोग, जो गप-शप में मगन रहते हुए भी जीवन-मंत्र के रूप में कह उठते थे कि गप को माझुली पहुँचने के लिए नाव नही चाहिए—एक ही रट लगा रहे है—बड़ डिकडारी ! बड़ डिकडारी !

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिंघाड़ रहा है।

जो यह मानकर चलते थे कि अंडे तो मुरगी को उपदेश देने से रहे; जो यह कहा करते थे कि ब्रह्मपुत्र में नाव खे सकनेवाला नावरिया दिसाँग नदी से क्यों डरने लगा; जो कहा करते थे कि जैसे आने की शक्ति पैसे मे है और रुपए की आने में, वैसे ही नारी की शक्ति प्रेम मे है; जो कहा करते थे, हानि से डरो मत, फिर लाभ भी होगा; जो कहा करते थे कि दिन के प्रकाश की अपेक्षा रात का अंधकार अधिक विश्वसनीय क्यो हो; अथवा जो बार-बार पूछा करते थे, भय की आँखें इतनी बड़ी-बड़ी क्यो होती है?—सब एक ही रट लगा रहे है : बड़ डिकडारी!

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिंघाड़ रहा है।

कल्याण भगत को हर किसी के कंधे से पाप की भारी गठरी लटकती दिखाई देती है, भले ही उनका जीवन इस समय सूखे पेड की टूटी डाल के समान है। वह सोच रहे हैं—धरती हरि की देन है और जब लोग हरि को भूल जाते है तो भूकंप आता है, तूफ़ान आता है। हस्पताल के पलंग पर पड़ा नीरद सोच रहा है—मनुष्य प्रत्येक युग मे मनुष्य पर अत्याचार करता दिखाई देता है; कल तक हम फ़िरंगी के विरुद्ध लड रहे थे, पर हम तो आज भी लड़ रहे है; शायद प्रकृति ने मनुष्य पर उतने अत्याचार नही किए, जितने मनुष्य ने मनुष्य पर! क्योकि ये ख़बरें नीरद तक पहुँचती रहती है कि इस संकट की घड़ी मे भी अमुक व्यक्ति ने अमुक व्यक्ति के माल पर हाथ साफ कर डाला। अतुल सोच रहा है—एक ओर से माटी काटता है ब्रह्मपुत्र, और दूसरी ओर नई माटी बनाता है; ब्रह्मपुत्र तो मरज़ी का मालिक है; वह न दयालु है, न निर्दयी; शायद यही उसका स्वभाव है, बहाव का ही एक रंग है। सत्तर वर्ष पूर्व दिसाँगमुख को पीछे हटना पडा था, अब फिर पीछे हटना पड़ा। कब तक ऐसा होता रहेगा?

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिंघाड़ रहा है।

मनुष्य की आवाज़ को बीच से ही समाप्त करना तो सहज नही। सब सोच रहे है, दिसाँगमुख को फिर से बसाने का सकल्प तो पूरा करना होगा। फिर से घर बनाए जाएँगे, पहले से भी प्यारे-प्यारे। वैसे ही बागीचे, वैसे ही पोखर। केले के पेड़ फिर से लहराएँगे अपने छत्र। फिर से ऊँचे उठते जाएँगे सुपारी के वृक्ष; फिर से उन पर पान की लताएँ चढ़ेगी। फिर से बत्तखे अंडे देगी। रेशम के कीड़े फिर से रेशम कातेंगे; करघों पर अंडी और मूगा के थान बुने जाएँगे। फिर से विवाह होंगे; बेटे जन्म लेंगे; बेटियाँ आएँगी माँ की गोद मे। फिर से पठार मे धान होगा। बिहू नाचा जाएगा; ढोल बजेंगे, बाँसुरियाँ गूँजेंगी। फिर से आकाश पर राजहंस उड़ेंगे, सारस उड़ेंगे। कंधे-से-कंधा मिलाकर अब के पत्थरों और शहतीरो का तटबंध तैयार किया जाएगा, जिससे ब्रह्मपुत्र को सिधाया जा सकेगा। मनुष्य सब कर दिखाएगा। पत्थरों और शहतीरों के तटबंध की जड़ें गहरी ले जाएँगे,

शेषनाग की पीठ तक ! फिर तो बड़े-से-बड़े भूकंप में भी यह तटबंध स्थिर रहेगा। ···सभी नए दिसाँगमुख का सपना देख रहे है।

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिंघाड रहा है।

सड़क के किनारे धनसिंह ने फिर से केतली में पानी भरकर आग रखने का धंधा आरंभ कर दिया। रत्न की कैंची और उस्तरा भी फिर से चलने लगे।

धनसिंह के ड्राई बैट्रीवाले रेडियो पर लोग अपने देश के प्रधानमंत्री का भाषण सुन रहे है :

"···ऐसे अवसरो पर हमें स्वभावत: जीवन के महत्त्व का ध्यान आ जाता है। पृथ्वी-तल के डोलने-भर से, एक धीमी-सी लहर से, पर्वत लेट जाते हैं, नदियों के रास्ते बदल जाते है, घर गिर जाते है और इनसान मर जाते है। जीवन छोटा हो चाहे बडा, सबका अंत एक समान है। पर जब तक वह चलता है, तब तक हमारे हाथ मे है कि हम उसे भला बनाएँ या बुरा, शानदार बनाएँ या तुच्छ और क्षुद्र। बुराई के सामने झुककर या प्रकृति की चुनौती के सामने घुटने टेककर या जो कुछ होता है उसकी उपेक्षा करके या केवल भगवान् से प्रार्थना करके तो इनसान के हाथ कुछ नही लगता। इस देश मे हमें एक-से-एक अलग रूप में चुनौती मिली है। अब यह हमारा काम है कि अपने साहस पर भरोसा और विश्वास करते हुए हम जीवन और सामाजिक मामलो के हर विभाग में चुनौती का उत्तर दे।"

यह आवाज बद हो गई। फिर से ब्रह्मपुत्र की आवाज सुनाई देने लगी, अशात ब्रह्मपुत्र की भयानक आवाज। अब ब्रह्मपुत्र की सातवी लहर का चिह्न नही मिल सकता, जिसके सबध मे प्रसिद्ध है कि वह सदैव सौभाग्यवती होती है। लोग बार-बार यह कहते सुनाई देते है—मेढक को तुम भले ही कान से पकड़ सको, ब्रह्मपुत्र को कान से पकडना सहज नही !

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिंघाड़ रहा है।

× × ×

दिसाँगमुख के नए नाव-घाट और शिवसागर का फ़ासला दो मील कम हो गया। टूटी हुई सडक की मरम्मत की जा चुकी है। शिवसागर और दिसाँगमुख के बीच बस चलने लगी है।

एक मील पीछे हटकर भी दिसाँगमुख की ब्रह्मपुत्र की तरफ़वाली बस्ती पर 'आलीसीगा' नाम ही चिपका रहा। 'आलीसीगा' अर्थात् टूटी हुई सड़क।

नए आलीसीगा मे हाट-बाजार के लिए पहले से कही अधिक सुंदर स्थान रखा गया है। बाजार भी पहले से बढकर है। लोगो ने साहस नही छोडा; ब्रह्मपुत्र को पीठ दिखाकर भागना तो उन्होंने सीखा नही। गाँव के इतिहास का यही अनुरोध है कि लोग अपनी धरती को छोड़कर न जाएँ। गाँव के पंचो ने नई बस्ती के नए 'नाम घर' के सामने पंचायत में बैठकर कहा, "ब्रह्मपुत्र हमें लाख सताए,

फिर भी वह हमारा मित्र है। उसके साथ हमारा पुराना लेन-देन है; हमारा भुगतान होता रहता है।"

अब तो लोग सोचने लगे है; ब्रह्मपुत्र को अपने क्रोध पर पश्चात्ताप हो रहा है। दिसाँगमुख के पंच-परमेश्वर का यही उपदेश है : "माँ लाख गाली दे, बच्चे को तो माँ की देहरी पर धरना देकर बैठ जाना चाहिए।" लोग ब्रह्मपुत्र को माँ भी समझते है और बापू भी; अब तो उन्हें ब्रह्मपुत्र मे कोई अवगुण दिखाई नहीं देता। किसी मे इतना दुःसाहस नही कि ब्रह्मपुत्र को शत्रु कहकर पुकारे। अब तो कल्याण भगत भी लाठी टेककर यही कहते फिरते है, "हरि की यही इच्छा है, हम ब्रह्मपुत्र का किनारा न छोड़ें।"

नीलमणि को अपना घर ब्रह्मपुत्र की धार में चले जाने का भी इतना दुख न था, जितना अब्दुल कादिर के मरने का।

"अब्दुल कादिर के किराए के मकान के सामने धरती फट गई। वह धरती में समा गया। धरती के पट बंद हो गए। सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। अब्दुल कादिर को कौन बाहर निकालता ? अल्लाह ने अपने हाजी के लिए कब्र बना दी। बड डिकडारी ! अब तो वह कब्र भी ब्रह्मपुत्र की धार मे चली गई।" यह कहते-कहते नीलमणि के सामने अपने लँगोटिये यार का चित्र आ जाता है, और उनकी आँखो से आँसू गिरने लगते है।

नए दिसाँगमुख की चहल-पहल और आबादी का सौदर्य देखकर लोग उस भयानक भूकप और बाढ को भूलते जा रहे हैं। असमिया, मीरी और नेपाली का भेद भी अब समाप्त हो गया। तब वे गुलाम थे। सात समुद्र और तेरह नदियों के पार से आए फिरगी ने जिस तरह चाहा, उन्हे लड़ाया। देशभक्ति की छूत से बचा रहे दिसाँगमुख, यही तो फ़िरगी का यत्न रहा। फिर भी दिसाँगमुख अपनी आवाज़ ऊँची करता रहा। यह और बात है कि फ़िरंगी को भी भाड़े के टट्टू मिलते रहे, जो सदा चापलूसी के अवसर ढूँढ़ते रहते थे। वे भूल जाते थे कि गुलामी का धब्बा तो निरतर धोते रहने से ही धुल सकता है। वे भूल जाते थे कि गुलामी से लोगो का सदाचार भी बिगड़ता है। वे भूल जाते थे कि विदेशी हाकिम के हाथ बिककर जन्मभूमि का प्यार-सत्कार भी समाप्त हो जाता है। अब तो देश आज़ाद है, और दिसाँगमुख के कधो से भी गुलामी का जुआ उतर चुका है।

आजादी के बाद लोग समझने लगे, उनके अधिकार-ही-अधिकार होगे, जैसे अब उनका कोई कर्तव्य नही होगा। भला हो भूकंप और बाढ़ का, जिनके कारण दिसाँगमुख को फिर सुधबुध आई।

नए दिसाँगमुख का हृदय और मस्तिष्क भी नया प्रतीत होता है। और अब आलीसीगा बाज़ार मे धर्नासह की दुकान पर 'ब्रह्मपुत्र रेस्तराँ' का बोर्ड लग गया है।

शेषनाग की पीठ तक ! फिर तो बड़े-से-बड़े भूकंप में भी यह तटबंध स्थिर रहेगा। ···सभी नए दिसाँगमुख का सपना देख रहे है।

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिघाड रहा है।

सड़क के किनारे धनसिंह ने फिर से केतली मे पानी भरकर आग रखने का धधा आरंभ कर दिया। रत्न की कैंची और उस्तरा भी फिर से चलने लगे।

धनसिंह के ड्राई बैट्रीवाले रेडियो पर लोग अपने देश के प्रधानमंत्री का भाषण सुन रहे है :

"···ऐसे अवसरो पर हमे स्वभावत: जीवन के महत्त्व का ध्यान आ जाता है। पृथ्वी-तल के डोलने-भर से, एक धीमी-सी लहर से, पर्वत लेट जाते हैं, नदियों के रास्ते बदल जाते है, घर गिर जाते है और इनसान मर जाते है। जीवन छोटा हो चाहे बडा, सबका अंत एक समान है। पर जब तक वह चलता है, तब तक हमारे हाथ मे है कि हम उसे भला बनाएँ या बुरा, शानदार बनाएँ या तुच्छ और क्षुद्र। बुराई के सामने झुककर या प्रकृति की चुनौती के सामने घुटने टेककर या जो कुछ होता है उसकी उपेक्षा करके या केवल भगवान् से प्रार्थना करके तो इनसान के हाथ कुछ नही लगता। इस देश मे हमे एक-से-एक अलग रूप में चुनौती मिली है। अब यह हमारा काम है कि अपने साहस पर भरोसा और विश्वास करते हुए हम जीवन और सामाजिक मामलो के हर विभाग मे चुनौती का उत्तर दें।"

यह आवाज बद हो गई। फिर से ब्रह्मपुत्र की आवाज सुनाई देने लगी, अशात ब्रह्मपुत्र की भयानक आवाज। अब ब्रह्मपुत्र की सातवी लहर का चिह्न नही मिल सकता, जिसके संबध मे प्रसिद्ध है कि वह सदैव सौभाग्यवती होती है। लोग बार-बार यह कहते सुनाई देते है—मेढक को तुम भले ही कान से पकड़ सको, ब्रह्मपुत्र को कान से पकडना सहज नही !

ब्रह्मपुत्र पागल हाथी के समान चिघाड़ रहा है।

× × ×

दिसाँगमुख के नए नाव-घाट और शिवसागर का फासला दो मील कम हो गया। टूटी हुई सडक की मरम्मत की जा चुकी है। शिवसागर और दिसाँगमुख के बीच बस चलने लगी है।

एक मील पीछे हटकर भी दिसाँगमुख की ब्रह्मपुत्र की तरफ़वाली बस्ती पर 'आलीसीगा' नाम ही चिपका रहा। 'आलीसीगा' अर्थात् टूटी हुई सडक।

नए आलीसीगा मे हाट-बाजार के लिए पहले से कही अधिक सुदर स्थान रखा गया है। बाजार भी पहले से बढ़कर है। लोगो ने साहस नही छोड़ा; ब्रह्मपुत्र को पीठ दिखाकर भागना तो उन्होने सीखा नही। गाँव के इतिहास का यही अनुरोध है कि लोग अपनी धरती को छोड़कर न जाएँ। गाँव के पंचों ने नई बस्ती के नए 'नाम घर' के सामने पंचायत में बैठकर कहा, "ब्रह्मपुत्र हमें लाख सताए,

फिर भी वह हमारा मित्र है। उसके साथ हमारा पुराना लेन-देन है; हमारा भुगतान होता रहता है।"

अब तो लोग सोचने लगे है; ब्रह्मपुत्र को अपने क्रोध पर पश्चात्ताप हो रहा है। दिसाँगमुख के पंच-परमेश्वर का यही उपदेश है : "माँ लाख गाली दे, बच्चे को तो माँ की देहरी पर धरना देकर बैठ जाना चाहिए।" लोग ब्रह्मपुत्र को माँ भी समझते है और बापू भी; अब तो उन्हें ब्रह्मपुत्र मे कोई अवगुण दिखाई नही देता। किसी मे इतना दुःसाहस नही कि ब्रह्मपुत्र को शत्रु कहकर पुकारे। अब तो कल्याण भगत भी लाठी टेककर यही कहते फिरते है, "हरि की यही इच्छा है, हम ब्रह्मपुत्र का किनारा न छोड़ें।"

नीलमणि को अपना घर ब्रह्मपुत्र की धार में चले जाने का भी इतना दुख न था, जितना अब्दुल कादिर के मरने का।

"अब्दुल कादिर के किराए के मकान के सामने धरती फट गई। वह धरती मे समा गया। धरती के पट बंद हो गए। सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। अब्दुल कादिर को कौन बाहर निकालता ? अल्लाह ने अपने हाजी के लिए कब्र बना दी। बड डिकडारी ! अब तो वह कब्र भी ब्रह्मपुत्र की धार मे चली गई।" यह कहते-कहते नीलमणि के सामने अपने लँगोटिये यार का चित्र आ जाता है, और उनकी आँखो से आँसू गिरने लगते है।

नए दिसाँगमुख की चहल-पहल और आबादी का सौदर्य देखकर लोग उस भयानक भूकप और बाढ़ को भूलते जा रहे हैं। असमिया, मीरी और नेपाली का भेद भी अब समाप्त हो गया। तब वे गुलाम थे। सात समुद्र और तेरह नदियों के पार से आए फ़िरंगी ने जिस तरह चाहा, उन्हे लड़ाया। देशभक्ति की छूत से बचा रहे दिसाँगमुख, यही तो फ़िरगी का यत्न रहा। फिर भी दिसाँगमुख अपनी आवाज़ ऊँची करता रहा। यह और बात है कि फ़िरंगी को भी भाड़े के टट्टू मिलते रहे, जो सदा चापलूसी के अवसर ढूँढ़ते रहते थे। वे भूल जाते थे कि गुलामी का धब्बा तो निरतर धोते रहने से ही धुल सकता है। वे भूल जाते थे कि गुलामी से लोगो का सदाचार भी बिगड़ता है। वे भूल जाते थे कि विदेशी हाकिम के हाथ बिककर जन्मभूमि का प्यार-सत्कार भी समाप्त हो जाता है। अब तो देश आज़ाद है, और दिसाँगमुख के कंधो से भी गुलामी का जुआ उतर चुका है।

आज़ादी के बाद लोग समझने लगे, उनके अधिकार-ही-अधिकार होगे, जैसे अब उनका कोई कर्तव्य नही होगा। भला हो भूकंप और बाढ़ का, जिनके कारण दिसाँगमुख को फिर सुधबुध आई।

नए दिसाँगमुख का हृदय और मस्तिष्क भी नया प्रतीत होता है। और अब आलीसीगा बाज़ार मे धर्नासह की दुकान पर 'ब्रह्मपुत्र रेस्तराँ' का बोर्ड लग गया है।

पचहत्तर

पहले नीरद उस कमरे की ओर लपका, जहाँ लिली लेटी हुई थी। फिर द्वार पर जाकर रुक गया। देर तक दालान में टहलता रहा। सब उसकी उद्विग्नता भाँप गए और चुप बैठे रहे। उन्हें एकाएक चुप पाकर वह फिर उनके पास आ गया और मौन को समाप्त करते हुए बोला, "ब्रह्मपुत्र जानता है, चप्पू कितना गहरा जाता है और माटी के पुतले के हाथ कितने लंबे हैं।"

राखाल ने दाढ़ी पर हाथ फेरकर कहा, "यह तो बताओ नीरद बाबू कि तुम्हारी पोथी कब समाप्त होगी ?"

"अब तो वह समाप्त हो गई समझो !" अतुल ने मानो फ़सल पकने की खुशी से उछलकर कहा, "पूरे दस वर्ष के पश्चात् ही तो यह दिन आ रहा है।"

धर्मानंदी बोला, "मैं तो उसे मछुवा बनाऊँगा।"

"और यदि कन्या हुई ?" रत्न भी चुप न रह सका।

"कन्या नही होगी।" धर्नसिंह ने गंभीर होकर कहा, "पुत्र होगा, पुत्र। और हम उसे देवकांत बनाएँगे।"

"छोड़ो, छोड़ो !" नीरद ने बात टालनी चाही, "मेरी पुस्तक समाप्त होने में अब अधिक देर नही।" और वह फिर उस कमरे की ओर लपका जहाँ लिली लेटी हुई थी।

जूनतारा ने भीतर से आकर आँखों-ही-आँखों में समझाया कि चिंता की बात नहीं है, और वह फिर भीतर चली गई। नीरद खड़ा रहा।

"जंगल में हथिनी के बच्चा होता है तो हाथी को भी उतनी ही प्रसन्नता होती होगी जितनी मनुष्य को।" राखाल ने कहा, "हमारे नार्मन साहब कहा करते थे, हाथी और मनुष्य का स्वभाव मिलता है।"

"हथिनी के बच्चा होने पर हाथी बधाई देने आते होंगे, काका !" रत्न ने एक हाथ की उँगली दूसरे हाथ की हथेली पर उस्तरे के समान चलाते हुए कहा।

"अकेले हाथियों से ही असम सरकार को साल-के-साल दो लाख रुपए की आमदनी होती है।" राखाल गंभीर हो गया, "धन्य हैं हमारी हथिनियाँ जो बच्चों को जन्म देती थकती नहीं। सारी आयु में हथिनी चार या पाँच बच्चों को जन्म देती है।"

"तुमने ही तो एक बार बताया था काका, कि हथिनी एक साथ दो बच्चों को भी जन्म दे सकती है।" रत्न भी गंभीर हो गया।

"सो तो ठीक है। हथिनी एक साथ दो बच्चों की माँ भी बन सकती है। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे, स्त्री और हथिनी की एक ही जाति समझो।

एक ही आयु तक दोनों माँ का दूध पीती हैं, एक ही आयु में युवती बनती हैं, एक ही आयु में बच्चे को जन्म देती हैं, और दोनो सौ वर्ष की आयु पा सकती हैं। शर्त यह है कि स्वास्थ्य अच्छा रहे।"

"छोड़ो, छोड़ो !" नीरद ने पास आकर कहा, और फिर मानो प्रसंग बदलने के लिए बोला, "नावरिया जानता है, नाव चप्पू से नहीं बुद्धि से चलती है। नाव कितनी ही छोटी क्यों न हो, उसमें बैठने के लिए नावरिया को तो स्थान मिलेगा ही। गोरी का प्रेम और ब्रह्मपुत्र का शांत रूप, दोनों पर ही विश्वास नही किया जा सकता।"

धर्मानंदी की आँखें चमक उठीं, बोला, "मछुवा जानता है, मछली जाल से नही, बुद्धि से पकड़ी जाती है।"

नीलमणि बोला, "यह क्या ज्ञान-गोष्ठी आरंभ कर दी ? हम तो आनंद समाचार की प्रतीक्षा में बैठे हैं।"

"आशा से संसार है।" कल्याण भगत मुसकराए, "यह मत कहो कि हमारे पीछे ब्रह्मपुत्र मे नाव चले न चले। बड़ डिकडारी ! हरि हरि, हे माधव !"

लिली के कमरे से धीमी-धीमी चीखें सुनाई दे रही थीं। कभी-कभी कोई चीख़ बहुत ऊँची उठ जाती। नीरद बाहर दालान में चक्कर लगा रहा था, मानो वह अपनी चिंता को किसी पर प्रकट न करना चाहता हो।

रात आधी से ऊपर जा चुकी थी। कमरे मे लैंप का प्रकाश था।

नीलमणि ने ज्ञान बघारा, "मदिरा के सात घूँट चढ़ा जाने पर ब्रह्मपुत्र की गहराई घुटनों तक रह जाती है।"

लिली की चीखें पहले से ऊँची उठ गई थीं। नीरद द्वार के साथ कान लगाए खड़ा था। नीरद की व्याकुलता भाँपकर सब चुप हो गए। थोड़ी देर बाद लिली की चीखें आनी बंद हो गईं। नीरद उसी प्रकार द्वार के साथ कान लगाए खड़ा रहा।

नीलमणि बोला, "ब्रह्मपुत्र में बाढ़ आती है तो इसका समाचार दूर-दूर तक पहुँचता है।"

"पुत्र-जन्म का समाचार भी तो दूर-दूर तक पहुँच जाता है।" धनसिंह मुसकराया।

अतुल बोला, "मैं उसे किसान बनाऊँगा—अपने विक्रम जैसा।"

इतने में जूनतारा ने भीतर से आकर कहा, "वह तो लेखक बनेगा !" हाथ के संकेत से उसने नीरद को समझाया—चिंता का तो कोई कारण नहीं है, पर इस कार्य में जितना समय लगता है, उतना अवश्य लगेगा।

धनसिंह हाथ नचाकर जूनतारा के समीप चला गया; आँखों-ही-आँखों में पूछने लगा—कितनी देर है ?

"चुप करके बैठो !" वह बोली, "चाँद चढ़ेगा तो हर कोई देखेगा।" और वह

गिलहरी के समान फलाँगती भीतर चली गई।

राखाल बोला, "मै तो उसे हाथियों का महावत बनाऊँगा।"

कल्याण भगत को नीद आ रही थी। नीलमणि ने उन्हें चटाई पर टाँगें सीधी कर लेने की सलाह दी। नीलमणि को भी नीद आ रही थी, पर वह बाहर जाकर आँखों पर पानी के छीटे मार आया था।

"भोर से पहले तो बेटे का जन्म होने से रहा।" धर्मानंदी ने मानो अपने आप से कहा, "ब्रह्मपुत्र मे मछलियाँ पकड़ते समय ब्रह्मपुत्र का जल ही तो पीने को मिलेगा।"

इधर-उधर की बातें चलती रही। कभी बात की तान इस पर टूटती कि बड़ी मछली छोटी मछली को क्यों खा जाती है; कभी चावल का भाव एक-दो आने गिरने या चढ़ने पर सबका ध्यान केंद्रित हो जाता। कभी सरकार के प्रयत्नों की प्रशसा होने लगती। डिब्रूगढ़ में ब्रह्मपुत्र का तट-बंध बनाने का कार्य तेजी से चल रहा था। रेलगाड़ी में बड़े-बड़े पत्थर भर-भरकर वहाँ पहुँचाए जा रहे थे, जैसाकि अभिराम फूकन ने अगले ही दिन खबर-कागज से पढ़कर सुनाया था। और फिर बाते करते-करते सब चुप हो गए।

नीरद द्वार से कान लगाए खडा था।

राखाल बहुत देर तक चुप न रह सका। बोला, "हाथी को बहुत-सी बातों का पता चल जाता है। कोई महावत रात्रि की अशुद्धि के पश्चात् बिना स्नान किए या बिना वस्त्र बदले ही हाथी पर बैठना चाहे, तो समझो उसकी मृत्यु आ गई। ऐसी घटनाएँ हुई है कि हाथी ने महावत को सूँड से उठाकर दूर फेंक दिया अथवा अधिक क्रोध मे आकर पैरो के नीचे कुचल डाला।"

कल्याण भगत बोले, "बड डिकडारी ! हरि हरि, हे माधव !"

"कोई स्त्री हथिनी के बजाय हाथी पर सवार हो जाए तो समझो उसकी मृत्यु आ गई।" राखाल ने अपनी ही हाँकी, "हाथी सब समझता है। जो महावत पाप की भाषा बोलता है, समझो उसकी भी मृत्यु हाथी के पैरो तले कुचले जाने से ही लिखी है।"

"किसी की ऐसी मृत्यु न लिखी हो !" धनसिह ने ठंडी साँस ली।

"कहीं-कही दलदल में ऐसी मछली रहती है, जो हाथी के पैर में घुस जाएँ तो बेचारे की मृत्यु बन जाए।" राखाल ने फिर अपनी ही हाँकी, "हाथी सब समझता है। ऐसे स्थान पर हाथी को जाना भी पड़े, तो वह सूँड उठाकर प्रणाम करता है। और ब्रह्मपुत्र के किनारे आकर भी तो हाथी सात बार सूँड उठाकर प्रणाम करता है।"

"ब्रह्मपुत्र में तो वह मछली नही होती।" धर्मानंदी बोला, "फिर हाथी ब्रह्मपुत्र को क्यों सात बार प्रणाम करता है ?"

"ब्रह्मपुत्र तो वैसे ही महान् है। उसे हाथी प्रणाम करे तो अच्छा है; और मनुष्य प्रणाम करे तो भी अच्छा है।"

लिली के कमरे से फिर चीखें सुनाई देने लगी। सब चुप हो गए। नीरद बराबर लिली के कमरे के द्वार से कान लगाए खड़ा था, मानो अब उसके मुख से एक भी शब्द न निकल सकता हो।

नीलमणि ने कल्याण भगत को जगाकर कहा, "बेटा आ गया!"

भगतजी चौंककर उठे, "बड़ डिकडारी! हरि हरि, हे माधव!"

उसी समय भीतर से बच्चे के रोने की आवाज़ आई। भगतजी दोबारा बोले, "बड़ डिकडारी! हरि हरि हे, माधव!"

सबके चेहरों पर खुशियाँ दौड़ गई। नीरद बंद दरवाजे के साथ कान लगाए खड़ा था।

सब यही सोच रहे थे कि जूनतारा बाहर आकर बताए तो पता चले कि बेटा है या बेटी। सब नीरद को तसल्ली दे रहे थे कि यदि लड़की भी हुई तो चिंता की बात नही! लिली के प्राण बच गए, यही क्या कम है।

राखाल बोला, "बेटा हुआ तो क्या खिलाओगे, नीरद बाबू?"

अतुल ने हाथ नचाकर कहा, "बेटा हुआ तो मधु की कटोरी में सोने की सलाई डुबोकर बच्चे की जिह्वा पर ब्रह्मपुत्र अवश्य लिख देना!"

नीरद के कान बच्चे के रोने की आवाज़ पर लगे थे।

जूनतारा ने आकर कहा, "बेटा आ गया। मैंने पहले ही कह रखा था लिली से, बेटा आ रहा है।"

राखाल ने अपने कुरते की थैली-जैसी जेब से एक नारियल निकालकर जूनतारा के हाथ मे थमा दिया। "यह लो। इसे ब्रह्मपुत्र की भेंट करते हुए हम यही कामना करेंगे कि जैसे मछुवे का बेटा मछुवा बनता है, किसान का बेटा किसान, वैसे ही लेखक का बेटा लेखक बने।"

जूनतारा गिलहरी के समान कभी भीतर चली जाती, कभी इस कमरे में आ जाती। उसकी अठखेलियाँ सभी को पसंद थीं। अतुल को वे दिन स्मरण हो आए जब जूनतारा के पहलौठी का बेटा हुआ था। अब तो विक्रम पंद्रह वर्ष का हो चुका था और जूनतारा एक प्रौढ़ा थी।

सूरज ऊपर उठा तो मानो उसे भी सूचना मिल गई कि दिसांगमुख में एक नए मनुष्य का जन्म हो गया। हस्पताल के अहाते में बत्तखें कैं-कैं करती घूम रही थीं, मानो उन्हें भी पता चल गया हो कि घर में बेटा आ गया।

चाय आई, तो अतुल ने पहला प्याला नीरद के हाथ में थमाया, "यह इस खुशी में कि नीरद बाबू आज बापू बन गए।"

इतने में अभिराम फूकन आ निकले। नीरद ने अपना प्याला उनके हाथ में

थमाते हुए कहा, "यह इस खुशी मे मास्टरजी कि आज आपके एक नए शिष्य का जन्म हुआ है।"

"सच ?" अभिराम फूकन की आँखें चमक उठीं, और वह कमरे में घूम-घूमकर गुनगुनाने लगे :

राजा बेटा आए है, क्या लाए हैं ?
माझुली से आए है, क्या लाए हैं ?
नाव खेते आए हैं, क्या लाए हैं ?

छिहत्तर

'ब्रह्मपुत्र रेस्तोराँ' में नीरद ने शाम गुज़ारने के लिए स्थायी अड्डा ढूँढ़ लिया था और कभी-कभी अतुल भी शाम को वहाँ आ निकलता।

जाड़े का मौसम था। नीरद ने अतुल को आते देखकर पुकारा, "आओ भाई, आओ !"

अतुल आकर उसके पास बैठ गया। नीरद ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "तीन दिन से कहाँ थे ? तुम्हें देखने को तरस गया !"

"और हमें देखने को तो कोई तरसता नही !" राखाल ने भीतर आकर कहा, "हम भी चाय पिएँगे।"

"आओ, काका ! तुम भी बैठो।" और फिर नीरद ने आवाज़ दी, "धनसिंह भाई, केतली में पानी भरकर आग पर रखो और ताज़ा चाय बनाओ—ब्रह्मपुत्र मारका !"

"अभी लो !" धनसिंह ने गंभीर होकर कहा, "इस रेस्तोराँ के मालिक तो आप ही हैं, नीरद बाबू ! मैं तो समझो छोटा-सा मैनेजर हूँ। आप ठीक समय पर न लौट आए होते कलकत्ता से, तो मैंने पुरानी दुकान की नकल की होती। आपने सलाह दी, मैंने मान ली। उसी का फल है यह ब्रह्मपुत्र मारका रेस्तोराँ !"

नीरद ने हँसते हुए कहा, "अच्छा, अच्छा ! हमारी प्रशंसा ज़रा कम ही किया करो।"

इतने में एक स्त्री आकर ब्रह्मपुत्र रेस्तोराँ के सामने खड़ी हो गई। उसने ध्यान से अंदर बैठे लोगों को देखा।

नीरद ने स्त्री को देखा; उसका मुख गंभीर हो गया। उसकी आँखें कुछ-कुछ पहचान गई।

अतुल बोला, "कहाँ खो गए ?"

"माँ की मूर्ति देख रहा हूँ !" नीरद ने दबे स्वर में कहा।

नीरद ने फटी-फटी आँखों से देखा, और उछलकर बाहर चला आया। उसके पीछे अतुल और राखाल भी बाहर निकल आए। शिष्टाचारपूर्वक स्त्री के पास होकर नीरद बोला, "आप कोहिमा से आ रही हैं ?"

स्त्री ने हाँ में सिर हिलाया।

"मेरा नाम है नीरद, मैं हूँ एक लेखक।" नीरद ने स्वयं ही अपना परिचय दिया, "चौदह साल से ब्रह्मपुत्र पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ।" यह कहते-कहते उसे कुछ सकोच-सा हुआ और फिर उसने अपने साथियों का परिचय देना भी आवश्यक समझा, "यह रहा अतुल, हमारा गाँव-बूढ़ा। इसका बाबा भी गाँव-बूढ़ा था, बापू भी गाँव-बूढ़ा था, और अब यह स्वयं भी गाँव-बूढ़ा है। और ये रहे हमारे राखाल काका, जो तीस साल तक चाँदडूबी के जंगल में हाथियों के सरकारी महावत रहे। अब अच्छे-खासे देश-भक्त हैं; फ़िरंगी की पेंशन छोड़ दी। हम कहते हैं, अब चालू करा लो पेंशन, देश आज़ाद है। यह नहीं मानते।"

स्त्री ने मानो कुछ भी नही सुना। अतुल और राखाल चुप्पी साधे खड़े रहे। और फिर राखाल चुप न रह सका, "आज़ादी तो आई, पर वह आज़ादी तो अभी दूर है, जिसकी हमने कल्पना की थी। फिर मैं कैसे पेंशन चालू करा लूँ ?"

"रानी जयमती की कहानी याद है न ?" नीरद ने राखाल की बात अनसुनी करते हुए धनसिंह की ओर देखकर कहा।

रानी जयमती का नाम सुनकर उस स्त्री के गंभीर मुख पर एकाएक चमक आ गई।

"वह कहानी हम कैसे भूल सकते हैं ?" धनसिंह ने मंत्रमुग्ध-सा होकर कहा, "रानी जयमती की कहानी तो असम देश के इतिहास की जीती-जागती कहानी है।"

नीरद ने जैसे अपने-आपसे कहा, "रानी जयमती को कितने कष्ट पहुँचाए गए थे। वह भी कैसा युग रहा होगा। शिवसागर के राज-सिंहासन पर एक छोकरे को बैठा दिया गया था, जिसने अपने मुख्य मंत्री को सब-के-सब राजकुमारों के शरीर का कोई-न-कोई अंग काटकर और सोने के थाल में रखकर अपने सम्मुख प्रस्तुत करने की आज्ञा दी थी। रानी जयमती के पति गदाधरसिंह को इसकी ख़बर मिल गई। वह भागकर नागा पहाड़ियों में चला गया।"

अतुल ने कहा, "यह तो हमारे दिसांगमुख का बच्चा-बच्चा जानता है। जयमती की वीर-गाथा पर आज भी हमारा सिर ऊँचा उठ जाता है। उसने देश के लिए प्राण दिए।"

नीरद उस स्त्री की ओर देखता रहा, जो रंग-रूप और वेश-भूषा से नागा प्रतीत हो रही थी। वह मौन भाव से आते-जाते लोगों को देखती रही।

राखाल ने एक झटके से सिर के लंबे बालो को हिलाया और हाथ-भर की दाढ़ी मे उँगलियों से कंघी करते हुए कहा, "असमिया नारी के बलिदान की कहानी तो आज भी हमारे रोंगटे खड़े कर देती है। वीर नागाओ ने गदाधरसिंह को शरण दी, उसकी सहायता करने का प्रण किया; पर वे देर से पहुँचे। तब तक जयमती के प्राण-पखेरू उड चुके थे।"

"यह तो विधि का विधान था।" धनसिंह ने आह भरकर कहा।

"वीर नागाओ से अपना प्रण निभाया।" राखाल कहता चला गया, "नागाओं ने असमिया लोगों की सहायता की; असमिया राज-सिहासन से उस अत्याचारी अहोम राजा को उतारकर उसकी जीवन-लीला समाप्त की। गदाधरसिंह भी अहोम राजकुमार था। वह बड़ा धर्मी सिद्ध हुआ। गदाधरसिंह का पुत्र वीर और धर्मी राजा था, उसने अपनी माँ की स्मृति में जयसागर के नाम से शिवसागर राजधानी में बहुत बडा पोखर खुदवाया और इसी जयसागर के किनारे माँ की स्मृति में बनवाया जयदोल। जयसागर के निर्मल जल में इस मंदिर का प्रतिबिब बहुत भला लगता है।"

धनसिंह ने आवाज देकर कहा, "चाय तैयार है, नीरद बाबू !"

नीरद ने उस स्त्री से दोबारा पूछा, "आप कोहिमा से आ रही है ?"

स्त्री मुसकाई।

नीरद ने कहा, "आपका नाम ?"

"पहचान नही पाए ?"

"नही। लगता है, कहीं देखा है, सुना है। लगता है, माँ की मूर्ति देख रहा हूँ।"

स्त्री ने शिष्टतापूर्वक कहा, "मै गोइडालो हूँ।"

"रानी गोइडालो ?" नीरद ने चकित-सा होकर पूछा।

वह जा चुकी थी। उसके पीछे राखाल भी तेज-तेज़ डग भरता जा रहा था।

अतुल बोला, "बैठकर चाय पी जाए। यह वह नही होगी। यह तो कोई और ही लगती है। तुम नही मानोगे। राखाल काका यही ख़बर लाएँगे।"

धनसिंह ने आवाज दी, "नीरद बाबू, चाय ठंडी हो रही है।"

अब चाय का किसे ध्यान था। नीरद और अतुल भी उधर को ही हो लिए, जिधर वह स्त्री गई थी।

लोगों ने उसे पहचान लिया था। यही रानी गोइडालो थी।

कोई बोला, "मेरी आँखें धोखा नही दे सकती। उन दिनो मैं कोहिमा में था जब फ़िरंगी ने आज से बीस बरस पहले इसे पकड़कर जेल में डाला।"

किसी ने कहा, "तो दौडकर फूलमाला क्यों नहीं लाते ? रानी गोइडालो क्या नित-नित आएँगी ?"

किसी ने आवाज़ दी, "मैं तो उस जेल का संतरी रहा, जहाँ रानी गोइडालो

कैद थी। पिछले से पिछले बरस, पूरे अठारह बरस बाद बेचारी को जेल से छोड़ा गया। और फिर पिछले बरस हमारी पेंशन हो गई।"

"अपनी पेंशन को गोली मारो!" पास से कोई कह उठा, "हमें तो रानी गोइडालो की कोई बात सुनाओ। सच-सच बताओ, क्या यह वही है? कोई और तो नही?"

"सच-सच तो नीरद बाबू ही बता सकते हैं।" किसी ने कहा, "यह बूढ़ा क्या बताएगा?"

"भाई, मैं इसे पहचानता हूँ। मेरा विश्वास करो। मैं कहता हूँ, जिस जेल में रानी गोइडालो अठारह बरस तक कैद रही, मै उसी जेल का संतरी रहा। मै उसे पहचानता हूँ।"

"तुम उसे पहचानते हो, तो वह तुम्हें क्यों नही पहचानती? सच-सच बताओ, तुम्हारी क्या आयु थी, जब तुमने रानी गोइडालो को पहले-पहल देखा?"

"इसे छोडो।" पास से किसी ने कहा, "मै बताता हूँ। मैं तो उसे उस दिन से पहचानता हूँ, जब मै कोहिमा मे था। उसने कोहिमा बाज़ार मे आकर थाने के सामने खडी होकर नारा लगाया था। आज से बीस बरस पहले की बात है। उस समय मेरी आयु तीस बरस की थी। अब पूरे पचास बरस की है। यह हिसाब ठीक है।"

"इस हिसाब को गोली मारो।" कोई कह उठा, "प्रश्न तो रानी गोइडालो की ठीक-ठीक पहचान का है। यह वही है, तो हम इसे फूलमाला क्यों नही पहनाते? आज तो हमे रानी गोइडालो का भाषण सुनने को मिलेगा।"

फिर एक आदमी दौड़ता हुआ आया। उसके हाथ में फूलमाला थी।

"मेरी समझ में एक बात नही आती।" कोई बोला, "देश की आज़ादी के साथ ही रानी गोइडालो को क्यो नही छोड़ दिया गया? आज़ादी के बाद भी रानी गोइडालो को छोड़ने में दो बरस क्यों लग गए?"

"सरकार का काम तो ढीलम-ढालम ही चलता है।" राखाल ने गभीर आवाज में कहा, "फ़िरंगी सरकार हो चाहे अपनी सरकार। फाइल ज़रा धीरे-धीरे ही घूमती है। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे, कभी-कभी तो एक फाइल को उसी दफ्तर के एक कमरे से दूसरे कमरे तक जाने में छः महीने लग जाते है।"

"तब तो ठीक है।" पहलेवाले की तसल्ली हो गई, "अरे बाबा, तब तो अच्छा हुआ कि आज़ादी के दो साल बाद ही छोड़ दी गई रानी गोइडालो। फाइल और भी ढीलम-ढालम चलती, तो वह अब तक जेल में होती।"

बातें करते वे रानी गोइडालो के पीछे-पीछे चले जा रहे थे।

अतुल बोला, "नीरद बाबू, क्या यह वही है?"

"बिलकुल वही है। आज से चौदह साल पहले, जब हमारी कांग्रेस के प्रधान,

जो उन दिनों राष्ट्रपति कहलाते थे, असम देश की यात्रा पर आए थे, तो उन्होंने अपने एक लेख में इसे भी नही भुलाया था।"

"याद हों उनके शब्द, तो सुना डालो।"

"उन्होने लिखा था—'मुझे रानी गोइडालो की याद भी आई, जो जेल की कोठरी में बंद होगी। वह क्या सोच रही होगी! उसे किस बात का दुख होगा! उसके क्या-क्या सपने होंगे'!"

"धन्य भाग हमारे जो रानी गोइडालो को दिसाँगमुख की सुध आई।"

"यही तो मैं भी कहता हूँ।"

अब वे आलीसीगा की सीमा से बाहर चले आए थे। चलते-चलते वे नाव-घाट पर आ पहुँचे।

धर्मानंदी ने देखते ही रानी गोइडालो को पहचान लिया। किसी ने रानी गोइडालो के गले में फूलमाला डाल दी और ऊँची आवाज़ से नारा लगाया :

"रानी गोइडालो की जय!"

फिर लोगो ने मिलकर यही नारा लगाया, तो आरती भी दौड़ती हुई आ निकली। भीड़ को चीरती हुई वह रानी गोइडालो के पास आकर खड़ी हो गई।

धर्मानंदी बहुत प्रसन्न था। वह दोनों घुटने टेककर रानी गोइडालो के चरणों मे बैठ गया।

रानी गोइडालो सबको देख रही थी। उसके मुख से एक-आध बोल सुनने के लिए हर कोई उत्सुक था। कुछ लोग यह भी चाहते थे कि आज ही और इसी समय रानी का भाषण होना चाहिए।

अतुल ने लोगों को समझाया, "भाषण की नही, अब तो काम की आवश्यकता है। आप लोग विश्वास करें, यही रानी गोइडालो का संदेश है।"

राखाल ने रानी गोइडालो के बाईं तरफ़ खड़े-खड़े कहा, "रानी गोइडालो हमारे उजड़ने की खबर सुनकर आईं। मेरा विश्वास है, उनकी मेहनत वसूल हो गई जब उन्होंने यहाँ आकर देखा कि हम लोगों ने उनके यहाँ दर्शन देने से पहले ही अपनी बस्ती को कई गुना सुंदर बनाकर खड़ा कर दिया है।"

लोग फिर भी आग्रह करते रहे कि रानी गोइडालो अपने मुख से दो शब्द अवश्य कहें।

नीरद ने कहा, "आप लोग यह हठ छोड़ दें। रानी गोइडालो का संदेश यही है कि यह युग आज़ादी से पहले के युग से भिन्न है। अब हमें हर्ष-ध्वनि के बीच सभा-मंच पर जाने या बडी-बड़ी दावतों में सम्मिलित होने की अपेक्षा अपनी-अपनी बस्ती के जीवन को सँवारने में लगे रहना चाहिए।"

लोग यथापूर्व रानी गोइडालो के मुख से एक-आध बोल सुनने के लिए उत्सुक थे। रानी गोइडालो चुप खड़ी थी। यह बात तो सभी जानते थे कि देवकांत ने

क्रांतिकारी बनने की दीक्षा रानी गोइडालो से ही ली थी। धनसिंह की दुकान पर बैठकर देवकांत ने बताया था कि रानी गोइडालो न होती तो देवकांत भी न होता। कोहिमा के पास एक चट्टान पर बैठकर देवकांत ने प्रण किया था, और रानी गोइडालो ने आशीर्वाद दिया था कि उसकी कहानी बहुत आगे तक चलेगी। यही सोचकर उन्हीं ने नारा लगाया—"देवकांत की जय !"

इतने में आरती, जो अब तक चुपचाप खड़ी थी, ऊँचे स्वर में बोली, "देवकांत, भागकर चले आओ।"

फिर आरती ने अतुल को पकड़कर उससे पूछा, "तुम देवकांत हो तो चुप क्यों खडे हो ?"

अगले ही क्षण उसने नीरद को झँझोरकर कहा, "तुमने मेरे देवकांत को कहाँ छिपा दिया ?"

फिर वह राखाल के सामने चली गई, जैसे वह उसे ही देवकांत समझ रही हो।

रानी गोइडालो की आँखों में आँसू आ गए। जैसे ये आँसू कह रहे हों कि इसी दिन के लिए हमने इतने वर्ष जेल में गुजार दिए।

आरती ब्रह्मपुत्र में पैर रखकर खडी हो गई, और ऊँची आवाज़ से पुकारने लगी, "देवकांत, तुम आते क्यों नहीं ? आकर देखो, हमारे पास मछलियों की कमी नहीं।"

धर्मानंदी ने गंभीर होकर कहा, "इसकी बातो पर न जाओ, इसका दिमाग चल गया है।"

इतने में आरती हिरनी के समान उछलती-कूदती आई और रानी गोइडालो के पास खडी हो गई। वह उसे ऐसे घूर रही थी मानो देवकांत को उसी ने कही छिपा रखा हो। एक बार फिर रानी गोइडालो की आँखों में आँसू आ गए, जैसे वह सोच रही हो कि काश उसके पास कोई जादू-मंत्र होता जिससे वह आरती को पल-भर मे ठीक करके उसके बापू को शांति दे सकती।

आरती ने रानी गोइडालो की आँखों में घूरते हुए कहा, "तुमने देवकांत को कहाँ छिपा दिया ?"

और वह रानी गोइडालो को दोनों कंधों से पकड़कर जोर से झँझोरने लगी, तो धर्मानंदी ने उसे अलग करते हुए कहा, "जाओ, बैठकर खाना पकाओ। आज देवकांत आएगा।"

यह सुनते ही आरती परे हटकर बैठ गई। अब वह चुप थी, जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह आग में फूँकें मारने लगी।

"आरती को पागल बना गया देवकांत !" धर्मानंदी चुप न रह सका, "अब यह लड़की किसी काम की नही रही—मेरे काम की भी नही रही। किसी-किसी दिन मेरे साथ मछलियाँ पकड़ने चल पड़ती है, किसी-किसी दिन चावल और मछली भी

पका लेती है। फिर कई-कई दिन तक किसी काम को हाथ नही लगाती, मुख से एक शब्द तक नही निकालती। और कभी सारा दिन देवकांत को आवाजें देती रहती है। अब मैं इसे कहाँ फेंकूं ? मेरे कलेजे का टुकडा जो हुई।"

लोग इस बात पर झुँझला रहे थे कि जब रानी गोइडालो को कुछ कहना चाहिए, अपनी अठारह साल की जेल-यात्रा का अनुभव सुनाना चाहिए, यह बूढ़ा धर्मानंदी अपनी ही हाँक रहा है।

अतुल ने हाथ बाँधकर लोगों से कहा, "सूरज डूब चुका है। आप आराम से अपने-अपने घर चले। कल सूरज उगने तक रानी गोइडालो को कमलिया सापरी पर ले जाया जाएगा, जिसके समीप आरती ने आज से नौ साल पहले देवकात का ब्रह्मपुत्र में विसर्जन किया था। वही, कमलिया सापरी पर ही, रानी गोइडालो कुछ कहना पसद कर सकती है।"

रानी गोइडालो ने सब लोगो पर एक उचटती-सी नजर डाली, मुँह से कुछ न बोली, जैसे वह सबको पहचानती हो। गले से फूलमाला उतारकर वह तभी से उसे हाथ में लिए खड़ी थी, जैसे किसी मूर्तिकार ने एक ऊँची चट्टान से तराशकर इस मूर्ति को यहाँ खड़ा कर दिया हो। रानी गोइडालो की आँखें चमक रही थी। चेहरे पर लंबे अनुभव का उजाला था, जैसे देखते-देखते उसका कद ऊँचा उठ गया हो।

लोग मान गए और हिलने लगे। चलने से पहले उन्होने फिर नारा लगाया :

"रानी गोइडालो की जय !"

नाव-घाट के इस सिरे पर अब अतुल, नीरद और राखाल रह गए। रानी गोइडालो के चरणो में धर्मानदी उसी तरह बैठा था। आरती परे बैठी आग मे फूकें मार रही थी। हवा ब्रह्मपुत्र की लहरो से अठखेलियाँ कर रही थी। आरती के सिर के बाल उड-उड जाते थे।

धर्मानंदी ने अपनी ही हाँकी, "हम तो मछुवे हैं। हमारा काम यही है—जाल फेंकें, मछलियाँ पकडे, आप खाएँ, दूसरो को खिलाएँ। धन्य है ब्रह्मपुत्र ! धन्य हैं ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ ! देश गुलाम था, तो भी मछलियाँ जाल में फँसती रही। अब देश आजाद है, तो भी बराबर जाल में फँस रही है मछलियाँ।"

नीरद बोला, "इसीलिए तो हमारे राखाल काका इस आज़ादी को अपनी कल्पना की आजादी नही मानते।"

"माने कैसे ?" राखाल भी चुप न रह सका, "वैसे ही ब्रह्मपुत्र मे बहकर आती लकड़ी पर टैक्स लगा हुआ है; वैसे ही पुलिस धौस जमाती है, वैसे ही हमारे नेता हमें केवल वोट लेने के समय ही याद करते हैं।"

रानी गोइडालो मुसकराई, जैसे वह कहना चाहती हो कि यही बात तो याद रखने की है।

"हमें इतनी जल्दी अपनी आज़ादी से असंतुष्ट नहीं होना चाहिए।" अतुल ने

सहज बुद्धि का प्रमाण दिया, "नीरद बाबू मेरे साथ सहमत होंगे कि सात समुद्र और तेरह नदियाँ पार से आकर फ़िरंगी ने हमारे कंधो पर गुलामी का जुआ रखा, हमें अपने हल के बैल बनाया। लंबी गुलामी के कारण हममें बहुत-सी बुराइयाँ आ गईं। अब ये बुराइयाँ समय पाकर ही तो निकलेंगी।"

"यह तो समझौता हुआ।" राखाल काका ने झुँझलाकर कहा, "तुम गाँव-बूड़ा हो। तुम्हारी आँखों पर सरकारी ऐनक है। इसे उतारकर बात करो। तुम्हारे मुख से सरकार बोल रही है। मै कभी तुम्हारी यह सलाह नही मान सकता कि अपनी पेंशन फिर से चालू कराने के लिए अपने आजाद देश की आजाद सरकार को प्रार्थना-पत्र भेजूँ। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे, आजादी ऊपर से उतरकर लोगो तक नही पहुँचती, लोगो को ही ऊँचे उठकर आज़ादी तक पहुँचना होता है।"

रानी गोइडालो एक बार फिर मुसकराई, जैसे राखाल काका ने ठीक उसके मन की बात कह दी हो।

"रानीजी, सच पूछो तो मछुआ जन्म का आज़ाद है!" धर्मानंदी ने अपनी ही हाँकी, "मछुवे की दुश्मनी न फ़िरंगी से थी, न अब देश की सरकार से है। मछुवे की दुश्मनी मछलियो से भी नही है। यह पापी पेट न होता, तो मैं मछलियाँ न पकड़ता। मेरी इस बात से तो देवकांत ने भी कभी इनकार नही किया था।"

राखाल बोला, "मैं तो अपनी पेशन के लिए प्रार्थना-पत्र भेजने से रहा। अधेर मचा हुआ है। न रिश्वत समाप्त हुई है, न सिफ़ारिशो का ज़ोर कम हुआ है। दिया जलाकर ढूँढ देखो। न्याय नाम की चीज नही मिलती।"

रानी गोइडालो कुछ न बोली। पर वह बहुत गंभीर नजर आ रही थी। जैसे वह कहना चाहती हो, भले ही अभी लोगों की कल्पना की आजादी नही आई, पर उनकी आवाज़ पर अब उतने बंधन तो नही रहे, अब तो वे आज़ादी से अपनी सरकार की आलोचना कर सकते है; यह सब आजादी की देन ही तो थी। यह विचार उसे संतोष दे रहा था कि अब सच्ची आजादी के पैर भी जमेगे।

"मनुष्य मरने के लिए पैदा होता है!" नीरद ने ज्ञान बघारा, "पर वह जीने के लिए मरता है। इसलिए मैं कहता हूँ, जीवन से डरो, मृत्यु से नही। और फिर यह भी ध्यान रहे, मनुष्य कोई कुकुरमुत्ता तो है नही, क्योकि वह एक ही रात में नही उगता।"

"डूबना ही हो तो किसी नदी-नाले की अपेक्षा ब्रह्मपुत्र में क्यों न डूबा जाए!" अतुल ने विश्वासपूर्वक कहा, "देवकात का यह बोल मैं कभी नही भूल सकता।"

रानी गोइडालो की मुख-मुद्रा और भी गंभीर हो गई।

उनकी कल्पना कई भागों में बँट गई थी। मन के एक कोने में अतीत की स्मृति वीणा के स्वरो के समान झंकृत हो उठती थी, तो किसी दूसरे कोने में गाँव

के विनाश का दृश्य उजागर हो जाता। मन के एक कोने में बिछुड़े साथियों का चित्र सिर उठाता, तो दूसरे कोने में गाँव की नई बस्ती का जगमग-जगमग रूप एक नई आशा को जन्म देता। आज ब्रह्मपुत्र बहुत गंभीर था। जैसे वह सारे संसार का प्रेम जुटाकर दिसाँगमुख के चरणो में बिछाना चाहता हो।

सभी गंभीर थे। किसी में भी इस मौन को तोड़ने का साहस न था। सहसा धर्मानंदी ने ब्रह्मपुत्र को घूरकर कहा, "प्यारे, हम तो अब भी मछलियाँ पकड़ेगे। गाँव तो फिर से आबाद हो चुका है। तेरी मछलियाँ कहाँ जाएँगी ?"

रानी गोइडालो जैसे उनके बीच होती हुई भी उनसे दूर थी। वह देवकात के बारे मे सोच रही थी।

"ब्रह्मपुत्र से क्यो डरने लगा दिसाँगमुख ?" अतुल भी चुप न रह सका, "देवकात कहा करता था—असम, असमिया, ब्रह्मपुत्र, यह त्रिमूर्ति तो साथ-साथ रहेगी। देवकात यह भी कहा करता था—ब्रह्मपुत्र की सातवी लहर सौभाग्यवती होती है, मछलियों के लिए भी और मछुवे के लिए भी। न जाने उसका क्या भाव था ? यह तो सभी समझ सकते है, किसी के लिए देवता है ब्रह्मपुत्र, किसी के लिए दानव। मछलियाँ भी जीवित रहना चाहती हैं और मछुवा भी। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे, मछुवा भी किसी के लिए मछली है।"

धर्मानंदी ने पेट पर एक हाथ से थाप लगाकर कहा, "हर रोज़ भूख लगती है। पेट ही गुलामी कराता है, पेट ही आजादी माँगता है।"

रानी गोइडालो इन लोगों की बातें सुन रही थी और ब्रह्मपुत्र की ओर देख रही थी।

इतने में आरती ने उठकर धर्मानंदी का कंधा झँझोरा और सहज भाव से कहा, "देवकात अभी तक क्यो नही आया, बापू ? और देवकात ने यह क्यो कहा था बापू कि दुलहन के वस्त्र सीनेवाली कन्या देर तक कुँआरी रहती है ?" वह हँस पड़ी, और दूर भाग गई।

धर्मानंदी बोला, "अच्छा होता कि आरती ने देवकात के साथ ही जल-समाधि ले ली होती। आरती की जो अवस्था अब है, वह तो अच्छी नही। देवकात जीवित रहता तो मैं अपनी आरती का विवाह उसी से करता। भले ही वह घर-जमाई बनकर मेरी इच्छा के अनुसार हमारे साथ रहना स्वीकार न करता।"

रानी गोइडालो कुछ न बोली। ब्रह्मपुत्र के किनारे की रेत पर बैठ गई। संकेत से उसने बताया कि वह यही रात गुजारेगी।

धर्मानंदी ने जाल फेंकने के अंदाज़ मे हाथ चलाकर खड़े-खड़े कहा, "जब तक सरकार है, न मछली से टैक्स हटेगा, न ब्रह्मपुत्र में बहकर आती लकड़ी से ! जब मैं जाल फेंकता हूँ तो कहता हूँ—सावधान, मछलियो !"

अंधकार की चादर में लिपटे वे ब्रह्मपुत्र के किनारे बैठे थे। झींगुरों और मेंढकों

के स्वर मानो एक ही ताल पर बज रहे हों। ब्रह्मपुत्र मानो अपने गंभीर स्वर में कह रहा था—तुम मेरी प्रजा हो; मेरी आशा-आकांक्षा, मान-मर्यादा, सब तुम्हारे लिए है···। और दूर से आरती का गीत सुनाई दे रहा था :

ब्रह्मपुत्र कानो ते, बरहमथूरी जूपी,
आमी खरा लोरा जाई;
ऊटूबाई नीनीवा, ब्रह्मपुत्र देवता,
तामोल दी मानोता नाइं![1]

सतहत्तर

अब धर्मानंदी ब्रह्मपुत्र के किनारे बैठा रहता है। वह कभी जाल उठाकर फेंका करता था; आरती नाव चलाया करती थी; मछलियाँ देखकर वह नाव रोक लिया करती थी। अब तो उसे जाल को हाथ लगाए बहुत दिन हो गए। छप की आवाज से उसका भारी-भरकम जाल किस प्रकार ब्रह्मपुत्र में गिरता था, अब तो वह आवाज़ उसकी याद में खो गई; उसकी एक हल्की-सी गूँज रह गई।

ब्रह्मपुत्र की साँझ बहुत प्यारी है। उससे भी प्यारे है ये बच्चे, जो यहाँ उछल-कूद मचाते हैं। कभी मेंढको के समान टर्राने लगते है; कभी मछलियो का खेल खेलने लगते है, जिसका आधार है एक लोक-कथा। मछलियो की सभा होती है। उनकी शिकायत है कि सिर पर जाल उठाए मनुष्य का जन्म हुआ, और अब उसका जाल मछलियो का शत्रु है, मनुष्य के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने के पश्चात् मछलियाँ अपने अगले कार्य पर विचार करने लगती है कि मनुष्य के कदमो की आवाज़ सुनाई दे जाती है। 'छप' की आवाज़ होती है। सिक्के के टुकड़े बज उठते है। मछलियाँ डर के मारे किनारों से भागने लगती है। बच्चो की मासूम और नटखट भाव-भंगियो में यह खेल देखते-देखते बूढ़े धर्मानदी को अपने जाल का स्मरण हो आता है, अपनी बलिष्ठ भुजाओं का ध्यान आ जाता है। सिक्के के छोटे-छोटे, झिलमिल टुकड़े उसकी बूढ़ी आँखो के सामने थिरक उठते है। वह जाल कभी का छूट गया। अब तो वह बहुत बूढ़ा हो गया। अब तो वह अच्छी तरह चल-फिर भी नही सकता; पर जाल डालने की छप की आवाज़ और सिक्के के झिलमिल टुकड़ों की टंकार अब भी मानो उसके मन में अटकी रह गई है।

---

१. ब्रह्मपुत्र के किनारे है बरहमथूरी गाछ, जहाँ हम ईधन लेने जाते है। इसे लील मत लेना, ब्रह्मपुत्र देवता! हमारी इतनी भी क्षमता नही कि हरी सुपारी से ही तुम्हारा अर्चन करें।

जब सूर्य देवता अपने रथ को पश्चिम दिशा में मोड़ते-मोड़ते आँख से ओझल हो जाते हैं, बूढ़ा धर्मानदी अपनी कल्पना में फिर से शिशु बन जाता है; बच्चों के साथ बच्चा बनकर वह भी उलटबाजियाँ लगाता है।

यह कल्पना तो बीच ही में टूटती है। ज़रा सँभलकर वह अपने लबे अनुभव पर विचार करता है। जो दोपहर को क्रोध मे लाल-पीला होता है, वह साँझ को शात भी होता है। क्रोध ही जीवन नही। जीवन मे तो कोमलता और विनम्रता चाहिए; सुदरता, शांति और संगीत चाहिए। इन्ही गुणो से जीवन मे महानता आती है। जो मन के भीतर है, उसी की झलक मन के बाहर। अपना कोई आदर्श हो, जिसके लिए मर मिटे, हर प्रकार की विपता झेलने के लिए तैयार रहे। लोग मुझे अक्खड़ और झगड़ालू समझते रहे, निरक्षर और उजड्ड मछुवा ही समझते रहे। इसमें मेरा क्या दोष कि एक मछुवे के घर जन्म हुआ? अत तक ठोकरें खाने के पश्चात् बुद्धि आती है। असल बुद्धिमान तो वह है जो अंत आने से पहले ही रास्ता पा ले। मृत्यु कधा झँझोरकर कहती है— आओ मेरे साथ। यह नाटक समाप्त हुआ, अब दूसरा नाटक आरंभ होता है!···और फिर छप की आवाज़, मानो जाल ब्रह्मपुत्र में डाल दिया हो! जरा सँभलकर वह सोचता है—जाल तो कभी का छूट गया।

ब्रह्मपुत्र के किनारे रात धीरे-धीरे उतरती है। बच्चे दौड़ते हुए आते है, और बूढ़े धर्मानदी के गिर्द चक्कर बनाकर बैठ जाते है। धर्मानदी की निगाह दूर चली जाती है; वह देखता है, आरती उसे बुलाने आ रही है, भोजन तैयार कर लिया होगा। इस बात का उसे सतोष है कि आरती की अवस्था कुछ-कुछ सुधर गई है। पास आकर वह भी बच्चो मे मिलकर बैठ जाती है। आँखो-ही-आँखो मे बच्चे कहते है—बाबा! कथा सुनाओ!

आरती की आँखे खुशी से नाच उठती हैं, जैसे बाबा देवकात की कथा सुनाएँगे।

बाबा गुड़गुड़ी पर कश लगाकर मेघ-गभीर स्वर में कहना आरंभ करता है:

जय ब्रह्मपुत्र! जय जल देवता! सावधान, मछलियो! बहुत पहले की बात है, जब संसार की रचना हो रही थी। देवताओ ने देखा कि चाँद है, सूरज है, और चाँद-सूरज की जोडी के साथ अनगिनत तारे है। फिर देवताओ ने धरती को रूप दिया, धरती पर पर्वत बनाए, बड़े-बड़े पेड़ उगाए। पेड़ो पर फूल खिले, फल लगे। देवताओं ने पशु बनाए, पछी बनाए। किसी वस्तु की कमी फिर भी खटकती ही रही। यही सोचकर देवताओं ने मनुष्य की रचना की, और उसे इस ब्रह्मपुत्र का रूप दिया, और फिर···

□□□